सचित्र
आचारांग सूत्र

द्वितीय श्रुतस्कन्ध

(जैन श्रमण का आचार तथा भगवान महावीर का जीवन-दर्शन)
[मूलपाठ : हिन्दी, अंग्रेजी भावानुवाद, विवेचन एवं रंगीन चित्रों सहित]

★ सम्पादक-अनुवादक ★
उत्तर भारतीय प्रवर्तक भण्डारी श्री पद्मचन्द्र जी महाराज के सुशिष्य
उपप्रवर्तक श्री अमर मुनि

★ सह-सम्पादक ★
श्रीचन्द सुराना 'सरस'

पद्म प्रकाशन
पद्मधाम, नरेला मण्डी, दिल्ली-११० ०४०

उत्तर भारतीय प्रवर्तक भण्डारी श्री पद्मचन्द्र जी महाराज की
६७वीं दीक्षा जयन्ती के शुभ प्रसग पर प्रकाशित

सचित्र आगम माला का नौवाँ पुष्प

- **सचित्र आचारांग सूत्र (द्वितीय श्रुतस्कन्ध)**

- **सम्पादक-अनुवादक**
  उपप्रवर्तक श्री अमर मुनि
- **सह-सम्पादक**
  श्रीचन्द सुराना 'सरस'
- **अंग्रेजी अनुवाद**
  सुरेन्द्र बोथरा
- **चित्रांकन**
  सरदार पुरुषोत्तमसिंह
  डॉ. त्रिलोक शर्मा
- **प्रकाशक**
  पद्म प्रकाशन
  पद्मधाम, नरेला मण्डी, दिल्ली-११० ०४०
- **मुद्रण-व्यवस्था**
  दिवाकर प्रकाशन
  ए-७, अवागढ़ हाउस, एम. जी. रोड, आगरा-२८२ ००२
  दूरभाष : (०५६२) ३५११६५
- **प्रथम आवृत्ति**
  वि. सं. २०५६ फाल्गुन
  ईस्वी सन् २००० मार्च
- **मूल्य**
  पाँच सौ रुपया मात्र

ILLUSTRATED

ACHARANGA SUTRA

BOOK TWO

(The Code of Conduct for Jain Shraman and a Glimpse of Bhagavan Mahavir's Life)

[Original Text with Hindi and English Translations, Elaboration and Colourful Illustrations]

★ EDITOR-TRANSLATOR ★

Up-pravartak Shri Amar Muni

(the disciple of Uttar Bharatiya Pravartak Bhandari Shri Padma Chandraji Maharaj)

★ ASSOCIATE-EDITOR ★

Srichand Surana 'Saras'

PADMA PRAKASHAN

PADMA DHAM, NARELA MANDI, DELHI-110 040

Published on the occasion of the 67th anniversary of the pious Diksha ceremony of Uttar Bharatiya Pravartak Bhandari Shri Padma Chandraji Maharaj

THE NINTH NUMBER OF THE ILLUSTRATED AGAM SERIES

- **ILLUSTRATED ACHARANGA SUTRA (Book Two)**
- ***Editor-Translator***
  Up-pravartak Shri Amar Muni
- ***Associate Editor***
  Srichand Surana 'Saras'
- ***English Translation***
  Surendra Bothara
- ***Illustrations***
  Sardar Purushottam Singh
  Dr. Trilok Sharma
- ***Publisher***
  Padma Prakashan
  Padma Dham, Narela Mandi, Delhi-110 040
- ***Printing***
  Diwakar Prakashan
  A-7, Avagarh House, M.G. Road, Agra-282 002
  Phone : (0562) 351165
- ***First Edition***
  Falgun, 2056 V.
  March, 2000 A.D.
- ***Price***
  Five Hundred Rupees only
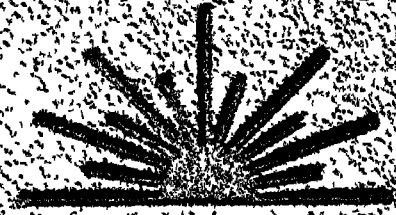
उत्तर भारतीय प्रवर्तक
राष्ट्रसंत सद्गुरुदेव भण्डारी
श्री पद्मचन्द्र जी महाराज
के ६७ वें दीक्षा दिवस के
उपलक्ष्य में

समर्पण

गुरु चरण चंचरीक
अमर मुनि

श्रुत सेवा में सहयोगी

उपप्रवर्तिनी स्व. साध्वी
श्री जगदीश मति जी म.
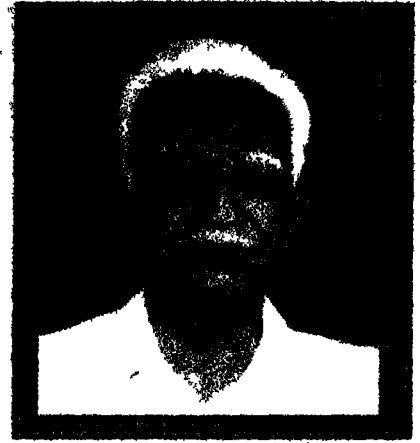
गुरुभक्त धर्मप्रेमी
श्री पन्नालाल जैन (कान्ही वाले)

उपप्रवर्तिनी साध्वी श्री जगदीश मति जी म. की पुण्य स्मृति में निर्भीक वक्ता साध्वी श्री संतोष कुमारी जी म. की सद्प्रेरणा से श्री पन्ना लाल जैन (भगताभाई वाले) ने आगम में उदार सहयोग प्रदान किया।

श्री महेन्द्र कुमार जैन
आत्म पद्म प्रकाशन, नरेला मण्डी, दिल्ली
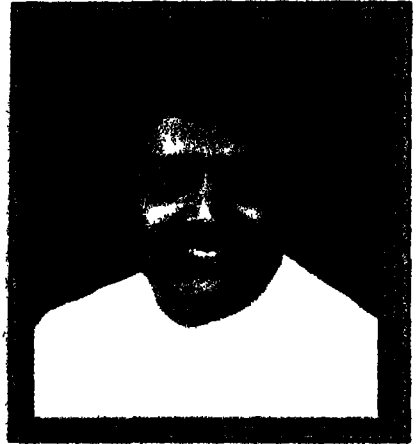
श्री ओ. पी. जैन हरियाणवी
पीतमपुरा, दिल्ली
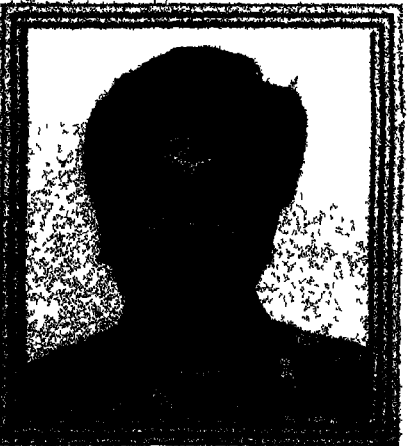
श्री निमेष रमेश भाई शाह
गुजरात विहार, दिल्ली
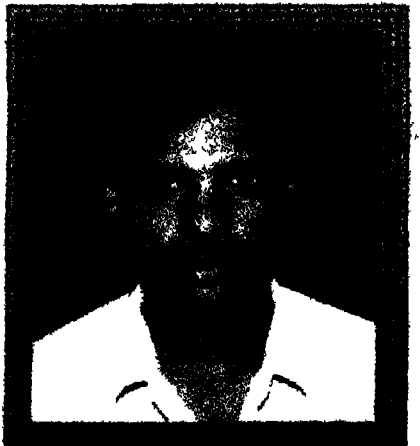
धर्मप्रेमी श्री राजेश कुमार
पेहवा (कुरुक्षेत्र)

श्रुत-सेवा के सहयोगी

श्रीमती भागवन्ती जैन, धर्मपत्नी
स्व. श्री धनपत राय जैन
श्री गंगानगर, राजस्थान

श्रीमती शशि जैन, धर्मपत्नी
श्री सुभाष चन्द जैन
विवेक विहार, दिल्ली

श्रीमती कौशल्या जैन, धर्मपत्नी
श्री सुशील जैन
योजना विहार, दिल्ली

श्रीमती मंजु जैन, धर्मपत्नी
श्री अनिल कुमार जैन
रोहिणी, दिल्ली

श्रीमती सरला जैन, धर्मपत्नी
श्री मनोहर लाल जैन
पीतमपुरा, दिल्ली

श्रीमती माया जैन, धर्मपत्नी
श्री सुरेन्द्र कुमार जैन
शास्त्री नगर, दिल्ली
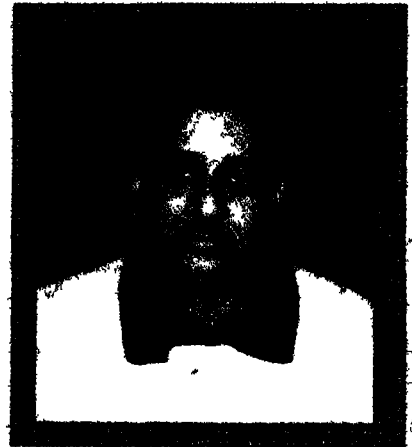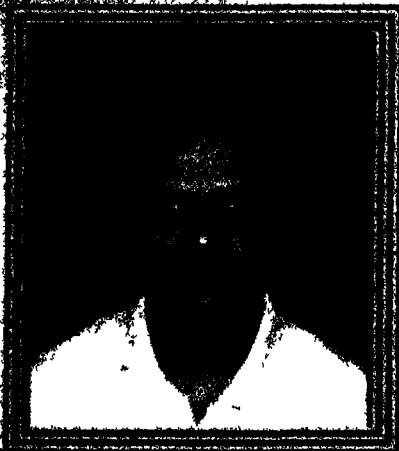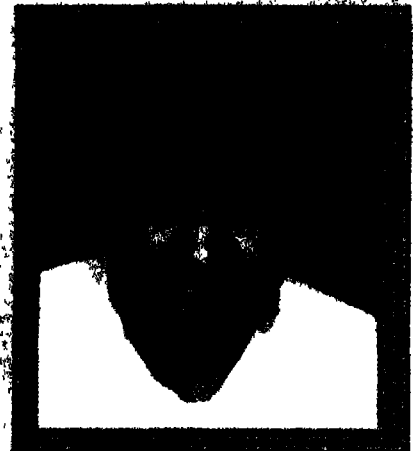
प्रकाशकीय

नाणं पयासयरं—ज्ञान सूर्य की भाँति समस्त संसार को प्रकाशित करने वाला अपूर्व प्रकाश स्रोत है। श्रुत-सेवा सबसे बड़ी सेवा है। इससे हजारों लाखों लोग सन्मार्ग का, सद्धर्म का ज्ञान प्राप्त कर अपने जीवन का कल्याण कर सकते हैं।

उत्तर भारतीय प्रवर्तक गुरुदेव राष्ट्रसन्त भण्डारी श्री पद्मचन्द्र जी म. के शिष्यरत्न उपप्रवर्तक श्री अमर मुनि जी महाराज जो स्वयं एक श्रेष्ठ विद्वान् और शास्त्रों के गहन अभ्यासी हैं। आप आगम महोदधि श्रमणसंघ के प्रथम आचार्यसम्राट् श्री आत्माराम जी म. की शिष्य परम्परा के एक तेजस्वी नक्षत्र हैं। आपमें भी अपने पूज्य दादा गुरुदेव की भाँति जिनवाणी के प्रति अपूर्व-अगाध निष्ठा है और उसके प्रचार-प्रसार में अपने जीवन को कृतार्थ करने का महान् संकल्प है। इस वज्र संकल्प और निरन्तर अध्यवसाय का ही यह शुभ परिणाम है कि प्राकृत भाषा में निबद्ध आगमों का हिन्दी एवं अंग्रेजी अनुवाद/विवेचन करके सुरम्य चित्रों के साथ इसका प्रकाशन करवा रहे हैं।

इतना श्रम-साध्य और व्यय-साध्य यह कार्य गुरुदेव की ही कृपा, आशीर्वाद और आपके शुभ प्रयासों से निर्विघ्न सम्पन्न हो रहा है। अब तक आगम ग्रंथमाला में नौ आगम प्रकाशित हो चुके हैं और सर्वत्र इनका स्वागत हुआ है। पाठक इनका रुचिपूर्वक स्वाध्याय कर रहे हैं।

पिछले वर्ष जुलाई में आचारांग सूत्र का प्रथम श्रुतस्कन्ध (एक भाग) प्रकाशित हो चुका है। अब यह दूसरा श्रुतस्कन्ध पाठकों के हाथों में पहुँचाते हुए हमें प्रसन्नता है।

इस श्रुत-सेवा के कार्य में हमारे सहयोगी श्रीचन्द सुराना 'सरस', अंग्रेजी अनुवादकर्त्ता सुरेन्द्र बोथरा तथा चित्रकार सरदार पुरुषोत्तमसिंह जी एवं डॉ. त्रिलोक शर्मा जी को हम धन्यवाद देते हैं। साथ ही जिन गुरुभक्तों ने प्रकाशन में तन-मन-धन से सहयोग किया उनके भी हम आभारी हैं।

विनीत

महेन्द्रकुमार जैन

अध्यक्ष

पद्म प्रकाशन

PUBLISHER'S NOTE

Like the sun, knowledge too is a unique source of light that illuminates the world. Service of the *Shrut* (*Agam* literature) is the loftiest service. It helps thousands and millions of people to acquire knowledge of the right path and right religion and make their life blissful.

Scriptures are the words of great spiritualists They are the compilation of the essence of knowledge gathered through austerities, spiritual practices, contemplation and self-realization. The study of such scriptures fills the reader's mind with the light of knowledge and spiritual insight.

Up-pravartak Shri Amar Muniji M., the able disciple of Uttar Bharatiya Pravartak Bhandari Shri Padma Chandraji M., is an accomplished scholar, having profound knowledge of scriptures, in his own right. He is a bright star in the lineage of Agam Mahodadhi Acharya Samrat Shri Atmaramji M who was the first *acharya* of the Shraman Sangh. Like his illustrious predecessor, Shri Amar Muniji M. also has unending devotion for the sermons of the *Jina* with an unwavering resolve to devote his life to the cause of popularizing and spreading the same The outcome of this strong resolve and continued perseverance is evident in the publication of this series of *Agams,* originally written in Prakrit language, with Hindi and English translations and elaborations as well as attractive illustrations.

It is with the blessings and efforts of the revered Gurudev that such laborious and cost intensive project is progressing unimpeded. With this volume we have completed the publication of nine books in this Illustrated Agam Series. All these have been received well and our readers are studying them with keen interest

The first book *(Shrutaskandha)* of *Acharanga Sutra* was published last year in July. We are now pleased to present this second book *(Shrutaskandha)* to our readers.

We are thankful to our associates namely, the scholarly editor Srichandji Surana, English translator Shri Surendra Bothara, and the accomplished artists Sardar Purushottam Singh and Dr. Trilok Sharma. We also express our gratitude for the devotees of our Gurudev who have contributed many ways to this effort.

Mahendra Kumar Jain
PRESIDENT
Padma Prakashan

आद्य वचन

महान् श्रुतधर आचार्य श्री भद्रबाहु स्वामी आचारांग सूत्र का महत्त्व बताते हुए कहते हैं–

एत्थ य मोक्खोवाओ एत्थ य सारो पवयणस्स।

–निर्युक्ति १

आचारांग में मोक्ष-प्राप्ति के उपाय का प्रतिपादन है। यही जिन-प्रवचन का सार है। आचारांग का अध्ययन कर लेने पर श्रमण धर्म को सम्यक् रूप में समझा जा सकता है।

आचारांग सूत्र के दो श्रुतस्कन्ध हैं। प्रथम श्रुतस्कन्ध का प्रकाशन गत वर्ष हो चुका है और उसकी प्रस्तावना में उस विषय में संक्षेप में लिखा जा चुका है। आचारांग के द्वितीय श्रुतस्कन्ध को 'आचाराग्र' या 'आचार चूला' कहा जाता है। इसमें मुख्य रूप से श्रमण आचार, साधु के आचार का ही वर्णन है। प्राचीन मान्यता के अनुसार आचारांग का यह द्वितीय श्रुतस्कन्ध् पाँच चूलाओं में विभक्त है–हवइ य स पंच चूलो।

इनमें से चार चूला आचारांग में आज विद्यमान हैं, पाँचवीं चूला आचारांग से पृथक् कर 'निशीथ सूत्र' के नाम से एक स्वतंत्र आगम रूप में प्रस्थापित हो गया है। आचारांग में साधु के आचार मर्यादा आदि का विधान है। उस आचार मर्यादा में दोष आदि लगने पर उसकी शुद्धि हेतु प्रायश्चित्त का वर्णन निशीथ में है। इस प्रकार निशीथ सूत्र भी आचारांग से पूर्णतः सम्बन्धित ही है। वर्तमान में आचार चूला की चार चूलाओं में इस प्रकार का विभाजन मिलता है–

● प्रथम चूला · सात अध्ययन : पच्चीस उद्देशक

नाम	उद्देशक	विषय
१. पिण्डैषणा	११	आहार शुद्धि का प्रतिपादन
२. शय्यैषणा	३	संयम-साधना के अनुकूल स्थान-शुद्धि का वर्णन
३. इर्यैषणा	३	गमनागमन का विवेक और विधि
४. भाषाजातैषणा	२	भाषा-शुद्धि का विवेक और विधि
५. वस्त्रैषणा	२	वस्त्र-ग्रहण सम्बन्धी विविध मर्यादाएँ
६. पात्रैषणा	२	पात्र-ग्रहण सम्बन्धी विविध मर्यादाएँ
७. अवग्रहैषणा	२	स्थान आदि की अनुमति लेने की विधि

इस प्रकार प्रथम चूला के ७ अध्ययन व २५ उद्देशक हैं।

द्वितीय चूला के निम्न ७ अध्ययन हैं, ये उद्देशकरहित हैं।

८. स्थान-सप्तिका	आवास योग्य स्थान का विवेक और विधान
९. निषीधिका सप्तिका	स्वाध्याय एवं ध्यान योग्य स्थान-गवेषणा का वर्णन
१०. उच्चार-प्रस्रवण-सप्तिका	शरीर की दीर्घ-शंका एवं लघु-शंका निवारण की विधि व विवेक
११. शब्द-सप्तिका	शब्दादि विषयों में राग-द्वेषरहित रहने का उपदेश
१२. रूप-सप्तिका	रूपादि विषयों में राग-द्वेषरहित रहने का उपदेश
१३. पर-क्रिया-सप्तिका	दूसरों द्वारा की जाने वाली सेवा आदि क्रियाओं का निषेध
१४. अन्योन्यक्रिया सप्तिका	परस्पर की जाने वाली क्रियाओं में विवेक का वर्णन

१५ तृतीय चूला का एक अध्ययन–भावना है। इसमें भगवान महावीर के उदात्त चरित्र का संक्षेप में वर्णन है। आचार्यों के अनुसार प्रथम श्रुतस्कन्ध में वर्णित आचार का पालन किसने किया– इसी प्रश्न का उत्तर-रूप भगवद्चरित्र यहाँ प्रतिपादित है। इसी अध्ययन में पाँच महाव्रतों की पच्चीस भावना का वर्णन भी है।

१६. विमुक्ति–चतुर्थ चूलिका में सिर्फ ग्यारह गाथाओं का एक अध्ययन है। इसमें विमुक्त वीतराग आत्मा का वर्णन है।

आचार्य श्री भद्रबाहु का अभिमत है कि आचार चूला का विषय सूत्ररूप में प्रथम श्रुतस्कन्ध में ही विद्यमान है। इस दूसरे श्रुत श्रुतस्कन्ध में उनका विस्तार है।

पिण्डैषणा, वस्त्रैषणा, पात्रैषणा आदि के सभी सूत्र संकेत रूप में प्रथम श्रुतस्कन्ध में आ चुके हैं। यहाँ पर उनका विस्तारपूर्वक वर्णन है इसलिए यह एक प्रकार से प्रथम श्रुतस्कन्ध का परिशिष्ट या पूरवणी (पूरक) भाग कहा जा सकता है।

आचारांग के कर्त्ता

प्रथम श्रुतस्कन्ध के विषय में यह स्पष्ट धारणा है कि उसके रचयिता भगवान महावीर के प्रथम पट्टधर पंचम गणधर आर्य सुधर्मा स्वामी थे। किन्तु द्वितीय श्रुतस्कन्ध के विषय में भिन्न-भिन्न मत हैं। विभिन्न आचार्यों एवं अनुसंधाताओं ने कहा है–द्वितीय श्रुतस्कन्ध के रचनाकार स्थविर हैं। यह स्थविरकृत आगम है।

प्रश्न होता है स्थविर कौन?

आचारांग चूर्णि एवं निशीथ चूर्णिकार के मतानुसार स्थविर का अर्थ है–गणधर। थेरा गणधरा (चूर्णि, भाग १, पृ. ४)

वृत्तिकार शीलांकाचार्य कहते हैं–श्रुत वृद्धैश्चतुर्दशपूर्व विदूभिः–स्थविर का अर्थ है चतुर्दश पूर्वधर श्रुत-वृद्ध।

आचार्य श्री आत्माराम जी म. का अभिमत है यह आगम गणधरकृत है। इसके पक्ष में उन्होंने अनेक सटीक तर्क प्रस्तुत किये हैं–

दशवैकालिक सूत्र की संकलना भगवान महावीर के निर्वाण के ५८ वर्ष पश्चात् आर्य शय्यंभव सूरि ने की। यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि उनके समक्ष आचारांग का द्वितीय श्रुतस्कन्ध विद्यमान था। आचारांग के पिण्डैषणा अध्ययन को समक्ष रखकर दशवैकालिक के पंचम पिण्डैषणा अध्ययन का पद्यानुवाद जैसा उन्होंने किया। दशवैकालिक के चतुर्थ अध्ययन 'छज्जीवणिकाय' की रचना १५वें 'भावना' अध्ययन के आधार पर, 'सुवक्क सुद्धी' नामक सातवें अध्ययन की रचना 'भासाजाय' चतुर्थ अध्ययन के आधार पर की गई है। इससे यह सिद्ध होता है कि शय्यंभवाचार्य के समक्ष यह श्रुतस्कन्ध विद्यमान रहा है। इसके अतिरिक्त इसके १५वें भावना अध्ययन का उल्लेख समवायांग सूत्र में एवं प्रश्नव्याकरण सूत्र में भी आता है। जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में भी बताया है–भगवान ऋषभदेव ने श्रमण-साधना के लिए २५ भावनाओं के साथ पाँच महाव्रतों का उपदेश दिया। जहा भावणाज्झयणे। यहाँ भी भावना अध्ययन के अनुसार की सूचना है।

इसी प्रकार स्थानांग सूत्र के चतुर्थ स्थान में चार शय्या प्रतिमा, चार वस्त्र प्रतिमा, चार पात्र प्रतिमा और चार स्थान प्रतिमा का वर्णन भी अचारांग के अनुसार है। सातवें स्थान में सात पिण्डैषणा आदि का उल्लेख इसी सूत्र की विद्यमानता सिद्ध करते हैं। इन सभी साक्ष्यों के विषय में यह कहा जा सकता है कि गणधरकृत आगमों में स्थविरकृत आगम का उल्लेख संभव नहीं है। अतः आचारांग का द्वितीय श्रुतस्कन्ध भी गणधरकृत ही है। (आचारांग की प्रस्तावना)

विविध सांस्कृतिक सामग्री

आचारांग में साधु आचार मर्यादा के वर्णन के प्रसंग में प्राचीन भारत की विविध प्रकार की सांस्कृतिक सामग्री का परिचय भी प्राप्त होता है। जैसे–'इन्द्रमह', 'भूतमह', 'रुद्रमह' आदि लौकिक उत्सवों का वर्णन तत्कालीन समाज की धार्मिक व सांस्कृतिक रीति-रिवाजों की एक झलक प्रस्तुत करता है।

वस्त्रों के वर्णन के प्रसंग में उस युग में उपलब्ध विविध सूक्ष्म कलात्मक बहुमूल्य वस्त्रों का वर्णन तो उस युग की अत्यन्त विकसित समृद्ध वस्त्रकला का स्पष्ट निदर्शन कराता है।

इसी प्रकार पात्रों के वर्णन से भी पता चलता है पात्र निर्माण की कला और मिट्टी धातु काँच आदि के सुन्दर कलात्मक पात्र उस युग में बनते थे जिन पर सोने, चाँदी के तारों व रंगों से विविध फूलपत्ती, चित्रकारी की जाती थी।

सखडि, नौकारोहण, मार्ग में चोर, लुटेरों आदि का उपद्रव, वैराज्य प्रकरण आदि के वर्णन जहाँ श्रमण जीवन में आने वाली कठिनाइयों का रोमांचक दृश्य प्रस्तुत करते हैं। वहाँ उस समय की राजनीतिक व सामाजिक परिस्थितियों पर भी प्रकाश डालते हैं।

इस प्रकार यह आगम जहाँ श्रमण की प्राचीन आचार मर्यादा के अध्ययन के लिए पठनीय, मननीय है वहीं प्राचीन भारतीय समाज के सांस्कृतिक स्वरूप की झाँकी पाने के लिए अध्ययन व अनुसंधान की सामग्री प्रस्तुत करता है।

प्रस्तुत संपादन

मैंने इस आगम में पाठ संशोधन तथा अनुवाद विवेचन में प्राचीन चूर्णि, निर्युक्ति व वृत्ति आदि का उपयोग किया है। शुद्ध पाठ के लिए युवाचार्य श्री मधुकर मुनि के निदेशन में श्रीचन्द सुराना द्वारा संपादित आचारांग सूत्र भाग २ का उपयोग किया है। वहीं कठिन शब्दों का अर्थ शब्द-कोष व चूर्णि के आधार पर स्पष्ट किया गया है। प्राचीन अर्थ का अनुसंधान करने में भी चूर्णि का उपयोग किया गया है।

जैन-आगमों के सफल हिन्दी व्याख्याकार श्रमणसंघ के प्रथम आचार्यसम्राट् आचार्य श्री आत्माराम जी म ने आचारांग सूत्र के द्वितीय श्रुतस्कन्ध का बहुत सुन्दर सटीक विवेचन किया है। अनेक विवादास्पद स्थलों पर उन्होंने आगमों के संदर्भ देकर सत्य का उद्घाटन करते हुए तर्कयुक्त व्याख्या की है। मैंने इस विवेचन में आचार्यश्री की हिन्दी टीका का स्थान-स्थान पर उपयोग किया है। वास्तव में इन्हीं आधार ग्रंथों के बल पर मैं अपने संपादन को अधिक उपयोगी बना सका हूँ। मैं हृदय से उनका आभारी हूँ।

मेरे आगम संपादन कार्य के अनन्य सहयोगी श्रीचन्द सुराना 'सरस' ने सदा की भाँति अत्यन्त मनोयोगपूर्वक इसका संपादन तथा भावानुरूप चित्रांकन करवाकर इस रचना की उपयोगिता में चार चाँद लगा दिये हैं। साथ ही अंग्रेजी अनुवादकर्त्ता श्री सुरेन्द्र बोथरा तथा चित्रकार सरदार पुरुषोत्तमसिह जी एवं श्री त्रिलोक शर्मा ने चित्रों में भावों को सुन्दर अभिव्यक्ति दी है। जैनधर्म, दर्शन के विद्वान् व अंग्रेजी भाषाविज्ञ सुश्रावक राजकुमार जी जैन, दिल्ली ने भी सेवाभाव से अपनी महत्त्वपूर्ण सेवाएँ दी हैं। मैं इन सभी के सहयोग के प्रति आभारी हूँ।

उत्तर भारतीय प्रवर्तक पूज्य गुरुदेव भण्डारी श्री पद्मचन्द्र जी म की कृपा, आशीर्वाद के कारण मैं अपने श्रुत-सेवा कार्य में निरन्तर आगे बढ़ रहा हूँ और विश्वास है इसी प्रकार आगे श्रुत-सेवा में अपना जीवन सार्थक करता रहूँगा। आदरणीय उपप्रवर्तिनी साध्वी श्री जगदीशमति जी म. की विदुषी शिष्या निर्भीकवक्ता साध्वी श्री सन्तोषकुमारी जी की सद्प्रेरणा से इसमें सहयोग प्राप्त हुआ है तथा गुरुदेव के अनेक उदार भक्त श्रावकों ने आगम-सेवा की भावना से जो सहयोग किया है मैं उन सबको हृदय से धन्यवाद देता हूँ।

—उपप्रवर्तक अमर मुनि

FROM THE EDITOR-IN-CHIEF'S PEN

FOREWORD

Stressing the importance of *Acharanga Sutra Acharya* Shri Bhadrabahu Swami, the great scholar of Jain canons says—

Acharanga contains precepts about the path of attaining liberation. It is the essence of the preaching of the *Jina*. By studying *Acharanga* one can acquire proper understanding of *Shraman Dharma* (Jain religion).

Acharanga Sutra is in two volumes *(Shrutaskandha)*. The first *Shrutaskandha* was published last year and its brief introduction was included as its preface. The second *Shrutaskandha* of *Acharanga* is called *Acharagra* (the tip of *Acharanga*) or *Achara Chula* (the pinnacle of *Acharanga*); in modern terminology it may be called appendix. It mostly contains details about the conduct of an ascetic. According to the ancient belief the second *Shrutaskandha* of *Acharanga* was divided into five *Chulas* or appendices *(Acharanga Niryukti)*

The modern editions have only four *Chulas*, the fifth one being separately compiled as an independent *Agam* (canon) under the title *Nishith Sutra*. *Acharanga* contains the codes of ascetic-discipline and other related topics. The details about atonements and corrections in case of lapses and faults in observing the ascetic codes are detailed in *Nishith*. Thus *Nishith Sutra* is almost like an extension of *Acharanga Sutra*.

The extant four *Chulas* of *Acharanga* have following sub-divisions—

The first *Chula* has seven Chapters *(Adhyayan)* and twenty five lessons *(Uddeshak)*—

Chapter	Uddeshak	Subject
1. ***Pindaishana***	11	purity of food
2. ***Shayyaishana***	3	purity of place suitable for ascetic practices
3. ***Iryaishana***	3	procedure and prudence of movement
4. ***Bhashajataishana***	2	procedure and prudence of purity of speech
5. ***Vastraishana***	2	various rules related to ascetic-garb
6. ***Patraishana***	2	various rules related to ascetic-pots
7 ***Avagrahaishana***	2	procedure of seeking permission for a place of stay (etc.)

These are the 7 chapters and 25 lessons of the first *Chula.*

The 7 chapters of the second *Chula* are as follows, these are without lessons—

8 ***Sthana Saptika***	prudence and procedures regarding place of stay
9 ***Nishidhika Saptika***	details about exploration of place suitable for studies and meditation
10. ***Uchchar-prasravan Saptika***	prudence and procedure regarding attending nature's call
11. ***Shabda Saptika***	message about remaining free of attachment and aversion of sounds (etc.)
12 ***Rupa Saptika***	message about remaining free of attachment and aversion of forms (etc.)
13. ***Parakriya Saptika***	censure of taking services (etc.) from others
14. ***Anyonyakriya Saptika***	prudence of reciprocal activities amongst ascetics

15. The third *Chula* has one chapter titled *Bhaavana.* This contains the pious life-story of *Bhagavan* Mahavir in brief. According to *acharyas* this has been given as an answer to the question that who followed the codes of conduct detailed in the first *Shrutaskandha* of *Acharanga Sutra.* This chapter also contains the twenty five *Bhaavanas* (stimulants) of the five great vows.

16. The fourth *Chula* contains one chapter with just eleven verses. This contains the description of the detached and liberated soul.

In *Acharya* Shri Bhadrabahu's opinion the theme of *Achara Chula* is mentioned in the first *Shrutaskandha* of *Acharanga Sutra* in aphoristic style. This second *Shrutaskandha* contains only the elaboration of that.

Pindaishana, Vastraishana, Patraishana (etc.) all have figured in the first *Shrutaskandha* in aphoristic style. This part only contains them in more details. Thus it may be called an appendix or a supplementary work to the first *Shrutaskandha.*

THE AUTHOR OF *ACHARANGA*

It is an established belief that the author of the first *Shrutaskandha* was *Arya* Sudharma Swami, the fifth *Ganadhar* (principle disciple) and the first head of the order after *Bhagavan* Mahavir. But there are different opinions about the second *Shrutaskhandha.* Various *acharyas* and researchers have opined that the author of the second *Shrutaskandha* was a *sthavir.* This is an *Agam* written by a *sthavir.*

The pertinent question is that who is a *sthavir* ?

According to *Acharanga Churni* and *Nishith Churni sthavir* means *ganadhar. Thera ganadhara* *(Acharanga Churni, part I, p. 4)*

Shilankacharya, the author of the *Vritti,* says—*Sthavir* means *Chaturdash Purvadhar* (a scholar of the fourteen *purvas* or subtle canons) or a senior and profound scholar of *Shrut* (the word of the *Jina*).

Acharya Shri Atmaramji M is also of the opinion that this *Agam* was written by *Ganadhars* He has cited irrefutable arguments in favour of this—

Dashavaikalika Sutra was compiled 58 years after the *nirvana* of *Bhagavan* Mahavir by Shayyambhava Suri. It appears that he had before him the second *Shrutaskandha* of *Acharanga Sutra;* and he seems to have translated the *Pindaishana* Chapter of this, in verse in the fifth chapter of *Dashavaikalika Sutra* bearing the same title. *Chhajjivanikaya,* the fourth chapter of *Dashavaikalika Sutra,* is based on the 15th chapter titled *Bhaavana;* and *Suvakka Suddhi,* the seventh chapter is based on *Bhasajata,* the fourth chapter. This proves that at the time of Shayyambhavacharya this *Shrutaskandha* already existed Besides this, the mention of *Bhaavana,* its 15th chapter, is also found in *Samavayanga Sutra* and *Prashna Vyakarana Sutra* In *Jambudveep Prajnapti* also there is a mention that *Bhagavan* Rishabhdeva preached five great vows with twenty five *bhaavanas* for ascetic practices. This too is an affirmation of the *Bhaavana* chapter of the second *Shrutaskandha*

Similarly, in the *Sthananga Sutra* the descriptions of four *pratimas* (self-regulations) each of *shayya* (bed and place of stay), *vastra* (clothes), *patra* (pots) and *sthan* (place) follow the pattern of *Acharanga* In the seventh *sthana* (chapter) the mention of seven *pindaishanas* (exploration of food) (etc) is another evidence of the antiquity of this *Sutra* Regarding all these evidences it can be said that it is not possible to find mention from *Agams* written by *sthavirs,* who belonged to the later period, in the *Agams* written by *Ganadhars,* who belonged to the earlier period Thus it becomes evident that the second *Shrutaskandha* of *Acharanga Sutra* is a work of a *Ganadhar* *(preface of Acharanga by Acharya Shri Atmaramji M)*

PLENTIFUL CULTURAL INFORMATION

In *Acharanga* a variety of information about ancient Indian culture is also available For example, the descriptions of *Indramaha,*

Bhoot-maha, Rukshamaha and other folk festivals provides a glimpse of the religious and cultural traditions prevalent in the society of that period.

In context of description of clothes, the details about a variety of fine, artistic and costly clothes give a vivid picture of the highly developed and rich craft of textile making.

Similarly the description of pots informs about the art of pot making. Also that in that age beautiful and artistic pots were made with materials like silica, glass, metal etc. and they were embellished with art work including floral patterns using gold and silver wires as well as colours

Details about feasts, boat rides, distress caused by thieves and bandits, enemy states etc. throw light on the social and political conditions of that period besides providing touching narration of the afflictions faced while leading itinerant ascetic life.

Thus this *Agam* is important for the study of the ancient codes of conduct and at the same time it also provides useful material for study and research about the cultural structure of the ancient Indian society.

THIS EDITION

I have consulted ancient works like *Churni, Niryukti* and *Vritti* for authenticating the text, its translation and elaboration. For the authentic and corrected text *Acharanga Sutra,* part 2 edited by Srichand Surana under guidance of *Yuvacharya* Madhukar Muni has been used. The technical terms have been elaborated and explained with the help of dictionaries and *Churni.* The *Churni* has also been used to dig out the ancient interpretations.

Acharya Samrat Shri Atmaramji M., the first *acharya* of *Shraman Sangh* and the famous author of Hindi commentaries of *Agams,* has written a beautiful and eloquent commentary on *Acharanga* second *Shrutaskandha.* On many disputed points he has provided a logical explanation revealing the truth on the basis of references from

Agams. I have used the Hindi commentary by *Acharyashri* at many places in my elaborations. In fact, I could make this edition much more useful only with the help of these reference works. I am deeply indebted to all those authors of the past.

As always, Shrichand Surana 'Saras', my close associate in this project of editing *Agams*, has ensured the usefulness of this work through his sincere editorial contribution as well as conceiving and supervising the theme based lively illustrations. Shri Surendra Bothara has shown his eloquence in his English translation as artists Sardar Purushottam Singhji and Shri Trilok Sharma in their colourful illustrations. Shri Rajkumar Jain of Delhi, a scholar of Jain philosophy and English language has also provided his voluntary and valuable services to this work. I am grateful to them all for their able assistance

With the blessings of Uttar Bharatiya Pravartak Pujya Gurudev Bhandari Padmachandraji M. my work in the field of Jain scriptures is progressing steadily I am confident that I will be able to fulfil my mission of spreading the word of the *Jina (Shrut seva)* and give meaning to my life This project has received contributions with the inspiration of Sadhvi Shri Santoshkumariji, the scholarly disciple of respected Up-pravartini Sadhvi Shri Jagadishmatiji M , and a bold orator in her own right. Contributions have also been received from many generous devotee *shravaks* of Gurudev with their missionary zeal for *Shrut seva*. I convey my heartfelt thanks to them all.

—Up-pravartak Amar Muni

अनुक्रमणिका			CONTENTS		
सूत्र	विषय	पृष्ठ	Sutra	Subject	Pages

नोट . सूत्र संख्या २४१ के वाद सूत्र सख्या २४२ गणना में भूल रह गई है।
अत सूत्र २४३ को २४२ समझ लेवें। कुल सूत्र ४१० ही हैं।

आयारंगसुत्तं

बीओ सुयक्खंधो : आयार चूला

आचारांगसूत्र

द्वितीय श्रुतस्कन्ध : आचार चूला

ACHARANGA SUTRA

PART TWO : ACHARA CHULA
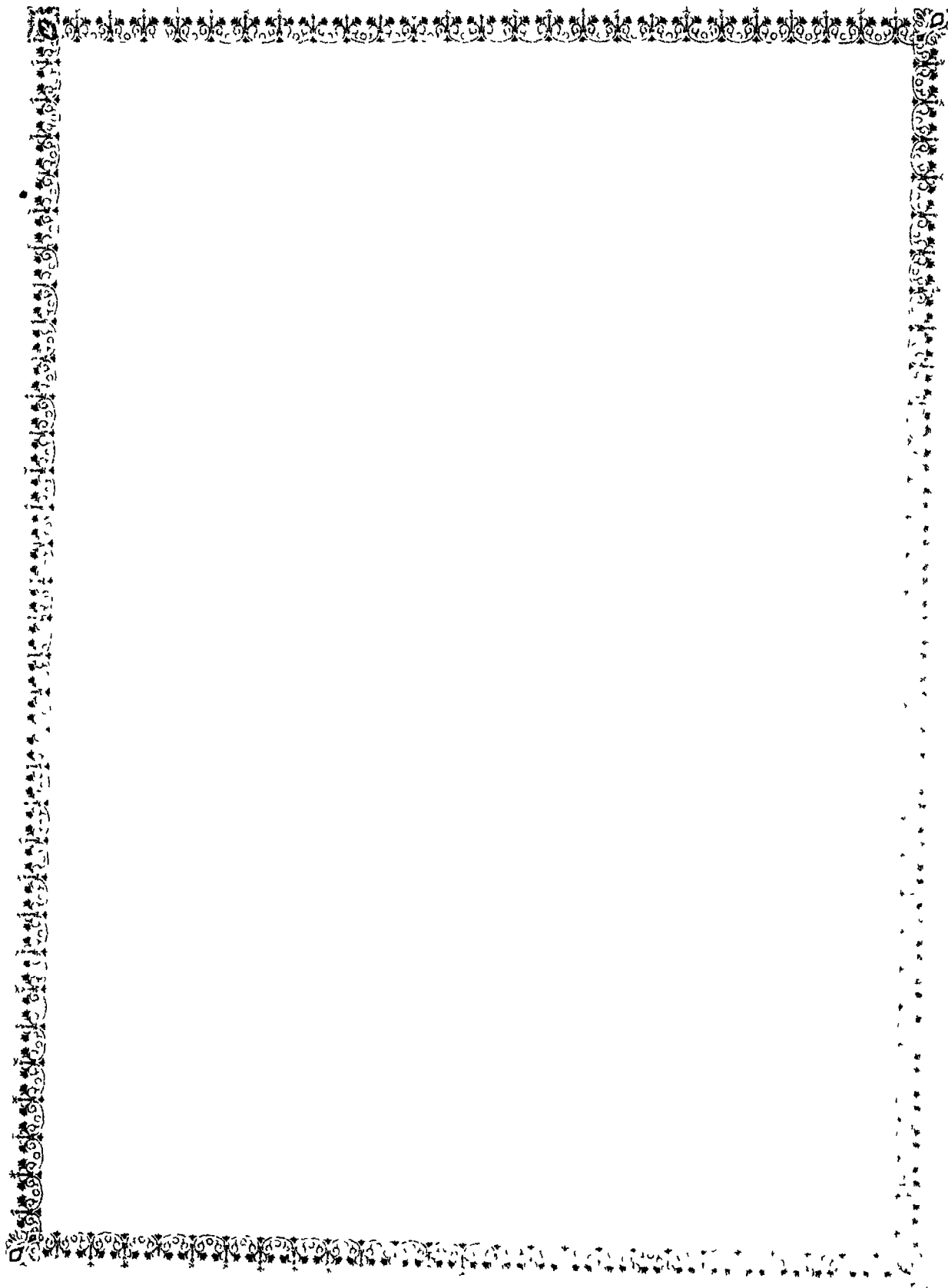
पिण्डैषणा : प्रथम अध्ययन

आमुख

✦ आचारांगसूत्र के इस द्वितीय श्रुतस्कंध का दूसरा नाम 'आचाराग्र' या 'आचार चूला' भी है। यह सम्पूर्ण ४ चूला तथा १६ अध्ययनों में निबद्ध है।

✦ चूला, चूडा या चोटी शीर्ष स्थान को कहते हैं। इसमें श्रमण के आचार सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण विषयो का निर्देश होने से इसे 'चूला' संज्ञा दी गयी है।

✦ आचार पाँच प्रकार का है–ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार। इस श्रुतस्कंध में मुख्य रूप में 'चारित्राचार' का ही वर्णन है। मध्यवर्ती होने से चारित्राचार बाकी चारों आचार का रक्षक है।

✦ प्रथम चूला में पिण्डैषणा से अवग्रह-प्रतिमा तक के सात अध्ययन हैं। द्वितीय चूला में स्थान सप्तिका आदि (अध्ययन ८ से १४) है। तृतीय चूला में भावना (१५वाँ) अध्ययन एवं चतुर्थ चूला में विमुक्ति (१६वाँ) अध्ययन वर्णित है।

✦ पिण्ड का अर्थ है–पदार्थों का समूह या संघात। द्रव्य-भाव से इसके दो भेद हैं। भाव पिण्ड का अर्थ है–संयम। द्रव्य पिण्ड का अर्थ है–भोजन। आहार, शय्या तथा उपधि (वस्त्र-पात्र) ये तीनों द्रव्य पिण्ड है।

✦ संयम साधना में शरीर मुख्य सहायक है। शरीर निर्वाह के लिए आहार आवश्यक है। शुद्ध, निर्दोष, सयम साधना के लिए शुद्ध आहार की एषणा करना यह प्रथम अध्ययन का विषय है।

✦ आहार-शुद्धि के लिए की जाने वाली **गवैषणैषणा**–(शुद्धाशुद्धि-विवेक), **ग्रहणैषणा**–(ग्रहण विधि का विवेक) और ग्रासैषणा–(परिभोगैषणा–भोजन-विधि का विवेक)। तीनों मिलकर पिण्डैषणा कहलाती हैं। पिण्डैषणा में आहार-शुद्धि (पिण्ड) से सम्बन्धित उद्‌गम, उत्पादना, एषणा, संयोजना, प्रमाण, अंगार, धूम और कारण; यों आठ प्रकार की पिण्ड-विशुद्धि (एषणा) का वर्णन है।

● ●

PINDAISHANA : FIRST CHAPTER

INTRODUCTION

- Another name of this second part of *Acharanga Sutra* is *'Acharagra'* or *'Achara Chula'*. This is made up of 4 *Chulas* and 16 Chapters.
- *Chula, chuda* or *choti* means the highest point or pinnacle. As this work contains directions about important aspects or peaks, of ascetic conduct it is called *'Chula'*.
- Conduct is of five types—*jnanachar* (conduct related to knowledge), *darshanachar* (conduct related to perception), *charitrachar* (conduct related to the ascetic way), *tapachar* (conduct related to austerities), *viryachar* (conduct related to vitality) This second part of the book mainly discusses conduct related to the ascetic way As *charitrachar* is the central one this conduct acts as custodian to the other four.
- The first *Chula* has seven chapters from *Pindaishana* to *Avagraha Pratima*. The second *Chula* also has seven chapters (8th to 14th) including *Sthana Saptika*. The third *Chula* has one chapter (15th) named *Bhavana*, and the fourth *Chula* also has one chapter (16th) titled *Vimukti*.
- *Pind* means a cluster or agglomerate of things. It has two types—mental and physical. The mental cluster *(bhava-pind)* means ascetic discipline. The physical cluster is meals. Bed, food and equipment (dress and pots), all these three are called physical cluster *(dravya-pind)*.
- For practice of ascetic discipline the body is the main instrument. Food is essential in order to maintain the body. To search for pure food for the practice of pure and faultless ascetic discipline is the subject discussed in the first chapter

✦ Prudence about purity and impurity is ***gaveshanaishana,*** prudence about procedure of acquisition is ***grahanaishana*** and prudence about procedure of eating is ***grasaishana***. The combination of these three is called *pindaishana* or prudent search for things. In the chapter titled *Pindaishana* are discussed eight types of purity of things (*pindavishuddhi*) related to food. They are—***udgam*** (source), *utpadana* (production), ***eshana*** (search), ***samyojana*** (collection), *praman* (quantity), *angar* (fire), ***dhoom*** (smoke) and ***karan*** (purpose).

●●

पिंडेसणा : पढमं अज्झयणं
पिण्डैषणा : प्रथम अध्ययन
PINDAISHANA : FIRST CHAPTER
THE SEARCH FOR THINGS

पढमो उद्देसओ | प्रथम उद्देशक | LESSON ONE

सचित्त-संसक्त आहार का निषेध

१. से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुपविट्ठे समाणे–से जं पुण जाणेज्जा, असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा, पाणेहिं वा पणगेहिं वा बीएहिं वा हरिएहिं वा; संसत्तं उम्मिस्सं सीओदएण वा ओसित्तं, रयसा वा परिघासियं। तहप्पगारं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पर-हत्थंसि वा पर-पायंसि वा अफासुयं अणेसणिज्जं ति मण्णमाणे लाभे वि संते णो पडिगाहेज्जा।

से य आहच्च पडिगाहिए सिया, से त्तमादाय एगंतमवक्कमेज्जा, एगंतमवक्कमित्ता अहे आरामंसि वा अहे उवस्सयंसि वा अप्पंडे अप्पपाणे अप्पबीए अप्पहरिए अप्पोसे अप्पुदए अप्पुत्तिंग-पणग-दगमट्टिय-मक्कडासंताणए विगिंचिय विगिंचिय उम्मिस्सं विसोहिय विसोहिय तओ संजयामेव भुंजेज्ज वा पिएज्ज वा।

जं च णो संचाएज्जा भोत्तए वा पायए वा से त्तमादाय एगंतमवक्कमेज्जा, अवक्कमित्ता अहे झामथंडिल्लंसि वा अट्ठिरासिंसि वा किट्टरासिंसि वा तुसरासिंसि वा गोमयरासिंसि वा अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि थंडिलंसि पडिलेहिय पडिलेहिय पमज्जिय पमज्जिय तओ संजयामेव परिट्ठवेज्जा।

१. भिक्षु या भिक्षुणी आहार की भिक्षा के लिए गृहस्थ के घर मे प्रवेश करके (आहार योग्य सामग्री का अवलोकन करते हुए) यह जाने कि यह अशन, पान, खाद्य तथा स्वाद्य आहार रसज आदि (द्वीन्द्रियादि) प्राणियो से, पणग–काई-फफूँदी से, गेहूँ आदि के बीजों से, हरे अंकुर आदि से संसक्त–लगा हुआ है, मिश्रित (मिला हुआ) है, सचित्त जल से गीला है तथा सचित्त मिट्टी से सना हुआ है; यदि इस प्रकार का (अशुद्ध) अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य पर–(देने वाले) के हाथ में हो, पर के पात्र में हो तो उसे अप्रासुक (सचित्त) और अनेषणीय (दोषयुक्त) मानकर प्राप्त होने पर ग्रहण न करे।

कदाचित् (किसी की भूल से) सदोष आहार ग्रहण कर लिया हो तो वह (भिक्षु या भिक्षुणी) उस आहार को लेकर एकान्त स्थान पर चला जाए या उद्यान या उपाश्रय में ही जहाँ द्वीन्द्रियादि प्राणियों के अंडे न हों, जीव-जन्तु न हों, बीज न हों, हरियाली न हो, ओस के कण न हों, सचित्त जल न हो तथा चींटियाँ, लीलन-फूलन (फफूँदी), गीली मिट्टी या दलदल, काई या मकड़ी के जाले एवं दीमकों के घर आदि न हों, वहाँ उस संसक्त आहार से उन जीवों को पृथक् करके तथा उस मिश्रित आहार को शोध-शोधकर फिर यतनापूर्वक उपभोग कर ले।

यदि वह उस आहार को खाने-पीने में असमर्थ हो तो उसे लेकर एकान्त स्थान में चला जाए। वहाँ जाकर दग्ध-(जली हुई) स्थंडिल भूमि पर, हड्डियों के ढेर पर, लोह के कूड़े के ढेर पर, तुष-(भूसे) के ढेर पर, सूखे गोबर के ढेर पर या इसी प्रकार के अन्य निर्दोष एवं प्रासुक (जीवरहित) स्थण्डिल-(स्थान) का भलीभाँति निरीक्षण करके, उसका रजोहरण से अच्छी तरह प्रमार्जन करके, फिर यतनापूर्वक उस आहार को वहाँ परिष्ठापित कर दे (डाल दे)।

CENSURE OF *SACHIT* (CONTAMINATED) FOOD

1. A *bhikshu* (male ascetic) or *bhikshuni* (female ascetic) entering a house of a householder (layman) to beg for food (and while inspecting the eatables) should find out if those eatables including staple food, liquids, general food and savoury food [this group of four types of food is oft repeated in the text as *'asanam va 4'*; for convenience and brevity we shall use just 'food' for this from here on] are touching or are mixed with two sensed beings like those produced in liquids, moss or mould, seeds of wheat and other grains, sprouts etc., or are wet with *sachit* (contaminated with living organisms) water, or are smeared with *sachit* sand; if such eatables are in the hands of the donor, or in the pot of the donor; then he or she should consider it to be *sachit* or contaminated and faulty or unacceptable and should not take if offered.

If by chance (by mistake) some faulty food has been taken, he or she should carry that food to some forlorn place or in a garden

or the place of stay, which is free of eggs of two sensed beings, creatures, seeds, vegetation, dew drops, *sachit* (contaminated with living organism) water, and also ants, mould, wet sand, mud, cobwebs or anthills, and there he should pick out the contaminated portion and clean the mixed food before carefully eating it.

If he or she is unable to eat or drink that food, it should be taken to a desolate place. There he/she should look for a spot that is free of living organisms, such as a fumigated spot, heap of bones, heap of iron scrap, heap of hay or heap of dried cow-dung or any other faultless spot. He/She should then properly inspect that spot, clean it well with ascetic-broom, and then dispose that food carefully at that spot

विवेचन–भिक्षा में जीवादि सहित सदोष आहार मिलने पर उसके उपयोग के विषय में यहाँ मार्गदर्शन किया गया है।

विशेष शब्दों के अर्थ–आहच्च–चूर्णिकार ने इसके चार अर्थ किये हैं–(१) सहसा ग्रहण कर लेने पर, (२) कदाचित् कभी ग्रहण कर लें तो, (३) देने वाले की भूल से, तथा (४) ग्रहण करने वाले की भूल से–आहार आ गया हो तो।

अप्रासुक–अनेषणीय–आहार-शुद्धि के अर्थ में ये दो शब्द महत्त्वपूर्ण हैं। अप्रासुक का अर्थ है–जो जीव सहित सचित्त हो। अनेषणीय का अर्थ है–गवेषणैषणा, ग्रहणैषणा तथा ग्रासैषणा से सम्बन्धित दोषों सहित हो। जीवरहित (अचित्त) तथा भिक्षाचरी के दोषों से मुक्त आहार प्रासुक और एषणीय–ग्रहण करने योग्य होता है। आचार्य श्री आत्माराम जी म ने संस्कृत टीका का संदर्भ देते हुए अपनी व्याख्या में कहा है–सामान्य स्थिति में अप्रासुक व अनेषणीय आहार ग्रहण नहीं करना चाहिए। किन्तु विशेष अपवादिक स्थिति आने पर तो वैसा सचित्त-संसक्त आहार ग्रहण करके उससे जीवादि को यतनापूर्वक दूर करके तटस्थ-वृत्ति से आहार का उपयोग कर लेवें। यदि जीवादि को अलग करना संभव नहीं होता हो तो उसे एकान्त निर्दोष स्थान पर परठ देवें।

अपवाद स्थिति के विषय में बताया है जैसे–योग्य आहार दुर्लभ हो, दुर्भिक्ष आदि का समय हो तथा शरीर रुग्ण या अशक्त हो, ऐसी अपवादिक स्थिति आने पर सदोष आहार भी लिया जा सकता है। *(आचार्य श्री आत्माराम जी म. कृत हिन्दी टीका, भाग २, पृ. ७४५)*

भिक्षाचरी के बयालीस दोषों का वर्णन अध्ययन के अन्त में देखें।

अप्पंडे आदि शब्दों में अल्प शब्द अभाववाचक हैं। जिसमें प्राणी आदि न हों। प्रतिलेखन और प्रमार्जन से अभिप्राय है-अच्छी प्रकार देखें और फिर रजोहरण से उन्हें यतना सहित दूर करें।

Elaboration—Here directions have been given for use and disposal of faulty food contaminated with living organisms, collected as alms.

Technical Terms : *Ahachch*—The commentator *(Churni)* has given four meanings of this term—(1) on accepting suddenly; (2) on accepting sometimes by chance; (3) accepted due to mistake of the donor; and (4) accepted due to seeker's own mistake.

Aprasuk (aneshaniya)—In relation to purity of food these two words are very important. *Aprasuk* means that which has living organisms or is *sachit*. [from here on we shall use the word 'contaminated' for sachit Thus, unless otherwise specified contaminated should be taken as contaminated with living organisms. In the same way uncontaminated here would mean not contaminated with living organism or *prasuk*.] *Aneshaniya* means that which has faults related to purity and impurity *(gaveshanaishana)*, procedure of acquisition *(grahanaishana)* and procedure of eating *(grasaishana)*. Food which is free of living organisms or *achit* and free of the faults of alms collection is *prasuk* and *eshaniya* and is acceptable. Acharya Shri Atmaramji M., referring to the commentary *(Tika)*, has mentioned in his elaboration—Under normal circumstances *aprasuk* and *aneshaniya* food should not be accepted. However, in exceptional situation such food could be accepted and eaten only after carefully removing living organisms (etc.) and with equanimous attitude. When it is not possible to separate the living organisms (etc.) it should be discarded at a proper and desolate spot with due care.

Regarding exceptional situation he mentions—for example proper food is not available; it is a period of drought or other such calamity; or in case of ailing and weak condition of the ascetic. Under such exceptional circumstances faulty food can also be accepted. *(Tika by Acharya Shri Atmaramji M, part 2, p 745)*

Refer to the forty two faults of alms seeking mentioned at the end of the chapter.

Appande and other words with the prefix *alp* denote absence. Where there are no beings (etc.). *Pratilekhan* and *pramarjan* mean inspect carefully and then cleanse carefully with the ascetic-broom.

सबीज अन्न-ग्रहण निषेध

२. से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गाहावइ जाव पविट्ठे समाणे–से जाओ पुण ओसहीओ जाणिज्जा। कसिणाओ सासियाओ अविदलकडाओ अतिरिच्छच्छिण्णाओ अव्वोच्छिण्णाओ; तरुणियं वा छिवाडिं अणभिक्कंतमभज्जियं पेहाए अफासुयं अणेसणिज्जं ति मण्णमाणे लाभे संते णो पडिगाहिज्जा।

से भिक्खू वा २ जाव पविट्ठे समाणे से जाओ पुण ओसहीओ जाणेज्जा। अकसिणाओ असासियाओ विदलकडाओ तिरिच्छच्छिण्णाओ वोच्छिण्णाओ तरुणियं वा छिवाडिं अभिक्कंतं भज्जियं पेहाए फासुयं एसणिज्जं ति मण्णमाणे लाभे संते पडिगाहेज्जा।

२. गृहस्थ के घर में गया हुआ भिक्षु या भिक्षुणी यदि इन औषधियों–(बीज वाले अनाजों) को जाने कि वे अखण्डित (पूर्ण) हैं, इनकी योनि नष्ट नहीं हुई है, जिनके दो या दो से अधिक टुकडे नहीं हुए हैं, जिनका तिरछा छेदन नहीं हुआ है, जो जीवरहित (प्रासुक) नहीं है, अभी कच्ची अधपकी फली हैं, जो अभी सचित्त व अभग्न हैं या अग्नि में भुँजी हुई नहीं हैं, तो उन्हें देखकर उनको अप्रासुक एवं अनेषणीय समझकर प्राप्त होने पर भी ग्रहण न करे।

गृहस्थ के घर में प्रविष्ट भिक्षु या भिक्षुणी यदि ऐसी औषधियों को जाने कि वे अखण्डित नहीं हैं, विनष्टयोनि हैं, उनके दो या दो से अधिक टुकड़े हुए हैं, उनका तिरछा छेदन हुआ है, वे जीवरहित (प्रासुक) हैं, कच्ची फली अचित्त हो गयी हैं, टुकड़े किये हुए हैं या अग्नि में भुँजी हुई हैं, तो देखकर उन्हें प्रासुक एवं एषणीय समझकर ग्रहण कर ले।

CENSURE OF ACCEPTING SEED-GRAINS

2. A *bhikshu* (male ascetic) or *bhikshuni* (female ascetic) who has entered a house of a layman should find out about *aushadhis* (seed-grains) if those grains are still intact, have undamaged capacity to germinate, have not been broken into two or more pieces, have not been laterally pierced, are not lifeless, are in the form of fresh beans that are alive, unbroken and uncooked; if yes

he/she should consider them to be contaminated and unacceptable and reject even if offered.

A *bhikshu* (male ascetic) or *bhikshuni* (female ascetic) who has entered a house of a layman, when finds about such *aushadhis* (seed-grains) that those grains are not whole, have lost capacity to germinate, have been broken into two or more pieces, have been laterally pierced, are not alive, the fresh beans have become lifeless, broken and processed in fire; he/she should accept them considering them to be uncontaminated and acceptable.

३. से भिक्खू वा २ जाव समाणे से जं पुण जाणिज्जा–पिहुयं वा बहुरजं वा भुज्जियं वा मंथुं वा चाउलं वा चाउलपलंबं वा सइं भज्जियं अफासुयं जाव णो पडिगाहेज्जा।

से भिक्खू वा २ जाव समाणे से जं पुण जाणेज्जा–पिहुयं वा जाव चाउलपलंबं वा असइं भज्जियं दुक्खुत्तो वा भज्जियं तिक्खुत्तो वा भज्जियं फासुयं एसणिज्जं लाभे संते जाव पडिगाहेज्जा।

३. गृहस्थ के घर गया हुआ भिक्षु या भिक्षुणी यदि यह जाने कि शाली–(धान), जौ, गेहूँ आदि में सचित्त रज (तुष आदि) बहुत हैं, गेहूँ आदि अग्नि में अच्छी प्रकार भुँजे हुए नहीं है। गेहूँ आदि के आटे में तथा धान–कुटे चूर्ण में भी अखण्ड दाने हैं, कणों सहित चावल के लम्बे दाने केवल एक बार भुने हुए हैं या कुटे हुए हैं, तो उन्हें अप्रासुक और अनेषणीय मानकर ग्रहण न करे।

अगर वह भिक्षु या भिक्षुणी यह जाने कि शाली–(धान), जौ, गेहूँ आदि (आग में भुँजे हुए गेहूँ आदि तथा गेहूँ आदि का आटा, कुटा हुआ धान) अखण्ड दानों से रहित है, कण सहित चावल के लम्बे दाने, ये सब एक बार, दो या तीन बार आग में भुने हुए हैं या कुटे हुए हैं तो उन्हें प्रासुक और एषणीय जानकर प्राप्त होने पर ग्रहण कर ले।

3. A *bhikshu* (male ascetic) or *bhikshuni* (female ascetic) who has entered a house of a layman, when finds that grains like barley and wheat contain excessive *sachit* (contaminated with living organism) sand (chaff etc.), that they are not fully roasted,

that there are whole grains mixed in wheat flour or other powdered grains, whole grains and broken grains of rice are roasted or pounded once only, he/she should consider them to be contaminated and unacceptable and reject if offered.

If that *bhikshu* (male ascetic) or *bhikshuni* (female ascetic) finds that grains like rice barley and wheat (roasted, powdered or pounded) are free of whole grains and broken grains of rice are roasted or pounded once, twice and thrice he/she should accept them considering them to be uncontaminated and acceptable.

विवेचन–सूत्र १ में निष्पन्न आहार आदि के विषय में कहा है। इस सूत्र में वनस्पति (औषधि) के विषय में कहा जा रहा है।

वेदों में अन्न के लिए औषधि शब्द का अनेक बार प्रयोग हुआ है। जैसे–शान्तिराप· शान्तिरौषधय·–शान्तिः वनस्पतिः–(यजुर्वेद ३६/१७) जल, अन्न, वनस्पति हमें शान्ति प्रदान करें। चूर्णिकार के समय में भी औषधि शब्द गेहूँ, चावल आदि धान्य के अर्थ प्रयुक्त होता रहा है। जैसे–औसहिओ, सचित्ताओ, पडिपुन्नाओ, अखंडिताओ, सस्सियाओ परोहण समत्थाओ (चूर्णि.) औषधि अर्थात् अखंड धान शस्य अर्थात् जो उगने से समर्थ हो। आचार्य श्री आत्माराम जी म. ने औषधि को वनस्पति–फल, जैसे–आँवला, बहेड़ा आदि अर्थ में ग्रहण किया है।

इस सूत्र में औषधि शब्द बीज वाली वनस्पतियाँ, जैसे–धान, गेहूँ, जौ, बाजरा, मक्का आदि के अर्थ में ग्रहण किया है। पक जाने पर भी जब तक इनका दाना अखंड रहता है या अच्छी प्रकार भूना, कूटा, पीसा नहीं जाता, वह पुन· उगने समर्थ होने से सचित्त सजीव माना गया। संस्कृत टीका के अनुसार निम्न स्थितियों में ऐसा अन्न अग्राह्य होता है–

(१) अनाज का दाना अखण्डित हो।

(२) उगने की शक्ति नष्ट न हुई हो।

(३) दाल आदि की तरह द्विदल न किया हुआ हो।

(४) तिरछा छेदन न हुआ हो।

(५) अग्नि आदि शस्त्र से परिणत होकर जीवरहित न हुआ हो।

(६) मूँग आदि की तरह कच्ची फली हो।

(७) पूरी तरह कूटा, भूँजा या पीसा न गया हो।

(८) गेहूँ, बाजरा, मक्का आदि के कच्चे दाने को आग में एक बार थोड़े से सेंके हो।

(९) वह अन्न यदि अचित्त होने पर भी उसमें घुण, ईली आदि जीव पड़े हों।

(१०) उस पके हुए आहार में रसज जीव-जन्तु पड़ गए हों या मक्खी आदि उड़ने वाला कोई जीव पड़ गया हो या चींटियाँ पड़ गयी हों।

(११) जो अन्न अपक्व हो या दुष्पक्व हो।

Elaboration—Aphorism 1 informs about processed food. Here the subject is *aushadhi* (herb, things of plant origin).

In *Vedas* the word *aushadhi* has been often used for grains. For example—"May water, grains and plants cause us peace." (*Yajurveda* 36/17) When the commentary *(Churni)* was written the word *aushadhi* was used for grains like wheat, rice etc. As is mentioned in the *Churni—aushadhi* means whole grain that has the potential to germinate. Acharya Shri Atmaramji M. has interpreted *aushadhi* as fruits like *Amala* (emblic myrobalan), *Baheda* (beleric myrobalan) etc.

In this aphorism the word *aushadhi* represents food grains such as—paddy, wheat, barley, millet, corn etc. Even after cooking, as long as the grain remains unbroken or unless it is properly roasted, pounded or ground, it is considered *sachit* (contaminated with living organism) or alive because it still has capacity to germinate or sprout. According to the commentary *(Tika)* such grains are not acceptable under the following conditions—

(1) The grain is unbroken.

(2) Its capacity to germinate has not been damaged.

(3) It has not been split like pulse-grains.

(4) It has not been pierced laterally.

(5) It has not been deprived of its life by processing in fire or by other such weapon (for weapon refer to the First chapter of Acharanga I).

(6) It is in the form of a pod, like that of barley.

(7) It has not been completely pounded, roastєd or ground.

(8) The grains of wheat, millet, corn etc., have been slightly roasted once in fire.

(9) The food-grain is *achit* (lifeless or without the capacity to sprout) but it is infested with worms like weevils and caterpillars

(10) Some aquatic or other insects like flies and ants have fallen into the cooked food

(11) The grains that is uncooked or badly cooked.

विशेष शब्दों के अर्थ–**कसिणाओ**–कृत्स्न–सम्पूर्ण (अखण्डित)। **सासियाओ**–स्वाश्रया–जिनकी योनि नष्ट न हुई हो। चूर्णिकार के अनुसार जो प्ररोहण में–उगने में समर्थ हों। **अतिरिच्छछिन्नाओ**–केला आदि कई फलों की तरह कई बीज वाली लम्बी फलियाँ तिरछी कटी हुई न हों। **तरुणिय**–तरुणी–अपरिपक्व कच्ची। **छिवाडी**–मूँग आदि की फली। **अभज्जियं**–अभग्न–इसके तीन अर्थ होते हैं–(१) बिना कूटा हुआ, (२) बिना पीसा हुआ अथवा बिना दला हुआ, (३) अग्नि में भूँजा हुआ या सेंका हुआ न हो। **पिहुयं**–नये-नये ताजे गेहूँ, मक्का, धान आदि को अग्नि मे सेंककर पोंख, होले आदि बनाते हैं, उसे 'पृथुक' कहते हैं। 'मंथु' का अर्थ वृत्तिकार ने गेहूँ आदि का चूर्ण किया है। दशवैकालिक (५/९८) में भी 'बेर' का चूर्ण तथा जिनदासचूर्णि के अनुसार बेर, जौ आदि का चूर्ण अर्थ किया गया है।

Technical Terms : *Kasinao (kritsna)*—whole or unbroken. *Sasiyao (svashrayah)*—that whose reproductive organ is not destroyed. According to the commentator *(Churni)* it means that which is not capable of germinating *Atiricchachhinnao*—longer pods, like that of a banana, that have not been laterally pierced or slit. *Taruniyam (taruni)*—unripe or fresh *Chhivadi*—beans of green gram and other pulses. *Abhajjiyam (abhagna)*—it has three meanings—(1) not pounded, (2) not broken or ground, and (3) not toasted or roasted in fire. *Pihuyam (prithuk)*—fresh beans or pods of wheat, corn, paddy mildly roasted in fire *Manthu*—flour of wheat or other grains according to *Vritti*. *Dashavaikalika* (5/98) interprets it as powder of dried berries. *Jinadas Churni* interprets it as powder of dried berries and barley.

अन्यतीर्थिक-गृहस्थ के साथ गमन का निषेध

४. से भिक्खू वा २ गाहावइकुलं जाव पविसित्तु कामे णो अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा परिहारिओ अपरिहारिएण सद्धिं गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए पविसिज्ज वा णिक्खमिज्ज वा।

४. भिक्षा के निमित्त गृहस्थ के घर में प्रवेश करने का इच्छुक भिक्षु या भिक्षुणी अन्यतीर्थिक अथवा गृहस्थ के साथ तथा पारिहारिक (उत्तम) साधु अपारिहारिक (पार्श्वस्थ आदि-) साधु के साथ भिक्षा के लिए गृहस्थ के घर में न तो प्रवेश करे और न निकले।

CENSURE OF MOVING AROUND WITH HOUSEHOLDERS

4. A *bhikshu* or *bhikshuni* desirous of entering a house of a layman in order to seek alms should neither enter nor come out in the company of a monk belonging to other faith or a layman. Also, an accomplished ascetic should avoid the company of an unaccomplished (junior etc.) ascetic while entering or leaving a house.

५. से भिक्खू वा २ बहिया वियारभूमिं वा विहारभूमिं वा णिक्खममाणे वा पविसमाणे वा णो अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा परिहारिओ अपरिहारिएण वा सद्धिं बहिया वियारभूमिं वा विहारभूमिं वा णिक्खमिज्ज वा पविसिज्ज वा।

५. वह भिक्षु या भिक्षुणी बाहर विचार भूमि-(शौचादि हेतु स्थंडिल भूमि) या विहार-(स्वाध्याय) भूमि से लौटते या वहाँ प्रवेश करते हुए अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के साथ तथा पारिहारिक अपारिहारिक साधु के साथ न तो विचार-भूमि या विहार-भूमि से लौटे, न प्रवेश करे।

5. A *bhikshu* or *bhikshuni* desirous of going to or entering an isolated place in order to relieve himself or to meditate or study should neither go nor return in the company of a person belonging to other faith or a layman. Also, an accomplished ascetic should avoid the company of unaccomplished ascetic while going or returning such isolated place.

६. से भिक्खू वा २ गामाणुगामं दूइज्जमाणे णो अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा परिहारिओ अपरिहारिएण वा सद्धिं गामाणुगामं दूइज्जेज्जा।

६. एक गाँव से दूसरे गाँव जाते हुए भिक्षु या भिक्षुणी अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के साथ तथा उत्तम साधु पार्श्वस्थ आदि साधु के साथ ग्रामानुग्राम विहार न करे।

6. A *bhikshu* or *bhikshuni* going from one village to another should not do so in the company of a person belonging to other

faith or a layman. Also, an accomplished ascetic should avoid the company of unaccomplished ascetic while moving about from village to village.

७. से भिक्खू वा २ जाव पविट्ठे समाणे णो अण्णउत्थियस्स वा गारत्थियस्स वा परिहारिओ अपरिहारियस्स वा असणं वा ४[१] देज्जा वा अणुपदेज्जा वा।

७. गृहस्थ के घर मे भिक्षा के लिए प्रविष्ट भिक्षु या भिक्षुणी अन्यतीर्थिक या परभिक्षाजीवी याचक को, तथैव उत्तम साधु पार्श्वस्थादि शिथिलाचारी साधु को अशन आदि चारों आहार न तो स्वयं दे और न किसी से दिलाए।

7. A *bhikshu* or *bhikshuni* who has entered a house of a layman for alms should neither give nor cause others to give food to a person belonging to other faith or a common beggar. Also, an accomplished ascetic should neither give nor cause to give food to an ascetic lax in conduct.

विवेचन–सूत्र ४ से ७ तक में अन्यतीर्थिक आदि के साथ भिक्षा, स्थंडिल भूमि, विहार भूमि–स्वाध्याय भूमि तथा ग्रामानुग्राम विहार करते समय साथ-साथ चलने का तथा वापस साथ-साथ आने का तथा आहार के देने-दिलाने का निषेध किया गया है।

अन्यतीर्थिक का अर्थ है–अन्य धर्म-सम्प्रदाय या मत के साधु। यहाँ पर गृहस्थ से आशय है–जो दूसरों के अन्न पर जीता हो, घर-घर से आटा माँगकर जीवन-निर्वाह करने वाले गृहवेषी साधु या भिखारी या याचक। **पारिहारिक** का अर्थ है–आहार के दोषों का परिहार करने वाला शुद्ध आचार वाला साधु और **अपारिहारिक** से मतलब है जो शिथिलाचारी हैं, साध्वाचार में लगे दोषों की विशुद्धि न करने वाले पार्श्वस्थ, अवसन्न, कुशील, संसक्त और स्वच्छन्द आचारी आदि साधु हैं।

टीका के आधार पर विस्तार करते हुए आचार्य श्री आत्माराम जी म. ने साथ-साथ जाने का निषेध करने के पीछे जो भाव है उस पर प्रकाश डाला है। मुख्य बिन्दु ये हैं–

(१) भिक्षा के लिए साथ जाने से गृहस्थ के मन पर अनावश्यक दबाव पड सकता है।

(२) गृहस्थ अनेषणीय आहार देने पर विवश हो सकता है।

(३) उचित आहारादि न मिलने पर अन्यतीर्थिक आदि गृहस्थ की बदनामी कर सकते हैं।

---

१. यहाँ '४' का चिह्न 'पाणं वा खाइमं वा साइमं वा'–इन शेष तीनों आहारों का सूचक है। आगे सर्वत्र इसी प्रकार समझें।

(४) साथ-साथ चलने में चलते हुए बातचीत करने में ईर्यासमिति की हानि हो सकती है।

(५) आगे-पीछे चलने में मान-अपमान का प्रश्न भी उठ सकता है।

(६) स्वाध्याय में विघ्न आता है। शरीर क्रियाओं की निवृत्ति में संकोच या अवरोध पैदा हो सकता है। इत्यादि अनेक दोषों की संभावना होने के कारण भिक्षु को स्वयं अकेले अपनी चर्या करना चाहिए।

Elaboration—In aphorisms 4 to 7 moving in company of persons belonging to other faiths (etc.) while going to seek alms, to relieve oneself, to study or meditate, and from one village to another and returning from there, has been proscribed. Giving food to or taking food from such individuals is also proscribed.

Anyatirthak or persons belonging to other faiths implies mendicants belonging to other sects. Here householder implies those who live on food provided by others This includes such mendicants in householder's garb who beg for flour for livelihood or common beggars. *Pariharik* means one who avoids food related faults or an ascetic observing purity of conduct. *Apariharik* means one who is lax in his conduct or an ascetic who fails to amend his faulty ascetic-conduct. This includes *parshvasth* (subordinate), *avasanna* (lethargic), *kushil* (ill-mannered), *samsakt* (attached), *svacchand* (capricious) and other such ascetics.

Elaborating on the basis of the commentary *(Tika)* Acharya Shri Atmaramji M has thrown light on the reasons for this censure of moving in company. Main points are—

(1) Going to collect alms with someone may cause unnecessary pressure on the donor.

(2) The donor may be forced to offer food that is unacceptable for an ascetic.

(3) If proper food is not offered the mendicants belonging to other faiths may slander the donor.

(4) Walking in company may inspire dialogue and distract from taking proper care while moving.

(5) Moving ahead or behind may raise questions about self respect

(6) There is distraction in meditation and studies There is a scope of restrain and distraction in physical activities of relieving oneself Due to possibility of these and many other faults, an ascetic should move about or do his activities alone.

औद्देशिकादि दोषरहित आहार की एषणा

८. से भिक्खू वा २ जाव समाणे से जं पुण जाणेज्जा असणं वा ४। अस्संपडियाए एगं साहम्मियं समुद्दिस्स पाणाइं भूयाइं जीवाइं सत्ताइं समारम्भ समुद्दिस्स कीतं पामिच्चं अच्छेज्जं अणिसट्ठं अभिहडं आहट्टु चेएइ, तं तहप्पगारं असणं वा ४ पुरिसंतरकडं वा अपुरिसंतरकडं वा बहिया णीहडं वा अणीहडं वा अत्तट्ठियं वा अणत्तट्ठियं वा परिभुत्तं वा अपरिभुत्तं वा आसेइयं वा अणासेइयं वा अफासुयं जाव णो पडिगाहेज्जा।

एवं बहवे साहम्मिया एगं साहम्मिणिं, बहवे साहम्मिणीओ समुद्दिस्स चत्तारि आलावगा भाणियव्वा।

[१] से भिक्खू वा २ जाव पविट्ठे समाणे से जं पुण जाणेज्जा असणं वा ४ बहवे समण-माहण-अतिहि-किवण-वणीमए पगणिय पगणिय समुद्दिस्स पाणाइं जाव णो पडिगाहेज्जा।

[२] से भिक्खू वा २ जाव पविट्ठे समाणे से जं पुण जाणेज्जा—असणं वा ४ बहवे समण-माहण-अतिहि-किवण-वणीमए समुद्दिस्स पाणाइं ४ जाव आहट्टु चेएइ, तं तहप्पगारं असणं वा ४ अपुरिसंतरकडं, अबहिया णीहडं अणत्तट्ठियं अपरिभुयं अणासेवियं अफासुयं अणेसणिज्जं जाव णो पडिगाहेज्जा।

अह पुण एवं जाणेज्जा पुरिसंतरकडं बहिया णीहडं अत्तट्ठियं परिभुत्तं आसेवियं फासुयं एसणिज्जं जाव पडिगाहेज्जा।

८. भिक्षु या भिक्षुणी गृहस्थ के घर में भिक्षा के लिए जाता हुआ जब यह जाने कि किसी गृहस्थ ने एक साधर्मिक साधु के उद्देश्य से प्राण, भूत जीव और सत्त्वों का समारम्भ करके आहार बनाया है, साधु के निमित्त से आहार मोल लिया, उधार लिया है, किसी से जबरन छीनकर लाया है, उसके स्वामी की अनुमति के बिना लिया हुआ है तथा घर से (साधु के स्थान पर) लाया हुआ आहार दे रहा है, तो इस प्रकार का (दोषयुक्त) अशन, पान रूप आहारदाता से भिन्न किसी अन्य पुरुष ने बनाया हो अथवा स्वयं दाता ने

बनवाया हो, घर से बाहर निकाला गया हो या न निकाला गया हो; उसे दूसरे ने स्वीकार किया हो या न किया हो; उस आहार में से बहुत-सा खाया हो या न खाया हो; अथवा थोड़ा-सा सेवन किया हो या न किया हो; इस प्रकार के आहार को अप्रासुक और अनेषणीय समझकर प्राप्त होने पर वह ग्रहण न करे।

इसी प्रकार बहुत से साधर्मिक साधुओं के लिए बनाया गया हो या एक साधर्मिणी साध्वी के निमित्त से अथवा बहुत-सी साधर्मिणी साध्वियों के निमित्त बनाया गया हो, उस आहार को ग्रहण न करे; यों क्रमशः चार आलापक इसी भाँति कहने चाहिए।

[१] वह भिक्षु या भिक्षुणी गृहस्थ के घर में प्रवेश करने पर जाने कि यह अशनादि आहार बहुत से श्रमणों, माहनों (ब्राह्मणों), अतिथियों, कृपणों (दरिद्रों), याचकों (भिखारियों) को गिन-गिनकर उनके निमित्त से प्राणी आदि जीवों का आरंभ-समारम्भ करके वनाया हुआ है; उस आहार को ग्रहण न करे।

[२] वह भिक्षु या भिक्षुणी गृहस्थ के घर में प्रवेश करके जाने कि यह चार प्रकार का आहार बहुत से श्रमणों, माहनों (ब्राह्मणों), अतिथियों, दरिद्रों और याचकों के निमित्त से प्राणादि जीवों का आरभ-समारम्भ करके बनाया गया है (खरीदा गया है, उधार लिया गया है, बलात् छीना गया है, दूसरे के स्वामित्व का आहार उसकी अनुमति के बिना लिया हुआ है, घर से साधु के स्थान पर (सामने) लाकर दे रहा है), उस प्रकार का आहार जो स्वयं दाता ने बनाया-(अपुरिषान्तरकृत) हो, बाहर नहीं निकाला हो, दाता द्वारा अधिकृत न हो, दाता ने उपभोग या सेवन नहीं किया हो, उस अनेषणीय आहार को ग्रहण न करे।

यदि साधु इस प्रकार जाने कि यह आहार दूसरे पुरुष द्वारा बनाया हुआ-(पुरिषान्तरकृत) है, घर से बाहर निकाला गया है, दाता द्वारा अधिकृत है, दाता द्वारा खाया और भोगा हुआ है तो ऐसे आहार को प्रासुक और एषणीय समझकर ग्रहण कर ले।

SEARCH FOR FOOD FREE OF *AUDDESHIK* AND OTHER FAULTS

8. When a *bhıkshu* or *bhıkshuni* while going to the residence of a layman finds that the layman has prepared food for some co-religionist ascetic and the process involves violence of things that breathe, exist, live or have any essence or potential of life; or has purchased or borrowed or forcibly snatched it from others or brought it without the permission of its owner or brought these from his home to the place of stay of the ascetic; he/she should

consider such food to be contaminated and unacceptable and reject if offered, irrespective of its being prepared by a person other than the donor or the donor himself, or its being brought out or not from the house, or its having been accepted or not by some other person, or a small or large portion of it having been consumed or not.

In the same way he should not accept the food prepared for many co-religionist ascetics or one co-religionist *sadhvi* (female ascetic) or many co-religionist *sadhvis*. Thus, know these four analogous rules in this very order.

[1] If that *bhikshu* or *bhikshuni*, after entering the residence of a layman, finds that this four type of food has been prepared for numerous *Shramans*, Brahmins, guests, destitute and beggars counting their specific numbers and the process involved violence of things that breathe, exist, live or have any essence or potential of life, then he or she should not accept that food.

[2] If a *bhikshu* or *bhikshuni* after entering the residence of a layman finds that this four type of food has been prepared for numerous *Shramans*, Brahmins, guests, destitute and beggars and the process involves violence of things that breathe, exist, live or have any essence or potential of life; (or has purchased or borrowed or forcibly snatched it from others or brought it without the permission of its owner or brought these from inside his house to offer to the ascetic or to the place of stay of the ascetic to offer); he/she should reject such unacceptable food if it has been prepared by the donor himself *(apurishantarakrit)*, or it has not been brought out from the house or it has been offered without the permission of the donor or the donor has not consumed or eaten a part of it.

If the ascetic finds that the food has been prepared by a person other than the donor himself, or it has been brought out

from the kitchen, or it has been offered with the permission of the donor, or the donor has consumed or eaten a part of it, in such case he or she should accept the food considering it to be uncontaminated and acceptable.

विवेचन–इस सूत्र में सदोष आहार भी दो प्रकार का बताया है–(१) विशुद्ध कोटि, और (२) अविशुद्ध कोटि। साधु के निमित्त जीव-हिंसा करके बनाया गया आहार अविशुद्ध कोटि का है। यह आधाकर्म, औद्देशिक आदि दोषयुक्त है। दूसरा जो किसी से उधार लेकर, छीनकर, खरीदकर, दाता की आज्ञा के बिना लेकर दिया जाता है उसे विशुद्ध कोटि का आहार माना जाता है।

दूसरे प्रकार का आहार विशुद्ध कोटि का इसलिए माना जाता है कि इसमें साधु के निमित्त प्रत्यक्ष जीव-हिंसा नहीं होती। इसलिए यहाँ दो विकल्प बताये गये हैं। प्रथम कोटि का आहार किसी भी परिस्थिति में ग्राह्य नहीं है, किन्तु दूसरी कोटि का आहार यदि पुरिषान्तरकृत हो तो ग्राह्य हो जाता है।

'पुरिसन्तरकड' शब्द का अभिप्राय है, दाता के अतिरिक्त अन्य पुरुष ने यदि उस आहार, वस्त्र, भवन, वस्तु आदि का उपयोग कर लिया हो तो। जैसे साधु के निमित्त किसी ने भवन खरीदा, फिर गृहस्थ ने अपने लिए उसका उपयोग कर लिया हो तो वह पुरिषान्तरकृत होने से ग्राह्य हो जाता है।

आधाकर्म तथा औद्देशिक आहार नही लेने का विधान केवल प्रथम और अंतिम तीर्थंकर के शासनकाल मे होता है, मध्यवर्ती बाईस तीर्थंकरों के शासन में नहीं।

Elaboration—In this aphorism the faulty food has also been divided into two categories—(1) *avishuddha* (faulty), and (2) *vishuddha* (faultless) The food prepared specifically for an ascetic by a process involving violence is of faulty category. This involves faults like *aadhakarma* or *auddeshik* (food specifically prepared for ascetics). The food which is borrowed, snatched, purchased or taken without permission of the donor is considered to be faultless food.

The second type of food is considered faultless because it does not involve direct violence against beings for the benefit of the ascetic. That is why two alternatives have been given here. The first type of food is not acceptable in any condition. But the second type is acceptable if it is *purishantarakrit* (already used by someone other than the donor).

The term *purisantarakadam* covers those things which have already been used by a person other than the donor; this includes things like food, clothes, house etc. For example if someone buys a house for the use of ascetics but he himself or someone else uses it, then it becomes *purishantarakrit* and thus acceptable

The rule of not accepting *aadhakarma* and *auddeshik* food applies to the period of influence of the first and the last *Tirthankars* and not to the intervening period of remaining twenty two *Tirthankars.*

विशेष शब्दों के अर्थ–साहम्मिय–साधर्मिक–जो आचार-विचार और वेश-भूषा में समान हो। समण–श्रमण। इनके पाँच प्रकार हैं–(१) निर्ग्रंथ (जैन), (२) शाक्य (बौद्ध), (३) तापस, (४) गैरिक, और (५) आजीवक। माहण–ब्राह्मण। अतिहि–अभ्यागत या मेहमान। किवण–कृपण–दरिद्र या दूसरो के दिये हुए भोजन पर जीने वाला। वणीमग–चारण, भाट, जो दूसरों की प्रशंसा करके आहारादि प्राप्त करता है। समुद्दिस्स–किसी एक या अनेक साधर्मिक साधु या साध्वी को उद्देश्य करके बनाया गया आहार। कीयं–खरीदा हुआ। पामिच्च–उधार लिया हुआ। अच्छिज्ज–बलात् छीना हुआ। अणिसट्ठं–उसके स्वामी की अनुमति लिए बिना। अभिहडं–घर से साधु के स्थान पर लाया हुआ। अत्तट्ठियं–अपने द्वारा अधिकृत।

Technical Terms : *Sahammiya (sadharmik)*—same in thought, conduct and dress. *Saman (Shraman)*—these are of five types—(1) *Nirgranth* (Jain), (2) *Shakya* (Buddhist), (3) *Tapas,* (4) *Gairik,* and (5) *Ajivak.* *Mahan*—Brahmin. *Atihi*—guest. *Kivan (kripan)*—destitute, who lives on food provided by others. *Vanimag*—bard; who earns his living by praising others *Samuddiss*—food prepared specifically for one or more co-religionist ascetics. *Kiyam*—bought. *Pamichcha*—borrowed. *Achhijjam*—snatched. *Anisattham*—taken without the permission of the owner. *Abhihadam*—brought from home to the place of stay of the ascetic. *Attatthiyam*—authorized by himself.

नित्याग्र पिण्डादि ग्रहण का निषेध

९. से भिक्खू वा २ गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए पविसिउकामे से जाइं पुण कुलाइं जाणेज्जा–इमेसु खलु कुलेसु णिइए पिंडे दिज्जइ, अग्गपिंडे दिज्जइ, णियए भाए दिज्जइ, णियए अवड्ढभाए दिज्जइ। तहप्पगाराइं कुलाइं णिइयाइं णिइउमाणाइं णो भत्ताए वा पाणाए वा पविसेज्ज वा णिक्खमेज्ज वा।

एयं खलु तस्स भिक्खुस्स वा भिक्खुणीए वा सामग्गियं जं सव्वट्ठेहिं समिए सहिए सया जए।

–त्ति बेमि।

॥ पढमो उद्देसओ सम्मत्तो ॥

९. गृहस्थ के घर में आहार-प्राप्ति के लिए प्रवेश करने के इच्छुक साधु या साध्वी ऐसे कुलों (घरों) को जाने कि जिन कुलों में नित्यपिण्ड (आहार) दिया जाता है, अग्रपिण्ड दिया जाता है, प्रतिदिन भात (आधा भाग) दिया जाता है, प्रतिदिन उपार्द्ध भाग (चौथा भाग) दिया जाता है; इस प्रकार के कुलों में जोकि नित्य दान देते हैं, जिनमें प्रतिदिन भिक्षा के लिए भिक्षुओं का आगमन होता रहता है, ऐसे कुलों में आहार-पानी के लिए साधु-साध्वी प्रवेश एवं निर्गमन न करें।

यह उस भिक्षु या भिक्षुणी के लिए (ज्ञानादि आचार की) समग्रता है, अर्थात् वह समस्त विषयों में संयत या पंच समितियों से युक्त, ज्ञानादि सहित निर्दोष वृत्ति होकर सदा प्रयत्नशील रहे।

–ऐसा मै कहता हूँ।

CENSURE OF FOOD REGULARLY PREPARED FOR CHARITY

9. A *bhikshu* or *bhikshuni* desirous of entering a house of a layman in order to seek alms should explore the families (houses) where food is traditionally donated daily, first portion of food is donated, half portion is donated, one quarter portion is donated; the families which donate everyday, where seekers frequent everyday to seek alms; and he or she should not go or enter such houses to seek food or water.

This is the totality (of conduct including that related to knowledge) for that *bhikshu* or *bhikshuni*. Which means that he should ever continue his (spiritual) pursuits with discipline in every respect, observing the five self-regulations and having faultless attitude and conduct.

—So I say.

विवेचन—कुछ कुलों में पुण्य-लाभ समझकर श्रमण, ब्राह्मण, याचक आदि हर प्रकार के भिक्षाचर के लिए प्रतिदिन आहारदान किया जाता है, जो आहार पक रहा हो, उसमें से पहले कुछ भाग निकालकर अलग रख दिया जाता है अथवा आधा या चौथाई भाग आहार दिया जाता है, जहाँ हर तरह के भिक्षाचर आहार लेने आते-जाते रहते हैं। ऐसे नित्यपिण्ड देने वाला कुलों में जब निर्ग्रन्थ भिक्षु-भिक्षुणी आहार लेने लगेगे तो वह गृहस्थ उनके निमित्त अधिक भोजन बनवाएगा। जैन श्रमण को देने के बाद थोडा-सा बचेगा, उन लोगों को नहीं मिल सकेगा, जो प्रतिदिन वहाँ से भोजन ले जाते हैं, तव उन्हें अन्तराय लगेगा और आहार लाभ से वंचित भिक्षाचरों के मन में जैन साधु-साध्वियों के प्रति द्वेषभाव जगेगा। अतः ऐसे कुलों में आहार के लिए नहीं जाना चाहिए। कुल का अर्थ यहाँ विशिष्ट घर समझना चाहिए।

नित्य अग्रपिण्ड का अर्थ वृत्तिकार ने किया है—"भात, दाल आदि जो भी आहार बना है, उसमें से पहले भिक्षार्थ देने के लिए जो आहार निकालकर रख लिया जाता है।"

सामग्गियं की व्याख्या वृत्तिकार ने की है—"भिक्षु द्वारा यह उद्गम-उत्पादन-ग्रहणैषणा, संयोजना, प्रमाण, अगार, धूम आदि कारणों (दोषों) से सुपरिशुद्ध पिण्ड का ग्रहण ज्ञानाचार सामर्थ्य है, दर्शन-चारित्र-तपोवीर्याचार संपन्नता है।" चूर्णिकार के शब्दों में इस प्रकार आहारगत दोषो का परिहार करने से पिण्डैषणा गुणों से उत्तरगुण में समग्रता होती है।

॥ प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

*[**Note :** All these codes are meant for both bhikshu and bhikshuni Therefore the pronoun has to be he/she or his/her But from hereon we shall just mention he or his for convenience It should be taken as he/she according to the context.]*

Elaboration—In some families donating food to *Shramans,* Brahmins and beggars is considered to be a pious and meritorious deed. There food is donated daily to every seeker; while cooking, first portion of food is kept separate for donating; or half or quarter portion is donated In such houses seekers frequent everyday to seek alms. If a *bhikshu* or *bhikshuni* goes to seek alms in houses that donate everyday, the layman will get additional quantity of food for him; or if he offers food to the Jain *Shraman* first, there would be a shortage for those who come for alms everyday. This would cause the bondage of *antaraya karma (karma* that acts as an impediment to pursuits) and

also evoke the feelings of hatred in the deprived beggars. Therefore *Shramans* should not go to such families to seek alms. *Kula* here means specific families, not clan.

According to the commentator *(Vritti) nitya agrapind* means—"the portion of the food that is kept separate for donation immediately on cooking; the first portion."

Samaggiyam—entirety; in the words of the commentator *(Vritti)*—"This acceptance of food avoiding all the faults of origin, production, exploration, collection, quantity, fire, smoke etc. is accomplished through the conduct related to knowledge and an evidence of perfection in conduct related to perception, behaviour, austerities and potency" According to the commentator *(Churni)* avoiding such faults related to food leads to perfection in alms seeking and gradually in other virtues

|| END OF LESSON ONE ||

बीओ उद्देसओ	द्वितीय उद्देशक	LESSON TWO

अष्टमी पर्वादि में आहार ग्रहण की विधि और निषेध

१०. से भिक्खू वा २ गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुपविट्ठे समाणे–से जं पुण जाणेज्जा, असणं वा ४।

अट्ठमिपोसहिएसु वा अद्धमासिएसु वा, मासिएसु वा, दोमासिएसु वा, तेमासिएसु वा, चाउमासिएसु वा, पंचमासिएसु वा, छम्मासिएसु वा, उऊसु वा, उऊसंधीसु वा, उऊपरियट्टेसु वा।

बहवे समण-माहण-अतिहि-किवण-वणीमगे एगाओ उक्खाओ परिएसिज्जमाणे पेहाए, दोहिं उक्खाहिं परिएसिज्जमाणे पेहाए, तिहिं उक्खाहिं परिएसिज्जमाणे पेहाए।

कुंभीमुहाओ वा कलोवाइओ वा संणिहि-संणिचयाओ वा परिएसिज्जमाणे पेहाए, तहप्पगारं असणं वा ४ अपुरिसंतरकडं जाव अणासेवियं अफासुयं अणेसणिज्जं जाव णो पडिगाहेज्जा।

अह पुण एवं जाणेज्जा पुरिसंतरकडं जाव आसेवियं फासुयं जाव पडिगाहेज्जा।

१०. साधु-साध्वी आहार-प्राप्ति के निमित्त गृहस्थ के घर में प्रवेश करने पर अशन आदि आहार के सम्बन्ध में यह जाने कि–

यह आहार अष्टमी, पौषधव्रत विशेष के उपलक्ष्य में तथा अर्द्ध-मासिक (पाक्षिक), मासिक, द्विमासिक, त्रैमासिक, चातुर्मासिक, पंचमासिक और षाण्मासिक उत्सवों के उपलक्ष्य में तथा ऋतुओ, ऋतु-सन्धियों एव ऋतु-परिवर्तनों के उत्सवों के उपलक्ष्य में बना है।

बहुत-से श्रमण, माहन, अतिथि, दरिद्र एवं भिखारियों को एक बर्तन से (लेकर) परोसते हुए देखकर, दो बर्तनों से (लेकर) परोसते हुए देखकर, या तीन बर्तनों से (लेकर) परोसते हुए देखकर एव चार बर्तनों से (लेकर) परोसते हुए देखकर

तथा सँकड़े मुँह वाली कुम्भी और बाँस की टोकरी मे से (लेकर) एवं संचित किए हुए (दूध, दही, घी, गुड़) पदार्थों को परोसते हुए देखकर, यदि वह पुरुषान्तरकृत नहीं है, (घर से बाहर निकाला हुआ नहीं है, दाता द्वारा अधिकृत नहीं है, परिभुक्त) और

आसेवित नहीं है, तो ऐसे चारों प्रकार के आहार को अप्रासुक और अनेषणीय जानकर ग्रहण न करे।

और यदि जाने कि यह आहार पुरुषान्तरकृत हो चुका है। उसने खाया और भोग लिया है तो ऐसे आहार को प्रासुक और एषणीय जानकर ग्रहण कर ले।

RULES ABOUT FESTIVAL DAYS

10. A *bhikshu* or *bhikshuni* on entering the house of a layman should find this about the food—

If that food has been prepared on the occasion of some specific austerity like fasting on eighth of the fortnight or *paushadh-vrat* (partial ascetic vow), or some fortnightly, monthly, bimonthly, quarterly, four-monthly, five-monthly or six-monthly celebrations; or some seasonal festivals, celebrations on the junction and change of seasons.

If that food is being served from one, two, three or four pots to many *Shramans*, Brahmins, destitute and beggars.

If that food is being taken from pots with narrow neck and baskets; and is some accumulated food (milk, curd, butter, jaggery etc.). In such cases if the food offered has been prepared by the donor himself *(apurushantarakrit)*, or it has not been brought out from the kitchen, or it has been offered without the permission of the donor, or the donor has not consumed or eaten a part of it, then it should be rejected considering it to be contaminated and unacceptable.

And if it is found to be *purushantarakrit* (prepared by someone other than the donor etc.); and a part of it has been consumed or eaten, then it should be taken considering it to be uncontaminated and acceptable.

विवेचन–इस सूत्र में अष्टमी आदि पर्व विशेष के अवसर पर पौषध, उपवास, तपकर्म आदि के निमित्त उत्सव में खासतौर से दिए जाने वाले ऐसे आहार का निषेध किया है, जो श्रमण, ब्राह्मण, भिखारी आदि सबके लिए बना हो, ऐसा आहार आधाकर्म दोष से युक्त नहीं है, किन्तु

'अफासुयं' है, अर्थात् साधु के लिए तब तक अकल्पनीय है जब तक वह पुरुषान्तरकृत नहीं हुआ हो। यदि उसमें से परिवार के सदस्य उपयोग कर लेते हैं तो वह पुरुषान्तरकृत होने के बाद कल्पनीय हो जाता है।

Elaboration—This aphorism informs about food prepared on some specific occasions, festivities or celebrations for the purpose of offering to *Shramans,* Brahmins, destitute and beggars. Such food, although not prepared specifically for ascetics, is not acceptable as long as it does not become *purushantarakrit* When a portion of it has been consumed by the members of the family of the donor, it becomes *purushantarakrit* and so acceptable

विशेष शब्दों के अर्थ–उक्खा–पिट्ठर, बडी बटलोई जैसा बर्तन। कुम्भी–सँकड़े मुँह वाले बर्तन। कलोवाती–पिटारी या बाँस की टोकरी। सन्निधि–गोरस–घी, दूध, गुड आदि।

Technical Terms : *Ukkha*—a small pitcher shaped pot *Kumbhi*—a flask like pot with narrow neck. *Kalovati*—basket made of straw or reed. *Sannidhi*—milk, butter, jaggery etc.

भिक्षा-योग्य कुल

११. से भिक्खू वा २ जाव अणुपविट्ठे समाणे जाइं पुण कुलाइं जाणिज्जा, तं जहा–

उग्गकुलाणि वा भोगकुलाणि वा राइण्णकुलाणि वा खत्तियकुलाणि वा इक्खागकुलाणि वा हरिवंसकुलाणि वा एसियकुलाणि वा वेसियकुलाणि वा गंडागकुलाणि वा कोट्टागकुलाणि वा गामरक्खकुलाणि वा बोक्कसालियकुलाणि वा अण्णयरेसु वा तहप्पगारेसु अदुगुंछिएसु अगरहिएसु असणं वा ४ फासुयं जाव पडिगाहिज्जा।

११. भिक्षु या भिक्षुणी गृहस्थ के घर में आहार के लिए जाने पर (आहार ग्रहण करने योग्य) इन कुलों को जाने; जैसे–

उग्र-कुल, भोग-कुल, राजन्य-कुल, क्षत्रिय-कुल, इक्ष्वाकु-कुल, हरिवंश-कुल, गोपालादि-कुल, वैश्य-कुल, नापित-कुल, बढ़ई-कुल, ग्रामरक्षक-कुल या तन्तुवाय-कुल; ये तथा इसी प्रकार के अन्य भी कुल, जो निन्दित न हों, गर्हित न हों, उन कुलों से प्रासुक और एषणीय अशनादि चतुर्विध आहार मिलने पर साधु उसे ग्रहण करे।

SUITABLE CLANS

11. A *bhikshu* or *bhikshuni* on entering the house of a layman should find about these clans (suitable for taking alms from)—

Ugra-clan, *Bhog*-clan, *Rajanya*-clan, *Kshatriya*-clan, *Ikshvaku*-clan, *Harivamsh*-clan, *Gopal*-clan, *Vaishya*-clan, *Napit*-clan, *Badhai*-clan, *Gramrakshak*-clan and *Tantuvaya*-clan; an ascetic may take four types of food, if it is *prasuk* and acceptable, from these or other such clans that are not infamous or despicable.

विवेचन–मुनि जिन घरों या समुदायों से भिक्षा ग्रहण करता है, उनके सम्बन्ध में इस सूत्र में निर्देश है।

'कुल' शब्द का सामान्य अर्थ है–वंश, गोत्र या पूर्वजों की वंश-परम्परा। पिता का पक्ष कुल कहलाता है और मातृपक्ष वंश। कुछ स्थानों पर कुल शब्द समुदाय या समूह के अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है। जैसे–आगमों में मुनि के भिक्षा प्रसग पर **उच्च-नीच-मज्झिम कुलेसु अडमाणे** पाठ आता है। वहाँ कुल का अर्थ वंश नहीं करके घर की श्रेणी या समूहपरक अर्थ किया जाता है।

इस सूत्र में प्राचीन समय के कुछ प्रमुख कुलों का ही उल्लेख है। जैसे–**उग्र-कुल**–भगवान ऋषभदेव ने जिस कुल को रक्षक रूप में स्थापित किया वह। **आरक्षि-कुल/भोग-कुल**–राजा के पूज्य पुरोहित ब्राह्मण-कुल। **राजन्य-कुल**–राजा के मित्र समान व्यवहार करने वाले, क्षत्रिय आदि वंश। **इक्ष्वाकु**–ऋषभदेव स्वामी के वंश, मर्यादा पुरुषोत्तम राम का वंश। **हरिवंश**–श्रीकृष्ण, अरिष्टनेमि आदि के वंशज। **एसिय-कुल**–गोपाल ज्ञाति। **वेसिय-कुल**–वैश्य ज्ञातीय वणिक्। **गण्डक-कुल**–नापित ज्ञातीय। **कोट्टाग (एष्य)-कुल**–सुथार या बढ़ई जातीय। **वोक्कसालिय-कुल**–तन्तुवाय (बुनकर) ज्ञातीय। **गामरक्ख-कुल**–ग्रामरक्षक ज्ञातीय।

चूर्णिकार ने कुछ पदों के अर्थ इस प्रकार दिये हैं–**एसिय**–वणिक्, **वेसिय**–रंगरेज (रंगोपजीवी), **गंडाक**–ग्राम का आदेशवाहक, **कोट्टाग**–रथकार। प्रासुक और एषणीय का विचार तो सभी घरों में आहार लेते समय करना ही चाहिए। जुगुप्सित-कुल से अभिप्राय है–जिस घर में प्रवेश करने पर गंदगी, अभक्ष्य आदि वस्तुओं के कारण घृणा होती है। गर्हित-कुल से अभिप्राय है–जहाँ जाने पर निन्दा व बदनामी होती हो।

Elaboration—This aphorism instructs about the clans from which an ascetic seeks alms.

The common meaning of the word *kula* is clan, caste or the family lineage. The fathers lineage is called *kula* and that of the mother is

called *vamsh* At some places the word ***kula*** is used to convey a community or a group. For example in the statement from the *Agams—Uchcha-neech-majjhim kulesu adamane*—in context of alms seeking by ascetics, ***kula*** is interpreted as a group or row of houses instead of clan.

This aphorism mentions names of some important clans of ancient times. For example—*Ugra-kula*—the clan which was established by *Bhagavan* Rishabh Dev as the clan of protectors. *Arakshi-kula* or *Bhog-kula*—the Brahmin-clan or the priests revered by kings. *Rajanya-kula—Kshatriya* and other such clans that were friendly to the rulers. *Ikshvaku-kula*—the lineage to which *Bhagavan* Rishabh Dev and Shri Ram belonged. *Harivamsha-kula*—the descendants of Shrikrishna and Arishtanemi. *Esiya-kula*—cowherds. *Vesiya-kula*—traders *Gandak-kula*—barbers. *Kottaga (Eshya)-kula*—carpenters. *Vokkasaliya-kula*—weavers. *Gamarakkha-kula*—village guards.

The commentator *(Churni)* has interpreted some terms differently—*Esiya*—traders, *vesiya*—dyers; *gandaak*—village messengers, and *kottaga*—chariot makers. Care about uncontaminated and acceptable food should be taken at every house. *Jugupsit-kula* or abominable-clan is that where on entering the house one is filled with repulsion due to filthy surroundings or foul food. *Garhit-kula* or infamous-clan is that which invokes criticism and infamy if visited.

इन्द्रमह आदि उत्सव में अशनादि की एषणा

१२. से भिक्खू वा २ जाव अणुपविट्ठे समाणे सेजं पुण जाणेज्जा–असणं वा ४ समवाएसु वा पिण्डणियरेसु वा इंदमहेसु वा खंदमहेसु वा एवं रुद्दमहेसु वा मुगुंदमहेसु वा भूतमहेसु वा जक्खमहेसु वा नागमहेसु वा थूभमहेसु वा चेइयमहेसु वा रुक्खमहेसु वा गिरिमहेसु वा दरिमहेसु वा अगडमहेसु वा तलागमहेसु वा दहमहेसु वा णइमहेसु वा सरमहेसु वा सागरमहेसु वा आगरमहेसु वा अण्णयरेसु वा तहप्पगारेसु विरूवरूवेसु महामहेसु वट्टमाणेसु।

भीड भरा भोज

चित्र परिचय १

Illustration No. 1
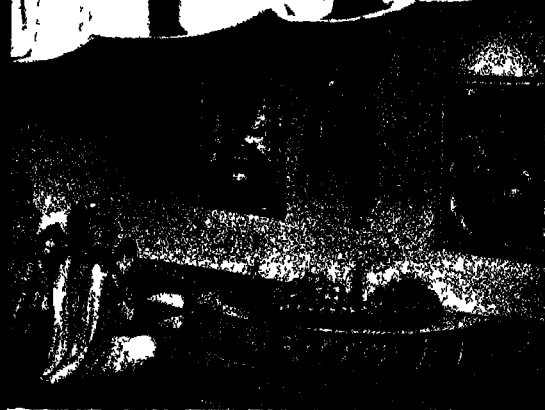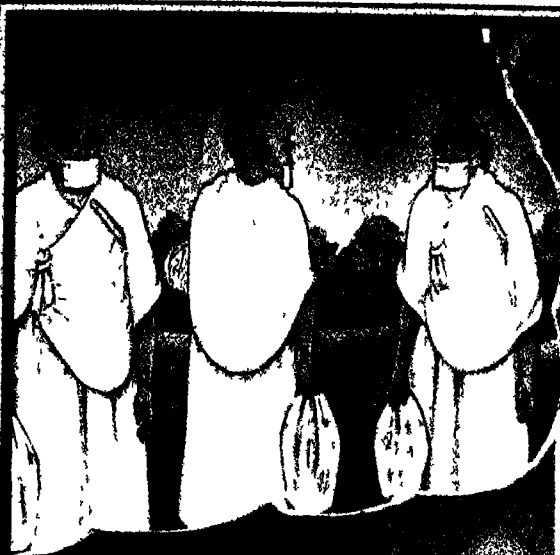
उत्सव आदि में आहार ग्रहण-निषेध

अनगार भिक्षु भिक्षा के लिए जाते हुए यदि जाने कि-

(१) यहाँ पर गृह-प्रवेश का उत्सव हो रहा है, या

(२) नाग महोत्सव, इन्द्र महोत्सव, स्कन्द (कार्तिकेय) महोत्सव आदि का उत्सव है या

(३) किसी स्वर्गीय व्यक्ति की स्मृति मे (पितृपिण्ड का) भोज हो रहा है। अन्य किसी प्रकार का उत्सव है और उसके उपलक्ष्य मे-

(४) अनेक श्रमणो, ब्राह्मणो, भिक्षुको, सन्यासियो, याचको, अतिथियो आदि का आवागमन हो रहा है। उन्हे अनेक बर्तनो मे रखे घी, दही पक्वान्न आदि भोजन परोसा जा रहा है तो श्रमण-श्रमणी उस भोज (सखडि) मे भिक्षा के लिए नही जाये तथा न ही किसी प्रकार का आहार ग्रहण करे। भिक्षा बिना लिए वापस लौट आवे।

-अध्ययन १, सूत्र १२, पृ ३०

CENSURE OF TAKING FOOD AT CELEBRATIONS ETC.

While going to seek alms if a houseless ascetic finds—

(1) There is some house-warming celebration in the house, or

(2) Celebrations of festivals in honour of Indra or Skanda (Kartikeya) or other deities, or

(3) A feast in memory of a deceased (offerings to deceased ancestors), or some other celebrations and on the occasion—

(4) Numerous *Shramans,* Brahmins, destitute and beggars are coming and going Butter, curd and delicacies are being served to them from numerous pots, then the ascetic should neither go to such feast to seek alms nor collect any food He should return without collecting alms

—Chapter 1, aphorism 12, p. 30

बहवे समण-माहण-अतिहि-किवण-वणीमए एगाओ उक्खाओ परिएसिज्जमाणे दोहिं जाव संणिहि-संणिचयाओ वा परिएसिज्जमाणे पेहाए तहप्पगारं असणं वा ४ अपुरिसंतरगडं जाव णो पडिगाहिज्जा।

अह पुण एवं जाणेज्जा–दिन्नं जं तेसिं दायव्वं, अह तत्थ भुंजमाणे पेहाए गाहावइभारियं वा गाहावइभगिणिं वा गाहावइपुत्तं वा गाहावइधूयं वा सुण्हं वा धाइं वा दासं वा दासिं वा कम्मकरं वा कम्मकरिं वा से पुव्वामेव आलोएज्जा–

आउसो त्ति ! वा भगिणि त्ति वा दाहिसि मे इत्तो अण्णयरं भोयणजायं ?

से सेवं वदंतस्स परो असणं वा ४ आहट्टु दलइज्जा। तहप्पगारं असणं वा ४ सयं वा पुण जाइज्जा, परो वा से दिज्जा, फासुयं जाव पडिगाहिज्जा।

१२. साधु या साध्वी भिक्षा के लिए गृहस्थ के घर में जाते समय यह जाने कि यहाँ महोत्सव के लिए लोग एकत्र हो रहे हैं। पितृपिण्ड में तथा इन्द्र-महोत्सव, स्कन्ध-महोत्सव, रुद्र-महोत्सव, मुकुन्द-महोत्सव, भूत-महोत्सव, यक्ष-महोत्सव, नाग-महोत्सव तथा स्तूप, चैत्य, वृक्ष, पर्वत, गुफा, कूप, तालाब, ह्रद (झील), नदी, सरोवर, सागर या आकर (खान) सम्बन्धी महोत्सव एवं अन्य इसी प्रकार के विभिन्न प्रकार के महोत्सव हो रहे हैं।

(उनके उपलक्ष्य में) अशनादि चारो प्रकार का आहार बहुत-से श्रमण-ब्राह्मण, अतिथि, दरिद्र, याचकों को एक बर्तन में से, दो बर्तनों, तीन बर्तनों या चार बर्तनों में से (निकालकर) परोसा (भोजन कराया) जा रहा है तथा घी, दूध, दही, तैल, गुड़ आदि परोसा जा रहा है, यह देखकर तथा इस प्रकार का आहार पुरुषान्तरकृत नहीं है तो ऐसे चतुर्विध आहार को अप्रासुक और अनेषणीय समझकर ग्रहण न करे।

यदि यह जाने कि जिनको देना था, उनको दिया जा चुका है, अब वहाँ गृहस्थ भोजन कर रहे हैं, ऐसा देखकर (आहार के लिए वहाँ जाए), उस गृहपति की पत्नी, बहन, पुत्र, पुत्री या पुत्रवधू, धायमाता, दास या दासी अथवा नौकर या नौकरानी को भोजन करती हुई देखे, तब उनसे पूछे–"आयुष्मती भगिनी ! क्या मुझे इस भोजन सामग्री में से कुछ दोगी?" ऐसा कहने पर वह स्वयं अशनादि आहार लाकर साधु को दे अथवा भिक्षु अशनादि चतुर्विध आहार की स्वयं याचना करे या वह गृहस्थ स्वयं दे तो उस आहार को शुद्ध एषणीय जानकर ग्रहण करे।

ALMS-SEEKING FROM PLACES OF CELEBRATIONS

12. A *bhikshu* or *bhikshuni* while entering the house of a layman in order to seek alms should find if people are gathering

there for festivities. Also, if the occasion is of offerings to the deceased ancestors, festival in honour of Indra or Skanda or Rudra or Mukunda or demons or yakshas or snakes or a stupa or a shrine or a tree or a hill or a cave or a well or a tank or a pond or a river or a lake or the sea or a mine or other such festive occasions.

(On such occasion) if that food is being served from one, two, three or four pots to many *Shramans*, Brahmins, destitute and beggars; and if milk, curd, butter, jaggery etc. are being served; then if the food offered is *apurushantarakrit* (has been prepared by the donor himself), it should be rejected considering it to be contaminated and unacceptable.

If it is found that food has been donated to those for whom it was meant, and now the family members are eating, he or she may go there to seek food When he/she finds that the wife, sister, son, daughter, daughter-in-law, governess, slaves and servants are eating, he/she should ask, "Long lived sister ! Would you kindly give me a little food from this ?" On this request the person may bring food and give it to the *bhikshu* or *bhikshuni*. Considering such food to be uncontaminated and acceptable he/she should take the food whether it has been sought by the *bhikshu* or *bhikshuni* or has been offered by the layman on his own.

विवेचन—सूत्र १० में पर्व विशेष के निमित्त निष्पन्न आहार ग्रहण का निषेध है और इस सूत्र में नामकरण (जन्म) मृत्यु-भोज तथा इन्द्र-रुद्र आदि देवों के उत्सवों के निमित्त निर्मित भोज में से आहार ग्रहण करने का प्रसंग है। इस प्रकार का आहार जब श्रमण-ब्राह्मण आदि को दिया जा चुका हो, पुरुषान्तरकृत हो गया हो तो दाता के देने पर भिक्षु उसमें से ले सकता है।

Elaboration—In aphorism 10 there is censure of accepting food specifically prepared on festivals and here the matter of accepting food prepared for feasts on various celebrations like birthday or in honour of some god like Indra, is discussed. An ascetic can accept such food if

the donor offers but only after the other seekers have already been offered and it has become *purushantarakrit.*

विशेष शब्दों के अर्थ–समवाय–मेला, जनसमूह का एकत्रित मिलन जहाँ हो। पिण्डनिकर–पितृपिण्ड–मृतक-भोज। स्कन्ध–कार्तिकेय, रुद्र प्रसिद्ध हैं। मुकुन्द–बलदेव, इन सबकी लोक में महिमा-पूजा विशिष्ट समय पर की जाती है। स्तूप–मृतक की स्मृति में बनाया गया स्मारक। चैत्य–यक्ष आदि का आयतन, मन्दिर।

Technical Terms : *Samavaya*—fair; a large gathering. *Pindanikar (pitripinda)*—feast in honour of deceased ancestors *Skandha*—the Hindu deity called Kartikeya, son of Shiva. *Rudra*—the Hindu deity popularly known as Shiva *Mukund*—Baldev (elder brother of Vasudeva). Ceremonious worship of all these is done on specific dates. *Stupa*—a tomb like structure raised in memory of a deceased. *Chaitya*—place of worship of a *Yaksha* (etc.); temple complex.

सखडि-गमन का निषेध

१३. से भिक्खू वा २ परं अद्धजोयणमेराए संखडिं नच्चा संखडिपडियाए णो अभिसंधारेज्जा गमणाए।

से भिक्खू वा २ पाईणं संखडिं णच्चा पडीणं गच्छे अणाढायमाणे। पडीणं संखडिं णच्चा पाईणं गच्छे अणाढायमाणे। दाहिणं संखडिं णच्चा उदीणं गच्छे अणाढायमाणे। उदीणं संखडिं णच्चा दाहिणं गच्छे अणाढायमाणे।

जत्थेव सा संखडी सिया, तं जहा–गामंसि वा णगरंसि वा खेडंसि वा कब्बडंसि वा मडंबंसि वा पट्टणंसि वा दोणमुहंसि वा आगरंसि वा नेगमंसि वा आसमंसि वा संणिवेसंसि वा जाव रायहाणिंसि वा संखडिं संखडिपडियाए णो अभिसंधारेज्जा गमणाए। केवली बूया–आयाणमेयं।

संखडिं संखडिपडियाए अभिसंधारेमाणे आहाकम्मियं वा उद्देसियं वा मीसज्जायं वा कीयगडं वा पामिच्चं वा अच्छेज्जं वा अणिसिट्ठं वा अभिहडं वा आहट्टु दिज्जमाणं भुंजेज्जा।

१४. अस्संजते भिक्खुपडियाए खुड्डियदुवारियाओ महल्लियादुवारियाओ कुज्जा, महल्लियदुवारियाओ खुड्डियादुवारियाओ कुज्जा, समाओ सेज्जाओ विसमाओ कुज्जा,

विसमाओ सेज्जाओ समाओ कुज्जा; पवायाओ सेज्जाओ णिवायाओ कुज्जा, णिवायाओ सेज्जाओ पवायाओ कुज्जा, अंतो वा बहिं वा कुज्जा उवस्सयस्स हरियाणि छिंदिय छिंदिय दालिय दालिय संथारगं संथारेज्जा, एस विलुंगयामो सिज्जाए।

तम्हा से संजए णियंठे तहप्पगारं पुरेसंखडिं वा पच्छासंखडिं वा संखडिं संखडिपडियाए णो अभिसंधारेज्जा गमणाए।

॥ बीओ उद्देसओ सम्मत्तो ॥

१३. भिक्षु या भिक्षुणी अर्ध-योजन की सीमा में संखडि (बड़ा जीमनवार–बृहत्भोज) हो रहा है, यह जानकर संखडि में निष्पन्न आहार के निमित्त से जाने का संकल्प न करे।

यदि भिक्षु या भिक्षुणी यह जाने कि पूर्व दिशा में संखडि हो रही है, तो वह उसके प्रति उपेक्षाभाव रखते हुए पश्चिम दिशा को चला जाय। यदि पश्चिम दिशा मे संखडि जाने तो उपेक्ष। करता हुआ पूर्व दिशा में। इसी प्रकार दक्षिण दिशा में संखडि जाने तो उसके प्रति उपेक्षा रखकर उत्तर दिशा में और उत्तर दिशा मे संखडि होती जाने तो दक्षिण दिशा में चला जाये।

संखडि जहाँ भी हो, जैसे कि गॉव में हो, नगर में हो, खेडे में हो, कुनगर में हो, मडंब में हो, पट्टन मे हो, द्रोणमुख (बन्दरगाह) में हो, आकर–(खान) में हो, आश्रम में हो, सन्निवेश (मोहल्ला या उपनगर) में हो, यावत् (यहॉ तक कि) राजधानी में हो, इनमे मे कहीं भी संखडि जाने तो संखडि (स्वादिष्ट आहार लाने) के निमित्त से मन मे संकल्प (प्रतिज्ञा) लेकर न जाये। केवलज्ञानी भगवान कहते हैं–यह कर्मबन्धन का कारण है।

संखडि मे सखडि के लिए जाने वाला भिक्षु उस आहार को खाता है तो वह आधाकर्मिक, औद्देशिक, मिश्रजात, क्रीतकृत, प्रामित्य, बलात् छीना हुआ, दूसरे के स्वामित्व का पदार्थ उसकी अनुमति के बिना लिया हुआ या सम्मुख लाकर दिया हुआ आहार सेवन करता है।

१४ क्योंकि कोई श्रद्धालु गृहस्थ साधु के संखडी में आने की सम्भावना से छोटे द्वार को बड़ा बनायेगा, बडे द्वार को छोटा बनायेगा, विषम वास/स्थान को सम बनायेगा तथा सम वास/स्थान को विषम बनायेगा। अधिक हवादार वास-स्थान को निर्वात बनायेगा या निर्वात वास-स्थान को अधिक वातयुक्त (हवादार) बनायेगा। वह भिक्षु के निवास के लिए उपाश्रय के अन्दर और बाहर (उगी हुई) हरियाली को काटेगा, उसे जड़ से उखाडकर वहाँ संस्तारक (आसन) बिछायेगा। क्योंकि वह भिक्षु विलुंगम–अकिंचन है, (वह स्वयं कुछ नहीं करेगा) अतः गृहस्थ उसके लिए शय्या तैयार करेगा।

इसलिए संयमी निर्ग्रन्थ इस प्रकार नामकरण, विवाह आदि के उपलक्ष्य में होने वाली पूर्व-संखडि (प्रीतिभोज) अथवा मृतक के पीछे की जाने वाली पश्चात्-संखडि-(मृतक-भोज) को (अनेक दोषयुक्त) संखडि जानकर संखडि (-में निष्पन्न आहार-लाभ) की दृष्टि से जाने का मन में संकल्प न करे। यह उस भिक्षु की समग्रता-भिक्षुभाव की पूर्णता है।

CENSURE OF GOING TO A FEAST

13. If a *bhikshu* or *bhikshuni* knows that there is a great feast within a distance of half a *yojan* (eight miles), he should not think of going to seek food prepared for such feast.

If *bhikshu* or *bhikshuni* finds that there is a feast in the east, he/she should become apathetic towards it and proceed to the west. If there is a feast in the west, he/she should become apathetic towards it and proceed to the east. In the same way, if there is a feast in the south, he/she should become apathetic towards it and proceed to the north and if there is a feast in the north, he/she should become apathetic towards it and proceed to the south.

No matter at what place, such as a good city, a bad city, borough, port, harbour, mine, hermitage, suburb or even the capital, the feast is he/she should not set out with a desire to collect the rich food from the feast. The Omniscient has said—this is the cause of bondage of *karmas*.

When a *bhikshu* or *bhikshuni*, going to a feast for festive food, eats that food, he is in fact eating a food with faults like *adhakarmik* (cooked specifically for ascetics), *auddeshik* (specifically prepared for ascetics), *mishrajaat* (cooked jointly for family and ascetics), *kreetkrit* (specifically purchased for ascetics), *pramitya* (food that is taken on loan for the specific purpose of giving to ascetics), snatched, taken without the permission of the owner or brought to the place of stay.

14. When an ascetic is expected in a feast, the devoted householder will enlarge a gate if it is small and reduce it if it is

large, clean the place of stay if cluttered and place the needful if it is empty, reduce the flow of air if it is too airy and increase if it is stifling, mow the grass inside and outside the *upashraya* (place of stay), and uproot the grass to spread mattress. As the ascetic is austere (will not do anything himself), the layman will have to make bed for him.

Keeping this in mind a disciplined *nirgranth* (Jain ascetic) should resolve not to go to a feast (expecting to get the food cooked for the occasion), believing that any dinner organized for an occasion (like baptising, marriage and other such ceremonies) or after an event (like death) is a feast (with numerous faults). This is the totality (of conduct including that related to knowledge) for that *bhikshu* or *bhikshuni*.

विवेचन—सखडि की परिभाषा–'संखडि' एक पारिभाषिक शब्द है। "संखण्ड्यन्ते-विराध्यन्ते प्राणिनो यत्र सा संखडिः।"–जिसमें आरम्भ-समारम्भ के कारण प्राणियों की विराधना होती है, उसे संखडि कहते हैं। (*वृत्ति पत्र ३२८*) प्रीतिभोज आदि में अन्न का विविध रीतियों से सस्कार किया जाता है, इसलिए भी इसे 'संस्कृति' (संखडि) कहा जाता होगा।

सखडि में जाने से निम्नोक्त अनेक दोष लगने की सम्भावना रहती है–

(१) स्वादलोलुपतावश अत्यधिक आहार लाने का लोभ।

(२) अति मात्रा में स्वादिष्ट भोजन करने से स्वास्थ्य की हानि। (अगले सूत्र मे बताया है।)

(३) जनता की भीड में धक्का-मुक्की, स्त्रियों का संघट्टा (स्पर्श) एव मुनि-वेश की अवहेलना।

(४) जनता में साधु के प्रति अश्रद्धा भाव बढ़ने की सम्भावना।

(५) श्रद्धालु गृहस्थ को पता लग जाने पर कि अमुक साधु यहाँ प्रीतिभोज के अवसर पर पधार रहे हैं, तो वह उनके उद्देश्य से खाद्य-सामग्री तैयार करायेगा, खरीदकर लायेगा, उधार लायेगा, किसी से जबरन छीनकर लायेगा, दूसरे की चीज को अपने कब्जे में करके देगा, घर से सामान तैयार कराकर साधु के वास-स्थान पर लाकर देगा; इत्यादि अनेक दोषों की पूरी सम्भावना रहती है।

॥ द्वितीय उद्देशक समाप्त ॥

Elaboration—*'Sankhadi'* is a Jain technical term. That where harm is caused to beings due to various sinful activities is called *sankhadi*

(Vritti leaf 328). In a feast the food is processed and enriched *(samskrit)* in many ways; for this reason also it could have been called *sankhadı (samskriti).*

There are chances of many ascetic-faults if one goes to a feast. Some of these are—

(1) Greed, triggered by gourmandism, to collect excessive quantity of food.

(2) Damage to health due to gluttony. (discussed in the next aphorism.)

(3) Getting jostled in the crowd, touch of women and insult of the ascetic garb

(4) Chances of inspiring feeling of disrespect for ascetics in masses.

(5) When a devotee comes to know that some ascetic will come at the tıme of the feast, he will specially prepare, purchase, get on credıt, snatch or confiscate food for the ascetic and bring it to the place of stay of the ascetic There are all chances of these and many other ascetic misdemeanour

|| END OF LESSON TWO ||

तइओ उद्देसओ	तृतीय उद्देशक	LESSON THREE

संखडि-गमन मे विविध दोष

१५. से एगइओ अन्नयरं संखडि आसित्ता पिबित्ता छड्डिज्जा वा, वमिज्जा वा, भुत्ते वा से णो सम्मं परिणमिज्जा, अण्णयरे वा से दुक्खे रोगायंके समुप्पज्जेज्जा। केवली बूया–आयाणमेयं।

इह खलु भिक्खू गाहावईहिं वा गाहावईणीहिं वा परिवायएहिं वा परिवाइयाहिं वा एगज्झं सद्धिं सुण्डं पाउं भो वइमिस्सं हुरत्था वा उवस्सयं पडिलेहमाणे णो लभिज्जा तमेव उवस्सयं सम्मिस्सीभावमावज्जिज्जा। अन्नमणे वा से मत्ते विप्परियासियभूए इत्थिविग्गहे वा किलीबे वा, तं भिक्खुं उवसंकमित्तु बूया–आउसंतो समणा ! अहे आरामंसि वा अहे उवस्सयंसि वा राओ वा वियाले वा गामधम्मनियंतियं कट्टु रहस्सियं मेहुणधम्मपइयारणाए आउट्टामो। तं चेवेगइओ सातिज्जिज्जा।

अकरणिज्जं चेयं संखाए, एए आयाणा संति संविज्जमाणा पच्चवाया भवंति। तम्हा से संजए णियंठे तहप्पगारं पुरेसंखडिं वा पच्छासंखडिं वा संखडिं संखडिपडियाए णो अभिसंधारिज्जा गमणाए।

१५. कदाचित् भिक्षु किसी सखडि मे जायेगा तो वहाँ अधिक सरस आहार एव पेय खाने-पीने से छर्दि–(दस्त लग सकता है) या वमन (कै) हो सकता है अथवा वह आहार भलीभाँति पचेगा नही; फलत (विशूचिका, ज्वर या शूलादि) कोई भयकर दु ख या रोगातक पैदा हो सकता है। इसीलिए केवली भगवान ने कहा–"यह (संखडि में जाना) कर्मों के बंधन का कारण है।"

(संखडि स्थान मे इन दोषो की आशका भी रहती है)–यहाँ भिक्षु गृहस्थो के, गृहस्थ-पत्नियों अथवा परिव्राजक-परिव्राजिकाओं के साथ एकचित्त व एकत्रित होकर नशीला पेय पीकर (भान भूलकर) वाहर निकलकर उपाश्रय को ढूँढ़ने लगेगा, जब वह नहीं मिलेगा, तब उसी (स्थल) को उपाश्रय समझकर गृहस्थ स्त्री-पुरुषों व परिव्राजक-परिव्राजिकाओ के साथ ठहर जायेगा। उनके साथ घुल-मिल जायेगा। वे गृहस्थ, गृहस्थ-पत्नियाँ आदि (नशे में) मत्त एव अ यमनस्क होकर अपने आप को भूल जायेंगे, साधु अपने को भूल जायेगा। वह स्त्री शरीर पर या नपुसक पर आसक्त हो जायेगा। अथवा स्त्रियाँ या नपुसक उस भिक्षु के पास आकर कहेगे–"आयुष्मन् श्रमण ! किसी

बगीचे या उपाश्रय में रात को या विकाल में एकान्त में चलकर मैथुन का सेवन करें।" उस प्रार्थना को कोई एकाकी अनभिज्ञ साधु स्वीकार भी कर सकता है।

अतः संखडि में जाना अकरणीय है यह जाने। कर्मों के आस्रव का कारण है, अथवा दोषों का आयतन (स्थान) है। इसमें जाने से कर्मों का संचय बढ़ता है; पूर्वोक्त अनेक दोष उत्पन्न होते हैं, इसलिए संयमी निर्ग्रन्थ पूर्व-संखडि या पश्चात्-संखडि को संयम खण्डित करने वाली जानकर संखडि की आशा से उसमें जाने का विचार भी न करे।

VARIOUS FAULTS IN GOING TO A FEAST

15. When a *bhikshu* or *bhikshuni* happens to go to a feast, there are chances that due to over eating of rich food and drinks he may suffer from diarrhea or vomiting or have indigestion resulting in some acute pain or ailment (cholera, fever, aches etc.). Therefore the omniscient has said—"This (going to a feast) is the cause of bondage of *karmas*."

(At a feast there are also chances of more faults—) There a *bhikshu* will come in contact and mix with householders and their wives or *parivrajaks* (male mendicants) and *parivrajikas* (female mendicants). He will join them to consume intoxicating drinks. Coming out in inebriated state he will search for the *upashraya* (place of stay or ascetic-hostel). When he fails to locate it, he will consider it (the place of feast) to be the *upashraya* and stay there with men-women and male-female *parivrajaks*. He will mingle with them. Those men and women (etc.), drunk and intoxicated, will become oblivious of themselves. The ascetic will also become irrational. He will be drawn towards the female body or a eunuch. Or women or eunuchs will approach that *bhikshu*—"Long lived *Shraman* ! Let us go to the solitude of a garden or *upashraya* during the night or other odd hours and enjoy sex." Some single and ignorant ascetic may accept such request.

Therefore know that to go to a feast is proscribed. It is a cause of inflow of *karmas* or a source of faults. Going there increases

the acquisition of *karmas.* It causes numerous faults mentioned before. Therefore, believing a pre-occasion or post-occasion feast to be detrimental to ascetic-discipline, a disciplined ascetic should not even think of going to a feast to seek alms.

विवेचन–वृत्तिकार ने संविज्जमाणा पच्चवाया–इस पद का स्पष्टीकरण करते हुए कहा है–(१) रस-लोलुपतावश वमन, विरेचन, अपचन, भयंकर रोग आदि की सम्भावना, (२) तथा संखडि में मद्यपान से मत्त साधु द्वारा अब्रह्मचर्य-सेवन जैसे कुकृत्य की पराकाष्ठा तक पहुँचने की सम्भावना भी रहती है। इन दोनो भयंकर दोषों के अतिरिक्ति अन्य अनेक कर्मसंचयजनक (प्रत्यपाय) दोष या सयम मे विघ्न उत्पन्न हो सकते हैं।

इस वर्णन से प्रतीत होता है कि प्राचीनकाल में जहाँ ऐसे बृहत् भोज होते थे, वहाँ उस गृहस्थ के रिश्तेदार स्त्री-पुरुषों के अतिरिक्त परिव्राजक-परिव्राजिकाओं को भी बुलाया व ठहराया जाता था, अपने पूज्य साधुओं को भी वहाँ ठहराने का खास प्रबन्ध किया जाता था। चूर्णिकार का मत है कि परिव्राजक-कापालिक आदि तथा कापालिकों की परिव्राजिकाएँ वर्षा और ग्रीष्म ऋतु आदि में होने वाले बृहत् भोजों में सम्मिलित होकर मद्य पीते थे; माहेश्वर, मालव और उज्जयिनी आदि प्रदेशों में गृहस्थ-पत्नियाँ भी सब मिलकर खुल्लमखुल्ला एक साथ मद्य पीती थीं। इससे स्पष्ट है कि वहाँ मद्य का दौर चलता था, उसमें साधु भी लपेट में आ जाये तो क्या आश्चर्य !

Elaboration—Explaining the phrase ***samvijjamana pachchavaya*** the commentator *(Vritti)* mentions—(1) due to gourmandising there are chances of vomiting, diarrhea, indigestion and other such grave ailments; (2) in an intoxicated state in a feast there are chances of complete indulgence in despicable acts like sex. Besides these two grave faults, there are chances of committing many other *karma* acquiring faults or causing damage to ascetic-discipline

This description indicates that in ancient times a householder, besides inviting his relatives, also invited male and female mendicants and made arrangements for their stay Special arrangements were also made for the stay of ascetics revered by him. The commentator *(Churni)* opines that *parivrajak-kapalik* (mendicants who indulged in various esoteric practices) and accompanying female mendicants joined the monsoon, summer and other festivals and consumed alcoholic drinks. In the Maheshvar,

Malava and Ujjaini regions common women also joined these celebrations and openly consumed alcohol. It is clearly evident that hard drinks were common to such celebrations. No wonder even an ascetic could be swept in the tide.

१६. से भिक्खू वा २ अण्णयरिं संखडिं सोच्चा णिसम्म संपहावइ उस्सुयभूएणं अप्पाणेणं, धुवा संखडी। णो संचाएइ तत्थ इयरेइयरेहिं कुलेहिं सामुदाणियं एसियं वेसियं पिण्डवायं पडिगाहित्ता आहारं आहरित्तए। माइट्ठाणं संफासे। णो एवं करेज्जा।

से तत्थ कालेण अणुपविसित्ता तत्थियरइयरेहिं कुलेहिं सामुदाणियं एसियं वेसियं पिण्डवायं पडिगाहित्ता आहारं आहारेज्जा।

१६ भिक्षु या भिक्षुणी (पूर्व-संखडि या पश्चात्-संखडि में से) किसी एक के विषय में सुनकर मन में बहुत उत्सुक हुआ (संखडि वाले गाँव की ओर) जल्दी-जल्दी जाता है। (इस आशा से कि) वहाँ निश्चित ही संखडि मिलेगी। वह भिक्षु उस संखडि वाले ग्राम में संखडि से रहित दूसरे-दूसरे घरों से एषणीय तथा वेसियं–रजोहरणादि वेश से लब्ध उत्पादनादि दोषरहित भिक्षा से प्राप्त आहार को ग्रहण करके उसका उपभोग नहीं कर सकेगा। क्योंकि वह मन में संखडि के भोजन के लिए लालायित हुआ सोचता है, मुझे संखडि वाला गृहस्थ अवश्य आहार के लिए आमंत्रित करेगा। (ऐसी स्थिति में) वह भिक्षु मातृस्थान (कपट) का स्पर्श करता है। अतः साधु ऐसा कार्य न करे।

वह भिक्षु उस संखडि वाले ग्राम में प्रवेश करके संखडि वाले घर के सिवाय (उस घर को छोडकर) दूसरे-दूसरे घरो से सामुदायिक भिक्षा से प्राप्त एषणीय वेसियं–मुनि के कारण प्राप्त दोषरहित पिण्डपात (आहार) को ग्रहण करके उसका सेवन कर ले।

16. A *bhikshu* or *bhikshuni* hearing about one such (pre-occasion or post-occasion feast) gets curious and rushes (towards the village where the feast is organized). (He hopes that) He will certainly get the festive food. This *bhikshu* or *bhikshuni* will not be inclined to take and consume the acceptable and faultless food offered due to his appearance (in ascetic garb including the broom) from various other houses where there is no feast. This is because, inspired by his craving for the festive food, he thinks that the host of the feast will certainly invite him for food. (In this state of mind) That *bhikshu* or *bhikshuni* resorts to deceit. Therefore an ascetic should not do so.

On entering that village having a feast, that *bhikshu* or *bhikshuni* should avoid that specific house and take and consume the acceptable and faultless food offered due to his appearance (ascetic garb including the broom) from various other houses.

विवेचन–'माइट्ठाण संफासे' का अर्थ 'मातृस्थान का स्पर्श करना' है। मातृस्थान का अर्थ है–कपट या कपटयुक्त वचन। इससे सम्बन्धित तथा माया का कारण बताने वाले मूल पाठ का आशय यह है कि वह साधु सखडि वाले ग्राम मे आया तो है–सखडि-निष्पन्न आहार लेने, किन्तु सीधा सखडि-स्थल पर न जाकर उस गाँव में अन्यान्य घरों से थोडी-सी भिक्षा ग्रहण करके पात्र खाली करने के लिए उसी गाँव में कही बैठकर वह आहार कर लेता है, ताकि खाली पात्र देखकर संखडि वाला गृहपति भी आहार के लिए विनती करेगा तो मैं इन पात्रों में भर लूँगा। इसी भावना को लक्ष्य में रखकर यहाँ कहा गया है कि ऐसा साधु माया का सेवन करता है। अत· संखडि वाले ग्राम मे अन्यान्य घरों से प्राप्त आहार को वहीं करना उचित नहीं है।

Elaboration—*'Maitthanam samfase'* means to embrace *matristhana,* which means deceit or deceptive speech The purport of the text related to cause of deceit is—the *bhikshu* or *bhikshuni* comes to the village with the intention of getting the festive food but instead of going straight to the feast he visits other houses and collects meager food. He then goes to some solitary place and eats that little food so that when he reaches the festive house, the host, seeing his empty pots, will offer him alms giving him the opportunity to fill his pots Because of this state of mind it is mentioned here that such ascetic embraces deceit Therefore in a village having feast it is not proper to eat the food collected from other houses there itself.

१७. से भिक्खू वा २ से जं पुण जाणिज्जा गामं वा जाव रायहाणिं वा, इमंसि खलु गामंसि वा जाव रायहाणिंसि वा संखडि सिया, तं पि य गामं वा जाव रायहाणिं वा संखडिं संखडिपडियाए णो अभिसंधारेज्जा गमणाए। केवली बूया–आयाणमेयं।

आइण्णोवमाणं संखडिं अणुपविस्समाणस्स–

पाएण वा पाए अक्कंतपुव्वे भवइ, हत्थेण वा हत्थे संचालियपुव्वे भवइ, पाएण वा पाए आवडियपुव्वे भवइ, सीसेण वा सीसे संघट्टियपुव्वे भवइ, काएण वा काए संखोभियपुव्वे भवइ। दंडेण वा अट्ठीण वा मुट्ठीण वा लेलुणा वा कवालेण वा

अभिहयपुव्वे भवइ, सीओदएण वा ओसित्तपुव्वे भवइ। रयसा वा परिघासिय पुव्वे भवइ। अणेसणिज्जे वा परिभुत्तपुव्वे भवइ, अण्णेसिं वा दिज्जमाणे पडिगाहियपुव्वे भवइ।

तम्हा से संजए णियंठे तहप्पगारं आइण्णोवमाणं संखडिं संखडिपडियाए णो अभिसंधारिज्जा गमणाए।

१७. भिक्षु या भिक्षुणी यह जाने कि अमुक गाँव या राजधानी में संखडि है या संखडि अवश्य होने वाली है तो उस गाँव या राजधानी में संखडि की प्रतिज्ञा–संकल्प से जाने का विचार भी न करे। केवली भगवान कहते हैं–यह अशुभ कर्मों के बन्ध का कारण है।

भिक्षाचरों की भीड से भरी–आकीर्ण–और हीन–अवमान संखडि में प्रविष्ट होने से (निम्नोक्त दोषों के उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है–)

सर्वप्रथम पैर से पैर टकरायेंगे; या हाथ से हाथ संचालित होंगे (धकियाये जायेंगे); पात्र से पात्र रगड़ खायेगा, सिर से सिर का स्पर्श होकर टकरायेगा अथवा शरीर से शरीर का सघर्षण होगा, (ऐसा होने पर) डण्डे, हड्डी, मुट्ठी, ढेला-पत्थर या खप्पर से एक-दूसरे पर प्रहार होना भी सम्भव है। वे परस्पर सचित्त, ठण्डा पानी भी छींट सकते हैं, सचित्त मिट्टी भी फेंक सकते हैं। वहाँ अनेषणीय आहार का भी उपभोग करना पड़ सकता है तथा दूसरों को दिये जाने वाले आहार को बीच मे से (झपटकर) लेना भी पड़ सकता है। इसलिए वह संयमी निर्ग्रन्थ इस प्रकार की जनाकीर्ण एवं हीन संखडि में संखडि के सकल्प से जाने का विचार न करे।

17. When a *bhikshu* or *bhikshuni* finds that a feast has been organized or will certainly be organized in a particular village or capital city, he should not even think of going to that village or capital city with an intention of joining the feast. The omniscient has said that to be a cause of bondage of *karmas*.

Entering a feast crowded with beggars or a restricted one (entails chances of following faults—)

Treading by feet; touching or pushing by hands; scratching of pots with other pots; touching or banging of heads or bodies. There are chances of these being followed by hitting with stick, bone, fist, stone or gourd. They may also splash *sachit*

(contaminated with living organism) water and throw *sachit* sand on each other. Unacceptable food may have to be eaten and food meant for others may have to be snatched. Therefore that disciplined ascetic should not think of going to such crowded or restricted feast with an intention to seek food.

विवेचन–'आइण्णोवमाणं'–चूर्णिकार ने इन दोनों शब्दों की व्याख्या की है–आइण्ण चरगादीहिं। 'ओमाणं'–सतस्स भत्ते कते सहस्सं आगतं णाऊण माणं ओमाणं अर्थात् चरक आदि भिक्षाचरो से आकीर्ण का नाम आकीर्णा है तथा सौ के लिए भोजन बनाया गया था, किन्तु भोजनार्थी एक हजार आ गये जानकर जिसमें भोजन कम पड़ गया, उसे 'अवमाना' सखडि कहते हैं।

Elaboration—The commentator (*Churni*) has explained ***'ainnovamanam'***—*ainna* (crowded) and ***'omanam'*** (restricted) as—a feast crowded with beggars like *charak* and others is called *ainna* or *akirna* or crowded feast, a feast where food has been prepared for one hundred and one thousand or unlimited guests arrive causing a shortage of food, is called *omanam* or *avamana* or restricted feast

विशेष शब्दों के अर्थ–अक्कन्तपुव्वे–परस्पर आक्रान्त होना–पैर से पैर टकराना, दब जाना या ठोकर लगना। सचालियपुव्वे–एक-दूसरे पर हाथ चलाना, धक्का देना। आवडियपुव्वे–पात्र से पात्र टकराना, रगड खाना। संघट्टियपुव्वे–सिर से सिर का स्पर्श होकर टकराना। संखोभियपुव्वे–शरीर से शरीर का संघर्षण होना। अभिहयपुव्वे–परस्पर प्रहार करना। परिघासियपुव्वे–परस्पर धूल उछालना। ओसियपुव्वे–परस्पर सचित्त पानी छींटना। परिभुत्तपुव्वे–पहले स्वयं आहार का उपभोग कर लेना। पडिगाहियपुव्वे–पहले स्वयं आहार ग्रहण कर लेना। अट्ठीण–हड्डियों का। मुट्ठीण–मुक्को का। लेलुणा–ढेले से या पत्थर से। कवालेण–खप्पर से, ठीकरे से।

स्वादिष्ट भोजन-पानी की आशा से वहाँ जाने का बार-बार निषेध करने की पुनरावृत्ति करके भी शास्त्रकार ने इस बात को जोर देकर कहा है–केवली भगवान ने कहा है–"यह दोषों का आयतन है या कर्मों के बन्ध का कारण है।" ऐसे बृहत् भोज में जाने से साधु की साधना की प्रतिष्ठा गिर जाती है।

Technical Terms : *Akkantapuvve (akrantapurve)*—hitting or treading on or crushing each others feet. *Sanchaliyapuvve*—to touch or push each other with hands *Avadiyapuvve*—touching or scratching of each others pots. *Sanghattiyapuvve*—touching and banging of each others heads. *Sankhobhiyapuvve*—touching or rubbing of bodies.

चित्र परिचय २

Illustration No. 2
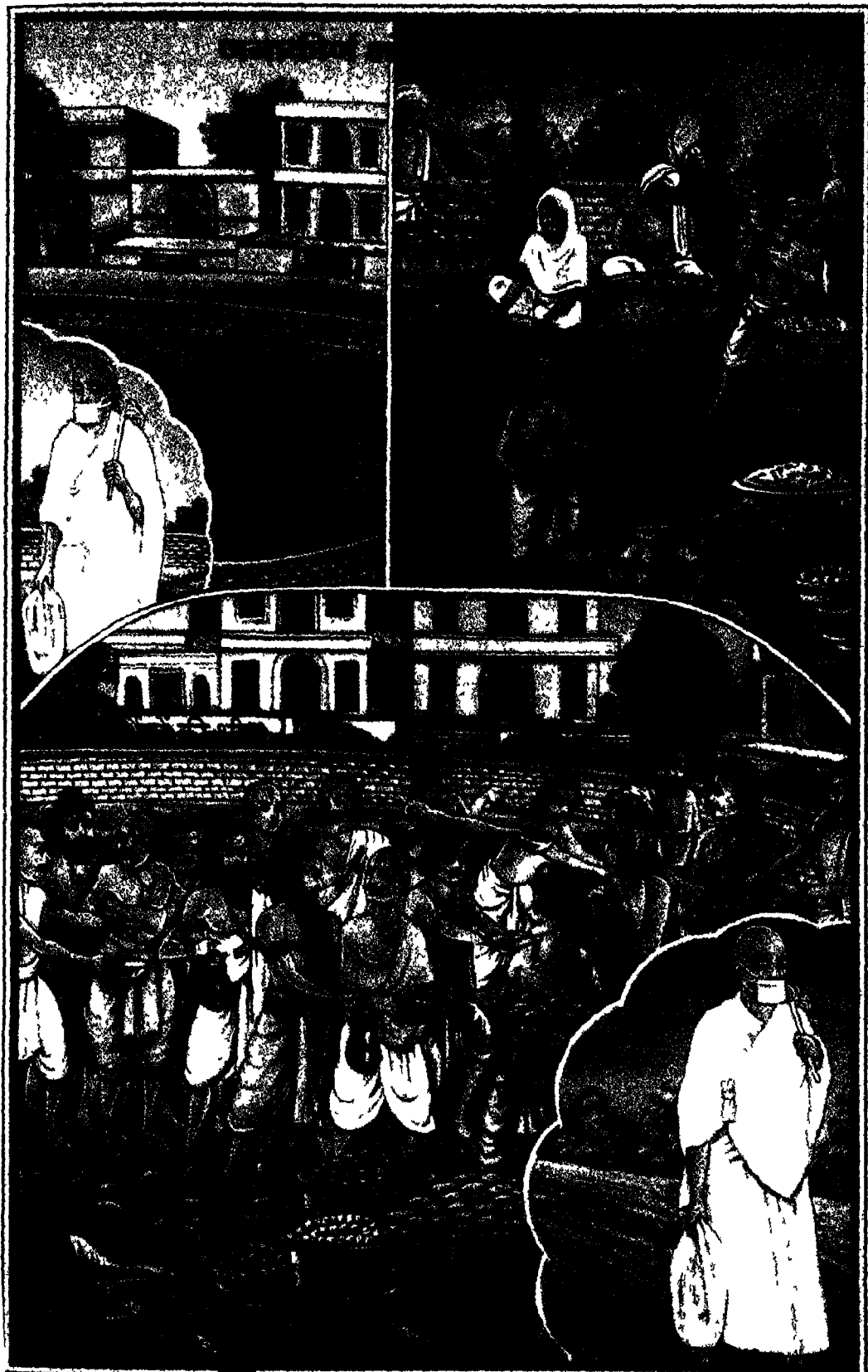
जनाकीर्ण भोज में गमन-निषेध

(१) भिक्षा के लिए जाते हुए भिक्षु को पता चले कि अमुक नगर या गॉव मे अमुक स्थान पर बृहद् भोज होने वाला है। वहॉ अनेक प्रकार का भोजन तैयार किया जा रहा है तो भिक्षा लेने के सकल्प से उस दिशा मे भी नही जावे।

(२) क्योकि जहाँ थोडे लोगो के लिए भोजन बना हो और भिक्षाचरो की भीड एकत्र हो गई है तो वहाँ जाने आने मे परस्पर हाथ, पैर, सिर आदि टकरायेगे। लोग खाद्य-सामग्री के लिए छीनाझपटी करेगे। दण्ड पात्र आदि टूट जायेगे। सचित्त जल, वनस्पति आदि की भी हिंसा होगी तथा अन्य अनेक प्रकार से कलह, सघर्ष व हिंसा का प्रसग उपस्थित होगा।

(३) सयमी श्रमण इस प्रकार की जनाकीर्ण सखडि मे कदापि नही जाये। ऐसा प्रसग देखकर वापस लौट जाये।

–अध्ययन १, सूत्र १७ पृ ४२

CENSURE OF GOING TO A CROWDED FEAST

(1) When going out to seek alms if an ascetic finds that a feast has been organized in a particular village or city, and a variety of food is being cooked, he should not even think of going in that direction to seek alms

(2) This is because going to or coming from a place where limited food is cooked and a crowd of beggars is collected there are chances that hands, feet and heads will collide People will rush for and grab food Staff, pots etc will break *Sachit* water, plants etc will come to harm Occasions of squabble, quarrel and violence will arise

(3) A disciplined ascetic should never go to such crowded feast Seeing such occasion he should turn back

—Chapter 1, aphorism 17, p. 42

Abhihayapuvve—to hit each other. *Parighasiyapuvve*—to throw sand at each other. *Osiyapuvve*—to splash *sachit* water on each other. *Paribhuttapuvve*—to consume food first. *Padigahiyapuvve*—to acquire food first *Atthina*—with bones. *Mutthina*—with fists. *Leluna*—with stone or lump. *Kavalena*—with a gourd or a broken piece of earthen pot.

Even after frequently repeating the censure of going to a feast with the purpose of getting tasty food, the author has laid a further stress by mentioning—The omniscient has said—"It is the source of faults or a cause of bondage of *karmas*" By going to such a large feast an ascetic gets deprived of the esteem of his spiritual attainments.

शंकाग्रस्त-आहार-निषेध

१८. से भिक्खू वा २ जाव समाणे से जं पुण जाणिज्जा असणं वा ४ 'एसणिज्जे सिया, अणेसणिज्जे सिया'। वितिगिंछसमावण्णेण अप्पाणेण असमाहडाए लेस्साए तहप्पगारं असणं वा ४ लाभे संते णो पडिगाहिज्जा।

१८. साधु या साध्वी गृहस्थ के घर में प्रवेश करने पर यह जाने कि यह आहार एषणीय है या अनैषणीय। यदि (इस प्रकार की) विचिकित्सा (आशंका) उत्पन्न हो जाये तथा उसकी लेश्या (चित्तवृत्ति) अशुद्ध आहार ग्रहण करने की हो रही हो, तो वैसे (शकाग्रस्त) आहार को ग्रहण न करे।

CENSURE OF DOUBTFUL FOOD

18. A *bhikshu* or *bhikshuni* while entering the house of a layman in order to seek alms should find if that food is *eshaniya* (acceptable according to the ascetic code) or unacceptable. If he is plagued with such doubt and his attitude favours accepting such food, he should still not take such (doubtful) food.

भंडोपकरण सहित गमनागमन

१९. [१] से भिक्खू वा गाहावइकुलं पविसिउकामे सव्वं भंडगमायाए गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए पविसिज्ज वा णिक्खमेज्ज वा।

[२] से भिक्खू वा २ बहिया विहारभूमिं वा वियारभूमिं वा णिक्खममाणे वा पविस्स माणए वा सव्वं भंडगमायाए बहिया विहारभूमिं वा वियारभूमिं वा णिक्खमेज्ज वा पविसेज्ज वा।

[३] से भिक्खू वा २ गामाणुगामं दूइज्जमाणे सव्वं भंडगमायाए गामाणुगामं दूइज्जेजा।

१९. [१] जो भिक्षु (या भिक्षुणी) गृहस्थ के घर में प्रवेश करना चाहता है, वह अपने सब भंडोपकरण (साथ में) लेकर आहार-प्राप्ति के निमित्त से गृहस्थ के घर में प्रवेश करे या निकले।

[२] साधु (या साध्वी) बाहर विहार भूमि के लिए या स्वाध्याय भूमि में निकलते या प्रवेश करते समय अपने सभी धर्मोपकरण साथ लेकर वहाँ से निकले या प्रवेश करे।

[३] एक ग्राम से दूसरे ग्राम विचरण करते समय साधु (या साध्वी) अपने सब धर्मोपकरण साथ मे लेकर ग्रामानुग्राम विहार करे।

MOVING WITH ASCETIC EQUIPMENT

19. [1] A *bhıkshu* or *bhıkshunı* who wants to enter the house of a layman, should take (along) all his bowls (pots) and equipment before entering or leaving the house of a layman with the purpose of seeking food.

[2] A *bhıkshu* or *bhıkshunı* who wants to go to a place to relieve himself or a place to pursue studies, should take (along) all his ascetic equipment before enterıng or leavıng that place

[3] A *bhıkshu* or *bhıkshunı* who wants to move from one village to another, should take (along) all his ascetic equipment before moving about.

२०. से भिक्खू वा २ अह एवं जाणेज्जा, तिव्वदेसियं वा वासं वासमाणं पेहाए, तिव्वदेसियं वा महियं संणिचयमाणिं पेहाए, महावाएण वा रयं समुद्धुयं पेहाए, तिरिच्छ संपातिमा वा तसा पाणा संथडा संणिवयमाणा पेहाए।

से एवं णच्चा णो सव्वं भंडगमायाए गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए पविसेज्ज वा णिक्खमेज्ज वा, बहिया विहारभूमिं वा वियारभूमिं वा णिक्खमेज्ज वा पविसेज्ज वा गामाणुगामं दूइज्जेज्जा।

२०. यदि वह भिक्षु (या भिक्षुणी) यह जान ले कि विशाल भू-भाग में वर्षा बरस रही है। विशाल प्रदेश में अन्धकार रूप धुँध (ओस या कोहरा) दिखायी दे रही है, अथवा महावायु (आँधी या अंधड़) से धूल उड़ती दिखायी दे रही है, तिरछे उड़ने वाले या त्रस प्राणी एक साथ बहुत-से मिलकर गिरते दिखाई दे रहे हैं; तो वह ऐसा जानकर सब धर्मोपकरण साथ में लेकर आहार के उद्देश्य से न तो गृहस्थ के घर में प्रवेश करे और न वहाँ से निकले। इसी प्रकार ऐसी स्थिति में और बाहर विहार (मलोत्सर्ग-) भूमि या विचार (स्वाध्याय-) भूमि में भी निष्क्रमण या प्रवेश न करे; न ही एक ग्राम से दूसरे ग्राम को विहार करे।

20. If that *bhıkshu* or *bhıkshunı* finds that it is raining in a wide area; a large area has become overcast due to fog or mist; there is a gale or sand-storm; or a large number of airborne insects are falling in clusters; knowıng thus he should neither enter nor come out of the house of a layman with all his ascetic equipment In the same way he should neither enter nor come out of the places meant for relieving himself or for studies; same ıs applicable for moving about from one village to another.

विवेचन–चूर्णि एवं टीका आदि के आधार पर आचार्य श्री आत्माराम जी म. ने स्पष्टीकरण किया है कि ये दोनो सूत्र जिनकल्पी मुनि की अपेक्षा से है। साध्वी जिनकल्पी नहीं होती, अतः इसमे से भिक्खू वा का प्रयोग केवल पारम्परिक रूप में हुआ है।

जिनकल्पी या विशिष्ट प्रतिमाधारी मुनि गच्छ से बाहर अकेला रहता है। अतः बाहर कहीं जाने पर उनके उपकरण आदि कोई व्यक्ति उठाकर ले जा सकता है। जबकि स्थविरकल्पी साधु कम से कम दो रहते हैं। अतः वे एक-दूसरे को अपने उपकरण सँभलाकर जा सकते हैं। आगमों मे जिनकल्पी मुनि के कम से कम दो उपकरण बताये हैं–(१) मुखवस्त्रिका, (२) रजोहरण। यदि लज्जा परीषह नहीं जीत सके तो एक छोटा चोलपट्टक (धोती) भी रख सकता है जिसका उपयोग केवल नगर में आहार आदि के लिए जाते समय करता है।

कोई जिनकल्पी मुनि ५, ७ या अधिक से अधिक १२ उपकरण रख सकते हैं जबकि स्थविरकल्पी मुनि १४ या उससे भी अधिक उपकरण रख सकते हैं।

सूत्र २० में आहार के पाठ में ही विहार भूमि–मल-मूत्र त्याग के लिए भी वर्षा आदि में बाहर जाने का निषेध है। इस पर टिप्पणी करते हुए आचार्यश्री ने लिखा है–यह समुच्चय पाठ होने से ऐसा आया है, किन्तु मल-मूत्र त्याग के लिए जाने का कहीं निषेध नहीं है, क्योंकि शास्त्रों

में अनेक स्थानों पर स्पष्ट कहा है, प्रतिमाधारी मुनि को मल-मूत्र की बाधा हो तो उसे रोकना नहीं चाहिए। दशाश्रुतस्कन्ध, व्यवहार, ज्ञातासूत्र, निशीथसूत्र आदि में सर्वत्र मल-मूत्र की बाधा रोकने का निषेध किया है। अत· वर्षा आदि के प्रसग पर भिक्षु मल-मूत्र त्याग के लिए जा सकता है, किन्तु आहार, स्वाध्याय या ग्रामान्तर विहार नहीं करे।

Elaboration—Acharya Shri Atmaramji M. has explained, on the basis of the commentaries (*Tika* and *Churni*) that these two aphorisms are meant for *Jinakalpi* ascetics A *bhikshuni* is never *Jinakalpi* therefore it appears that the use of the term *bhikshu* or *bhikshuni* has been used just to follow the general writing style in the text

A *Jinakalpi* ascetic or an ascetic observing special codes lives away from the organization in solitude Thus when he moves out his equipment could be carried away by some other person In case of the *Sthavirkalpi* ascetics (ascetics who are senior or non-itinerant) the minimum number living together is two One of them can move out leaving his equipment in the others care According to the *Agams* a *Jinakalpi* has minimum two equipment—mouth-cover and ascetic-broom. If he is not above the norms of social modesty he may also have a small loin-cloth to be used only when he goes into the town to seek alms.

Some *Jinakalpis* are allowed to keep 5 or 7 or a maximum of 12 equipment whereas the *Sthavirkalpis* are allowed 14 or even more.

In aphorism 20 going out to relieve oneself during rain (etc.) is also proscribed. Commenting on this Acharya Shri Atmaramji M. writes that this is again due to the force of writing style in the text because there is no such restriction in scriptures with regard to nature's call. In fact a clear mention that an ascetic observing special codes should never restrain the nature's call is found at numerous places in scriptures *Dashashrut-skandh, Vyavahar, Jnatasutra, Nisheeth Sutra* and other such scriptures proscribe restraining nature's call. Therefore, an ascetic may go to relieve himself during rain (etc.) but he should not move out to seek food or for studies or to go from one village to another.

२१. से भिक्खू वा २ से जाइं पुण कुलाइं जाणेज्जा, तं जहा–खत्तियाण वा राईण वा कु-राईण वा रायपेसियाण वा रायवंसट्ठियाण वा अंतो वा बाहिं वा गच्छंताण वा संणिविट्ठाण वा णिमंतेमाणाण वा अणिमंतेमाणाण वा असणं वा ४ लाभे संते णो पडिगाहेज्जा।

॥ तइओ उद्देसओ सम्मत्तो ॥

२१. भिक्षु एव भिक्षुणी निम्नोक्त कुलों को जाने, जैसे कि चक्रवर्ती आदि क्षत्रियों के कुल, (उनसे भिन्न) अन्य राजाओं के कुल, कु-राजाओं (छोटे राजाओं) के कुल, राज भृत्य (दण्डपाशिक) आदि के कुल, राजा के सम्बन्धियों के कुल, इन कुलों के घर से बाहर या भीतर जाते हुए, खड़े हुए या बैठे हुए, किसी के द्वारा निमन्त्रण किये जाने या न किये जाने पर, वहाँ से प्राप्त होने वाले अशनादि आहार को ग्रहण न करे।

CENSURE OF GOING TO CHOSEN HOUSES

21. A *bhikshu* or *bhikshuni* should know the following clans—the ruling clans like those of *Chakravartis;* clans of other kings; clans of minor rulers; clans of employees of kings and clans of relatives of kings. He should not accept food offered while going into or coming out of or standing in or sitting in or being invited or not invited at the houses belonging to these clans.

विवेचन–सूत्र ११ में उग्र, भोग, राजन्य, क्षत्रिय आदि बारह प्रकार के कुलों से प्रासुक एवं एषणीय आहार लेने का विधान किया गया है, अब इस सूत्र में क्षत्रिय आदि कुछ कुलों से आहार लेने का सर्वथा निषेध किया गया है, इसका क्या कारण है? वृत्तिकार इसका समाधान करते हुए कहते हैं–'एतेषां कुलेषु संपातभयान्न प्रवेष्टव्यम्–इन घरों में संपात–भीड में गिर जाने, ईर्यासमिति की विराधना होने अथवा निरर्थक असत्य भाषण के भय के कारण प्रवेश नहीं करना चाहिए।

प्राचीन काल में राजाओं के अन्तःपुर में तथा रजवाडों में राजकीय उथल-पुथल बहुत होती थी, षड्यंत्र रचे जाते थे। कई गुप्तचर भिक्षु के वेश में राज-दरबार में, अन्तःपुर तक में घुस जाते थे। ऐसी स्थिति में साधुओं को गुप्तचर समझकर पकड़ लिया जाता या उन्हें आहार के साथ विष दिया जा सकता है ऐसी सम्भावना के कारण भी यह प्रतिबन्ध लगाया गया होगा। यह भी सम्भव है कुछ राजा और राजवंश के लोग भिक्षुओं के साथ असदूव्यवहार करते होंगे अथवा

उनके यहाँ का आहार, संयम की साधना में विघ्नकारक होता होगा। *(वृत्ति पत्र ३३३)* इस कारण ऐसा सम्भव है। सामान्य स्थिति में तो पूर्वोक्त कुलों में भिक्षा के लिए जा सकते हैं।

॥ तृतीय उद्देशक समाप्त ॥

Elaboration—In aphorism 11 it is mentioned that food could be taken from twelve types of clans including *Ugra, Bhog, Rajanya* and *Kshatriya,* but here there is a complete censure of accepting food from a few clans including *Kshatriya.* What is the reason ? The commentator (*Vritti*) explains that these houses should not be entered for fears of falling due to crowd, going against the rule of careful movement or resorting to faulty speech unnecessarily

In the ancient times the ruling clans were fraught with palace intrigues and many conspiracies were hatched Often spies in the garb of a *bhikshu* would enter the court or even the women's quarters In such cases they could be apprehended or fed poison with food This restriction must have been designed to avoid these possibilities It is also possible that some kings or their clans could be in the habit of ill-treating ascetics, or the food available could be unsuitable to ascetic discipline (*Vritti* leaf 333) These could be the reasons for this censure Under normal conditions one can go to the said families to seek alms

॥ END OF LESSON THREE ॥

चउत्थो उद्देसओ	चतुर्थ उद्देशक	LESSON FOUR

अग्राह्य-संखडि ग्रहण का निषेध

२२. से भिक्खू वा २ जाव पविट्ठे समाणे से जं पुण जाणेज्जा, मंसाइयं वा मच्छाइयं वा मंसखलं वा मच्छखलं वा आहेणं वा पहेणं वा हिंगोलं वा संमेलं वा हीरमाणं पेहाए अतरा से मग्गा बहुपाणा बहुबीया बहुहरिया बहुओसा बहुउदया बहुउत्तिंग-पणग-दगमट्टिय-मक्कडा-सताणगा।

बहवे तत्थ समण-माहण-अतिहि-किवण-वणीमगा उवागया उवागमिस्संति, तथाइण्णा वित्ती, णो पण्णस्स णिक्खमण-पवेसाए, णो पण्णस्स वायण-पुच्छण-परियट्टणा-ऽणुप्पेह-धम्माणुयोगचिंताए। से एव णच्चा तहप्पगारं पुरेसंखडिं वा पच्छासंखडिं वा संखडिं संखडिपडियाए णो अभिसंधारिज्ज गमणाए।

२२ भिक्षु या भिक्षुणी गृहस्थ के घर मे भिक्षा के लिए प्रवेश करते समय यह जान लेवे कि यहॉ आहार के साथ मॉस पकाया जा रहा है या मत्स्य पकाया जा रहा है अथवा मॉस छीलकर सुखाया जा रहा है या मत्स्य छीलकर सुखाया जा रहा है। **आहेण**–विवाहोत्तर काल मे नववधू के प्रवेश के उपलक्ष्य में भोज हो रहा है या **पहेण**–पितृगृह में वधू के पुन प्रवेश के उपलक्ष्य मे भोज हो रहा है, या मृतक-सम्बन्धी भोज हो रहा है अथवा परिजनों के सम्मानार्थ भोज (गोठ) हो रहा है। (ऐसी संखडियों (भोजों) से अन्य भिक्षाचरों को भोजन लाते हुए देखकर सयमशील भिक्षु को वहॉ भिक्षा के लिए नहीं जाना चाहिए।) क्योकि वहॉ जाने में अनेक जीवो की विराधना होने की सम्भावना है, जैसे कि–मार्ग में बहुत-से प्राणी, बहुत-सी हरियाली, बहुत-से ओसकण, बहुत-सा पानी, बहुत-से कीड़ीनगर, पॉच वर्ण की–नीलण-फूलण है, काई आदि निगोद के जीव है, सचित्त पानी से भीगी हुई मिट्टी है, मकडी के जाले है, उन सब की विराधना हो सकती है।

इसके अतिरिक्त वहाँ बहुत-से शाक्यादि–श्रमण, ब्राह्मण, अतिथि, दरिद्र, याचक (भिखारी) आदि आए हुए हैं, आ रहे है तथा आऍगे। चरक आदि जनता की भीड़ से संखडिस्थल अत्यन्त घिरा हुआ है; इसलिए वहॉ प्राज्ञ साधु का निर्गमन–प्रवेश का व्यवहार उचित नही है, क्योंकि वहाँ (नृत्य, गीत एवं वाद्य होने से) प्रज्ञावान भिक्षु की वाचना, पृच्छना, परिवर्तना, अनुप्रेक्षा और धर्मकथारूप स्वाध्याय नहीं हो सकेगी। अतः इस प्रकार का दोष जानकर वह भिक्षु पूर्वोक्त प्रकार की पूर्व संखडि या पश्चात् संखडि में संखडि की अभिलाषा से जाने का संकल्प न करे।

CENSURE OF UNACCEPTABLE FROM FEAST

22. A *bhikshu* or *bhikshuni* while entering the house of a layman in order to seek alms should find if meat is being cooked or fish is being cooked with the food. Or if meat is being dried after skinning or fish is being dried after skinning. If the feast is being organized on the occasion to welcome newly wedded bride after her marriage or it is on the occasion of a bride returning to her parents house; if it is in connection with honouring a deceased or just in honour of relatives. (Seeing other beggars bringing food from such feasts a disciplined ascetic should not go there to seek alms.) Because by going there, there are chances of committing sin against numerous beings; for example—on the way there may be many beings, a lot of vegetation, many dew-drops, a lot of water, many ant-holes, clusters of dormant life in five types of fungi, sand dampened with *sachit* water, cob-webs etc. All these could come to harm.

Besides this, many *Shramans* (Buddhists etc.), Brahmins, guests, destitute, beggars etc. have come, are coming and will be coming there. The place of feast is surrounded by a crowd of beggars and other people, therefore the convention of a wise ascetic entering such place is not right. This is because (due to dance, music and other festivities) he will not be able to indulge in his scholarly activities of listening to a discourse, questioning, contemplating and giving discourse. Therefore, knowing about such faults, that *bhikshu* or *bhikshuni* should not think of going to said types of feasts with the intention of seeking alms.

ग्राह्य-संखडि की अनुज्ञा

से भिक्खू वा २ जाव पविट्ठे समाणे जं पुण जाणेज्जा–मंसाइयं वा जाव हीरमाणं पेहाए अंतरा से मग्गा अप्पपाणा जाव संताणगा, णो जत्थ बहवे समण-माहण जाव उवागमिस्संति, अप्पाइण्णा वित्ती, पण्णस्स णिक्खमण-पवेसाए, पण्णस्स वायण-पुच्छण-परियट्टणा-ऽणुप्पेह-धम्माणुयोगचिंताए। सेवं णच्चा तहप्पगारं पुरेसंखडिं वा पच्छासंखडिं वा संखडिं संखडिपडियाए अभिसंधारिज्ज गमणाए।

चित्र परिचय ३

Illustration No. 3
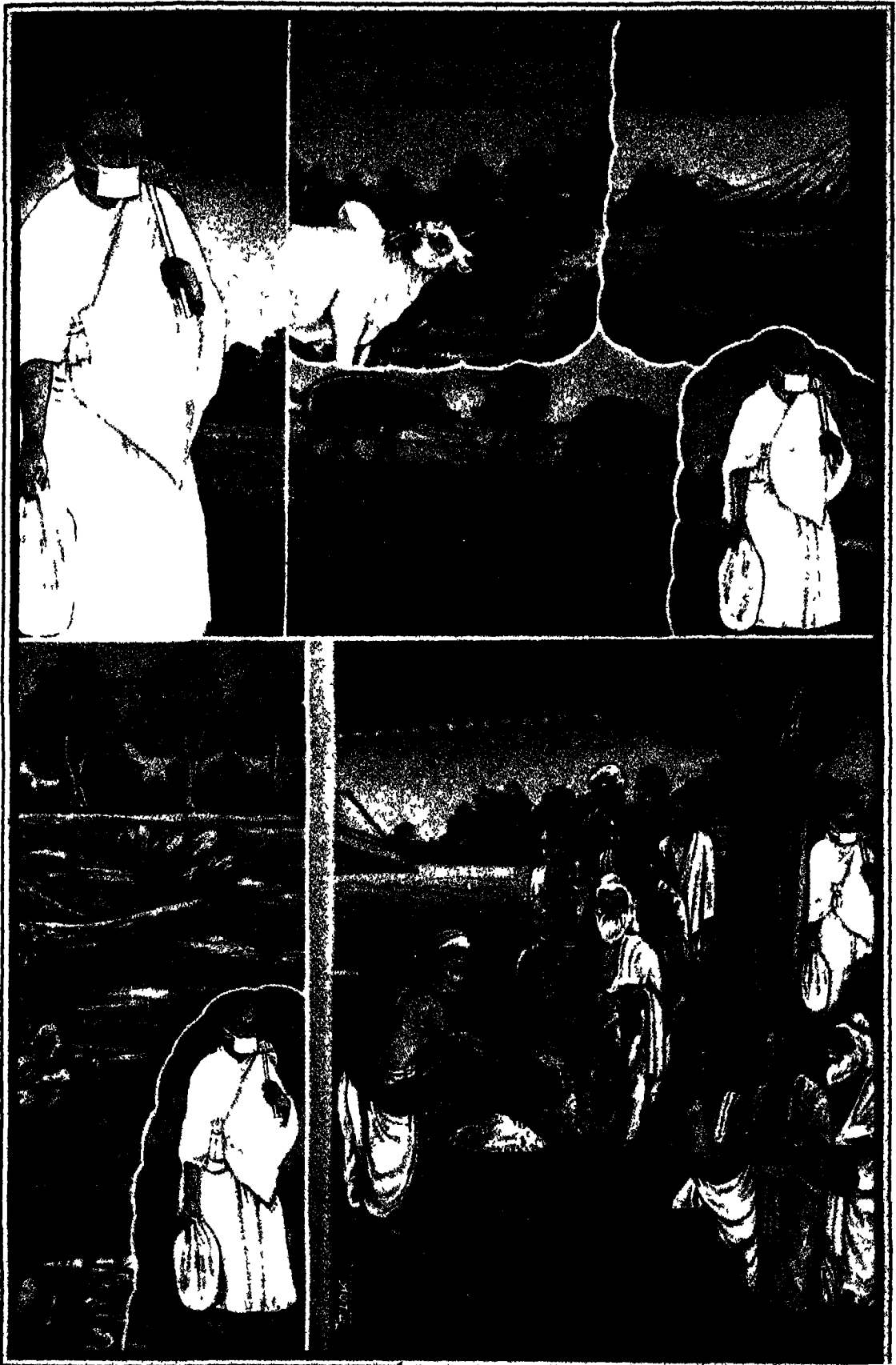
एषणा-समिति-विवेक

(१) भिक्षा के लिए जाते समय श्रमण यदि देखे कि मार्ग मे मदोन्मत्त साँड, भैसा, सद्य.प्रसूता गाय, दुष्ट घोडा, सियार, कुत्ता, शूकर आदि हिसक या उन्मत्त जानवर खडे हो। *(सूत्र २७)* अथवा उस रास्ते पर कबूतर, चिडिया, कौआ आदि दाना चुग रहे हो तो भिक्षु आत्म-विराधना और जीवो की अन्तराय टालने की दृष्टि से उस मार्ग से नही जाये। वापस लौट जाये। *(सूत्र ३१)*

(२) भिक्षा के लिए जाते हुए मार्ग मे यदि कीचड हो, गड्ढा हो ठूँठ पडे हों, मार्ग विषम हो तो ऐसे मार्ग से न जाये। *(सूत्र २८)*

(३) भिक्षा के लिए जाते समय देखे कि गृहस्थ के द्वार पर भिक्षा माँगने वालो की भीड लगी है। गृहस्थ उन्हे भिक्षा दे रहा हो तो भिक्षु उनको देखकर वापस लौट जाये और जहाँ पर दाता गृहस्थ की नजर नही पडे ऐसे एकान्त स्थान पर चुपचाप खडा रहे ताकि किसी की भिक्षावृत्ति मे अन्तराय न पडे। सबके चले जाने के बाद भिक्षु गृहस्थ के द्वार पर जा सकता है।

-अध्ययन १, सूत्र २२, पृ ५१

PRUDENCE IN *ESHANA SAMITI*

(1) An ascetic while going to seek alms should find if a mad bull or buffalo or a cow who has just delivered a calf, mad horse, jackal, dog, wild boar or other such ferocious or mad animal is standing on the path. *(aphorism 27)* Or birds like pigeon, crow etc are feeding on the path In such condition, to avoid harm to self and disturbing other beings, he should not take to that path He should turn back *(aphorism 31)*

(2) While going to seek alms he should avoid a path that has slime, ditch, stumps or which is uneven *(aphorism 28)*

(3) While going to seek alms he should see if there is a crowd of alms seekers at the householder's door If he finds that the householder is distributing alms, in order not to deprive those others, the ascetic should retreat to a solitary place where he is not visible to the householder He can go there when all the others have gone

—Chapter 1, aphorism 22, p. 51

वह भिक्षु या भिक्षुणी भिक्षा के लिए गृहस्थ के यहाँ प्रवेश करते समय यह जान ले कि नववधू के प्रवेश आदि के उपलक्ष्य में भोज हो रहा है, उन भोजों से भिक्षु आदि भोजन लेकर जा रहे हैं, मार्ग में बहुत-से प्राणी यावत् मकड़ी का जाला आदि भी नहीं है तथा वहाँ बहुत-से भिक्षु-ब्राह्मणादि भी नहीं आए हैं, न आएँगे और न आ रहे हैं, लोगों की भीड़ भी बहुत कम है। वहाँ (माँसादि दोष की संभावना भी नहीं है) तब प्रज्ञावान भिक्षु निर्गमन–प्रवेश कर सकता है तथा वहाँ उस साधु के वाचना-पृच्छना आदि धर्मानुयोग चिन्तन में कोई बाधा उपस्थित नहीं होगी, ऐसा जान लेने पर उस प्रकार की पूर्व-संखडि या पश्चात्-संखडि में जाने का विचार कर सकता है।

PERMISSIBLE FEAST

That *bhikshu* or *bhikshuni* while entering the house of a layman in order to seek alms should find if the feast is being organized on the occasion to welcome a bride (etc.); on the way there are not many beings including cob-webs; not many *Shramans* etc. have come, are coming and will be coming there; there is only a little crowd of beggars and other people; (and there is no chance of faults like cooking of meat etc.); there a wise ascetic may enter. Also, knowing that there will not be any disturbance in his scholarly activities of listening to a discourse, questioning, contemplating and giving discourse, he may think of going to said types of feasts with the intention of seeking alms.

विवेचन–प्रस्तुत सूत्र के पूर्वार्द्ध में संखडि में जाने का निषेध है तथा उत्तरार्ध में अपवाद स्थिति में जाने का विधान है। यह विचारणीय है।

इसमें आये 'मंसादि' शब्द पर विचार करके आचार्य श्री आत्माराम जी म. ने लिखा है–संखडि दो प्रकार की होती है–एक सामिष भोजन-प्रधान और दूसरी निरामिष भोजन-प्रधान। सामिष भोजन-प्रधान सखडि में जाने का सर्वथा निषेध है, किन्तु निरामिष भोजन-प्रधान संखडि में भी (१) मार्ग में हरितकाय आदि जीवों की विराधना, (२) अन्य भिक्षुओं आदि की भीड़, तथा (३) स्वाध्याय आदि मे विघ्न होता हो तो वैसी संखडि में नहीं जायें किन्तु उक्त दोषों की संभावना नहीं हो तो जा सकता है। इस पर विशेष स्पष्टीकरण करते हुए आचार्यश्री लिखते हैं कि उत्सर्ग मार्ग (–सामान्य परिस्थिति में) किसी भी प्रकार की संखडि में भिक्षा के लिए जाने का विधान नहीं है। उत्तराध्ययन (१/३२), बृहत्कल्प (उ. १), निशीथ (उ. ३) में संखडि में जाने का स्पष्ट निषेध है और उसका प्रायश्चित्त भी है किन्तु अपवाद मार्ग में जिस संखडि में उक्त दोषों की संभावना नहीं हो तो भिक्षु जा सकता है।

अपवाद के सम्बन्ध में वृत्तिकार ने बताया है-यदि साधु लम्बा विहार करता हुआ थक गया हो, बीमारी से तुरन्त उठा हुआ हो तथा तपस्या आदि से शरीर अत्यन्त क्षीण हो गया हो तथा अन्यत्र कहीं भोजन की उपलब्धि नहीं हो रही हो तो उस कठिन परिस्थिति में निर्दोष संखडि में भिक्षा ले सकता है। *(वृत्ति पत्र ३३४, आचार्य श्री आत्माराम जी म कृत हिन्दी टीका, पृ ८०८)*

मसादि शब्द की व्याख्या करते हुए चूर्णिकार कहते है-जिस संखडि मे मॉस पहले परोसा जाता हो तथा बाद मे चावल आदि परोसा जाता हो। वृत्तिकार ने मसादि का अर्थ किया है जिस सखडि मे मॉस ही प्रधान हो।

Elaboration—In the first part of this aphorism, going to a feast has been proscribed In the second part is the permission in exceptional case This calls for contemplation

Acharya Shri Atmaramji M , after due deliberation on words like *'mansadi'* has written—A feast is of two types—one is predominantly non-vegetarian and another is predominantly vegetarian Going to a non-vegetarian feast is totally proscribed Even in a vegetarian feast an ascetic should not go if (1) there are chances of causing harm to beings on the way, (2) the place is crowded with beggars and other people, and (3) it causes disturbance in studies (etc), he may go if it is on the contrary Elaborating further he writes that under normal conditions going to any type of feast is not allowed In *Uttaradhyayan* (1/32), *Brihatkalp* (Ch 1) and *Nisheeth* (Ch 3) there is clear censure of going to a feast and even the atonement is specified if one commits the mistake However, in exceptional circumstances an ascetic may go to a feast which is free of said faults

Regarding exceptional circumstances the commentator *(Vritti)* says—if the ascetic feels very tired after a long walk, has just recovered from some ailment, is very weak due to observing some austerity and there is no other place where he can get food, in such difficult situation an ascetic may accept food from a feast that is free of said faults. *(Vritti leaf 334, Hindi Tika by Acharya Shri Atmaramji M , p 808)*

The commentator *(Churni)* has interpreted *'mansadi'* as a feast where the first serving is of meat and rice is served later. The commentator *(Vritti),* however, interprets it as a mainly non-vegetarian feast

विशेष शब्दों के अर्थ–'मंसखलं वा मच्छखलं वा'–संखडि के निमित्त माँस या मत्स्य काट-काटकर सुखाया जाता हो, उसका ढेर माँसखल तथा मत्स्यखल कहलाता है। **आहेणं**–विवाह के बाद नववधू-प्रवेश के उपलक्ष्य में दिया जाने वाला भोज। **पहेणं**–पितृगृह में वधू के पुनः आगमन पर दिया जाने वाला भोज। **हिंगोलं**–मृतक भोज। **संमेलं**–परिजनों के सम्मान में दिया जाने वाला प्रीतिभोज (दावत) या गोठ।

Technical Terms : *Mansakhalam va machhakhalam va*—skinned and chopped meat or fish meant for a feast and placed in heaps for drying. *Ahenam*—feast organized on the occasion to welcome newly wedded bride after her marriage. *Pahenam*—feast on the occasion of a bride returning to her parents house. *Hingolam*—feast in connection with honouring a deceased *Sammelam*—feast in honour of relatives.

गो-दोहन वेला में भिक्षा के लिए जाने का निषेध

२३. से भिक्खू वा २ जाव पविसिउकामे से जं पुण जाणिज्जा, खीरिणीयाओ गावीओ खीरिज्जमाणीओ पेहाए असणं वा ४ उवक्खडिज्जमाणं पेहाए, पुरा अप्पजूहिए। सेवं णच्चा णो गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए णिक्खमेज्ज वा पविसेज्ज वा।

से त्तमायाए एगंतमवक्कमेज्जा, एगंतमवक्कमित्ता अणावायमसंलोए चिट्ठिज्जा। अह पुण एवं जाणिज्जा, खीरिणीयाओ गावीओ खीरियाओ पेहाए, असणं वा ४ उवक्खडियं पेहाए, पुरा पंजूहिए। सेवं णच्चा तओ संजयामेव गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए णिक्खमिज्ज वा पविसिज्ज वा।

२३. भिक्षु या भिक्षुणी गृहस्थ के घर में भिक्षा के लिए जाना चाहते हों; (यदि उस समय) यह जान ले कि अभी दुधारू गायों को दुहा जा रहा है तथा घर में अशनादि आहार अभी तैयार किया जा रहा है या हो रहा है, अभी तक उसमें से किसी दूसरे को दिया नहीं गया है। ऐसा जान ले तो आहार ग्रहण करने के लिए न तो उपाश्रय से निकले और न ही उस गृहस्थ के घर में प्रवेश करे।

किन्तु (गृहस्थ के घर में चले जाने पर यदि पता चले कि अभी गो-दोहन आदि हो रहा है तो) वह भिक्षु उसे जानकर एकान्त में चला जाए और जहाँ कोई आता-जाता न हो और न देखता हो, वहाँ ठहर जाए। जब वह यह जान ले कि गायें दुही जा चुकी हैं और अशनादि चतुर्विध आहार भी अब तैयार हो गया है तथा उसमें से दूसरों को दे दिया गया है, तब वह संयमी साधु आहार-प्राप्ति की दृष्टि से वहाँ से निकले या उस गृहस्थ के घर में प्रवेश करे।

CENSURE DURING THE HOUR OF MILKING COWS

23. A *bhikshu* or *bhikshuni* intending to go to the house of a layman in order to seek alms, comes to know (at the time of entering) that cows are being milked and food is still being cooked, nothing has been served out of it to someone else, then he should neither set out from the *upashraya* nor enter the house of that layman.

But (if he comes to know of this only when he reaches the house of the layman) he should, after knowing, go to a solitary place where no one visits or sees and wait there. When he comes to know that the cows have been milked, the food has been cooked and others have been served out of it, then that disciplined ascetic may come out of that place and enter the house of the laymen to seek alms.

विवेचन–इस सूत्र में गृहस्थ के घर में आहारार्थ प्रवेश के लिए निषेध के तीन कारण बताये हैं–

(१) गृहस्थ के यहाँ गायें दुही जा रही हों,

(२) आहार तैयार न हुआ हो, तथा

(३) किसी दूसरे को उसमें से न दिया गया हो।

इस निषेध का रहस्य वृत्तिकार ने इस प्रकार बताया है–गायें दुहते समय यदि साधु गृहस्थ के घर जायेगा तो उसे देखकर गायें भड़क सकती हैं, कोई भद्र श्रद्धालु साधु को देखकर बछड़े को स्तन-पान करता छुड़ाकर साधु को शीघ्र दूध देने की दृष्टि से जल्दी-जल्दी गायों को दुहने लगेगा, गायों को भी त्रास देगा, बछड़ों के भी दूध पीने में अन्तराय आयेगी। अधपके आहार को अधिक ईंधन झोंककर जल्दी पकाने का प्रयत्न करेगा, भोजन तैयार न देखकर साधु के वापस लौट जाने से गृहस्थ के मन में दुःख होगा, वह साधु के लिए अलग से जल्दी-जल्दी भोजन तैयार कराएगा तथा दूसरों को न देकर अधिकांश भोजन साधु को दे देगा तो दूसरे याचकों या परिवार के अन्य सदस्यों को अन्तराय पड़ेगा। इन दोषों की संभावना से उक्त निषेध किया गया है। *(वृत्ति पत्रांक ३३५)*

Elaboration—In this aphorism three reasons for not going into the house of layman to seek alms have been enumerated—

(1) cows are being milked there,

(2) food is not ready, and

(3) none else has been served out of it.

According to the commentator (*Vritti*) the reason is—If an ascetic reaches the house when cows are being milked, the cows may get startled and enraged. Some devotee could withdraw a suckling calf and milk the cows in a hurry to serve the ascetic. This would cause pain to cows and also deprive the calf. If the food is half cooked the devotee would add more fuel and try to cook it fast. When he sees the ascetic turning back he will feel dejected. He will cook a smaller quantity of food separately for the ascetic and give a larger portion to the ascetic depriving other seekers or guests. This censure has been made keeping these faults in mind. *(Vritti leaf 335)*

अतिथि-श्रमण आने पर भिक्षा की विधि

२४. भिक्खागा नामेगं एवमाहंसु–समाणा वा वसमाणा वा गामाणुगामं दूइज्जमाणे खुड्डाए खलु अयं गामे, संणिरुद्धाए, णो महालए, से हंता भयंतारो बाहिरगाणि गामाणि भिक्खायरियाए वयह।

संति तत्थेगइयस्स भिक्खुस्स पुरेसंथुया वा पच्छासंथुया वा परिवा संति, तं जहा–गाहावइ वा गाहावइणीओ वा गाहावइधूयाओ वा गाहावइसुण्हाओ वा धाइओ वा दासा वा दासीओ वा कम्मकरा वा कम्मकरीओ वा। तहप्पगाराइं कुलाइं पुरेसंथुयाणि वा पच्छासंथुयाणि वा पुव्वामेव भिक्खायरियाए अणुपविसिस्सामि, अविय इत्थ लभिस्सामि पिंडं वा लोयं वा खीरं वा दहिं वा नवणीयं वा घयं वा गुलं वा तेल्लं वा महुं वा मज्जं वा मंसं वा संकुलिं फाणियं वा पूयं वा सिहिरिणिं वा, तं पुव्वामेव भोच्चा पिच्चा पडिग्गहं च संलिहिय संमज्जिय तओ पच्छा भिक्खूहिं सद्धिं गाहावइकुलं पिंडवाय-पडियाए पविसिस्सामि वा णिक्खमिस्सामि वा। माइट्ठाणं संफासे। णो एवं करेज्जा।

से तत्थ भिक्खूहिं सद्धिं कालेण अणुपविसित्ता तत्थियरेयरेहिं कुलेहिं सामुदाणियं एसियं वेसियं पिंडवायं पडिगाहेत्ता आहारं आहारेज्जा।

एयं खलु तस्स भिक्खुस्स वा भिक्खुणीए वा सामग्गियं।

॥ चउत्थो उद्देसओ सम्मत्तो ॥

२४. एक ही क्षेत्र में स्थिरवास करने वाले भिक्षु के पास जब कोई मासकल्प विहार करने वाले भिक्षु अतिथि रूप से आ जाते हैं तो वे उन ग्रामानुग्राम विचरण करने वाले साधुओ से कहते है–पूज्यवरो ! यह गॉव बहुत छोटा है, बहुत बडा नहीं है, उसमें भी कुछ घर (सूतक आदि के कारण) रुके हुए है। इसलिए आप भिक्षाचरी के लिए बाहर (दूसरे) गाँवों में पधारें।

यदि इस गॉव मे स्थिरवासी मुनियों मे से किसी मुनि के पूर्व-परिचित (माता-पिता आदि कुटुम्बीजन) अथवा पश्चात्-परिचित (श्वसुर-कुल के लोग) रहते हैं, जैसे कि–गृहपति, गृहपत्नियाँ, गृहपति के पुत्र एवं पुत्रियॉ, पुत्रवधुएँ, धायमाताएँ, दास-दासी, नौकर-नौकरानियॉ; वह साधु यह सोचे कि जो मेरे पूर्व-परिचित और पश्चात्-परिचित घर है, वैसे घरो मे आगतुक अतिथि साधुओ द्वारा भिक्षाचरी करने से पहले ही मैं भिक्षा के लिए जाऊँगा और इन कुलों से इष्ट वस्तु प्राप्त कर लूँगा जैसे कि–"शाली के ओदन आदि, स्वादिष्ट आहार, दूध, दही, नवनीत, घृत, गुड, तेल, मधु, मद्य या माँस अथवा जलेबी, गुडराब, मालपुए, शिखरिणी (श्रीखंड) नामक मिठाई आदि। उस आहार को मै पहले ही खा-पीकर पात्रों को धो-पोछकर साफ कर लूँगा। इसके पश्चात् आगन्तुक भिक्षुओ के साथ आहार-प्राप्ति के लिए गृहस्थ के घर में प्रवेश करूँगा और वहॉ से निकलूँगा।" (इस प्रकार का व्यवहार करने वाला साधु) माया-कपट का स्पर्श (सेवन) करता है। साधु को ऐसा नही करना चाहिए।

उस (स्थिरवासी) साधु को भिक्षा के समय उन भिक्षुओं के साथ ही उसी गाँव मे विभिन्न उच्च, नीच और मध्यम कुलों से सामुदानिक भिक्षा से प्राप्त एषणीय, वेश से उपलब्ध निर्दोष आहार को लेकर उन अतिथि साधुओं के साथ ही आहार करना चाहिए।

यही संयमी साधु-साध्वी के ज्ञानादि आचार की समग्रता है।

ALMS-CODE WHEN OTHER ASCETICS VISIT

24. When itinerant ascetics come as guests to an ascetic staying at one place, he tells them—Revered ones, this is not a large but a very small village. Besides this, many houses cannot be visited (being inauspicious temporarily). Therefore you should go out of this village to some other villages to seek alms.

If in that village some past or present acquaintances (parents or relatives or others like in-laws), such as a householder, his wife, his sons and daughters, his daughters-in-law, governess,

slaves and servants live; and that ascetic thinks that before the visiting ascetics go to seek alms, I will first go to the said families and collect the desired things, eat all that food, and wash and wipe the bowls clean and then only will I accompany the visiting ascetics to enter and come out of the house of the laymen to seek alms. The desired things being—rice soup, rich food, milk, curd, fresh-butter, butter, jaggery, oil, honey, alcohol or meat, or sweets like *jalebi, gudraab, maalpuwa, shikharini* etc. (An ascetic who behaves thus) embraces or indulges in deceit. An ascetic should not do so

At the time of alms-collection that (non-itinerant) ascetic should accompany the other ascetics (visiting), collect appropriate and acceptable alms offered due to his appearance and eat it with those guest ascetics.

This is the totality (of conduct including that related to knowledge) for that *bhikshu* or *bhikshuni.*

विवेचन—अतिथि साधुओं के साथ जो साधु स्वाद-लोलुपतावश माया करता है, वह साधु स्व-पर-वचना तो करता ही है, आत्म-विराधना और भगवदाज्ञा का उल्लघन भी करता है। आचारागचूर्णि और निशीथचूर्णि मे इसका विशेष स्पष्टीकरण किया गया है।

Elaboration—An ascetic who deceives guest ascetics under the influence of his taste-buds deceives himself and others, at the same time he also commits spiritual indiscipline and violates the word of the omniscient This has been elaborated in more details in the commentaries *(Churni)* on *Acharanga* and *Nisheeth.*

विशेष शब्दों का अर्थ—भिक्खागा–भिक्षा ग्रहण करने वाले। समाणा–वृद्ध साधु जो स्थिरवास करते हैं। वसमाणा–नव कल्प विहार करने वाले। यहाँ 'मद्य' शब्द कई प्रकार के स्वादिष्ट पेय तथा 'माँस' शब्द बहुत गूदे वाली अनेक वनस्पतियों का सामूहिक वाचक हो सकता है, जोकि गृहस्थ के भोज्य-पदार्थों में सामान्यतया सम्मिलित रहती है। टीकाकार ने 'मद्य' और 'माँस' शब्दों की व्याख्या छेदशास्त्रानुसार करने की सूचना की है। साथ ही कहा है–अथवा कोई अतिशय प्रमादी साधु अतिलोलुपता के कारण माँस, मद्य भी स्वीकार कर ले। इसलिए यहाँ उनका निषेध किया है। 'मद्य', 'माँस' शब्द पर उद्देशक १० में विस्तार से विचार किया गया है।

॥ चतुर्थ उद्देशक समाप्त ॥

Technical Terms : *Bhikkhaga*—one who receives alms. *Samana*—aged ascetics who are non-itinerant. *Vasmana*—those who observe itinerant way according to specific codes. Here *'madya'* may have been used for numerous tasty drinks; and *'mansa'* for vegetables with excessive pulp, these things are included in the 'normal' eatables of a layman The commentator *(Tika)* advises to interpret these two words on the basis of definitions given in *Chhed-shastra* (a specific category of commentaries) It is also mentioned there that due to excessive desire for rich food, some ascetic with a high degree of stupor may even accept meat and intoxicating drinks. That is the reason for this censure. The terms *'madya'* and *'mansa'* have been discussed in details in lesson 10

|| END OF LESSON FOUR ||

पंचमो उद्देसओ	पंचम उद्देशक	LESSON FIVE

अग्रपिण्ड-ग्रहण-निषेध

२५. से भिक्खू वा २ जाव पविट्ठे समाणे से जं पुण जाणेज्जा, अग्गपिंडं उक्खिप्पमाणं पेहाए, अग्गपिंडं णिक्खिप्पमाणं पेहाए, अग्गपिंडं हीरमाणं पेहाए, अग्गपिंडं परिभाइज्जमाणं पेहाए, अग्गपिंडं परिभुंजमाणं पेहाए, अग्गपिंडं परिट्ठविज्जमाणं पेहाए, पुरा असिणाइ वा अवहाराइ वा, पुरा जत्थऽण्णे समण-माहण-अतिहि-किवण-वणीमगा खद्धं खद्धं उवसंकमंति, से हंता अहमवि खद्धं खद्धं उवसंकमामि। माइट्ठाणं संफासे। णो एवं करेज्जा।

२५. वह भिक्षु या भिक्षुणी भिक्षा के निमित्त गृहस्थ के घर में पहुँचने पर अग्रपिण्ड को निकालते हुए देखता है, अग्रपिण्ड को रखते हुए देखकर अग्रपिण्ड को कहीं ले जाते हुए देखकर, बाँटते हुए देखकर अग्रपिण्ड को खाते हुए देखकर, इधर-उधर फेंकते हुए देखकर तथा पहले अन्य श्रमण-ब्राह्मणादि (इस अग्रपिण्ड का) भोजन कर गए हैं एवं कुछ भिक्षाचर पहले इसे लेकर चले गए हैं अथवा पहले (हम लेंगे, इस विचार से) यहाँ दूसरे श्रमण, ब्राह्मण, अतिथि, दरिद्र, याचक आदि (अग्रपिण्ड लेने) जल्दी-जल्दी आ रहे हैं, (उन्हें देखकर) कोई साधु विचार करे कि मै भी (इन्हीं की तरह) जल्दी-जल्दी पहुँचूँ, तो (ऐसा करने वाला साधु) माया-स्थान का सेवन करता है। वह ऐसा न करे।

CENSURE OF ACCEPTING AGRAPIND

25. When a *bhikshu* or *bhikshuni* while entering the house of a layman in order to seek alms finds that *agrapind* is being taken out, placed, taken away, distributed, eaten or thrown away; or other *Shramans,* Brahmins (etc.) have already eaten from it or have taken away from it; or other *Shramans,* Brahmins (etc.) are rushing in with the intention to seek first; and thinks that I too should rush (like them). Then (the ascetic doing so) embraces (indulges in) deceit. He should not do so.

विवेचन—अग्गपिंड—जो भोजन तैयार होने के बाद किसी अन्य को न देकर, पहले उसमें से थोड़ा-थोडा अंश देवता आदि के लिए निकाला जाता है उसे अग्रपिण्ड कहते हैं। इससे यह पता चलता है कि प्राचीन काल में भोजन में से सर्वप्रथम देव आदि के निमित्त जो प्रसाद या भोग

निकाला जाता था उसे देवस्थान पर ले जाकर प्रसाद रूप में बाँटा जाता था। उसी अग्रपिण्ड की यहाँ देवादि के निमित्त से होने वाली छह प्रक्रियाएँ बताई गयी हैं–

(१) देवता के लिए अग्रपिण्ड का निकालना, (२) अन्यत्र खाना, (३) देवालय आदि मे ले जाना, (४) उसमे से प्रसाद बाँटना, (५) उस प्रसाद को खाना, (६) देवालय के चारों दिशाओं मे फेंकना।

इन प्रक्रियाओं के बाद वह अग्रपिण्ड भिक्षाचरों को दिया जाता है।

Elaboration—*Aggapınd (Agrapınd)*—the small portıons of the food that are taken out ımmedıately on cookıng and kept separate as offerıng for deities, the first portıon This ındıcates that ın ancıent tımes the first portıon of food allotted to deıtıes (*prasad* or *bhog*) was carried to the temple and dıstrıbuted Sıx rıtuals ınvolved before dıstrıbutıon of thıs first portion apportıoned to deıtıes are mentıoned here—

(1) To take out first portıon for deıtıes, (2) to eat from ıt at some other place, (3) to carry ıt to a temple or other such place, (4) to distribute prasad out of ıt, (5) to eat that prasad, (6) to toss ıt ın all directıons around the temple

After all these rıtuals are conducted the remaınıng quantıty ıs distributed among alms-seekers or beggars

विशेष शब्दों के अर्थ–हीरमाण–एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाते हुए। असिणाइं–पहले, दूसरे श्रमणादि उस अग्रपिण्ड का सेवन कर चुके है। अवहाराइ–कुछ पहले व्यवस्था या अव्यवस्थापूर्वक जैसे-तैसे उसे ले चुके है। *(वृत्ति पत्र ३३६)*

Technical Terms : *Heeramanam*—whıle carryıng from one place to another *Asınaım*—other *Shramans* (etc) have eaten from that first portıon earlıer. *Avaharaım*—others have earlıer taken from ıt ın organized or dısorganızed manner *(Vrıttı leaf 336)*

विषम मार्गादि से भिक्षा के लिए जाने का निषेध

२६. से भिक्खू वा २ जाव समाणे अंतरा से वप्पाणि वा फलिहाणि वा पागाराणि वा तोरणाणि वा अग्गलाणि वा अग्गलपासगाणि वा, सइ परक्कमे संजयामेव परक्कमिज्जा, णो उज्जुयं गच्छेज्जा। केवली बूया–आयाणमेयं।

से तत्थ परक्कममाणे पयलेज्ज वा पवडेज्ज वा, से तत्थ पयलमाणे वा पवडमाणे वा तत्थ से काए उच्चारेण वा पासवणेण वा खेलेण वा सिंघाणएण वा वंतेण वा पित्तेण वा पूएण वा सुक्केण वा सोणिएण वा उवलित्ते सिया। तहप्पगारं कायं णो अणंतरहियाए पुढवीए, णो ससणिद्धाए पुढवीए, णो ससरक्खाए पुढवीए, णो चित्तमंताए सिलाए, णो चित्तमंताए लेलूए, कोलावासंसि वा दारुए जीवपइट्ठिए सअंडे सपाणे जाव संताणए णो आमज्जेज्ज वा, पमज्जेज्ज वा, संलिहेज्ज वा णिल्लिहेज्ज वा उव्वलेज्ज वा उव्वट्टेज्ज वा आयावेज्ज वा पयावेज्ज वा।

से पुव्वामेव अप्पससरक्खं तणं वा पत्तं वा कट्ठं वा सक्करं वा जाएज्जा, जाइत्ता से त्तमायाए एगंतमवक्कमेज्जा २ अहे झामथंडिल्लंसि वा जाव अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि पडिलेहिय २ पमज्जिय २ तओ संजयामेव आमज्जेज्ज वा जाव पयावेज्ज वा।

२६. वह भिक्षु या भिक्षुणी गृहस्थ के घर में आहारार्थ जावे, तब रास्ते के वीच में ऊँचे-नीचे भू-भाग या बीज बोने की खेत की क्यारियाँ हों या खाइयॉ हों अथवा बॉस की टाटी हो या परकोटा हो, वाहर के द्वार (बंद) हो, आगल हों, अर्गला-पाशक हो तो दूसरा मार्ग होने पर सयमी साधु उसी दूसरे मार्ग से जाए, उस सरल मार्ग से न जाए, क्योंकि केवली भगवान कहते हैं–यह कर्मबध का कारण है।

उस विषम मार्ग से जाते हुए भिक्षु का पैर फिसल जायेगा या (शरीर) डिग जायेगा अथवा गिर जायेगा। फिसलने, डिगने या गिरने पर उस भिक्षु का शरीर मल, मूत्र, कफ, श्लेष्म, वमन, पित्त, मवाद, शुक्र (वीर्य) और रक्त से लिपट सकता है। अगर कभी ऐसा हो जाए तो वह भिक्षु मल-मूत्रादि से उपलिप्त शरीर को सचित्त पृथ्वी–स्निग्ध पृथ्वी से, सचित्त चिकनी मिट्टी से, सचित्त शिलाओं से, सचित्त पत्थर या ठेले से या घुन लगे हुए काष्ठ से, जीवयुक्त काष्ठ से एव अण्डे या प्राणियों के जालों आदि से युक्त काष्ठ आदि से अपने शरीर को न एक बार साफ करे और न बार-बार घिसकर साफ करे। न एक बार रगड़े या घिसे और न बार-बार घिसे, उबटन आदि की तरह मले नही, न ही उबटन की भॉति लगाए। एक बार या अनेक बार धूप में सुखाए नहीं।

वह भिक्षु पहले सचित्त-रज आदि से रहित तृण, पत्ता, काष्ठ, कंकर आदि की याचना करे। याचना से प्राप्त करके एकान्त स्थान में जाए। वहॉ अग्नि आदि के संयोग से जलकर जो भूमि अचित्त हो गयी है उस भूमि का या अन्यत्र उसी प्रकार की प्रासुक भूमि की प्रतिलेखना तथा प्रमार्जना करके यत्नापूर्वक संयमी साधु स्वयमेव अपने शरीर को पोंछे, मले, घिसे यावत् धूप में एक बार व बार-बार सुखाए और शुद्ध करे।

(विशेष–निशीथ सूत्र, उद्देशक ४ के अनुसार साधु अशुचि को दूर करने के लिए उचित पानी का उपयोग कर सकता है।–आचार्य श्री आत्माराम जी म., पृ. ८२५)

CENSURE OF GOING THROUGH A DIFFICULT PATH

26. A *bhikshu* or *bhikshuni* while going to the house of a layman in order to seek alms should find if there are humps and depressions, tilled rows of a farm, ditches, bamboo partitions, parapet walls, closed outer gates, bolts, bolt-holes and other such obstructions on the path. If it is so, a disciplined ascetic should take to another available path and avoid that straight or shortest path. The omniscient has said that that is cause of bondage of *karmas.*

Going on that difficult path the ascetic will slip or stumble or fall down. On slipping or stumbling or falling his body may be smeared with faeces, urine, phlegm, mucus, vomit, bile, pus, semen and blood. If it so happens by chance, that ascetic should not wipe his smeared body clean once or repeatedly with *sachit* (contaminated with living organism) or damp sand, *sachit* clay, *sachit* rocks or stones or lumps, worm infested wood, wood having eggs of insects or cob-webs. He should neither once nor repeatedly wipe and mop or rub and apply like a paste. He should also not dry it in the sun once or repeatedly.

That ascetic should first beg for a straw, leaf, peace of wood, pebble or other such thing that is free of *sachit* dust. After getting it, he should retreat to a solitary place, look for a spot that has coincidentally been turned *achit* (uncontaminated with living organism) by fire or otherwise or any other such uncontaminated spot, properly inspect and clean it; and then wipe, mop, rub and dry his body clean.

(According to aphorism 3, Chapter 4 or Nisheeth Sutra an ascetic can use achit water to clean himself.—Hindi Tika by ***Acharya Shri Atmaramji M.****, p 825)*

उन्मत्त पशुयुक्त मार्ग से जाने का निषेध

२७. से भिक्खू वा २ जाव पविट्ठे समाणे से जं पुण जाणेज्जा–गोणं वियालं पडिपहे पेहाए, महिसं वियालं पडिपहे पेहाए, एवं मणुस्सं आसं हत्थिं सीहं वग्घं विगं दीवियं अच्छं तरच्छं परिसरं सियालं विरालं सुणयं कोलसुणयं कोकंतियं चित्ताचेल्लडयं वियालं पडिपहे पेहाए सइ परक्कमे संजयामेव परक्कमेज्जा, णो उज्जुयं गच्छेज्जा।

२७. वह साधु या साध्वी जिस मार्ग से भिक्षा के लिए जा रहे हों, यदि वे यह जाने कि मार्ग में सामने मदोन्मत्त सांड है या मतवाला भैंसा खड़ा है, इसी प्रकार दुष्ट मनुष्य, उन्मत्त घोडा, हाथी, सिंह, बाघ, भेड़िया, चीता, रीछ, जरख़, अष्टापद, सियार, बिल्ला (वनबिलाव), कुत्ता, महाशूकर–(जंगली सूअर), लोमड़ा, चित्ता, चिल्लडक नामक एक जंगली जीव विशेष और साँप आदि मार्ग में खड़े या बैठे हैं, ऐसी स्थिति में दूसरा मार्ग हो तो उस मार्ग से जाए, किन्तु उस सीधे (जीव-जन्तुओ वाले) मार्ग से न जाए।

CENSURE OF GOING FROM A PATH HAVING ANIMALS

27. A *bhikshu* or *bhikshuni* while going to seek alms should find if a mad bull stands on the path he is heading on, or a wicked person, mad horse, elephant, lion, tiger, wolf, cheetah, bear, hyena, *sarabh* (a mythical animal supposed to have eight legs and inhabit snowy mountains), jackal, wild-cat, dog, wild boar, fox, *chitta, chilladak* (a wild animal; possibly leopard), snake or other such animal is sitting or standing on the path. In such condition he should avoid that path, even if it is straight and take to another path if any.

दलदलयुक्त मार्ग से जाने का निषेध

२८. से भिक्खू वा २ जाव समाणे अंतरा से ओवाए वा खाणुं वा कंटए वा घसी वा भिलुगा वा विसमे वा विज्जले वा परियावज्जेज्जा। सइ परक्कमे संजयामेव (परक्कमेज्जा) णो उज्जुयं गच्छेज्जा।

२८. साधु-साध्वी भिक्षा के लिए जा रहे हों, बीच मार्ग में यदि गड्ढा हो, खूँटा हो या ठूँठ पड़ा हो, काँटे हों, उतराई की भूमि हो, फटी हुई काली जमीन हो, ऊँची-नीची भूमि हो या कीचड़ अथवा दलदल पड़ता हो, (ऐसी स्थिति में) दूसरा मार्ग हो तो संयमी साधु उसी मार्ग से जाए, किन्तु जो (गड्ढे आदि वाला विषम, किन्तु) सीधा मार्ग है, उससे न जाए।

CENSURE OF GOING ON A MARSHY PATH

28. A *bhikshu* or *bhikshuni* while going to seek alms should find if there is a ditch, pillar or stump, thorns, depression, pitted patch of land, uneven land, muddy or marshy area on the way. (In such condition) He should avoid that path, even if it is straight and take to another path if any

बन्द द्वार वाले गृह मे प्रवेश-निषेध

२९. से भिक्खू वा २ गाहावइकुलस्स दुवारबाहं कंटगबोंदियाए पडिपिहितं पेहाए तेसिं पुव्वामेव उग्गहं अणणुण्णविय अपडिलेहिय अप्पमज्जिय णो अवंगुणेज्ज वा पविसेज्ज वा णिक्खमेज्ज वा। तेसिं पुव्वामेव उग्गहं अणुण्णविय पडिलेहिय पमज्जिय तओ संजयामेव अवंगुणेज्ज वा पविसेज्ज वा णिक्खमेज्ज वा।

२९. साधु या साध्वी गृहस्थ के घर मे भिक्षा के लिए जाते समय द्वार को कॉटो की शाखा से ढँका हुआ देखकर गृहस्वामी से पहले अवग्रह (आज्ञा) मॉगे बिना, उसे अच्छी तरह देखे बिना और रजोहरणादि से प्रमार्जित किए विना न खोले, न प्रवेश करे और न उसमे से (होकर) निकले, किन्तु जिनका घर है, उनसे पहले अवग्रह (अनुमति) मॉगकर अपनी ऑखो से देखकर और रजोहरणादि से प्रमार्जित करके उसे खोले, उसमे प्रवेश करे और उसमें से निकले।

CENSURE OF ENTERING CLOSED DOORS

29. A *bhikshu* or *bhikshuni* while entering the house of a layman in order to seek alms should find if the gate is covered with a thorny branch of tree If so, he should neither open, enter or pass through that door without first seeking permission from the owner of the house and properly inspecting and cleaning it with his ascetic-broom. He should open, enter or pass through that door only after seeking permission from the owner of the house and properly inspecting and cleaning it with his ascetic-broom

विवेचन—सूत्र २६ से २९ तक में भिक्षा के लिए जाते समय मे मार्ग में जो विघ्न/बाधाएँ आती हैं उनका संकेत है–(१) ऊँचा भू-भाग, खेती की भूमि, खाई, कोट, बाहर के द्वार, आगल, अर्गलापाशक आदि रास्ते मे पडते हों, (२) मतवाला साड, भैसा, दुष्ट मनुष्य, बिगडेल घोडा,

हाथी आदि उन्मत्त व खतरनाक प्राणी मार्ग में बैठे या खडे हों, (३) मार्ग के बीच में गड्ढा, ठूँट, काँटे, उतार वाली भूमि, फटी हुई जमीन, ऊबड-खाबड जमीन, कीचड या दलदल पड़ता हो, तथा (४) गृहस्थ के घर का द्वार काँटो की बाड़ आदि से अवरुद्ध हो तो उस मार्ग या उस घर को छोड़ दे, दूसरा मार्ग साफ और ऐसे खतरों से रहित हो तो उस मार्ग से जाए; इन मार्गों से जाने पर सयम की विराधना होती है, शरीर को भी हानि पहुँचती है तथा गृहस्थ को अप्रीति (द्वेष), अप्रतीति (अविश्वास) आदि भी उत्पन्न हो सकता है।

यहाँ एक अपवाद भी बताया है–'सइ अन्नेण मग्गेण, जयमेव परक्कमे' यदि अन्य मार्ग न हो तो इन विषम मार्गो से सावधानी व यतनापूर्वक जा सकता है जिससे आत्म-विराधना और संयम-विराधना न हो। 'जति अण्णो मग्गो नत्थि ता तेण वि य पहेण गच्छेज्जा जहा आयसजम विराहणा ण भवइ।' *(जिनदास चूर्णि दशवै ५/१)*

Elaboration—Aphorisms 26 to 29 point at the obstacles faced on the way while going to seek alms—(1) humps and depressions, tilled rows of a farm, ditches, bamboo partitions, parapet walls, closed outer gates, bolts, bolt-holes and other such obstructions on the path; (2) a mad bull, a wicked person, mad horse, elephant, stands or sits on the path he is heading on, (3) there is a ditch, pillar or stump, thorns, depression, pitted patch of land, uneven land, muddy or marshy area on the way, and (4) the gate is covered with a thorny branch of tree. In such conditions he should avoid the path or the house and take another path which is clear and free of such dangers. Going on the said paths is detrimental to ascetic-discipline, harmful to the body and may invoke aversion and disbelief in the mind of the layman

Here an exception is also mentioned—if there is no alternative path he may tread such path taking all possible care so as to avoid indiscipline and harm to himself.

विशेष शब्दों के अर्थ–वप्पाणि–वप्र–ऊँचा भू-भाग, ऐसा रास्ता जिसमें चढ़ाव ही चढाव हो; अथवा ग्राम के निकटवर्ती खेतों की क्यारी भी वप्र कहलाती है। फलिहाणि–परिखा–खाइयाँ, प्राकार। तोरणाणि–नगर का बहिर्द्वार–(फाटक) या घर के बाहर का द्वार। अणंतरहियाए–जिसमें चेतना अन्तर्निहित हो–लुप्त न हो अर्थात् जो सचेतन हो वह पृथ्वी। कोलावासंसि वा दारुए–कोल–घुण। गोणं वियालं–दुष्ट–मतवाला सांड। विगं–वृक–भेड़िया। दीविय–चीता। अच्छं–रीछ–भालू। तरच्छं–जरख। परिसरं–अष्टापद। कोलसुणयं–महाशूकर। कोकंतियं–लोमड़ा। भिडुगा–फटी हुई काली जमीन। विज्जले–कीचड, दलदल। दुवारबाहं–द्वार भाग। कंटग-बोदियाए–काँटे की झाडी

से। पडिपिहित–अवरुद्ध या ढका हुआ या स्थगित। उग्गहं–अवग्रह–अनुमति–आज्ञा। अवंगुणेज्ज–खोले, उद्घाटन करे। *(वृत्ति पत्र ३३८)*

Technical Terms : *Vappanı (vapra)*—hump or raısed land; a clımbıng path, tılled rows ın a farm near a village *Falıhanı (parıkha)*—dıtches or moat *Toranani*—the outer gate of a city or a house. *Anantarhıyae*—that sand on whıch lıfe-force ıs not absent; lıve sand or sand infested wıth lıvıng organısms. *Kolavasamsı va daruye*—wood worm. *Gonam vıyalam*—mad bull *Vıgam (vrık)*—wolf *Deevıyam (dvıpın)*—cheetah. *Accham*—bear *Taraccham (taraksh)*—hyena *Parısaram (sarabh)*—a mythical anımal supposed to have eıght legs and ınhabıt snowy mountains. *Kolasuyanam (mahashukaram)*—wıld boar *Kokantıyam (Kokantıkam)*—fox *Bhıhuga*—pıtted black land. *Vıjjale*—mud or marsh *Duwarbaham*—gate or entry *Kantag-bodıyaye*—wıth thorny bush *Padıpıhıtam*—blocked or covered or barred *Uggaham*—permissıon *Avangunejja*—open, reveal *(Vrıttı leaf 338)*

पूर्व-प्रविष्ट श्रमण-माहनादि की उपस्थिति मे भिक्षा विधि

३०. (क) से भिक्खू वा २ जाव समाणे से जं पुण जाणेज्जा, समणं वा माहणं वा गामपिंडोलगं वा अतिहिं वा पुव्वपविट्ठं पेहाए णो तेसिं संलोए सपडिदुवारे चिट्ठेज्जा। से त्तमायाए एगंतमवक्कमेज्जा, २ (त्ता) अणावायमसंलोए चिट्ठेज्जा। से से परो अणावायमसंलोए चिट्ठमाणस्स असण वा ४ आहट्टु दलएज्जा, से सेवं वइज्जा–आउसंतो समणा ! इमे भे असणे वा ४ सव्वजणाए णिसट्ठे, तं भुंजह वा ण परिभाएह वा णं।

(ख) तं चेगइओ पडिगाहेत्ता तुसिणीओ उवेहिज्जा-अवियाइं एयं ममामेव सिया। माइट्ठाणे संफासे। णो एवं करेज्जा।

(ग) से त्तमायाए तत्थ गच्छेज्जा, २ (त्ता) से पुव्वामेव आलोएज्जा–आउसंतो समणा ! इमे भे असणे वा ४ सव्वजणाए णिसट्ठे। तं भुंजह वा णं परियाभाएह वा णं। सेणमेवं वदंतं परो वइज्जा-आउसंतो समणा ! तुमं चेव णं परिभाएहि। से तत्थ परिभाएमाणे णो अप्पणो खद्धं २ डायं २ उसढं २ रसियं २ मणुण्णं २ णिद्धं २ लुक्खं २। से तत्थ अमुच्छिए अगिद्धे अगढिए अणज्झोववण्णे वहुसममेव परिभाएज्जा।

(घ) से णं परिभाएमाणं परो वइज्जा–आउसंतो समणा ! मा णं तुमं परिभाएहि, सव्वे वेगइया भोक्खामो वा पाहामो वा। से तत्थ भुंजमाणे णो अप्पणा खद्धं खद्धं जाव लुक्खं। से तत्थ अमुच्छिए ४ बहुसममेव भुंजेज्ज वा पाएज्ज वा।

(ङ) से भिक्खू वा २ जाव समाणे से जं पुण जाणेज्जा, समणं वा माहणं वा गामपिंडोलगं वा अतिहिं वा पुव्वपविट्ठं पेहाए णो ते उवाइक्कम्म पविसेज्ज वा ओभासिज्ज वा। से त्तमायाए एगंतमवक्कमेज्जा, २ (त्ता) अणावायमसंलोए चिट्ठेज्जा।

अह पुणेवं जाणेज्जा पडिसेहिए व दिण्णे वा, तओ तम्मि णिवट्टिए संजयामेव पविसेज्ज वा ओभासेज्ज वा।

एतं खलु तस्स भिक्खुस्स वा भिक्खुणीए वा सामग्गियं।

॥ पंचमो उद्देसओ सम्मत्तो ॥

३०. (क) वह भिक्षु या भिक्षुणी भिक्षा के लिए गृहस्थ के घर में प्रवेश करते समय यदि यह जाने कि उसके जाने से पहले ही बहुत-से शाक्यादि श्रमण, ब्राह्मण, याचक (ग्राम-पिण्डोलक), दरिद्र और अतिथि आदि उस गृहस्थ के यहाँ प्रवेश कर चुके हैं, तो उन्हें देखकर उनके सामने या जिस द्वार से वे निकलते हैं, उस द्वार पर खड़ा न रहे। किन्तु वह एकान्त स्थान मे चला जाए, वहाँ जाकर कोई आता-जाता न हो और देखता न हो, इस प्रकार से खड़ा हो जाये। उस भिक्षु को उस एकान्त स्थान में खड़ा देखकर वह गृहस्थ अशनादि आहार लाकर दे और देता हुआ वह यों कहे–"आयुष्मन् श्रमण ! यह अशनादि चतुर्विध आहार मै आप सब (निर्ग्रन्थ–शाक्यादि श्रमण आदि उपस्थित) जनों के लिए दे रहा हूँ। आप अपनी रुचि के अनुसार इस आहार का उपभोग करें और परस्पर बाँट ले।"

(ख) इस पर यदि वह साधु उस आहार को चुपचाप लेकर यह विचार करता है कि "यह आहार (गृहस्थ ने) मुझे दिया है, इसलिए मेरे ही लिए है"; तो वह माया-स्थान (कपट) का सेवन करता है। अतः उसे ऐसा नहीं करना चाहिए।

(ग) वह साधु उस आहार को लेकर वहाँ (उन शाक्यादि श्रमण आदि के पास) जाए और वहाँ जाकर सर्वप्रथम उन्हें वह आहार दिखाए; और यह कहे–"हे आयुष्मन् श्रमणादि ! यह अशनादि चतुर्विध आहार गृहस्थ (दाता) ने हम सब के लिए दिया है। अतः आप सब इसका उपभोग करें और परस्पर बाँट लें।" ऐसा कहने पर यदि कोई शाक्यादि भिक्षु उस साधु से कहे कि "आयुष्मन् श्रमण ! आप ही इसे हम सब को बाँट

दें।" उस आहार का विभाजन करता हुआ वह साधु अपने लिए जल्दी-जल्दी अच्छा-अच्छा प्रचुर मात्रा मे वर्णादि गुणो से युक्त सरस साग, स्वादिष्ट-स्वादिष्ट, मनोज्ञ-मनोज्ञ, स्निग्ध स्निग्ध आहार और उनके लिए रूखा-सूखा आहार न रखे, अपितु उस आहार में अमूर्च्छित, अगृद्ध, निरपेक्ष एव अनासक्त होकर सवके लिए एकदम समान विभाग करे।

(घ) यदि सम विभाग करते हुए उस साधु को कोई शाक्यादि भिक्षु यों कहे कि "आयुष्मन् श्रमण ! आप विभाग मत करे। हम सव एक।-" होकर यह आहार करके जल पी लेगे।" तव वह भिक्षु उनके साथ आहार करता हुआ आहार-विषयक मूर्च्छा, गृद्धि और आसक्ति आदि का त्यागकर अपने लिए प्रचुर मात्रा मे सुन्दर, सरस आदि आहार आदि का विचार न करता हुआ समान रूप से उस आहार आदि का भक्षण करे।

(ङ) वह भिक्षु या भिक्षुणी भिक्षा के लिए गृहस्थ के यहाँ प्रवेश करने से पूर्व यदि यह जाने कि वहाँ शाक्यादि श्रमण, ब्राह्मण, ग्रामपिण्डोलक या अतिथि आदि पहले से प्रविष्ट हैं, तो यह देख वह उन्हें लॉघकर उस गृहस्थ के घर मे न तो प्रवेश करे और न ही दाता से आहारादि की याचना करे। परन्तु उन्हें देखकर वह एकान्त स्थान में चला जाए, वहाँ जाकर कोई न आए-जाए तथा न देखे, इस प्रकार से खडा रहे।

जव वह यह जान ले कि गृहस्थ ने श्रमणादि को आहार देने से मना कर दिया है, अथवा उन्हे दे दिया है और वे उस घर से चले गये है, तव सयमी साधु स्वयं उस गृहस्थ के घर मे प्रवेश करे, अथवा आहारादि की याचना करे।

यही उस भिक्षु अथवा भिक्षुणी के लिए ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप आदि आचार की समग्रता–सम्पूर्णता है।

PROCEDURE IN PRESENCE OF OTHER SEEKERS

30. (a) That *bhikshu* or *bhikshuni* while entering the house of a layman in order to seek alms should find if before him many *Shramans,* Brahmins, beggars, destitute and guests have already entered that house If so, he should not stand before them or near the gate from which they will come out. Instead, he should go to some solitary place where no one frequents and stand inconspicuously Seeing him alone at that place the host brings food and gives him with these words—"Long lived *Shraman* ! This food I am giving you is meant for all the guests present. You may divide it among all and eat as you like."

(b) In such case if that ascetic takes that food and thinks that "the host has given the food to me so it is meant for me only", then he is embracing deceit. Therefore he should not do so.

(c) That ascetic should take that food to the other guests, show it to them and say—"O Long lived *Shramans* (etc.) ! The host has given this food for all of us. Therefore please distribute it amongst you and eat." Now if one of the guests tells that ascetic—"Long lived *Shraman* ! You should distribute this to us." While distributing that food the ascetic should not hastily choose for himself better quality, or too large a portion, or tasty vegetables, or delicious, or likable, or rich eatables, and drab and dry food for others. Instead, he should divide the food equally among all with impartiality, detachment and without greed or desire

(d) While making equal divisions if some other seeker tells him—"Long lived *Shraman* ! Please do not divide. We will eat this together and then drink water." Then that ascetic should not choose a greater portion of delicious and tasty (etc.) eatables for himself but eat an equal share with impartiality, detachment and without greed or desire.

(e) That *bhikshu* or *bhikshuni* while entering the house of a layman in order to seek alms should find if before him many *Shramans,* Brahmins, beggars, destitute and guests have already entered that house. If so, he should neither overtake them while entering nor seek alms. Instead, he should go to some solitary place where no one frequents and stand inconspicuously.

When he finds that the layman has either refused the seekers or offered them alms and they have left, then the disciplined ascetic should enter the house or seek alms.

This is the totality (of conduct including that related to knowledge) for that *bhikshu* or *bhikshuni.*

विवेचन–सूत्र ३0 मे बताया है–साधु गृहस्थ के घर में प्रवेश करते समय यदि वहाँ अन्य शाक्यादि भिक्षुओं को खडा देखे तो उनको लाँघकर गृहस्थ के घर में प्रवेश न करे और न ही जहाँ वे खडे हो उनके प्रवेश मार्ग पर खडा रहे, बल्कि एकान्त स्थान में जाकर खडा हो जाये।

इस विधान के पीछे दृष्टि यह है कि श्रमण के कारण अन्य भिक्षाचरों के भिक्षा में किसी प्रकार की अन्तराय नहीं पडे और न ही उनके मन में ईर्ष्या-द्वेषभाव जागे। यह भिक्षु का सामान्य आचार है। आगे के विधान मे कहा है–"गृहस्थ सबके लिए इकट्ठी आहार सामग्री देवे तो वे परस्पर बाँटकर खा ले, किसी प्रकार की मूर्च्छा, आसक्ति या कपटपूर्ण व्यवहार न करें।" उक्त कथन श्रमण आचार की दृष्टि से विचारणीय है अत· विवादास्पद है। आचार्य श्री आत्माराम जी म ने अन्य आगमों के सन्दर्भ देकर, वृत्तिकार शीलाकाचार्य तथा वार्त्ताकार पार्श्वचन्द्रसूरि के उल्लेखो की समीक्षा करते हुए लिखा है कि "गृहस्थ की ऐसी शर्त को निर्ग्रन्थ श्रमण किसी प्रकार स्वीकार नहीं कर सकता कि वह आहार-पानी लेकर अन्य शाक्यादि श्रमणों के साथ बाँटकर खा ले। यह न तो मुनि का उत्सर्ग मार्ग है और न ही अपवाद मार्ग।" वृत्तिकार ने इसे कठिन विकट परिस्थिति का अपवाद मार्ग मान लिया है किन्तु वार्त्ताकार का अभिप्राय है यहाँ पर 'आउसत्तो समणा' यह सम्बोधन श्रमण के सांभोगिक साधुओ के लिए है, न कि अन्य मत के साधुओं के लिए। अत· आहार बाँटकर खाने का प्रकरण केवल सांभोगिक व साधर्मिक साधुओं से ही सम्बन्ध रखता है। *(विस्तार के लिए देखें हिन्दी टीका, पृ ८३४-८३६)*

Elaboration—In aphorism 30 it is conveyed that if an ascetic while entering the house of a layman finds that some other seekers are already standing there, he should neither overtake to enter the house nor should he stand near the gate. Instead, he should go to some solitary place and stand

The purpose of this code is that the presence of an ascetic should neither become the cause of depriving the other seekers nor should it invoke a feeling of jealousy or hate. This is the normal conduct of an ascetic. The next code is that "if the laymen gives food in lot, it should be distributed and eaten without greed, fondness or deceit." This statement is doubtful and has to be reviewed in context of ascetic conduct. After reviewing the commentaries by Sheelankacharya (*Vritti*) and Parshvachandra Suri (*Varta*) and drawing references from other *Agams,* Acharya Shri Atmaramji M. has written—"A *nirgranth Shraman* (Jain ascetic) can in no way accept this condition from a layman that he should take the alms and share it with other seekers

(Buddhist etc.). This does not conform to ascetic conduct either normal or exceptional." The commentator *(Vritti)* has accepted it as an exceptional code under difficult conditions. However, the commentator *(Varta)* is of the opinion that the term of address—***ausatto samana***—points only at ascetics belonging to the same group and does not include mendicants of other sects. Therefore, the instance of sharing food relates only to ascetic of the same group or co-religionist ascetics. *(For details refer to Hindi Tika, p 834-836)*

विशेष शब्दों के अर्थ–**ग्रामपिण्डोलक**–जो ग्राम के पिण्ड पर निर्वाह करता है भिखारी। **संलोए**–सामने दिखायी दे, इस तरह से। **अणावायम-संलोए**–जहाँ कोई आता-जाता न हो, जहाँ कोई देख न रहा हो। **सव्वजणाए णिसट्ठे**–सब जनो के लिए (साझा भोजन) दिया है। **परिभाएह**–विभाजन करो। **उवेहेज्जा**–कल्पना करे, सोचे। **डायं**–शाक, व्यञ्जन। **ऊसढं**–उच्छ्रित–वर्णादि गुणों से युक्त, सुन्दर। **रसिय**–सरस।

॥ पंचम उद्देशक समाप्त ॥

Technical Terms : *Grampindolak*—one who survives on food provided by village; a beggar. *Samloye*—in such a way that is visible ahead, directly visible *Anavayam-samloye*—where no one frequents; where nobody is looking *Savvajanaye nisatte*—given in a lot for all; food to be shared *Paribhayeha*—divide. *Uvehejja*—imagine or think. *Dayam*—vegetables, cookies. *Usadham*—delicious looking. ***Rasiyam***—tasty or rich

॥ END OF LESSON FIVE ॥

छट्ठो उद्देसओ	छठा उद्देशक	LESSON SIX

मार्ग में पशु-पक्षियों को लाँघकर जाने का निषेध

३१. से भिक्खू वा २ जाव समाणे से जं पुण जाणेज्जा, रसेसिणो बहवे पाणा घासेसणाए संथडे संणिवइए पेहाए, तं जहा–कुक्कुडजाइयं वा सूयरजाइयं वा, अग्गपिंडंसि वा वायसा संथडा संणिवइया पेहाए, सइ परक्कमे संजया णो उज्जुयं गच्छेज्जा।

३१. भिक्षु या भिक्षुणी आहार के लिए जा रहे हों, उस समय मार्ग में यह जाने कि रस के इच्छुक बहुत-से प्राणी आहार के लिए झुण्ड के झुण्ड एकत्रित होकर (किसी पदार्थ पर) टूट पड़े हैं, जैसे–कुक्कुट जाति के जीव, शूकर जाति के जीव (सभी पशु-पक्षी) अथवा अग्रपिण्ड खाने के लिए कौए झुण्ड के झुण्ड टूट पड़े हैं, इन जीवो को मार्ग में आगे देखकर संयत साधु या साध्वी अन्य मार्ग के रहते सीधे उनके सम्मुख होकर न जाए।

CENSURE OF CROSSING ANIMALS AND BIRDS

31. A *bhikshu* or *bhikshuni* while going to seek alms should find if on the path he is taking, many hungry beings have flocked together and converged (on some food); for example—cocks (and other birds), pigs (and other animals), or crows rushing for *agrapind* (first portion thrown for animals). Seeing such beings on the way the disciplined *bhikshu* or *bhikshuni* should avoid crossing them if there is an alternative way available.

विवेचन–साधु-साध्वियो के लिए भिक्षार्थ जाते समय मार्ग में अपना आहार करने में जुटे हुए पशु-पक्षियों को देखकर उस मार्ग से न जाकर अन्य मार्ग से जाने का कारण यह है कि इससे– (१) एक तो उन प्राणियों के आहार मे अन्तराय पडेगी, (२) दूसरे, वे साधु-साध्वी के निमित्त से भयभीत होंगे, (३) तीसरे, वे हडबडाकर उड़ेंगे या भागेगे इसमे वायुकायिक आदि अन्य जीवों की विराधना सम्भव है, तथा (४) चौथे, उनके अन्यत्र उडने या भागने पर कोई क्रूर व्यक्ति उन्हें पकडकर बन्द भी कर सकता है, मार भी सकता है। *(वृत्ति पत्र ३४०)*

Elaboration—The reasons for ascetics avoiding a path where numerous beings have flocked to eat are—(1) the beings will be disturbed during the process of feeding; (2) the beings will be filled

with fear seeing the approaching ascetics, (3) they will suddenly rush away from that place and their disorderly movement could cause harm to other beings like the air-bodied beings; and (4) this change of place could cause their being caught and even killed by some cruel person. *(Vritti leaf 340)*

भिक्षार्थ जाते हुए स्थान व अंगोपांग सचालन-विवेक

३२. से भिक्खू वा २ जाव पविहे समाणे णो गाहावइकुलस्स दुवारसाहं अवलंबिय २ चिट्ठेज्जा, णो गाहावइकुलस्स दगछड्डणमेत्तए चिट्ठेज्जा, णो गाहावइकुलस्स चंदणिउयए चिट्ठेज्जा, णो गाहावइकुलस्स सिणाणस्स वा वच्चस्स वा संलोए सपडिदुवारे चिट्ठेज्जा, णो आलोयं वा थिग्गलं वा संधिं वा दगभवणं वा बाहाओ पगिज्झिय २ अंगुलियाए वा उद्दिसिय २ ओणमिय २ उण्णमिय २ अवणमिय २ णिज्झाएज्जा। णो गाहावइं अंगुलियाए उद्दिसिय २ जाएज्जा, णो गाहावइं अंगुलियाए चालिय २ जाइज्जा, णो गाहावइं अंगुलियाए तज्जिय २ जाएज्जा, णो गाहावइं अंगुलियाए उक्खुलपिय २ जाइज्जा, णो गाहावइं वंदिय २ जाएज्जा, णो वयणं फरुसं वइज्जा।

३२. आहारादि के लिए गृहस्थ के घर में जाते हुए भिक्षु या भिक्षुणी उसके घर के दरवाजे की चौखट (शाखा) पकडकर खडे न हों, उस गृहस्थ के बर्तनों का धोया गन्दा पानी फेकने के स्थान पर खडे न हो, न उनके हाथ-मुँह धोने या पीने का पानी बहाये जाने की जगह खडे हों, और न ही स्नानगृह, पेशाबघर या शौचालय के सामने अथवा निर्गमन–प्रवेश द्वार पर खडे हों। उस घर के झरोखे आदि को, मरम्मत की हुई दीवार आदि को, दीवारो की सन्धि को तथा पानी रखने के स्थान को बार-बार भुजाएँ फैलाकर या अगुलियो से बार-बार उनकी ओर संकेत करके, शरीर को ऊँचा उठाकर या नीचे झुकाकर, न तो स्वय देखे और न दूसरे को दिखाए तथा गृहस्थ (दाता) को अंगुलि से (वस्तु की ओर) बार-बार संकेत करके याचना न करे और न ही अँगुलियाँ बार-बार चलाकर या अँगुलियो से भय दिखाकर गृहपति से याचना करे। इसी प्रकार अँगुलियों से शरीर को बार-बार खुजलाकर या गृहस्थ की प्रशसा करके आहारादि की याचना न करे और कभी (न देने पर) गृहस्थ को कठोर वचन न कहे।

CODE OF MOVEMENT AND PLACE

32. A *bhikshu* or *bhikshuni* while entering the house of a layman in order to seek alms should not stand holding the side of door-sill, at the place where dirty water after washing utensils

is thrown, at the place where water for drinking or face-washing is thrown, and not even at or in front of gates of a bathroom, urinal or lavatory. They should neither see themselves or show others the balconies, repaired walls, wall joints and place of water storage by repeatedly extending their arms, pointing fingers, stretching the body up or bending down. They should also not beg from the donor by pointing (at the thing they want) with fingers again and again, neither should they beg by making threatening gestures with movements of their fingers. Also, they should not scratch their body or praise the donor in order to seek food. They should also never say harsh words to a layman (if alms are not given).

विवेचन–भिक्षुओं को गृहस्थ के घर भिक्षा के लिए जाने पर अपनी सभी इन्द्रियो पर सयम रखने की शिक्षा प्रस्तुत सूत्र मे है। इन्द्रियों की चपलता, चचलता, असंयम और स्वाद-लोलुपता आदि के कारण वह एक तरफ मुनिपद की गरिमा गिरा देता है तो दूसरी तरफ सामान्य शिष्टाचार व सभ्यता के नियमों की भी उपेक्षा कर देता है। इन्ही दोनों बातों को ध्यान मे रखकर प्रस्तुत सूत्र मे एषणा सम्बन्धी उन दोषों को टालने का निर्देश है। वृत्तिकार ने विस्तारपूर्वक बताया है कि इन छोटे-छोटे व्यवहारो के कारण गृहस्थ का मन शकित भी हो जाता है तथा साधु के प्रति द्वेष तथा अपमान की भावना बढ़ती है।

Elaboration : This aphorism contains advise about exercising complete discipline over all the senses when going to the house of a layman to seek alms Due to petulance, flippancy, indiscipline and eagerness, on one hand he damages the grace of the ascetic status and on the other violates even the normal codes of decency and civility. Keeping this in view, this aphorism advises avoidance of these faults related to alms-seeking. The commentator *(Vritti)* has explained in greater detail that such insignificant looking faults make the laymen apprehensive and he is filled with feelings of aversion and retort for ascetics.

विशेष शब्दों के अर्थ–दगछडणत्तए–झूठे बर्तन आदि धोया हुआ पानी डालने के स्थान में। चंदणिउयए–हाथ-मुँह धोने या पीने का पानी बहाने के स्थान में। वच्चस्स–मूत्रालय या शौचालय के। आलोयं–आलोक–प्रकाश-स्थान, बारी, झरोखा या रोशनदान आदि। थिग्गलं–मरम्मत की हुई दीवार आदि। संधि–दीवार की सन्धि या छेद। उण्णमिय २–बार-बार ऊँचा करके। ओणमिय–

नीचे झुकाकर। णिज्झाएज्जा–देखे-दिखाये। उक्खुलंपिय–खुजलाकर। वंदिय–स्तुति या प्रशंसा करके। तज्जिय–धमकी या डर दिखाकर।

Technical Terms : *Dagachhdanattaye*—at the place where dirty water after washing utensils is thrown *Chandaniuyae*—at the place where water for drinking or face-washing is thrown. *Vachchassa*—at urinal or lavatory *Aaloyam*—place from where light enters; window, skylight or balcony. *Thiggalam*—repaired walls *Sandhi*—wall joints or holes in the wall *Unnamiyam*—stretching the body up or going on tip-toe *Onamiya*—bending down *Nijjhayejja*—see and show *Ukkhulampiya*—by scratching. *Vandiya*—by praising. *Tajjiya*—by threatening gestures.

सचित्त संसृष्ट-असंसृष्ट आहार-एषणा

३३. (क) अह तत्थ कंचि भुंजमाणं पेहाए तं जहा–गाहावइं वा जाव कम्मकरिं वा से पुव्वामेव आलोएज्जा–आउसो ति वा भइणी ति वा दाहिसी मे एत्तो अण्णयरं भोयणजायं ?

से सेवं वदंतस्स परो हत्थं वा, मत्तं वा, दव्विं वा, भायणं वा, सीओदगवियडेण वा उसिणोदगवियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोएज्ज वा। से पुव्वामेव आलोएज्जा–आउसो ति वा भइणी ति, वा मा एयं तुमं हत्थं वा मत्तं वा दव्विं वा भायणं वा सीओदगवियडेण वा उसिणोदगवियडेण वा उच्छोलेहि वा पधोवाहि वा, अभिकंखसि मे दाउं एमेव दलयाहि।

से सेवं वदंतस्स परो हत्थं वा ४ सीओदगवियडेण वा उसिणोदगवियडेण वा उच्छोलेत्ता पधोइत्ता आहट्टु दलएज्जा। तहप्पगारेणं पुरोकम्मएणं हत्थेण वा ४ असणं वा ४ अफासुयं अणेसणिज्जं जाव णो पडिगाहेज्जा।

(ख) अह पुणेवं जाणेज्जा णो पुरेकम्मकएणं, उदउल्लेणं। तहप्पगारेणं उदउल्लेण हत्थेण वा ४ असणं वा ४ अफासुयं जाव णो पडिगाहेज्जा। अह पुणेवं जाणेज्जा–णो उदउल्लेण, ससणिद्धेण। सेसं तं चेव। एवं ससरक्खे उदउल्ले, ससिणिद्ध मट्टियाऊसे। हरियाले हिंगुलुए मणोसिला अंजणे लोणे।

गेरुय वण्णिय सेडिय सोरट्ठिय पिट्ठ कुक्कुस उक्कुट्ठ संसट्ठेण।

(ग) अह पुणेवं जाणेज्जा--णो असंसट्ठे, संसट्ठे। तहप्पगारेण संसट्ठेण हत्थेण वा ४ असणं वा ४ फासुयं जाव पडिगाहेज्जा।

३३. (क) गृहस्थ के घर आहार के लिए जाने पर साधु या साध्वी किसी व्यक्ति को भोजन करते हुए दख, यदि वह गृहस्वामी, उसकी पत्नी, उसकी पुत्री या पुत्र, उसकी पुत्रवधू या गृहपति के दास-दासी या नौकर-नौकरानियों मे से कोई भी हो तो, पहले अपने मन में चिन्तन करके फिर पूछे-"आयुष्मन् गृहस्थ (भाई) या हे बहन ! इसमें से कुछ भोजन मुझे दोगे?"

उस भिक्षु के ऐसा कहने पर यदि वह गृहस्थ अपने हाथ को, मिट्टी के बर्तन को, दर्वी (कुडछी) को या काँसे आदि के वर्तन को सचित्त जल से या ठण्डे हुए उष्ण जल से एक बार धोए या बार-बार रगडकर धोने लगे तो वह भिक्षु पहले ही उसे देखकर और विचारकर कहे-"आयुष्मन् गृहस्थ या वहन ! तुम इस प्रकार हाथ, पात्र, कुडछी या बर्तन को सचित्त पानी से या कम गर्म किए हुए (सचित्त) पानी मे एक बार या बार-बार मत धोओ। यदि तुम मुझे भोजन देना चाहती हो तो ऐसे-(हाथ आदि धोए बिना) ही दे दो।"

भिक्षु द्वारा इस प्रकार कहने पर यदि वह गृहस्थ आदि शीतल या थोडे गर्म जल से हाथ आदि को एक बार या बार-बार धोकर उन्ही से अशनादि आहार लाकर देने लगे तो उस प्रकार गीले (पुरःकर्म-रत) हाथ आदि से लाए गये अशनादि चारो प्रकार के आहार को अप्रासुक और अनेषणीय जानकर ग्रहण न करे।

(ख) यदि साधु यह जाने कि दाता के हाथ, पात्र आदि भिक्षा देने के लिए नहीं धोए हैं, किन्तु पहले से ही गीले हैं; उस प्रकार के सचित्त जल से गीले हाथ, पात्र, कुडछी आदि से लाकर दिया गया आहार भी अप्रासुक-अनेषणीय जानकर प्राप्त होने पर भी ग्रहण न करे। यदि यह जाने कि हाथ आदि पहले से भीगे (उदकार्द्र जल की बूँदे टपकती है) तो नही है, किन्तु सस्निग्ध गीले हैं, तो उस प्रकार के सस्निग्ध हाथ आदि से लाकर दिया गया आहार आदि भी ग्रहण न करे।

यदि यह जाने कि हाथ आदि जल से गीले या सस्निग्ध तो नही हैं, किन्तु क्रमशः सचित्त मिट्टी, क्षार मिट्टी, हड़ताल, हिंगलू (सिंगरफ), मेनसिल, अजन, लवण, गेरू, पीली मिट्टी, खड़िया मिट्टी, सौराष्ट्रिका (गोपीचन्दन), विना छना (चावल आदि का) आटा, आटे का चोकर, वनस्पति के गीले पत्तों का चूर्ण आदि में से किसी से भी हाथ आदि संसृष्ट है तो उस प्रकार के हाथ आदि से लाकर दिया गया आहार आदि भी ग्रहण न करे।

(ग) यदि वह यह जाने कि दाता के हाथ आदि सचित्त जल से गीले, स्निग्ध या सचित्त मिट्टी आदि से संसृष्ट (लिप्त) तो नहीं हैं, किन्तु जो पदार्थ दे रहा है, उसी से (पदार्थ से) हाथ आदि संसृष्ट (सने) हैं तो ऐसे (उसके) हाथो या बर्तन आदि से दिया गया अशनादि आहार प्रासुक एवं एषणीय मानकर प्राप्त होने पर ग्रहण कर सकता है।

ABOUT *SACHIT* AND CONTAMINATED FOOD

33. (a) If a *bhikshu* or *bhikshuni* while entering the house of a layman in order to seek alms finds that someone is eating, and if it is someone out of the host, his wife, his daughter or son, his daughter-in-law, his slaves or his servants, then he should first deliberate and then ask—"Long lived householder (brother) or sister ! Would you please give some food out of it ?"

At this, if the person intends rubbing and washing his hands, earthen pot, serving spoon or bronze bowl (etc.) with *sachit* (contaminated with living organisms) or boiled and cooled water once or many times, the ascetic should observe this, ponder over and warn in advance—"Long lived householder or sister ! Please do not wash your hands, earthen pot, serving spoon or bronze bowl (etc) with *sachit* or boiled and cooled water once or many times If you want to offer me food please do it as you are (without washing or cleaning).

When the *bhikshu* or *bhikshuni* say so, if that layman (etc.) washes once or many times his hands with cold or warm water and brings alms with these hands (etc.), the ascetic should refrain from taking it considering the food brought with wet hands (etc.) to be contaminated and unacceptable.

(b) If the ascetic finds that the hands (etc.) of the donor have not been washed specifically to give alms but a little earlier; even then he should refrain from taking it considering the food brought with just-washed hands, pot, serving-spoon (etc.) to be contaminated and unacceptable. If he finds that although the hands (etc.) are not just-washed (dripping water), they are only

damp; even then he should not accept any food brought with such damp hands (etc.).

If he finds that although the hands (etc.) are neither wet nor damp but are smeared with any of these things—*sachit* sand, salty sand, yellow orpiment, cinnabar, mensil, *anjan* (antimony powder), salt, red ochre, yellow clay, chalk, *Saurashtrika* or *gopichandan*, bran, paste of *piluparnika* leaves etc.; in that case also he should not accept food (etc.) brought with such smeared hands.

(c) If he finds that the hands (etc.) of the donor are not wet with *sachit* (contaminated with living organisms) water, not smeared with *sachit* sand (etc.), but are smeared only with the thing he is giving, in such case he may, if given, take it considering the food brought with such smeared hands (etc.) to be uncontaminated and acceptable.

विवेचन—सूत्र ३३ मे दाता के हाथ, वर्तन, कुडछी आदि यदि सचित्त जल आदि से सना या भीगा हो तो उनसे आहार ग्रहण नहीं करना और यदि असस्पृष्ट (अलिप्त) है तो आहार लेने का विधान है।

इस प्रकार के गीले हाथो से लेने में हिंसा का दोष मुख्य रूप मे लगता ही है। आज के विज्ञान की दृष्टि से भी अशुद्ध जल में वैक्टीरिया आदि होते है, उस अशुद्ध जल से भीगे हाथ, बर्तन आदि से वस्तु का स्पर्श होगा उसमे भी वे वैक्टीरिया सक्रमित हो जाते हैं। इस तरह यह विधान आरोग्य विज्ञान की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है।

निशीथ भाष्य की चूर्णि में संसृष्ट के अठारह दोष इस प्रकार बतलाये हैं—

(१) **पुरेकम्म**—पूर्वकर्म (साधु के आहार लेने से पूर्व हाथ आदि धोकर देना)।

(२) **पच्छाकम्म**—पश्चात्कर्म (साधु के आहार लेने के पश्चात् हाथ आदि धोना)।

(३) **उदउल्ले**—उदकार्द्र (बूँदें टपक रही हों, इस प्रकार से भीगे हाथ आदि)।

(४) **ससणिद्धं**—संस्निग्ध (केवल गीले-से हाथ किन्तु बूँदे न टपकती हों आदि)।

(५) **मट्टिया**—सचित्त मिट्टी (मिट्टी का ढेला या कीचड)।

(६) **उसं**—सचित्त क्षार (खारी या नौनी मिट्टी)।

(७) हरियाले–हड़ताल।

(८) हिंगुलुए–हींगलू।

(९) मणोसिला–मैनसिल।

(१०) अंजणे–अंजन।

(११) लोणे–नमक।

(१२) गेरुय–गेरू (लाल मिट्टी)।

(१३) वण्णिय–पीली मिट्टी।

(१४) सेडिय–खडिया मिट्टी।

(१५) सोरट्ठिय–सौराष्ट्रिका (सौराष्ट्र में पायी जाने वाली एक प्रकार की मिट्टी, जिसे 'गोपीचन्दन' भी कहते हैं, फिटकरी)।

(१६) पिट्ठं–तत्काल पीसा हुआ, बिना छना आटा।

(१७) कुक्कुस–चूर्ण के छान से।

(१८) उक्कुट्ठ–गीली वनस्पति का चूर्ण या फलों के बारीक टुकडे।

इनमे पुरःकर्म, पश्चात्कर्म, उदकार्द्र और सस्निग्ध ये चार अप्काय से सम्बन्धित हैं। पिष्ट, कुक्कुस और उक्कुट्ठ–ये तीन वनस्पतिकाय से सम्बन्धित हैं और शेष ग्यारह पृथ्वीकाय से सम्बन्धित हैं।

Elaboration—This aphorism contains the rule that if the hands, utensils, serving spoons etc. of the donor are wet or smeared with *sachit* water etc the food should not be accepted, if it is not so, the food could be accepted.

Main reason for this censure is that taking food given with such smeared hands causes faults related to *ahimsa* Modern science also affirms that impure water is contaminated with bacteria and other such things. When food comes in contact with hands and utensils washed with such water, it also gets contaminated. Thus the rule is important from the health angle as well.

In the commentary *(Churni)* of *Nisheeth Bhashya* the eighteen faults related to smearing are as follows—

(1) *Purekamm (purvakarma)*—to wash hands (etc.) before giving alms to an ascetic

(2) *Pacchakamm (pashchatkarma)*—to wash hands (etc) after giving alms to an ascetic

(3) *Udulle (udakardra)*—with dripping hands (etc)

(4) *Sasaniddham (samsnigdha)*—not dripping but wet.

(5) *Mattiya—Sachit* (contaminated with living organisms) sand; lump of sand, slime etc

(6) *Usam—Sachit* or contaminated salt, saline soil

(7) *Hariyale (hartal)*—yellow orpiment

(8) *Hinguluye (Heenglu)*—cinnabar

(9) *Manosila (Mensil)*—a type of mineral powder

(10) *Anjane (anjan)*—Antimony powder

(11) *Lone*—common salt

(12) *Geruya (geru)*—red ochre

(13) *Vanniya*—yellow clay

(14) *Sediya*—chalk

(15) *Soratthiya (Saurashtrika)*—alum, a mineral found in Saurashtra and also called Gopi-chandan

(16) *Pittham*—fresh ground and non-strained flour

(17) *Kukkus*—bran

(18) *Ukkuttha*—paste of green leaves or fruit gratings

Of these, *purahkarma, pashchatkarma, udakardra* and *samsnigdha*, these four are relating to water-bodied beings *Pittham, kukkus* and *ukkuttha,* are relating to plant-bodied beings and the remaining eleven are relating to earth-bodied beings

सचित्त-मिश्रित आहार-ग्रहण निषेध

३४. से भिक्खू वा २ से जं पुण जाणेज्जा-पिहुयं वा बहुरयं वा जाव चाउलपलंबं वा अस्संजए भिक्खुपडियाए चित्तमंताए सिलाए जाव मक्कडासंताणाए कोट्टिंसु वा कोट्टेंति वा कोट्टिस्संति वा उप्फणिंसु वा ३। तहप्पगारं पिहुयं वा जाव चाउलपलंबं वा अफासुयं जाव णो पडिगाहेज्जा।

३४ भिक्षु व भिक्षुणी गृहस्थ के घर में आहार के लिए जाते समय यह जान ले कि शालि-धान, जौ, गेहूँ आदि में सचित्त रज (तुष सहित) बहुत है, अग्नि में भूँजे हुए हैं, किन्तु वे आधे पके हैं, कण सहित चावल के लम्बे दाने सिर्फ एक बार भुने हुए या कुटे हुए है, अत असयमी गृहस्थ भिक्षु के लिए सचित्त शिला पर, सचित्त मिट्टी के ढेले पर, घुन लगे हुए लक्कड़ पर या दीमक लगे हुए जीवाधिष्ठित पदार्थ पर, अण्डे सहित, प्राण सहित या मकडी आदि के जालों सहित शिला पर उन्हे कूट चुका है, कूट रहा है या कूटेगा, उसके पश्चात् वह उन (मिश्र जीवयुक्त) दानों को लेकर उफन चुका है, उफन रहा है या उफनेगा; इस प्रकार के (भूसी से पृथक् किए जाते हुए) चावल आदि अन्नों को अप्रासुक और अनेषणीय जानकर साधु ग्रहण न करे।

CENSURE OF *SACHIT*—MIXED FOOD

34. A *bhikshu* or *bhikshuni* while entering the house of a layman in order to seek alms should find if rice, barley, wheat and other food grains have a large quantity of chaff; although roasted but not fully; long unprocessed rice are only once roasted or pounded. Because of this, that indisciplined layman has already pounded, is still pounding, or will pound these on *sachit* (contaminated with living organisms) rock, lump of sand, rotten piece of wood, a thing infested with white ants other insects, eggs, beings or cob-webs (etc.) and after that he has winnowed, is winnowing or will winnow those grains (contaminated). In such case the ascetic should refrain from taking such rice or other grains considering them to be contaminated and unacceptable

३५. से भिक्खू वा २ जाव समाणे से जं पुण जाणेज्जा-बिलं वा लोणं, उब्भियं वा लोणं अस्संजए भिक्खुपडियाए चित्तमंताए सिलाए जाव संताणाए भिंदिंसु वा भिंदंत वा भिंदिस्संति वा रुचिंसु वा ३, बिलं वा लोणं, उब्भियं वा लोणं अफासुयं जाव णो पडिगाहेज्जा।

३५. भिक्षु-भिक्षुणी गृहस्थ के घर में आहारार्थ जाते समय जाने कि असंयमी गृहस्थ किसी विशिष्ट खदान में उत्पन्न सचित्त नमक या समुद्र से उत्पन्न उद्भिज्ज लवण को सचित्त शिला, सचित्त मिट्टी के ढेले पर, घुन लगे लक्कड़ पर या जीवाधिष्ठित पदार्थ पर, अण्डे, प्राण, हरियाली, बीज या मकड़ी के जाले सहित शिला पर टुकडे कर चुका है, कर रहा है या करेगा, या पीस चुका है, पीस रहा है या पीसेगा तो साधु ऐसे सचित्त या सामुद्रिक लवण को अप्रासुक-अनेषणीय समझकर ग्रहण न करे।

35. A *bhikshu* or *bhikshuni* while entering the house of a layman in order to seek alms should find if the indisciplined layman has broken or ground, is breaking or grinding, or will break or grind *sachit* rock-salt or sea-salt on *sachit* rock, lump of sand, rotten piece of wood, a thing infested with white ants, other insects, eggs, beings, vegetation, seeds or cob-webs (etc.) In such case the ascetic should refrain from taking such *sachit* rock-salt or sea-salt considering them to be contaminated and unacceptable.

३६. से भिक्खू वा २ जाव समाणे से ज पुण जाणेज्जा-असणं वा ४ अगणिनिक्खित्तं, तहप्पगारं असणं वा ४ अफासुयं लाभे संते णो पडिगाहेज्जा। केवली बूया-आयाणमेयं।

अस्संजए भिक्खुपडियाए उस्सिंचमाणे वा निस्सिंचमाणे वा आमज्जमाणे वा पमज्जमाणे वा उतारेमाणे वा उव्वत्तमाणे वा अगणिजीवे हिंसेज्जा। अह भिक्खुणं पुव्वोवदिट्ठा एस पइण्णा, एस हेऊ, एस कारणं, एसुवदेसे-ज तहप्पगारं असणं वा ४ अगणिनिक्खित्तं अफासुय अणेसणिज्जं णो पडिगाहेज्जा।

एयं खलु तस्स भिक्खुस्स वा भिक्खुणीए वा सामग्गियं।

॥ छट्ठो उद्देसओ सम्मत्तो ॥

३६. भिक्षु या भिक्षुणी गृहस्थ के घर आहार के लिए जाते समय यह जान लेवे कि अशनादि आहार अग्नि पर रखा हुआ है, तो उस आहार को अप्रासुक-अनेषणीय जानकर प्राप्त होने पर ग्रहण न करे। केवली भगवान कहते है-यह कर्मों के आने का मार्ग है।

असयमी गृहस्थ साधु के निमित्त से अग्नि पर रखे हुए भोजन मे से आहार को निकालता है, उफनते हुए दूध आदि को जल आदि के छींटे देकर शान्त करता है अथवा

उसे हाथ से एक बार या बार-बार हिलाता है, आग पर से उतारता है या भोजन को टेढ़ा करता है तो वह अग्निकायिक जीवों की हिंसा करता है, अतः भिक्षुओं के लिए तीर्थंकर भगवान ने पहले से ही यह कह दिया है कि उस भिक्षु की यह प्रतिज्ञा है, यह हेतु है, यह कारण है और यह उपदेश है कि जो आहार आदि अग्नि पर रखे हुए हों, उसे अप्रासुक और अनेषणीय जानकर प्राप्त होने पर ग्रहण न करे।

यह (सचित्त-संसृष्ट आहार-ग्रहण का विवेक) ही उस भिक्षु या भिक्षुणी की (ज्ञान, दर्शन, चारित्रादि आचार की) समग्रता है।

36. A *bhikshu* or *bhikshuni* while entering the house of a layman in order to seek alms should find if the food is still placed on fire. In such case the ascetic should refrain from taking such food, if offered, considering it to be contaminated and unacceptable. The omniscient has said that that is cause of bondage of *karmas*

In order to offer to an ascetic an indisciplined layman collects food from the pot placed on fire; sprinkles water on boiling milk (etc.); stirs it once or many times; lifts the pot from the fire or tilts it Thus he puts the fire-bodied beings to harm. Therefore the omniscient has said that for this vow, purpose, reason and sermon an ascetic should refrain from taking food placed on fire, if offered, considering it to be contaminated and unacceptable.

This (discipline about contaminated and mixed food) is the totality (of conduct including that related to knowledge) for that *bhikshu* or *bhikshuni*.

विवेचन-प्रस्तुत तीनों सूत्रों (३४, ३५, ३६) मे क्रमश वनस्पतिकायिक, पृथ्वीकायिक एवं अग्निकायिक जीवो से सस्पृष्ट आहार के ग्रहण करने का निषेध किया गया है।

Elaboration—In these three aphorisms (34, 35, 36) is mentioned censure of accepting food that has come in contact with plant-bodied beings, earth-bodied beings and fire-bodied beings respectively

विशेष शब्दों के अर्थ-उफणिंसु-चावलों आदि का भूसा अलग करने के लिए सूप में भरकर हवा में ऊपर से गिराने को उफनना कहते हैं, यहाँ उनकी भूतकालिक क्रिया है। भिंदिंसु-टुकड़े

कर लिए। रुचिंसु–पीस लिया। उब्भियं वा लोणं–उद्भिज्ज लवण–समुद्र के तट पर क्षार और जल के सम्पर्क से जो तैयार होता है। उस्सिचमाणे–आँच पर रखे बर्तन में से आहार को बाहर निकालता हुआ। निस्सिंचमाणे–उफनते हुए दूध आदि को पानी के छींटे देकर शान्त करता हुआ। उयत्तमाणे–बर्तन को टेढ़ा करता हुआ।

॥ छठा उद्देशक समाप्त ॥

Technical Terms : *Ufaninsu*—the process of manual winnowing for separating grain from chaff, past tense used here. *Bhindimsu*—broken to pieces *Ruchimsu*—ground. *Ubbhiyam va lonam*—sea-salt. *Usinchamane*—taking out food from a pot placed on fire. *Nissimchamane*—sprinkling water on boiling milk (etc.) *Uyattamane*—tilting a pot.

॥ END OF LESSON SIX ॥

सत्तमो उद्देसओ	सप्तम उद्देशक	LESSON SEVEN

मालापहृत दोषयुक्त आहार-ग्रहण निषेध

३७. से भिक्खू वा २ जाव समाणे से जं पुण जाणेज्जा–असणं वा ४ खंधंसि वा थंभंसि वा मंचंसि वा मालंसि वा पासायंसि वा हम्मियतलंसि वा अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि अंतलिक्खजायंसि उवनिक्खित्ते सिया। तहप्पगारं मालोहडं असणं वा ४ अफासुयं णो पडिगाहेज्जा। केवली बूया–आयाणमेयं।

अस्संजए भिक्खुपडियाए पीढं वा फलगं वा णिस्सेणिं वा उदूहलं वा अवहट्टु उस्सविय दुरुहिज्जा। से तत्थ दुरुहमाणे पयलेज्ज वा पवडेज्ज वा। से तत्थ पयलमाणे वा पवडमाणे वा हत्थं वा पायं वा बाहुं वा उरुं वा उदरं वा सीसं वा अण्णयरं वा कायंसि इंदियजालं लूसेज्ज वा, पाणाणि वा ४ अभिहणेज्ज वा, वित्तासिज्ज वा, लेसेज्ज वा, संघेज्ज वा, संघट्टेज्ज वा, परियावेज्ज वा, किलामेज्ज वा, टाणाओ ठाणं संकामेज्ज वा। तं तहप्पगारं मालोहडं असणं वा ४ लाभे संते णो पडिगाहेज्जा।

३७. साधु या साध्वी गृहस्थ के घर में भिक्षा के लिए जाने पर, यदि अशनादि चतुर्विध आहार गृहस्थ के यहाँ भींत पर, स्तम्भ पर, मंच पर, घर के अन्य ऊपरी भाग (आले) पर, महल पर, प्रासाद आदि की छत पर या अन्य उसी प्रकार के किसी ऊँचे (अंतराल) स्थान पर रखा हुआ है, तो इस प्रकार के ऊँचे स्थान से उतारकर दिया जाता अशनादि चतुर्विध आहार अप्रासुक एव अनेषणीय जानकर साधु ग्रहण न करे। केवली भगवान कहते है–यह कर्मबंध का कारण है।

गृहस्थ भिक्षु को आहार देने के लिए (ऊँचे स्थान पर रखे हुए आहार को उतारने के लिए) चौकी, पट्टा, सीढ़ी या ऊखल आदि को लाकर ऊँचा करके उस पर चढ़ेगा। ऊपर चढ़ता हुआ वह गृहस्थ फिसल सकता है या गिर सकता है। वहाँ से फिसलते या गिरते हुए उसका हाथ, पैर, भुजा, छाती, पेट, सिर या शरीर का कोई भी अवयव टूट सकता है अथवा उसके गिरने से प्राणी, भूत, जीव और सत्त्व का हनन हो सकता है, वे जीव नीचे (धूल में) दब सकते हैं, परस्पर चिपककर कुचल सकते हैं, परस्पर टकरा सकते हैं, उन्हें पीड़ाजनक स्पर्श हो सकता है, उन्हें संताप हो सकता है, वे हैरान हो सकते हैं, वे त्रस्त हो सकते हैं या एक (अपने) स्थान से दूसरे स्थान पर उनका संक्रमण हो सकता है अथवा वे जीव से भी रहित हो सकते हैं। अतः इस प्रकार के मालापहृत (ऊँचे स्थान से उतारकर लाये गए) अशनादि चतुर्विध आहार के प्राप्त होने पर भी साधु उसे ग्रहण न करे।

CENSURE OF *MALAPAHRIT* FOOD

37. A *bhikshu* or *bhikshuni* while entering the house of a layman in order to seek alms should find if the food is placed on a wall, a pillar, a platform, other higher parts of the house (lofts etc.), palace or mansion or on the roof top or other such higher or remote places. In such case the ascetic should refrain from taking any food brought down from higher places, if offered, considering it to be faulty and unacceptable. The omniscient has said that to be a cause of bondage of *karmas*.

In order to offer food (getting down food from higher places) to the ascetic the layman will step up on a stool, table, ladder or an upturned pot. While stepping up the layman may slip or fall. On slipping or falling he may damage his hand, leg, arm, chest, belly, head or any other part of his body. Also, his fall may cause harm to *prani* (beings), *bhoot* (organisms), *jiva* (souls) and *sattva* (entities); these beings may get buried in the sand, crushed together or collide together; they may be touched by pain, torment or irritation, they may be shifted from one place to another; or even lose their life Therefore, the ascetic should refrain from taking any food brought down from higher places *(Malapahrit)*, if offered, considering it to be faulty and unacceptable.

३८. से भिक्खू वा २ जाव समाणे से जं पुण जाणेज्जा–असणं वा ४ कोट्ठियाओ वा कोलेज्जाओ वा अस्संजए भिक्खुपडियाए उक्कुज्जिय अवउज्जिय ओहरिय आहट्टु दलएज्जा। तहप्पगारं असणं वा ४ मालोहडं ति णच्चा लाभे संते णो पडिगाहेज्जा।

३८. साधु या साध्वी आहार के लिए, गृहस्थ के घर में प्रवेश करते हुए यह जान ले कि असंयत गृहस्थ साधु के लिए अशनादि चतुर्विध आहार मिट्टी आदि की बड़ी कोठी में से या ऊपर से सँकडे और नीचे से चौड़े भूमिगृह में से नीचा होकर, कुबड़ा होकर या टेढ़ा होकर निकालकर देना चाहता है, तो ऐसे अशनादि चतुर्विध आहार को मालापहृत दोष से युक्त जानकर प्राप्त होने पर भी ग्रहण न करे।

38. A *bhikshu* or *bhikshuni* while entering the house of a layman in order to seek alms should find if the indisciplined

layman intends to take out food from a very large container of earthen ware or other material or a cellar with small opening by bowing down or bending down or otherwise deforming his body. In such case the ascetic should refrain from taking any such food, if offered, considering it to be faulty, like the *Malahahrit* food, and unacceptable.

विवेचन—सूत्र ३७-३८ में बताया है—प्रासुक और एषणीय आहार भी यदि किसी समतल से बहुत ऊँची या बहुत नीची भूमि से चढ़कर या नीचे उतरकर या टेढ़ा होकर निकालकर भिक्षु को दिया जायेगा, तो वह भी स्वीकार न करे। इसका कारण है—चढ़ने-उतरने में पैर फिसलने से दाता के शरीर को भी चोट पहुँचेगी और प्राणियों की विराधना भी हो सकती है। इस प्रकार आत्म-विराधना, संयम-विराधना, दाता-गृहस्थ की शरीर-विराधना और जीव-विराधना आदि टालने के लिए यह विधान है। आचार्य श्री आत्माराम जी म. ने इसका स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है कि यदि सीढ़ी आदि हिलती-डुलती न हो, स्थिर हो तो उस पर चढ़कर उतारकर देने में कोई दोष नही है। *(आचारांग हिन्दी टीका, पृ. ८६०)*

दशवैकालिकसूत्र में मालापहृत के तीन भेद बताये हैं—(१) ऊर्ध्व-मालापहृत—ऊपर से उतारा हुआ, (२) अधो-मालापहृत—नीचे तहखाने आदि से निकाला हुआ, (३) तिर्यक्-मालापहृत—ऊँडे गहरे बर्तन आदि को झुकाकर निकाला हुआ।

Elaboration—In aphorisms 37 and 38 it is conveyed that if food is offered to an ascetic after taking it out from a higher or lower place by climbing up or down or squirming, he should not take it even if it is pure and acceptable food. The reason being that climbing up or down may cause harm to the donor as well as other beings. These rules are framed for avoiding any harm to self, discipline, donor and other beings Explaining this Acharya Shri Atmaramji M says that if the ladder (etc.) is firm and strong then no fault is committed in using them to fetch food. *(Acharanga Hindi Tika, p 860)*

In *Dashavaikalika Sutra* three categories of *Malapahrit* are mentioned—(1) *Urdhva-Malapahrit*—brought down from higher place, (2) *Adho-Malapahrit*—brought up from lower place such as a cellar, and (3) *Tiryak-Malapahrit*—taken out from a large and deep vessel by bending.

विशेष शब्दों के अर्थ–खंधंसि–दीवार या भित्ति पर। थंभंसि–शिला या लकडी के बने हुए स्तम्भ पर। मंचं–चार लट्ठों को बाँधकर बनाया हुआ ऊँचा स्थान। मालंसि–छत पर या ऊपर की मंजिल पर। पयलेज्ज–फिसल जायेगा। पवडेज्ज–गिर पडेगा। लूसेज्ज–चोट लगेगी या टूट जायेगा। कोट्ठियाओ–कोष्ठिका–अन्न संग्रह रखने की मिट्टी, तृण, गोबर आदि की कोठी से। कोलेज्जातो–ऊपर से सँकडे और नीचे से चौडे से भूमिघर से। उक्कुज्जिय–शरीर ऊँचा करके झुककर तथा कुबडे होकर। अवउज्जिय–नीचे झुककर। ओहरिय–तिरछा–टेढ़ा होकर। *(वृत्ति पत्र ३४३)*

Technical Terms : *Khandhansi*—on a wall *Thambhansi*—on a pillar made of rock or wood *Mancham*—a platform made with four long logs of wood. *Malamsi*—on roof top or upper storeys of a house. *Payalejja*—may slip. *Pavadejja*—may fall *Lusejja*—may damage or break. *Kotthiyao*—from a very large container of earthen ware used to store grains *Kolejjato*—from a cellar with small opening *Ukkajjiya*—by stretching or bending or otherwise deforming body *Avaujjiya*—bending down *Ohariya*—tilting or squirming *(Vritti leaf 343)*

उद्भिन्न-दोषयुक्त आहार-निषेध

३९. से भिक्खू वा २ जाव समाणे से जं पुण जाणेज्जा असणं वा ४ मट्टिओलित्तं। तहप्पगारं असणं वा ४ जाव लाभे संते णो पडिगाहेज्जा। केवली बूया–आयाणमेयं।

अस्संजए भिक्खुपडियाए मट्टिओलित्तं असणं वा उब्भिंदमाणे पुढवीकायं समारंभेज्जा, तह तेउ-वाउ-वणस्सइ-तसकायं समारंभेज्जा, पुणरवि उल्लिंपमाणे पच्छाकम्मं करेज्जा। अह भिक्खूणं पुव्वोवदिट्ठा ४ जं तहप्पगारं मट्टिओलित्तं असणं वा ४ अफासुयं लाभे संते णो पडिगाहेज्जा।

३९. साधु या साध्वी गृहस्थ के घर में भिक्षा हेतु प्रवेश करते हुए यह जाने कि वहाँ अशनादि चतुर्विध आहार मिट्टी से लीपे हुए मुख वाले पात्र में रखा हुआ है तो इस प्रकार का आहार आदि ग्रहण न करे। केवली भगवान कहते है–यह कर्मबंध का कारण है।

क्योंकि गृहस्थ साधु को आहार देने के लिए मिट्टी से लीपे आहार के पात्र का मुँह उद्भेदन करता (खोलता) हुआ पृथ्वीकाय का समारम्भ कर सकता है तथा अग्निकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय तक का समारम्भ भी कर सकता है। शेष आहार की सुरक्षा के लिए फिर बर्तन को लीपने पर पश्चात्कर्म दोष लगेगा। इसीलिए तीर्थंकर भगवान का यही उपदेश है कि वह मिट्टी से लिप्त बर्तन को खोलकर दिये जाने वाले अशनादि चतुर्विध आहार को अप्रासुक एव अनेषणीय समझकर ग्रहण न करे।

CENSURE OF TAKING *UDBHINNA* FOOD

39. A *bhıkshu* or *bhikshunı* while entering the house of a layman in order to seek alms should find if the food is placed in a pot having its mouth sealed with clay. In such case the ascetic should refrain from taking any such food, if offered, considering it to be faulty and unacceptable. The omniscient has said that that is a cause of bondage of *karmas*.

This is because, the layman while opening the clay seal of the pot may cause harm to earth-bodied beings, at the same time he may even cause harm to fire-bodied beings, air-bodied beings, plant-bodied beings and mobile-bodied beings. When he re-seals the pot to protect the remaining food he will also commit the *pashchakarm* (post-activity) fault. Therefore the omniscient preaches that the ascetıc should refrain from taking any food offered by opening a sealed pot, considering it to be faulty and unacceptable

विवेचन–सूत्र ३७ मे उद्गम के १२वें उद्भिन्न नामक दोष से युक्त आहार के ग्रहण करने का निषेध है। यहाँ केवल मिट्टी के लेप से लिप्त बर्तन के मुख को खोलकर दिया गया आहार लेने में उद्भिन्न दोष बताया है, किन्तु दशवैकालिकसूत्र में जल-कुम्भ, चक्की, पीठ, शिलापुत्र (लोढ़ा), मिट्टी के लेप और लाख आदि द्रव्यों से ढके, लिपे और मूँदे हुए बर्तन से आहार लेने का भी निषेध किया है। (दशवै ५/१/४५) अत· उद्भिन्न से केवल मिट्टी का लेप ही नहीं, लाख, चपडा, कपडा, लोह, लकडी आदि द्रव्यो से बद बर्तन का मुँह खोलने का भी कथन समझ लेना चाहिए।

Elaboration—Aphorism 37 censures taking food wıth the twelfth fault of origın, called *Udbhınna*. Here thıs fault has been defined only as taking food from pot sealed wıth clay. But according to *Dashavaıkalıka Sutra* takıng food from a pot covered with water pitcher, grindıng stone, plate, rock, clay-seal, shellac-seal etc. is also prohibited *(Dashavaıkalıka 5/1/45).* Therefore, *Udbhınna* should be interpreted as food taken after breakıng seal of a pot sealed with shellac, cloth, iron, wood and other material, not just that sealed with clay.

पृथ्वी षट्काय जीव-प्रतिष्ठित आहार-ग्रहण निषेध

४०. (१) से भिक्खू वा २ जाव समाणे से जं पुण जाणेज्जा असणं वा ४ पुढविक्कायपइट्ठियं। तहप्पगारं असणं वा ४ अफासुयं जाव णो पडिगाहेज्जा।

४०. (१) भिक्षु या भिक्षुणी गृहस्थ के घर में आहार के लिए प्रवेश करते समय यदि यह जाने कि यह अशनादि चतुर्विध आहार–पृथ्वीकाय (सचित्त मिट्टी आदि) पर रखा हुआ है; तो इस प्रकार के आहार को अप्रासुक और अनेषणीय समझकर ग्रहण न करे।

CENSURE OF FOOD PLACED ON EARTH-BODIED BEINGS

40. (1) A *bhikshu* or *bhikshuni* while entering the house of a layman in order to seek alms should find if the food is placed on earth-bodied beings (*sachit* earth etc.). If it is so, he should refrain from taking any such food considering it to be faulty and unacceptable

अप्काय–अग्निकाय प्रतिष्ठित आहार-ग्रहण निषेध

(२) से भिक्खू वा २ से जं पुण जाणेज्जा असणं वा ४ आउकायपइट्ठियं तह चेव।

एवं अगणिकायपइट्ठियं लाभे संते णो पडिगाहेज्जा। केवली बूया–आयाणमेयं। अस्संजए भिक्खुपडियाए अगणिं उस्सिक्किय णिस्सिक्किय ओहरिय आहट्टु दलएज्जा। अह भिक्खूणं पुव्वोवदिट्ठा ४ जाव णो पडिगाहेज्जा।

(२) वह भिक्षु या भिक्षुणी यह जाने कि अशनादि आहार अप्काय (सचित्त जल आदि) पर रखा हुआ है, उसे भी स्वीकार न करे।

इसी प्रकार अग्निकाय पर रखा हुआ अशनादि आहार को अप्रासुक तथा अनेषणीय जानकर ग्रहण न करे। केवली भगवान कहते हैं–यह कर्मों के बंध का कारण है; क्योंकि गृहस्थ साधु के लिए अग्नि जलाकर, हवा देकर, विशेष प्रज्वलित करके या प्रज्वलित आग में से ईंधन निकालकर, आग पर रखे हुए बर्तन को उतारकर, आहार लाकर दे देगा, इसीलिए तीर्थंकर भगवान ने यही उपदेश दिया है कि वे सचित्त–पृथ्वी, जल, अग्नि आदि पर प्रतिष्ठित आहार को अप्रासुक और अनेषणीय मानकर प्राप्त होने पर ग्रहण न करे।

CENSURE OF FOOD PLACED ON WATER OR FIRE-BODIED BEINGS

(2) If he finds that the food is placed on water-bodied beings, then also he should refrain from taking it.

In the same way he should refrain from taking any food placed on fire-bodied beings considering it to be faulty and unacceptable. The omniscient has said that that is a cause of bondage of *karmas.* This is because, the layman, will lit a fire, blow air to increase its intensity, reduce fuel to reduce its intensity, take down the pot from the fire and bring the food and offer it to the ascetic. Therefore the omniscient preaches that the ascetic should refrain from taking any food placed on *sachit* (contaminated with living organisms) earth, water, fire (etc.), even when offered, considering it to be faulty and unacceptable.

वायुकाय-हिंसाजनित आहार का निषेध

(३) से भिक्खू वा २ जाव समाणे से जं पुण जाणेज्जा—असणं वा ४ अच्चुसिणं अस्संजए भिक्खु पडियाए सुप्पेण वा विहुयणेण वा तालियंटेण वा पत्तेण वा साहाए वा साहाभंगेण वा पेहुणेण वा पेहुणहत्थेण वा चेलेण वा चेलकण्णेण वा हत्थेण वा मुहेण वा फुमेज्ज वा वीएज्जा वा।

से पुव्वामेव आलोएज्जा—आउसो त्ति वा भगिणि त्ति वा मा एतं तुमं असणं वा ४ अच्चुसिणं सुप्पेण वा जाव फुमाहि वा वीयाहि वा, अभिकंखसि मे दाउं एमेव दलयाहि।

से सेवं वदंतस्स परो सुप्पेण वा जाव वीइत्ता आहट्टु दलएज्जा, तहप्पगारं असणं वा ४ अफासुयं जाव णो पडिगाहेज्जा।

(३) साधु या साध्वी को भिक्षा के लिए गृहस्थ के घर में प्रवेश करने पर यह पता चले कि साधु को देने के लिए यह अति उष्ण आहार आदि गृहस्थ सूप से, पंखे से, ताड़ पत्र, खजूर आदि के पत्ते, शाखा, शाखा खण्ड से, मोर के पंख से अथवा उससे बने हुए पख से, वस्त्र से, वस्त्र के पल्ले से, हाथ से या मुँह से, फूँक मारकर पंखे आदि से हवा करके ठंडा करके देने वाला है।

तब भिक्षु पहले गृहस्थ से कहे—"आयुष्मन् गृहस्थ। या आयुष्मती भगिनी ! तुम इस अत्यन्त गर्म आहार को सूप, पंखे ... हाथ-मुँह आदि से फूँक मत मारो और न ही हवा करके ठंडा करो। अगर तुम मुझे देना चाहते हो तो, ऐसे ही दे दो।"

ऐसा कहने पर भी वह गृहस्थ न माने और उस अतिष्ण आहार को सूप, पंखे आदि से हवा देकर ठंडा करके देने लगे तो वैसा आहार अप्रासुक समझकर ग्रहण न करे।

CENSURE OF FOOD CAUSING HARM TO AIR-BODIED BEINGS

(3) A *bhikshu* or *bhikshuni* while entering the house of a layman in order to seek alms should find if the layman intends to cool the extremely hot food by fanning air with a winnowing basket, fan, palm leaf, date-palm leaf, a branch of a plant or a part thereof, peacock feather or a fan made of these feathers, a piece of cloth or its end, palm or blowing by mouth.

If it is so, he should first tell the donor—"Long lived brother or sister ! Please do not cool the extremely hot food by fanning air with a winnowing basket, fan .... or blowing by mouth. If you want to give, please give it as it is."

Even after saying so, if the donor does not listen and proceeds to offer food after cooling it by blowing air (etc.), the ascetic should refrain from taking any such food considering it to be faulty and unacceptable.

वनस्पति-प्रतिष्ठित आहार ग्रहण-निषेध

(४) से भिक्खू वा २ जाव समाणे से जं पुण जाणेज्जा असणं वा ४ वणस्सइकायपइट्ठियं। तहप्पगारं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा वणस्सइकायपइट्ठियं अफासुयं लाभे संते णो पडिगाहेज्जा।

एवं तसकाए वि।

(४) साधु या साध्वी गृहस्थ के घर मे आहार के लिए पहुँचने पर यह जाने कि यह अशनादि चतुर्विध आहार वनस्पतिकाय पर रखा हुआ है तो उस प्रकार के वनस्पतिकाय प्रतिष्ठित आहार को अप्रासुक जानकर ग्रहण न करे।

इसी प्रकार त्रसकाय पर प्रतिष्ठित आहार हो तो .... उसे भी अप्रासुक एव अनेषणीय मानकर ग्रहण नहीं करना चाहिए।

CENSURE OF FOOD PLACED ON PLANT-BODIED BEINGS

(4) A *bhikshu* or *bhikshuni* while entering the house of a layman in order to seek alms should find if the food is placed on plant-bodied beings. If it is so, he should refrain from taking any

such food placed on plant-bodied beings, considering it to be faulty and unacceptable.

In the same way, he should also refrain from taking any food placed on mobile-bodied beings, considering it to be faulty and unacceptable.

विवेचन—कई बार ऐसा होता है कि आहार अचित्त और प्रासुक होता है, किन्तु उस आहार पर या आहार के बर्तन के नीचे या आहार के अन्दर कच्चा पानी, सचित्त नमक आदि हरी वनस्पति या बीज आदि स्थित हो, अग्नि का स्पर्श हो, आग से बार-बार बर्तन को उतारा-रखा जा रहा हो या फूँक मारकर अथवा पखे आदि से हवा की जा रही हो अथवा उस आहार से त्रस जीवो की विराधना होती हो। उस आहार को सचित्त प्रतिष्ठित माना जाता है, साधु के लिए वह ग्राह्य नहीं होता। दशवैकालिकसूत्र ५/१/५७-६८ मे भी इसी प्रकार का वर्णन है।

Elaboration—Many a time it so happens that although the food is *achit* (uncontaminated) and without any fault, but there is some plane water, *sachit* salt, green vegetable, seeds etc are placed on, under or within the pot containing that food. Also the pot is in contact with fire or repeatedly lifted from and placed on fire or air blown on it or it is causing harm to mobile beings Such food is considered as being placed on *sachit* things and is not acceptable to an ascetic *Dashavaikalika Sutra 5/1/57-68* also has similar mention.

अनेषणीय पानक-निषेध

४१. (१) से भिक्खू वा २ जाव समाणे से जं पुण पाणगजायं जाणेज्जा, तं जहा–(क) उस्सेइमं वा (ख) संसेइमं वा (ग) चाउलोदगं वा (घ) अण्णयरं वा तहप्पगारं पाणगजायं अहुणाधोयं अणंबिलं अव्वुक्कंतं अपरिणयं अविद्धत्थं अफासुयं जाव णो पडिगाहेज्जा।

(२) अह पुण एवं जाणेज्जा–चिराधोयं अंबिलं वुक्कंतं परिणयं विद्धत्थं फासुयं जाव पडिगाहेज्जा।

४१. (१) साधु या साध्वी गृहस्थ के घर में पानी ग्रहण करने के लिए प्रवेश करने पर पानी के इन भेदों को जाने–जैसे कि–(क) आटे का हाथ लगा हुआ पानी, (ख) तिल आदि का धोया हुआ पानी, (ग) चावल धोया हुआ पानी, (घ) अथवा शाकभाजी का उबला हुआ पानी अथवा अन्य किसी वस्तु का इसी प्रकार का तत्काल धोया हुआ पानी हो, जिसका स्वाद

चलित-(परिवर्तित) न हुआ हो, जिसका रस अतिक्रान्त न हुआ (बदला न) हो, जिसके वर्ण आदि का परिणमन न हुआ हो, जो शस्त्र-परिणत *(सचित्र आचारांगसूत्र, अध्ययन १)* न हुआ हो, ऐसे पानी को अप्रासुक और अनेषणीय जानकर साधु-साध्वी ग्रहण न करे।

(२) पुनः यदि वह यह जाने कि यह बहुत देर का चावल आदि का धोया हुआ धोवन है, इसका स्वाद बदल गया है, रस का भी अतिक्रमण हो गया है, वर्ण आदि भी बदल गया है और शस्त्र-परिणत भी हो गया है तो उस पानक को प्रासुक और एषणीय जानकर ग्रहण कर ले।

CENSURE OF UNACCEPTABLE DRINKS

41. (1) A *bhikshu* or *bhikshuni* while entering the house of a layman in order to seek water should find about these categories of water (drinks)—(a) water touched by flour-smeared hands, (b) sesame seed wash or water with which sesame seed (etc.) have been washed, (c) rice wash, (d) water in which vegetables have been boiled or wash of any other such eatable. He should find if such wash has been recently collected, its original taste has not changed, its composition has not transformed, its colour and other properties have not changed, and it has not been effected by a weapon (refer to *Illustrated Acharanga Sutra,* Chapter 1). If it is so, he should refrain from taking any such water considering it to be contaminated and unacceptable.

(2) However, if he finds that such wash was collected long back, its original taste has changed, its composition has transformed, its colour and other properties have changed and it has been effected by a weapon, then he may take it considering it to be without any fault and acceptable.

एषणीय पानक विवेक

४२. से भिक्खू वा २ जाव से जं पुण पाणगजायं जाणेज्जा तं जहा-(क) तिलोदगं वा (ख) तुसोदगं वा (ग) जवोदगं वा (घ) आयामं वा (ङ) सोवीरं वा (च) सुद्धवियडं वा, अण्णयरं वा तहप्पगारं पाणगजायं पुव्वामेव आलोएज्जा-आउसो त्ति वा भगिणि त्ति वा दाहिसि मे इत्तो अण्णयरं पाणगजायं ? से सेवं वदंतं परो वएज्जा-आउसंतो समणा ! चेवेदं पाणगजायं पडिग्गहेण वा उस्सिंचियाणं ओयत्तियाणं गिण्हाहि।

तहप्पगारं पाणगजायं सयं वा गेण्हेज्जा, परो वा से दिज्जा, फासुयं लाभे संते पडिगाहेज्जा।

४३. से भिक्खू वा २ से जं पुण पाणगं जाणेज्जा—अणंतरहियाए पुढवीए जाव संताणए उद्धट्टु उद्धट्टु णिक्खित्ते सिया। अस्संजए भिक्खुपडियाए उदउल्लेण वा ससणिद्धेण वा सकसाएण वा मत्तेण वा सीओदयेण वा संभोइत्ता आहट्टु दलएज्जा। तहप्पगारं पाणगजायं अफासुयं लाभे संते णो पडिगाहेज्जा।

एयं खलु तस्स भिक्खुस्स वा भिक्खुणीए सामग्गियं।

॥ सत्तमो उद्देसओ सम्मत्तो ॥

४२. साधु या साध्वी गृहस्थ के घर में पानी ग्रहण करने के लिए प्रविष्ट होने पर अगर इस प्रकार का पानी जाने, जैसे कि (क) तिलों का धोया हुआ उदक, (ख) तुषोदक, (ग) यवोदक, (घ) उबले हुए चावलों का ओसामण (मांड), (ङ) कांजी का बर्तन धोया हुआ जल, (च) प्रासुक उष्ण जल अथवा इसी प्रकार का अन्य द्राक्षा का धोया हुआ पानी (धोवन) इत्यादि विभिन्न जलों को पहले देखकर ही साधु गृहस्थ से कहे—"आयुष्मन् गृहस्थ या आयुष्मती बहन ! क्या मुझे इस (धोवन पानी) में से किसी (पानक) को दो?" तब वह गृहस्थ यदि कहे कि "आयुष्मन् श्रमण ! जल पात्र मे रखे हुए पानी को अपने पात्र से आप स्वय उलीचकर या नितारकर पानी ले ले।" गृहस्थ के इस प्रकार कहने पर साधु उस पानी को स्वयं ले ले अथवा गृहस्थ स्वयं देता हो तो उसे प्रासुक जानकर ग्रहण कर ले।

४३. साधु या साध्वी गृहस्थ के घर पानी के लिए प्रवेश करने पर पानी के सम्बन्ध में यदि जाने कि गृहस्थ ने प्रासुक जल को सचित्त पृथ्वी पर, संस्निग्ध पृथ्वी पर, मकड़ी के जालों से युक्त पदार्थ पर रखा है अथवा सचित्त पदार्थ से युक्त बर्तन से निकालकर रखा है। गृहस्थ सचित्त जल टपकते हुए अथवा गीले हाथों से भिक्षु को देने के उद्देश्य से सचित्त पृथ्वी आदि से युक्त बर्तन से या प्रासुक जल के साथ सचित्त (शीतल) उदक मिलाकर लाकर दे रहा है, तो उस प्रकार के जल को अप्रासुक मानकर ग्रहण न करे।

यह (आहार-पानी की गवेषणा का विवेक) उस भिक्षु या भिक्षुणी की (ज्ञान, दर्शन, चारित्रादि आचार सम्बन्धी) समग्रता है।

DISCRETION OF ACCEPTING DRINKS

42. A *bhikshu* or *bhikshuni* while entering the house of a layman in order to seek water should find if any of these types of

water is available—(a) Sesame seed wash, (b) barley wash, (c) yawokak, (d) rice-water, (e) water which has been used to wash a pot in which *kanji* (sour gruel) is kept, (f) clean boiled water, wash of raisin like things or any other such water. If it is so, he should first see that water and tell the layman—"Long lived brother or sister ! Would you please give me any one of these washes (drinks)?" Now if the layman says—"Long lived *Shraman* ! Please collect yourself with or pour in your pot from the storage vessel." The ascetic may collect that drink himself considering it to be pure. He may also take if the layman gives it to him.

43. A *bhikshu* or *bhikshuni* while entering the house of a layman in order to seek water should find if the layman has placed that acceptable water on *sachit* (contaminated with living organisms) earth, damp ground, on a thing covered with cob-webs, or has taken out and kept in a pot having *sachit* thing, in order to offer it to the ascetic, the layman is bringing that drink with wet and dripping hands, in a pot smeared with *sachit* sand (moist or dirty) (etc.) or after mixing *sachit* water in purified water. If it is so, he should refrain from taking any such water or drink considering it to be contaminated and unacceptable.

This (prudence about exploration of food and water) is the totality (of conduct including that related to knowledge) for that *bhikshu* or *bhikshuni*.

विवेचन–आहार की एषणा के पश्चात् इन सूत्रो में पानी की एषणा के विषय में बताया गया है कि साधु ऐसा अचित्त पानी ग्रहण करे जिसमे न तो जल काय के जीव विद्यमान हो, न ही वह सचित्त वस्तुओं से स्पृष्ट हो। ऐसे पेय व ग्राह्य पानी को 'पानक' कहा गया है। तीन उबाल देकर गर्म किया हुआ पानी अचित्त हो जाता है, उसके अलावा तिल, चावल आदि के धोवन के नौ प्रकार इन सूत्रों मे बताये हैं। 'तहप्पगार' शब्द से इस प्रकार का अन्य पानी शस्त्र परिणत होने पर जिसका वर्ण, गंध, रस बदल गया हो वह भी भिक्षु के लिए ग्राह्य है, जैसे द्राक्षा का पानी, राख से माँजे हुए या धोये हुए वर्तनों का पानी भी प्रासुक माना गया है।

सूत्र ४३ में बताये गये सभी प्रकार के पानक उनका वर्ण, गंध, रस बदलने से ग्राह्य हो जाता है। परन्तु यदि उनमें उन फलों की गुठली, छिलके या बीज आदि गिरे हों तो दाता उस पानक को छानकर देवे तब भी वह सचित्त संस्पृष्ट होने से अग्राह्य माना गया है। *(हिन्दी टीका, पृ ८७१)*

Elaboration—After food, these aphorisms explain about the exploration of water. An ascetic should not accept water which is infested with water-bodied beings or is in contact with *sachit* (contaminated with living organisms) things. Such drinks or water are called *panak.* After boiling three times, water becomes *achit* (uncontaminated). Besides this, nine types of washes including those of sesame seeds, rice (etc.) are mentioned in these aphorisms. *'Tahappagaram'* indicates inclusion of other types of water having a changed taste, smell, colour due to its transformation by use of weapon, in the list of acceptables This includes raisin wash and water with which a utensil cleaned with ash has been washed.

All the drinks *(panak)* mentioned in aphorism 43 become acceptable due to the change in their taste, smell, colour But if such water contains fruit-kernel, vegetable or fruit skin or seeds, it is unacceptable even if it is offered after filtering This is because it is considered as being touched by sachit things (*Hindi Tika,* p 871)

विशेष शब्दों के अर्थ–उस्सेइम–आटा ओसनते समय जिस पानी में हाथ धोए जाते हैं, डुबोये जाते हैं, वह पानी। ससेइमं–तिल धोया हुआ पानी अथवा अरणि या लकडी बुझाया हुआ पानी। अहुणाधोयं–ताजा धोया हुआ (धोवन) पानी। अणंबिलं–जिसका स्वाद चलित न हुआ हो। अव्वुक्कंतं–जिसके रसादि अतिक्रान्त न हुए हों। अपरिणयं–वर्णादि परिणत (परिवर्तन) न हुआ हो। अविद्धत्थं–विरोधी शस्त्र द्वारा जिसके जीव विध्वस्त न हुए हों। अफासुयं–सचित्त। आयामं–चावलों का ओसामण–माड। सोवीर–काजी या कांजी का पानी। सुद्धवियड–शुद्ध उष्ण प्रासुक जल। उस्सिचियाणं–उलीचकर। ओयत्तियाणं–उलट या उँड़ेलकर। सकसाएण मत्तेण–सचित्त पृथ्वी आदि के अवयव से सलिश्ट पात्र (बर्तन) से।

॥ सप्तम उद्देशक समाप्त ॥

Technical Terms : *Usseimam*—the water in which hands are dipped or washed while making dough. *Samseimam*—sesame seed wash or water in which a burning stick or ambers are dipped. *Ahunadhoyam*—

fresh wash. *Anambilam*—water without change in taste *Avvukkantam*—water without change in properties like taste. *Aparinayam*—water without change in colour (etc.). *Aviddhattham*—water in which the contaminating beings have not been destroyed by weapon (unmodified) *Afasuyam—sachit* or infested with beings. *Ayamam*—rice-water. *Soviram*—sour gruel *Suddhaviyadam*—pure, warm and faultless water *Ussinchiyanam*—to take out with a smaller vessel *Oyattiyanam*—taking out by tilting or pouring from a pot. *Sakasayena mattena*—served in a pot smeared with *sachit* sand (moist or dirty)

|| END OF LESSON SEVEN ||

अट्ठमो उद्देसओ	अष्टम उद्देशक	LESSON EIGHT

अग्राह्य-पानक निषेध

४४. से भिक्खू वा २ जाव समाणे से जं पुण पाणगजायं जाणेज्जा, तं जहा–(क) अंबपाणगं वा (ख) अंबाडगपाणगं वा (ग) कविट्ठपाणगं वा (घ) माउलिंगपाणगं वा (ङ) मुद्दियापाणगं वा (च) दालिमपाणगं वा (छ) खज्जूरपाणगं वा (ज) नालिएरपाणगं वा (झ) करीरपाणगं वा (ञ) कोलपाणगं वा (ट) आमलगपाणगं वा (ठ) चिंचापाणगं वा, अण्णयरं वा तहप्पगारं पाणगजायं सअट्ठियं सबीयगं अस्संजए भिक्खुपडियाए छव्वेण वा दूसेण वा वालगेण वा अवीलियाण परिपीलियाण परिस्साइयाण आहट्टु दलएज्जा। तहप्पगारं पाणगजायं अफासुयं लाभे संते णो पडिगाहेज्जा।

४४. साधु या साध्वी गृहस्थ के घर में पानी के लिए प्रवेश करने पर पानक के विषय में इस प्रकार जाने, जैसे कि–(क) आम्रफल का पानी, (ख) अंबाडक फल का पानी, (ग) कपित्थ (कैथ) फल का पानी, (घ) बिजौरे का पानी, (ङ) द्राक्षा का पानी, (च) दाड़िम (अनार) का पानी, (छ) खजूर का पानी, (ज) नारियल (डाभ) का पानी, (झ) करीर (करील) का पानी, (ञ) बेर का पानी, (ट) आँवले के फल का पानी, (ठ) इमली का पानी, इसी प्रकार का अन्य पानी है, जोकि गुठली सहित, छाल आदि सहित है, या बीज मिश्रित है, उसे यदि गृहस्थ साधु के निमित्त बाँस की छलनी से, वस्त्र से, गाय आदि के पूँछ के बालों से बनी छलनी से एक बार या बार-बार छानकर (उसमें रहे हुए छाल, बीज, गुठली आदि को अलग करके) लाकर देने लगता है, तो इस प्रकार के पानक को अप्रासुक और अनेषणीय मानकर मिलने पर भी ग्रहण न करे।

CENSURE OF UNACCEPTABLE DRINKS

44. A *bhikshu* or *bhikshuni* while entering the house of a layman in order to seek water should find if the layman has wash of—(a) mango, (b) *ambadak* fruit, (c) *kapittha* fruit (Feronia limonia), (d) *bijaura* (a species of lemon), (e) raisins, (f) pomegranate, (g) date, (h) coconut, (i) *kareel* (Caooaris decidua), (j) *ber* (plum or jujube), (k) *amla* (Emblica officinalis), (l) tamarind, or other such things and it contains kernel, skin or seeds. Also if the laymen intends to offer it after filtering it once

or many times with a strainer made up of cane, cloth or hair from cow-tail (separatıng kernel, skin or seeds). If it is so, he should refrain from taking any such drink considering it to be contaminated and unacceptable.

विशेष शब्दों के अर्थ–अबाडग–अम्बाहड (अम्वाडी) नामक फल। माउलिंग–बिजौरे का फल। मुद्दिया–द्राक्षा। कोल–वेर। आमलग–आँवला। चिचा–इमली। अट्ठिय–गुठली सहित। सकणुअं–छाल आदि सहित। छव्वेण–वाँस की छलनी से। वालगेण–बालों से बनी छलनी से। आवीलियाण परिपीलियाण–एक बार मसल या निचोड़कर, बार-बार मसल या निचोडकर। परिस्साइयाण–छानकर। *(वृत्ति पत्र ३४६)*

Technical Terms : *Ambadag—ambahad* or *ambada* or *amada* fruıt (Spondias pınnata) *Maulıng—bıjaura* fruit (a specıes of lemon, citrus medıca) *Muddıya*—raisıns *Kol*—plum or jujube *Amalag*—Emblica officınalıs *Chıncha*—tamarınd *Atthıyam*—wıth kernel. *Sakanuam*—with skın *Chhavvena*—filtered wıth straıner made up of cane. *Valagena*—filtered with straıner made up of haır *Aveelıyana Parıpılıyana*—crushed or squeezed once *Parıssaıyana*—after filtering. *(Vrıttı leaf 346)*

आहार-गन्ध में आसक्ति की वर्जना

४५. से भिक्खू वा २ आगंतारेसु वा आरामागारेसु वा गाहावइगिहेसु वा परियावसहेसु वा अन्नगंधाणि वा पाणगंधाणि वा सुरभिगंधाणि वा आघाय २ से तत्थ आसायपडियाए मुच्छिए गिद्धे गढिए अज्झोववण्णे 'अहो गंधो, अहो गंधो' णो गंधमाघाएज्जा।

४५. आहार-प्राप्ति के लिए जाते समय भिक्षु या भिक्षुणी पथिक-गृहों (धर्मशालाओं) में, उद्यान-गृहों में, गृहस्थों के घरों में या परिव्राजकों के मठों में अन्न की सुगन्ध, पेय पदार्थ की सुगन्ध तथा कस्तूरी आदि गन्ध को सूँघ-सूँघकर उस सुगन्ध के आस्वादन की इच्छा से उसमें मूर्च्छित, गृद्ध, ग्रस्त एवं आसक्त होकर कि–"वाह ! क्या ही अच्छी सुगन्धि है !" कहता हुआ उस गन्ध की सुवास न ले।

CENSURE OF CRAVING FOR SMELL OF FOOD

45. When a *bhıkshu* or *bhıkshunı* while going to seek alms passes *dharmashalas* (boarding houses), garden houses, houses

of laymen or *maths* (staying place of *parivrajaks*) and gets the scent of food, drinks or aromatic things, he should refrain from indulging in smelling these with fondness, greed, attachment or craving and exclaiming—"Great ! How pleasant an aroma !"

विशेष शब्दों के अर्थ-मुच्छिए-मोह या रागग्रस्त। गिद्धे-लालची या लोभाकुल। गढिए-गृद्ध, बहुत अधिक आसक्त, बँधा हुआ। अज्झोववन्ने-विषयों के अधीन हुआ।

Technical Terms : *Muchhiye (murchhit)*—with eagerness, with fondness. *Giddhe (griddh)*—with greed. *Gadhiye (grast)*—wistful, with attachment *Ajjhovavanne*—with craving

अपक्व शस्त्र-अपरिणत वनस्पति आहार-ग्रहण का निषेध

४६. से भिक्खू वा २ से जं पुण जाणेज्जा सालुयं वा विरालियं वा सासवणालियं वा, अण्णयरं वा तहप्पगारं आमगं असत्थपरिणयं अफासुयं लाभे संते णो पडिगाहेज्जा।

४७. से भिक्खू वा २ से जं पुण जाणेज्जा पिप्पलिं वा पिप्पलिचुण्णं वा मिरियं वा मिरियचुण्णं वा सिंगबेरं वा सिंगबेरचुण्णं वा, अण्णयरं वा तहप्पगारं आमगं असत्थपरिणयं अफासुयं लाभे संते णो पडिगाहेज्जा।

४८. से भिक्खू वा २ से जं पुण पलंबजायं जाणेज्जा, तं जहा-अंबपलंबं वा अंबाडगपलंबं वा तालपलंबं वा झिज्झिरिपलंबं वा सुरभिपलंबं वा सल्लइपलंबं वा, अण्णयरं वा तहप्पगारं पलंबजायं आमगं असत्थपरिणयं अफासुयं अणेसणिज्जं जाव लाभे संते णो पडिगाहेज्जा।

४६. साधु या साध्वी गृहस्थ के घर में भिक्षा के लिए प्रवेश करने पर यदि यह जाने कि वहाँ कमलकन्द, पलाशकन्द, सरसो की बाल तथा अन्य इसी प्रकार का कच्चा कन्द है, जिसको शस्त्र-परिणत नहीं हुआ है, ऐसे कन्द आदि को अप्रासुक जानकर ग्रहण न करे।

४७. साधु या साध्वी गृहस्थ के घर में भिक्षा के लिए प्रविष्ट होने पर यह जाने कि वहाँ पिप्पली, पिप्पली का चूर्ण, मिर्च या मिर्च का चूर्ण, अदरक या अदरक का चूर्ण तथा इसी प्रकार का अन्य कोई पदार्थ या चूर्ण, जो कच्चा (हरा) और शस्त्र-परिणत नहीं है, उसे अप्रासुक जानकर ग्रहण न करे।

४८. साधु या साध्वी गृहस्थ के घर में आहार के लिए प्रवेश करने पर वहाँ प्रलम्ब-फल (लटकने वाले फल) के ये भेद जाने, जैसे कि-आम्र-प्रलम्ब-फल (आमों का

गुच्छा), अम्बाडग-फल, ताल-प्रलम्ब-फल, वल्ली-प्रलम्ब-फल, सुरभि-प्रलंब-फल, शल्यकी का प्रलम्ब-फल तथा इसी प्रकार का अन्य कोई प्रलम्ब-फल का, जो कच्चा और जिसे शस्त्र-परिणत नहीं हुआ है उसे अप्रासुक समझकर ग्रहण न करे।

CENSURE OF RAW VEGETABLE

46. A *bhikshu* or *bhikshuni* on entering the house of a layman in order to seek alms should find if he is offered *kamal-kand, palash-kand,* mustard stalks or other such bulbous roots that are raw and have not been transformed by weapon (unmodified). If it is so, he should refrain from taking any such things considering them to be contaminated and unacceptable.

47. A *bhikshu* or *bhikshuni* on entering the house of a layman in order to seek alms should find if he is offered *pippali* (Piper longum) or its powder, pepper or its powder, ginger or its powder, or other such things and their powders that are raw and unmodified. If it is so, he should refrain from taking any such things considering them to be contaminated and unacceptable

48. A *bhikshu* or *bhikshuni* on entering the house of a layman in order to seek alms should know about the following types of dangling fruits—mango, *ambadag* (Spondias pinnata), *taal* (a type of palm; Borassus flabellifer), *valli, surabhi, shalyaki* and other such dangling fruits. If he is offered such fruits that are raw and unmodified, he should refrain from taking these considering them to be contaminated and unacceptable.

४९. से भिक्खू वा २ से जं पुण पवालजायं जाणेज्जा, तं जहा–आसोत्थपवालं वा णिग्गोहपवालं वा पिलंखुपवालं वा णिपूरपवालं वा सल्लइपवालं वा, अण्णयरं वा तहप्पगारं पवालजायं आमगं असत्थपरिणयं अफासुयं अणेसणिज्जं जाव णो पडिगाहेज्जा।

५०. से भिक्खू वा २ से जं पुण सरडुयजायं जाणेज्जा, तं जहा–सरडुयं वा कविट्ठसरडुयं वा दाडिमसरडुयं वा बिल्लसरडुयं वा, अण्णयरं वा तहप्पगारं सरडुयजायं आमं असत्थपरिणयं अफासुयं जाव णो पडिगाहेज्जा।

५१. से भिक्खू वा २ से जं पुण मंथुजायं जाणेज्जा, तं जहा–उंबरमंथुं वा णिग्गोहमंथुं वा पिलक्खुमंथुं वा आसोत्थमंथुं वा, अण्णयरं वा तहप्पगारं मंथुजायं आमयं दुरुक्कं साणुबीयं अफासुयं जाव णो पडिगाहेज्जा।

५२. से भिक्खू वा २ से जं पुण जाणेज्जा, आमडागं वा पूतिपिण्णागं वा मंथुं वा मज्जं वा सप्पिं वा खोलं वा पुराणगं, एत्थ पाणा अणुप्पसूआ, एत्थ पाणा जाया, एत्थ पाणा संवुड्ढा, एत्थ पाणा अवक्कंता, एत्थ पाणा अपरिणता, एत्थ पाणा अविद्धत्था, णो पडिगाहेज्जा।

४९. साधु या साध्वी गृहस्थ के घर में आहारार्थ प्रवेश करने पर अगर वहाँ प्रवाल (–नये पत्ते, कोंपल) के ये भेद जाने, जैसे कि–पीपल का प्रवाल, बड़ का प्रवाल, विफरी वृक्ष का प्रवाल, नन्दी वृक्ष का प्रवाल, शल्यकी (सल्लकी) वृक्ष का प्रवाल या अन्य उस प्रकार का कोई प्रवाल है, जो कच्चा और शस्त्र-परिणत नहीं है, तो ऐसे प्रवाल को अप्रासुक जानकर मिलने पर ग्रहण न करे।

५०. साधु या साध्वी गृहस्थ के घर में भिक्षार्थ प्रवेश करने पर सरडु (–बिना गुठली वाले कच्चे फल) के ये भेद जाने, जैसे कि–शलाद (–आम्र) फल, कपित्थ (कैथ) का कोमल फल, अनार का कोमल फल, बेल (बिल्व) का कोमल फल अथवा अन्य इसी प्रकार का कोमल फल, जोकि कच्चा और शस्त्र-परिणत नहीं है, तो उसे अप्रासुक जानकर प्राप्त होने पर भी न लेवे।

५१ साधु या साध्वी गृहस्थ के घर में भिक्षा के लिए जाने पर मन्थु–चूर्ण के (हरी वनस्पति के) ये भेद जाने, जैसे कि–उदुम्बर (गुल्लर) का चूर्ण, बड़ का चूर्ण, पीपरी फल का चूर्ण, पीपल का चूर्ण अथवा अन्य इसी प्रकार का चूर्ण है, जोकि अभी कच्चा व थोड़ा पीसा हुआ है और जिसकी योनि–बीज नष्ट नहीं हुआ है, तो उसे अप्रासुक और अनेषणीय जानकर प्राप्त होने पर भी न लेवे।

५२. साधु या साध्वी गृहस्थ के घर भिक्षा के लिए प्रवेश करने पर यह जान जाए कि वहाँ कच्ची (अधपकी) भाजी है, सड़ी हुई खली है, मधु, मद्य, घृत और मद्य के नीचे का कीट (कीचड़) बहुत पुराना है तो उन्हें ग्रहण न करे, क्योंकि उनमें प्राणी पुनः उत्पन्न हो जाते हैं, पुनः जन्मते हैं, संवर्धित होते हैं, इनमे प्राणियों का व्युत्क्रमण नहीं होता, न ही विध्वंस होता है। ये शस्त्र-परिणत नही होते इसलिए मिलने पर भी उन पदार्थों को ग्रहण नहीं करे।

49. A *bhikshu* or *bhikshuni* on entering the house of a layman in order to seek alms should know about the following types of

sprouts or sprigs—*pipal* (Ficurs religiosa), *banyan, pippari* (Piper Longum), *nandi, shalyaki* and other such fresh shoots. If he is offered such raw shoots that are raw and unmodified, he should refrain from taking these considering them to be contaminated and unacceptable.

50. A *bhikshu* or *bhikshuni* on entering the house of a layman in order to seek alms should know about the following types of soft (without kernel) fruits or berries—mango, *kapittha,* pomegranate, *bel* (Aegle marmelos) and other such soft fruits. If he is offered such fruits that are raw and unmodified, he should refrain from taking these considering them to be contaminated and unacceptable.

51. A *bhikshu* or *bhikshuni* on entering the house of a layman in order to seek alms should know about the following types of powders or pastes—those of *udumber* fruit (Ficus glomerata), banyan fruit, *pippari* fruit, *pipal* fruit and other such powders and pastes. If he is offered these powders and pastes that are not properly ground and seeds not completely destroyed, he should refrain from taking these considering them to be contaminated and unacceptable.

52. A *bhikshu* or *bhikshuni* on entering the house of a layman in order to seek alms should find if he is offered half cooked vegetable, rotten bran and honey, wine, butter having decaying dreg. If it is so, he should know that living organisms are again created, born and thrive in these and organism in these are not removed, killed or destroyed Therefore he should refrain from taking these considering them to be contaminated and unacceptable.

५३. से भिक्खू वा २ से जं पुण जाणेज्जा, उच्छुमेरगं वा अंककरेलुयं वा णिक्खारगं वा कसेरुगं वा सिंघाडगं वा पूतिआलुगं वा, अण्णयरं वा तहप्पगारं आमं असत्थपरिणयं जाव णो पडिगाहेज्जा।

५४. से भिक्खू वा २ से जं पुण जाणेज्जा, उप्पलं वा उप्पलणालं वा भिसं वा भिसमुणालं वा पोक्खलं वा पोक्खलथिभगं वा, अण्णयरं वा तहप्पगारं जाव णो पडिगाहेज्जा।

५५. से भिक्खू वा २ से जं पुण जाणेज्जा, अग्गबीयाणि वा मूलबीयाणि वा खंधबीयाणि वा पोरबीयाणि वा अग्गजायाणि वा मूलजायाणि वा खंधजायाणि वा पोरजायाणि वा णण्णत्थ तक्कलिमत्थएण वा तक्कलिसीसेण वा णालिएरमत्थएण वा खज्जूरिमत्थएण वा तालमत्थएण वा, अण्णयरं वा तहप्पगारं आमं असत्थपरिणयं जाव णो पडिगाहेज्जा।

५३. साधु या साध्वी गृहस्थ के घर में भिक्षार्थ प्रवेश करने पर यह जाने कि वहाँ इक्षुखण्ड–गंडेरी है, अंककरेलु, निक्खारक, कसेरू, सिंघाड़ा एवं पूतिआलुक नामक वनस्पति है अथवा अन्य इसी प्रकार की वनस्पतियाँ हैं, जो अपक्व तथा शस्त्र-परिणत नहीं है, तो उसे अप्रासुक और अनेषणीय जानकर मिलने पर भी ग्रहण न करे।

५४. साधु या साध्वी गृहस्थ के यहाँ भिक्षा के लिए प्रवेश करने पर जाने कि वहाँ नीलकमल आदि या कमल की नाल है, पद्म कन्दमूल है या पद्मकन्द के ऊपर की लता है, पद्मकेसर है तथा इसी प्रकार का अन्य कन्द है, जो कच्चा है, शस्त्र-परिणत नहीं हुआ है तो उसे अप्रासुक जानकर ग्रहण न करे।

५५. साधु या साध्वी गृहस्थ के घर मे भिक्षा के लिए प्रवेश करने पर जाने कि वहाँ अग्र-बीज वाली, मूल-बीज वाली, स्कन्ध-वीज वाली तथा पर्व-बीज वाली वनस्पति है एवं अग्र-जात, मूल-जात, स्कन्ध-जात तथा पर्व-जात वनस्पति है, (इनमें यह विशेषता है कि ये अग्र, मूल आदि पूर्वोक्त भागों के सिवाय अन्य भाग से उत्पन्न नहीं होतीं) तथा कदली का गूदा (गर्भ), कदली का स्तबक, नारियल का गूदा, खजूर का गूदा, ताड़ का गूदा तथा अन्य इसी प्रकार की कच्ची और शस्त्र-परिणत नहीं हुई वनस्पति है, उसे अप्रासुक और अनेषणीय समझकर मिलने पर भी ग्रहण न करे।

53. A *bhikshu* or *bhikshuni* on entering the house of a layman in order to seek alms should find if he is offered sugar-cane slices, *ankakarelu, nikkharak, kaseru* (Cyperus esculentus), *singhada* (Trapa natans), *putialuk* or other such vegetables that are raw and unmodified. If it is so, he should refrain from taking any such things considering them to be contaminated and unacceptable.

54. A *bhikshu* or *bhikshuni* on entering the house of a layman in order to seek alms should find if he is offered blue lotus, lotus-stalk, lotus-bulb, lotus-roots, lotus-pollen or other such vegetables that are raw and unmodified. If it is so, he should refrain from taking any such things considering them to be contaminated and unacceptable.

55. A *bhikshu* or *bhikshuni* on entering the house of a layman in order to seek alms should find if he is offered vegetables that grow when the tip is planted *(agra-beej)*, the root-bulb is planted like potatoes *(mool-beej)*, the knot is planted like sugar-cane *(parv-beej)*, the branch is planted like roses *(skandh-beej)* and the vegetables so produced and also pulp and blossoms of plantain, coconut, date, *taad* or *taal* (a type of palm; Borassus flabellifer) and other such vegetables that are raw and unmodified. If it is so, he should refrain from taking any such things considering them to be contaminated and unacceptable

५६. से भिक्खू वा २ से जं पुण जाणेज्जा, उच्छुं वा काणगं वा अंगारिगं वा समिस्सं विगदूमियं वेत्तग्गगं वा कदलिऊसुगं वा अण्णयरं वा तहप्पगारं आमं असत्थपरिणयं जाव णो पडिगाहेज्जा।

५७. से भिक्खू वा २ से जं पुण जाणेज्जा, लसुणं वा लसुणपत्तं वा लसुणणालं वा लसुणकंदं वा लसुणचोयगं वा, अण्णयरं वा तहप्पगारं आमं असत्थपरिणयं जाव णो पडिगाहेज्जा।

५८. से भिक्खू वा २ से जं पुण जाणेज्जा अच्छियं वा कुंभिपक्कं निंदुगं वा वेलुगं वा कासवनालियं वा, अण्णयरं वा आमं असत्थपरिणयं जाव णो पडिगाहेज्जा।

५६. साधु या साध्वी गृहस्थ के घर मे प्रवेश करने पर यह जाने कि वहाँ ईख है, छेद वाला काना ईख है तथा जिसका रग बदल गया है, जिसकी छाल फट गई है, सियारों ने थोड़ा-सा खा भी लिया है, ऐसा फल है तथा बेंत का अग्र भाग है, कदली का मध्य भाग है एवं इसी प्रकार की अन्य कोई वनस्पति है, जो कच्ची और अशस्त्र-परिणत है, तो उसे साधु अप्रासुक और अनेषणीय समझकर मिलने पर भी लेवे।

५७. साधु या साध्वी गृहस्थ के घर में आहारार्थ प्रविष्ट होने पर जाने कि वहाँ लहसुन है, लहसुन का पत्ता, उसकी नाल (डंडी), लहसुन का कंद या लहसुन की बाहर की (गीली) छाल या अन्य उस प्रकार की वनस्पति है, जोकि कच्ची और शस्त्र-परिणत नहीं हुई है, तो उसे अप्रासुक और अनेषणीय मानकर ग्रहण न करे।

५८. साधु या साध्वी गृहस्थ के घर में भिक्षा के लिए जाने पर यह देखे कि वहाँ आस्थिक वृक्ष के फल, टैम्बरु के फल, टिम्ब (बेल) का फल, काश्यपालिका (श्रीपर्णी) का फल अथवा अन्य इसी प्रकार के फल, जोकि गड्ढे में दबाकर धुएँ आदि से पकाये गये हों, कच्चे (बिना पके) हैं तथा शस्त्र-परिणत नहीं हुए हैं, ऐसे फल को अप्रासुक और अनेषणीय समझकर नहीं लेना चाहिए।

56. A *bhıkshu* or *bhıkshunı* on entering the house of a layman in order to seek alms should find if he is offered sugar-cane, which is full of holes or withering; or peeling off or chewed by jackals; or the points of reeds or pulp of plantains that are raw and unmodified. If it is so, he should refrain from taking any such things considering them to be contaminated and unacceptable.

57. A *bhikshu* or *bhıkshunı* on entering the house of a layman in order to seek alms should find if he is offered garlic or its leaves or stalk or bulb or integument that are raw and unmodıfied If it is so, he should refrain from taking any such things considering them to be contaminated and unacceptable.

58. A *bhıkshu* or *bhıkshunı* on entering the house of a layman in order to seek alms should find if he is offered roasted or fumigated fruits of *asthık, tembaru* (Diospyros tomentosa), *timb (bel), shriparnı* or other such fruits, that are raw and unmodified. If it is so, he should refrain from taking any such things considering them to be contaminated and unacceptable.

५९. से भिक्खू वा २ से जं पुण जाणेज्जा, कणं वा कणकुंडगं वा कणपूयलियं वा चाउलं वा चाउलपिट्ठं वा तिलं वा तिलपिट्ठं वा तिलप्पडगं वा, अण्णयरं वा तहप्पगारं आमं असत्थपरिणयं जाव लाभे संते णो पडिगाहेज्जा।

एयं खलु तस्स भिक्खुस्स वा भिक्खुणीए वा सामग्गियं।

॥ अट्ठमो उद्देसओ सम्मत्तो ॥

५९. आहार के निमित्त गृहस्थ के घर में प्रविष्ट हुए साधु या साध्वी यह जाने कि वहाँ शाली धान आदि अन्न के कण हैं, कणों से मिश्रित छाणक (चोकर) है, कणों से मिश्रित कच्ची रोटी चावल, चावलों का आटा, तिल, तिलकूट, तिलपपडी (तिलपट्टी) है अथवा अन्य उसी प्रकार का पदार्थ है जोकि कच्चा और अशस्त्र-परिणत है, तो उसे अप्रासुक और अनेषणीय जानकर मिलने पर भी ग्रहण न करे।

यह (वानस्पतिकायिक आहार-गवेषणा) उस भिक्षु या भिक्षुणी की (ज्ञान, दर्शन, चारित्रादि से सम्बन्धित) समग्रता है।

59. A *bhikshu* or *bhikshuni* on entering the house of a layman in order to seek alms should find if he is offered seed-grains, grain-mixed bran, bread made with grain-mixed flour, rice, rice-flour, sesame, ground sesame, cakes of sesame or other such things that are raw and unmodified. If it is so, he should refrain from taking any such things considering them to be contaminated and unacceptable.

This (exploration of vegetarian food) is the totality (of conduct including that related to knowledge) for that *bhikshu* or *bhikshuni*.

विवेचन–सूत्र ४५ से ५९ तक–मुनि के भिक्षा सम्बन्धी इन सूत्रों में अहिसा की दृष्टि से मुख्य रूप में विचार किया गया है। आहार का मुख्य स्रोत वनस्पति ही है। शास्त्र में वनस्पति के दस भेद बताये हैं–

मूले कंदे खंधे तया य साले तहप्पवाले य।
पत्ते पुप्फे य फले बीये दसमे य नायव्वा ॥ –*जिनदास चूर्णि दशवैकालिक, पृ १३८*

(१) मूल, (२) कन्द, (३) स्कन्ध, (४) त्वचा, (५) शाखा, (६) प्रवाल, (७) पत्र, (८) पुष्प, (९) फल, और (१०) बीज।

इनमें जो आहारोपयोगी भाग है, उसकी एषणीयता पर अहिंसा की दृष्टि से विचार किया गया है–

भेद

(१) अपक्व–कच्चा इसके लिए 'आम' शब्द का भी प्रयोग हुआ है।

(२) अर्ध-पक्व–आधा पका।

(३) अशस्त्र-परिणत–जिस पर कोई विरोधी शस्त्र नहीं लगा हो, जिस कारण वह सचित्त हो।

(४) अधिक उज्झित धर्मी–जिसका अधिक भाग फेंकने लायक हो।

(५) वासी, सडा, गला, जीवोत्पत्तियुक्त।

जो फल पककर वृक्ष से स्वयं नीचे गिर जाता है या पकने पर तोड लिया जाता है या पका लिया जाता है उसे पका कहते हैं। पक्व फल भी जब तक बीज, छिलका या गुठली सहित होता है सचित्त कहलाता है। जब उसे शस्त्र विदारित छेदन-भेदन कर बीज आदि दूर कर या अग्नि सस्कारित किया जाता है तव वह भिन्न अथवा शस्त्र-परिणत कहलाता है। अर्ध-पक्व तथा अर्ध-संस्कारित फल भी सचित्त तथा शस्त्र-अपरिणत होने से मुनि के लिए अग्राह्य कोटि में गिना गया है। *(बृहत्कल्पसूत्र, उद्देशक १, सूत्र १-२ की व्याख्या, कल्पसूत्र मुनि श्री कन्हैयालाल जी 'कमल')*

सूत्र ४५ से ५९ तक उस समय मे उपयोग में आने वाली या गृहस्थ के घर में सहज उपलब्ध होने वाली वनस्पति आदि की सूचना की गई है।

वृत्तिकार ने बताया है–अग्र-बीज का अर्थ है वह वनस्पति जिसके अग्र भाग में बीज होता है अथवा जिसका अग्र भाग बोने पर ही भूमि में उत्पन्न होता है।

सूत्र ५१ मे 'महु वा मज्जं वा' शब्द पर समीक्षा करते हुए आचार्य श्री आत्माराम जी म. लिखते है–पुराना मधु, मद्य और घृत नहीं लेना, क्योंकि पुराना होने से उसके रस विचलित होने पर त्रस जीवो की उत्पत्ति हो जाती है। वैसे मधु और घृत तो मुनि ग्रहण करते हैं, किन्तु इनके साथ 'मद्य' शब्द चिन्तनीय है। क्योकि साधु के लिए आगमों मे सर्वत्र 'मद्य' और 'माँस' अभक्ष्य और अग्राह्य बताया है। अतः यहाँ 'मद्य' का अर्थ शराब या मदिरा नही होकर किसी मदकारी वस्तु, जैसे–महुए का फल आदि हो सकता है। *(आचाराग, पृ ८८४)*

Elaboration—The aphorisms 45 to 59 are based mainly on *ahımsa.* The maın source of food ıs plants In scrıptures plants have been classified into ten main categories—

(1) *Mool* (root), (2) *kand* (bulbuous root), (3) *skandha* (trunk or stem), (4) *tvacha* (skin or bark), (5) *shakha* (branch), (6) *praval* (shoot), (7) *patra* (leaf), (8) *pushp* (flower), (9) *phal* (fruıt), and (10) *beej* (seed).

The acceptabılity of the eatable parts has been discussed here from the *ahımsa* angle—

CATEGORIES

(1) *Apakk*—raw; for this '*aam*' term has also been used

(2) *Ardh-pakk*—half ripe.

(3) Unmodified or not transformed by weapon. Such vegetables are *sachit* (life bearing)

(4) A larger portion of which is to be discarded.

(5) Stale, rotten, decaying, infected

A fruit that falls on its own or plucked from tree when ripe or ripened later is called a ripe fruit. Even a ripe fruit is called *sachit* as long as it contains kernel, seed and peel When it is cut or pierced with a weapon (knife etc) or cooked in fire then it comes into the category of transformed by weapon or modified. Half ripe or partially modified fruits are also unacceptable for an ascetic because they are still unmodified and therefore *sachit (Vrihatkalpa Sutra, Ch 1, Aphorism 1, 2, as explained in Kalpasutra by Muni Shri Kanhaiyalalji 'Kamal')*

The vegetables and other such things commonly available in a household during that period are mentioned in aphorisms 45 to 59

The commentator *(Vritti)* informs that *agrabeej* is that plant species which has seed at its tip or that whose tip grows into a plant when sown

Commenting on the phrase ***'mahum va majjam va'*** in aphorism 51, Acharya Shri Atmaramji M says—old honey, intoxicants or butter should not be taken because decay or fermentation occurs in these and mobile beings are created. Honey and butter are normally acceptable for ascetics but inclusion of *'madya'* (intoxicants or wines) with these appears to be a contradiction because everywhere in *Agams 'madya'* and *'mansa'* (meat) are classified as non-eatable and unacceptable Therefore it appears that here *'madya'* may mean intoxicating fruits like *mahua* or poppy and not wine or beverages

विशेष शब्दों के अर्थ—सालुयं-उत्पल-कमल का कन्द (जड़)। यह जलज कन्द होता है। विरालियं-पलाशकन्द, विदारिका का कन्द। यह कन्द स्थलज और पत्ते से उत्पन्न होता है। सासवनालिय-सर्षप (सरसो) की नाल। पिप्पलि-कच्ची हरी पीपर। पिप्पल चुण्णं-हरी पीपर को पीसकर उसकी चटनी बनाई जाती है या उसे कूटकर चूर्ण बनाया जाता है, उसे पीपर का चूर्ण कहते हैं। मिरियं-काली या हरी कच्ची मिर्च। सिंगबेर-कच्चा अदरक। पलंब-लटकने वाला फल।

पवाल–नवांकुर या किसलय, नया कोमल पत्ता। सरडुयं–जिसमें गुठली न बँधी हो, ऐसा कोमल (कच्चा) फल। मंथु–फल का कूटा हुआ चूर्ण, चूरा, बुकनी। आमयं–कच्चा। दुरुक्कं–थोडा पीसा हुआ। साणुबीयं–जिसका बीज योनि विध्वस्त न हुआ हो। उच्छुमेरकं–ईख का छिलका उतारकर छोटे-छोटे टुकड़े किये हुए हों, वह गंडेरी। अककरेलुअं–सिंघाडे की तरह जल में पैदा होने वाली वनस्पतियाँ हैं। अग्गबीयाणि–उत्पादक भाग को बीज कहते हैं जिसके अग्र भाग बीज होते हैं, जैसे–कोरंटक, जपापुष्प आदि वे अग्र-बीज कहलाते हैं। मूलबीयाणि–जिन (उत्पलकंद आदि) के मूल ही बीज हैं, वे। खंधबीयाणि–जिन (अश्वत्थ, थूहर, कैथ आदि) के स्कन्ध ही बीज हैं, वे। पोरबीयाणि–जिन (ईख आदि) के पर्व–पोर ही बीज है, वे। काणगं–छिद्र हो जाने से काना फल। अंगारियं–रंग बदला हुआ या मुर्झाया हुआ फल। संमिस्सं–जिसका छिलका फटा हुआ हो। विगदूमिय–सियारो द्वारा थोडा खाया हुआ। वेत्तग्गग–वेंत का अग्र भाग। लसुणचोयगं–लहसुन के ऊपर का कड़ा छिलका। आमडागं–कच्चा हरा पत्ता, जो अपक्व या अर्ध-पक्व हो। पूतिपिण्णागं–सडा हुआ खल। दशवैकालिक जिनदास चूर्णि के अनुसार 'पूति' का अर्थ सरसों की पिट्ठी का पिण्ड है। पिण्याक–खल।

'तक्कलीमत्थएण' (सूत्र ५४) का तात्पर्य–कन्दली के मस्तक; कदली के सिर, नारियल के मस्तक और खजूर के मस्तक के सिवाय अन्यत्र जीव नही होता। इनके मस्तक स्थान छिन्न होते ही जीव समाप्त हो जाता है।

॥ अष्टम उद्देशक समाप्त ॥

Technical Terms : *Saluyam—kamal-kand* or bulbous roots of lotus, these are aquatic roots *Viraliyam—palash-kand* or bulbous roots of *palash* (Butea monosperma); these grow in soil and are leaf bearing. *Sasavanaliyam*—mustard stalks. *Pippali*—Piper longum (green) *Pippal chunnam*—powder or paste of *pippal. Miriyam*—pepper (black or green). *Singaberam*—ginger (green). *Palamb*—dangling fruits. *Paval*—sprout or sprig. *Sarduyam*—soft fruits or berries where kernel or seed has not yet formed *Manthu*—powders or pastes made by pounding. *Amayam*—raw or unripe. *Durukkam*—partially ground *Sanubeeyam*—having seeds not completely destroyed *Uchhumerakam*—sugar-cane slices *Ankakareluam*—aquatic vegetables and fruits like *singhara. Aggabiyani (agra-beej)*—vegetables that grow when the tip is planted (*korantak, japapushpa* etc). *Moolbiyani (mool-beej)*—vegetables that grow when the root-bulb

is planted (potatoes). *Khandhabiyani (skandh-beej)*—vegetables that grow when the branch is planted (rose, *ashvatha, thuhar, kaith* etc.). *Porbiyani (parv-beej)*—vegetables that grow when the knot is planted (sugar-cane etc) *Kanagam*—full of holes. *Angariyam*—withered or discoloured. *Sammissam*—peeling off or cracked. *Vigadumiyam*—chewed by jackals *Vettaggagam*—tip of a reed *Lasunachoyagam*—integument of garlic *Amadagam*—green or raw leafy vegetable that is uncooked or half-cooked. *Putipinnagam*—rotten bran, according to the commentary *(Churni)* of *Dashavaikalika* by Jinadas *'puti'* means ball of mustard paste. *Pinyak*—bran.

'Takkalimatthayena' (aphorism 45)—top of *kandali, kandali,* coconut and dates have life only at the tip or head Once that is separated these become *achit* or lifeless

|| END OF LESSON EIGHT ||

नवमो उद्देसओ	नवम उद्देशक	LESSON NINE

आधाकर्मिक आहार आदि ग्रहण-निषेध

६०. इह खलु पाईणं वा पडीणं वा दाहिणं वा उदीणं वा संतेगइया सड्ढा भवंति गाहावइ वा जाव कम्मकरी वा। तेसिं च णं एवं वुत्तपुव्वं भवइ–जे इमे भवंति समणा भगवंतो सीलमंता वयमंता गुणमंता संजया संवुडा बंभचारी उवरया मेहुणाओ धम्माओ णो खलु एयंसि कप्पइ आहाकम्मिए असणे वा पाणे वा खाइमे वा साइमे वा भोत्तए वा पायए वा। से जं पुण इमं अम्हं अप्पणो अट्ठाए णिट्ठियं, तं जहा–असणं वा ४, सव्वमेयं समणाणं णिसिरामो, अवियाइं वयं पच्छा वि अप्पणो सयट्ठाए असणं वा ४ चेइस्सामो। एयप्पगारं णिग्घोसं सोच्चा णिसम्म तहप्पगारं असणं वा ४ अफासुयं अणेसणिज्जं जाव लाभे संते णो पडिगाहेज्जा।

६०. यहाँ (संसार में) पूर्व में, पश्चिम में, दक्षिण में या उत्तर दिशा मे कई सद्गृहस्थ तथा उनके परिवार आदि उनकी नौकर-नौकरानियाँ रहते हैं, वे बहुत श्रद्धावान् होते हैं और परस्पर मिलने पर इस प्रकार बातें करते हैं–"ये पूज्य श्रमण भगवान शीलवान, व्रतनिष्ठ, गुणवान, संयमी, आस्रवों का निरोध करने वाले ब्रह्मचारी एवं मैथुन-कर्म से सर्वथा निवृत्त हैं। इनको आधाकर्मिक अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य, लेना, खाना तथा पीना नहीं कल्पता है। अतः हमने अपने लिए अशनादि जो आहार बनाया है, वह सब हम इन श्रमणों को दे देंगे और हम अपने लिए बाद में अन्य अशन-पानादि आहार बना लेंगे।" उनके इस प्रकार के वार्त्तालाप को सुनकर अथवा (दूसरों से) जानकर, साधु या साध्वी इस प्रकार के अशनादि चतुर्विध आहार को अप्रासुक और अनेषणीय समझकर मिलने पर भी ग्रहण न करे।

CENSURE OF *ADHAKARMIK* FOOD

60. In this world there live many good citizens, their families and servants in east, west, south and north They are devout and when they come together they converse like this—"These revered *Shramans* are righteous, pious, virtuous, disciplined, hermetic (with respect to inflow of *karmas*), completely restrained and absolutely celibate. They can neither take, eat nor drink any *Aadhakarmik* (food specifically prepared for them) food (staple

food, liquids, general food and savoury food). Therefore, we will offer them whatever food we have prepared for ourselves and later cook some more for us." Hearing such conversation or knowing about it from others the *bhikshu* or *bhikshuni* should refrain from taking any such food, even if offered, considering it to be faulty and unacceptable

६१. से भिक्खू वा २ जाव समाणे वा वसमाणे वा गामाणुगामं वा दूइज्जमाणे, से जं पुण जाणेज्जा गामं वा जाव रायहाणि वा इमंसि खलु गामंसि वा जाव रायहाणिंसि वा संतेगइयस्स भिक्खुस्स पुरेसंथुया वा पच्छासंथुया वा परिवसंति, तं जहा–गाहावइ वा जाव कम्मकरी वा। तहप्पगाराइं कुलाइं णो पुव्वमेव भत्ताए वा पाणाए वा णिक्खमेज्ज वा पविसेज्ज वा। केवली बूया–आयाणमेयं।

पुरा पेहाए तस्स परो अट्ठाए असणं वा ४ उवकरेज्ज, वा उवक्खडेज्ज वा। अह भिक्खूणं पुव्वोवइट्ठा ४ जं णो तहप्पगाराइं कुलाइं पुव्वामेव भत्ताए वा पाणाए वा पविसेज्ज वा णिक्खमेज्ज वा।

से त्तमायाए एगंतमवक्कमेज्जा, एगंतमवक्कमित्ता अणावायमसंलोए चिट्ठेज्जा, से तत्थ कालेणं अणुपविसेज्जा, २ तत्थियरयेरेहिं कुलेहिं सामुदाणियं एसियं वेसियं पिंडवायं एसित्ता आहारं आहारेज्जा।

६१. कोई भिक्षु या भिक्षुणी शारीरिक अस्वस्थता तथा वृद्धावस्था के कारण एक ही स्थान पर स्थिरवास रहते हो या ग्रामानुग्राम विचरण करने वाले हो, किसी ग्राम मे यावत् राजधानी में भिक्षाचर्या के लिए जब गृहस्थो के यहाँ जाने लगे, तव यदि वे यह जाने कि इस गाँव मे यावत् राजधानी मे किसी भिक्षु के पूर्व-परिचित (माता-पिता आदि सम्बन्धीजन) या पश्चात्-परिचित सास-ससुर आदि गृहस्थ नौकर-नौकरानियाँ आदि श्रद्धालुजन रहते हैं तो इस प्रकार के घरो में भिक्षाकाल से पूर्व आहार-पानी के लिए आए-जाए नही। केवली भगवान कहते है–यह कर्मो के आने का कारण है।

क्योंकि समय से पूर्व अपने घर मे उन श्रमणों को आया देखकर वह गृहस्थ उनके लिए आहार बनाने के सभी साधन जुटाएगा, अथवा आहार तैयार करेगा। अतः भिक्षुओ के लिए तीर्थंकरों द्वारा पूर्वोपदिष्ट यह उपदेश है कि वह इस प्रकार के परिचित कुलों मे भिक्षाकाल से पूर्व आहार-पानी के लिए आए-जाए नहीं।

किन्तु वह स्वजनादि या परिचित घरों को जानकर ऐसे एकान्त स्थान में चला जाए, जहाँ कोई आता-जाता और देखता न हो, ऐसे एकान्त मे खड़ा हो जाए। भिक्षा का समय

होने पर ऐसे स्वजनादि वाले ग्राम मे यदि प्रवेश करे तो स्वजनादि से अतिरिक्त अन्यान्य घरों से सामुदानिक रूप से एषणीय निर्दोष आहार प्राप्त करके उसका उपभोग करे।

61. If a *bhikshu* or *bhikshuni*, staying at one place or itinerant, while going to houses of laymen in order to seek alms in a village or a city, comes to know that some householder relatives (parents and relatives and those of spouse), servants and other such devotees of some ascetic live in that village or city, he should refrain from going to such houses to seek alms before the prescribed time of alms-seeking. The omniscient has termed that as a cause of bondage of *karmas*.

This is because when the layman finds that ascetics have come, he will make all necessary arrangements and prepare food for them. Therefore, the message of omniscients for the ascetics is that they should not enter or leave the houses of such acquainted families to seek alms before the prescribed time of alms-seeking.

However, once he knows about such houses he should retire to a solitary place where nobody frequents or sees him. When he enters such village with known people at the alms-seeking hour, he should avoid such known houses and collect faultless and acceptable food, offered to him due to his garb by other families and eat it.

६२. अह सिया से परो कालेण अणुपविट्ठस्स आहाकम्मियं असणं वा ४ उवकरेज्ज वा उवक्खडेज्ज वा। तं चेगइओ तुसिणीओ उवेहेज्जा, आहडमेयं पच्चाइक्खिस्सामि। माइट्ठाणं संफासे। णो एवं करेज्जा।

से पुव्वामेव आलोएज्जा—आउसो ति वा भइणी ति वा णो खलु मे कप्पइ आहाकम्मियं असणं वा ४ भोत्तए वा पायए वा, मा उवकरेहिं, मा उवक्खडेहिं।

से सेवं वदंतस्स परो आहाकम्मियं असणं वा ४ उवक्खडेत्ता आहट्टु दलएज्जा। तहप्पगारं असणं वा ४ अफासुयं लाभे संते णो पडिगाहेज्जा।

६२. यदि कभी भिक्षा के समय साधु को आते हुए देख वह गृहस्थ उसके लिए आधाकर्मिक आहार बनाने के साधन जुटाने लगे या आहार बनाने लगे और उसे देखकर भी वह साधु इस अभिप्राय से चुपचाप देखता रहे कि "जब यह आहार लेकर आएगा, तभी उसे लेने से प्रतिरोध कर दूँगा।" तो वह माया स्थान का स्पर्श करता है। साधु ऐसा न करे।

वह पहले से ही (आहार तैयार करते देखकर) उनसे कहे-"आयुष्मन् गृहस्थ (भाई) या बहन ! इस प्रकार का आधाकर्मिक आहार खाना या पीना मुझे नहीं कल्पता है अतः मेरे लिए न तो इसके साधन एकत्रित करो और न इसे बनाओ।

उस साधु द्वारा ऐसा कहने पर भी यदि वह गृहस्थ आधाकर्मिक आहार बनाकर लाए और साधु को देने लगे तो वह साधु उस आहार को अप्रासुक जानकर ग्रहण न करे।

62. In case that layman sees the ascetic coming and proceeds to make arrangements for cooking or starts cooking *adhakarmik* food and even on seeing all this if the ascetic remains silent with the intention that he will object from accepting the food only when it is brought to him, he is resorting to deceit. An ascetic should not do so.

He should tell in advance (while the layman proceeds to cook)—"Long lived brother or sister ! I am not allowed to accept such *adhakarmic* food, therefore, please neither make arrangements for nor cook such food for me."

Even after this warning if that layman prepares, brings and offers such *adhakarmik* food, the ascetic should not take it considering it to be unacceptable.

विवेचन-सूत्र ६० से ६२ तक आधाकर्म दोष का प्रसंग है। आधाकर्म का अर्थ है-किसी खास साधु के लिए भोजन आदि पकाना। १६ प्रकार के उद्‌गम दोषों में यह पहला दोष है। साधु को यह दोष चार प्रकार से लगता है-(१) **प्रतिसेवन**-बार-बार आधाकर्मी आहार का सेवन करना, (२) **प्रतिश्रवण**-आधाकर्मी आहार के लिए निमंत्रण स्वीकार करना, (३) **संवसन**-आधाकर्मी आहार का सेवन करने वाले साधुओं के साथ रहना, और (४) **अनुमोदन**-आधाकर्मी आहार का उपभोग करने वालों की प्रशंसा एवं अनुमोदना करना।

सूत्र ६१ में आहार का समय होने से पहले अपने पारिवारिक या परिचित व्यक्तियों के घरों में आहार के लिए जाने का निषेध है, उसके पीछे भी यही दृष्टि है कि वे स्नेह भाव या

श्रद्धा-भक्ति के वश साधु के लिए सदोष आहार तैयार कर देंगे। क्योंकि सामान्य रूप में परिवार वालों के घरों पर भिक्षा के लिए जाने का निषेध नहीं है। व्यवहारसूत्र, उद्देशक १ में स्थविरों की आज्ञा लेकर सम्बन्धियों के घर भिक्षा के लिए जाने की अनुमति दी है। *(आचार्य श्री आत्माराम जी म कृत हिन्दी टीका, पृ. ८९९)*

Elaboration—The fault called *adhakarma* is discussed in aphorisms 60 to 62. *Adhakarma* means to prepare food for some particular ascetic Of the sixteen faults of origin, this is the first. An ascetic indulges in this fault four ways—(1) *pratisevan*—to eat *adhakarmi* food again and again, (2) *pratishravan*—to accept invitation for *adhakarmi* food, (3) *samvasan*—to live with ascetics who eat *adhakarmi* food, and (4) *anumodan*—to praise or approve of ascetics who eat *adhakarmi* food.

In aphorism 61 the censure of going to known houses to seek alms before the conventional time for alms-seeking is with the view that the devotees will prepare faulty food for the ascetic out of affection or devotion Otherwise, going to houses of relatives to seek alms is not normally proscribed According to *Vyavahar Sutra,* going to houses of relatives to seek alms after getting permission from senior ascetics is allowed. *(Tika by Acharya Shri Atmaramji M., p 899)*

स्वादिष्ट आहार का वर्जन (ग्रासैषणा दोष)

६३. से भिक्खू वा २ से जं पुण जाणेज्जा, मंसं वा मच्छं वा भज्जिज्जमाणं पेहाए तेल्लपूयं वा आएसाए उवक्खडिज्जमाणं पेहाए णो खद्धं खद्धं उवसंकमित्तु ओभासिज्जा णण्णत्थ गिलाणाए।

६४. से भिक्खू वा २ अण्णयरं भोयणजायं पडिगाहेत्ता सुब्भिं सुब्भिं भोच्चा दुब्भिं दुब्भिं परिट्ठवेति। मायट्ठाणं संफासे। णो एवं करेज्जा। सुब्भिं वा दुब्भिं वा सव्वं भुंजे ण छड्डए।

६५. से भिक्खू वा २ अण्णयरं वा पाणगजायं पडिगाहेत्ता पुप्फं पुप्फं आविइत्ता कसायं कसायं परिट्ठवेति। माइट्ठाणं संफासे। णो एवं करिज्जा।

पुप्फं पुप्फे ति वा कसायं कसाए ति वा सव्वमेणं भुंजेज्जा, ण किंचि वि परिट्ठवेज्जा।

६३. साधु या साध्वी गृहस्थ के घर में प्रवेश करने पर यह जाने कि वहाँ किसी अतिथि के लिए माँस या मत्स्य भूना जा रहा है तथा तेल के पुए बनाए जा रहे हैं। उक्त पदार्थों को देखकर साधु शीघ्रता से वहाँ जाकर उक्त आहार की याचना न करे। यदि किसी रुग्ण साधु के लिए अत्यावश्यक हो तो आहार की याचना कर सकता है।

६४. साधु और साध्वी गृहस्थ के घर पर आहार के लिए जाकर वहाँ से भोजन लेकर जो साधु सुगन्धित व स्वादिष्ट (अच्छा-अच्छा) आहार स्वयं खा लेता है और दुर्गन्धित या रूक्ष आहार को फेंक देता है, वह माया-स्थान का स्पर्श करता है। उसे ऐसा नहीं करना चाहिए। सुगन्धित या दुर्गन्धित जैसा भी आहार भिक्षा में प्राप्त हो, साधु उसका समभावपूर्वक उपभोग करे, उसमें से किंचित् भी फेंके नहीं।

६५. गृहस्थ के घर पर पानी के लिए जाने पर जो साधु-साध्वी वहाँ से पानी ग्रहण करके वर्ण-गन्धयुक्त (मधुर) पानी को पी जाते हैं और कसैला-कसैला पानी फेंक देते हैं, वे माया-स्थान का स्पर्श करते हैं। साधु को ऐसा नही करना चाहिए।

वर्ण-गन्धयुक्त अच्छा या कसैला जैसा भी जल प्राप्त हुआ हो, उसे समभावपूर्वक ग्रहण करना चाहिए, उसमें से जरा-सा भी बाहर नही फेंकना चाहिए।

CENSURE OF TASTY FOOD

63. A *bhikshu* or *bhikshuni* on entering the house of a layman in order to seek alms should find if meat or fish is being roasted or cookies are being fried for some guest Seeing this the ascetic should not rush to seek such food. Only in case of exigency for some ailing ascetic can he seek such food.

64. If a *bhikshu* or *bhikshuni* entering the house of a layman and taking alms, eats the flavoured and tasty portions and throws away the bad-flavoured and drab portions, he is committing deceit. He should not do so. He should eat with equanimity whatever fragrant or stinking food he gets as alms and not throw even the smallest portion.

65. If a *bhikshu* or *bhikshuni* entering the house of a layman and taking water or drink, drinks the colourful and flavoured (and tasty) liquids and throws away the bitter or astringent liquids, he is committing deceit. He should not do so. He should

drink with equanimity whatever flavoured and good or bitter drinks he gets as alms and not throw even the smallest portion.

अधिक आहार का उपयोग

६६. से भिक्खू वा २ बहुपरियावण्णं भोयणजायं पडिगाहेत्ता साहम्मिया तत्थ वसंति संभोइया समणुण्णा अपरिहारिया अदूरगया। तेसिं अणालोइया अणामंतिया परिट्ठवेइ। मायट्ठाणं संफासे। णो एवं करिज्जा।

से त्तमायाए तत्थ गच्छिज्जा २ गच्छित्ता से पुव्वामेव आलोएज्जा–आउसंतो समणा ! इमे मे असणे वा ४ बहुपरियावण्णे, तं भुंज ह णं; से सेवं वदंतं परो वइज्जा–आउसंतो समणा ! आहारमेयं असणं वा ४ जावइयं २ सरइ तावइयं २ भोक्खामो वा पाहामो वा। सव्वमेयं परिसडइ सव्वमेयं भोक्खामो वा पाहामो वा।

६६. साधु-साध्वी भिक्षा के निमित्त गृहस्थ के घर में जाकर उसके यहाँ से बहुत-सा नाना प्रकार का भोजन ले आएँ (और उतना आहार उससे खाया न जाए तो) वहाँ जो अन्य साधर्मिक, सांभोगिक, समनोज्ञ तथा अपरिहारिक साधु जो उपाश्रय के नजदीक हों, उन्हें पूछे विना निमत्रित किये बिना यदि उस आहार को परठ देता है, वह साधु-साध्वी माया-स्थान का स्पर्श करता है। ऐसा नहीं करना चाहिए।

सर्वप्रथम वह साधु उस आहार को लेकर उन साधर्मिक, समनोज्ञ साधुओं के पास जाए। वहाँ जाकर इस प्रकार कहे–"आयुष्मन् श्रमणो ! यह चारों प्रकार का आहार हमारी आवश्यकता से बहुत अधिक है, अत आप इसका उपभोग करें।" इस प्रकार कहने पर कोई भिक्षु यों कहे कि–"आयुष्मन् श्रमण ! इस आहार में से जितना हम खा-पी सकेगे, खा-पी लेगे, अगर हम यह सारा का सारा उपभोग कर सकें तो सारा खा-पी लेगे।"

EXCESSIVE FOOD

66. If a *bhıkshu* or *bhıkshuni* entering the house of a layman brings back large varıeties (and quantity) of food and (when unable to eat that much) throws away (the extra quantity) without asking or inviting other *sadharmık* (co-religionist), *sambhogık* (affiliated), *samanojna* (conformist), *apariharık* (who has not renounced services by other ascetics) ascetics who live near the *upashraya,* he ıs committing deceit. He should not do so.

First of all that ascetic should carry that food to those co-religionist and affiliated ascetics and tell—"Long lived *Shramans* ! This food is much more than my requirement, therefore please take it." On hearing this they may say—"Long lived *Shraman* ! We will certainly eat as much as we can out of it; or if possible we will eat it all."

विवेचन—सूत्र ६३ में तेलपुओं के साथ 'माँस' व 'मत्स्य' शब्द का प्रयोग हुआ है उस सम्बन्ध में हमने 'माँस' शब्द पर उद्देशक १० मे विस्तार से चर्चा की है। वृत्तिकार ने यहाँ मत्स्य व माँस शब्द का प्रचलित अर्थ ही लिया है और उसे अपवाद मार्ग में ग्राह्य माना है। किन्तु आचार्य श्री आत्माराम जी म ने इस पर समीक्षा करते हुए लिखा है कि—आचारांग पर बालावबोध के लेखक उपाध्याय श्री पार्श्वचन्दसूरि ने वृत्तिकार के मत की आलोचना की है। उनका कहना है—सूत्रकार के समय मे कुछ वनस्पतियों के अर्थ में इन शब्दों का प्रयोग होता रहा होगा, किन्तु आज उक्त शब्दो का उस अर्थ में प्रयोग नहीं होता है। अत इससे उक्त शब्दों का वर्तमान में प्रचलित अर्थ करना उचित नहीं है। गहराई से विचार करने पर उपाध्याय जी का यह मत समीचीन लगता है क्योकि प्रस्तुत सूत्र मे बीमार के लिए उक्त आहार लाने का उल्लेख है और तेल के पुए व मत्स्य माँस बीमार के लिए पथ्यकारक हो नहीं सकते और न ही यह पूर्ण अहिंसक साधु की वृत्ति के अनुकूल ही लगता है। सूत्रकार के समय में इन शब्दो का प्रयोग वनस्पति के अर्थ मे ही होता था। *(हिन्दी टीका, पृ १०१)*

Elaboration—In aphorism 63 the terms *'mansa'* (meat) and *'matsya'* (fish) have been used We have discussed in detail about *'mansa'* in lesson 10 The commentator *(Vritti)* has interpreted *mansa* conventionally and taken it to be acceptable in conditions of emergency. However, refuting this interpretation Acharya Shri Atmaramji M writes—Upadhyaya Shri Parshvachandra Suri has criticized this view of the commentator *(Vritti)* in his *Balavabodh* (a type of commentary) on *Acharanga Sutra.* He maintains that during the time of writing of this work these terms could have been used for some specific vegetables, but today these words are nowhere used to convey the same meaning Therefore it is not proper to interpret these words to convey their current meaning On giving a serious thought the view of Parshvachandra Suri appears to be correct because in this aphorism such food is prescribed for an ailing ascetic. Meat, fish and oily cookies can hardly be defined as food for the sick. Moreover, it does not also

conform to the attitude of an ascetic following the *ahimsa* way of life. Thus it is evident that these words were used for some vegetables during the time of writing of this work. (*Hindi Tika, p. 901*)

दूसरों के निमित्त का आहार

६७. से भिक्खू वा २ से जं पुण जाणेज्जा असणं वा ४ परं समुद्दिस्स बहिया णीहडं जं परेहिं असमणुन्नायं अणिसिट्ठं अफासुयं जाव णो पडिगाहेज्जा।

जं परेहिं समणुण्णायं समणुसिट्ठं फासुयं जाव लाभे संते पडिगाहेज्जा।

एवं खलु तस्स भिक्खुस्स वा भिक्खुणीए वा सामग्गियं।

॥ णवमो उद्देसओ सम्मत्तो ॥

६७. साधु या साध्वी गृहस्थ के घर में आहार के लिए जाने पर यदि यह जाने कि दूसरों के निमित्त से बनाया गया अशनादि चतुर्विध आहार देने के लिए घर से निकाला गया है, परन्तु अभी तक गृहपति ने उस आहार को ले जाने की उन्हें अनुमति नहीं दी है और न ही उन्होंने उस आहार को ले जाने या देने के लिए उनके स्वाधीन किया है, ऐसी परिस्थिति में यदि कोई वह आहार साधु को लेने की विनती करे तो उसे अप्रासुक एवं अनेषणीय जानकर स्वीकार न करे।

यदि गृहस्वामी आदि ने उन लोगो को उक्त आहार ले जाने की भलीभाँति अनुमति दे दी है तथा उन्होंने वह आहार अच्छी तरह से उनके स्वाधीन कर दिया है और कह दिया है–तुम जिसे चाहो दे सकते हो, (ऐसी स्थिति में वह) साधु को लेने के लिए विनती करे तो उस आहार को प्रासुक और एषणीय जानकर ग्रहण कर लेवें।

यह उस भिक्षु या भिक्षुणी की (ज्ञान, दर्शनादि की) समग्रता है।

॥ नवम उद्देशक समाप्त ॥

FOOD MEANT FOR OTHERS

67. A *bhikshu* or *bhikshuni* while entering the house of a layman in order to seek alms should find if the food prepared for others has been brought out from the house but the host has not yet given permission to them to take it away, neither has he handed over the food to them to take away or distribute. If it is

so and the host offers that food to the ascetic, he should refrain from taking any such food considering it to be faulty and unacceptable.

However, if the host has given proper permission to them to take it away and handed over the food to them to take away or distribute saying that they can distribute as they like; and the host offers that food to the ascetic, he may take such food considering it to be faultless and acceptable.

This is the totality (of conduct including that related to knowledge) for that *bhikshu* or *bhikshuni.*

|| END OF LESSON NINE ||

दसमो उद्देसओ	दसम उद्देशक	LESSON TEN

आहार-वितरण विवेक

६८. से एगइओ साहारणं वा पिंडवायं पडिगाहित्ता ते साहम्मिए अणापुच्छित्ता जस्स जस्स इच्छइ तस्स तस्स खद्धं खद्धं दलइ। माइट्ठाणं संफासे। णो एवं करेज्जा।

से त्तमायाए तत्थ गच्छिज्जा, गच्छित्ता पुव्वामेव एवं वइज्जा–आउसंतो समणा ! संति मम पुरेसंथुया वा पच्छासंथुया वा, तं जहा–(१) आयरिए वा (२) उवज्झाए वा (३) पवत्ती वा (४) थेरे वा (५) गणी वा (६) गणहरे वा (७) गणावच्छेइए वा, अवियाइं एएसिं खद्धं खद्धं दाहामि। से णेवं वयंतं परो वइज्जा–कामं खलु आउसो ! अहापज्जत्तं निसिराहि। जावइयं २ परो वयइ तावइयं २ णिसिरेज्जा। सव्वमेयं परो वयइ सव्वमेयं णिसिरेज्जा।

६८ यदि कोई भिक्षु गृहस्थ के घर से बहुत-से साधुओं के लिए साधारण अर्थात् सम्मिलित आहार लेकर स्थान पर आता है और उन अपने साधर्मिक साधुओं से पूछे बिना ही जिसे-जिसे इच्छा होती है, उसे-उसे बहुत-बहुत दे देता है; तो ऐसा करने से वह मायास्थान–कपट का सेवन करता है। साधु को ऐसा नहीं करना चाहिए।

किन्तु आहार प्राप्त होने पर उस प्राप्त आहार को लेकर गुरुजनादि के पास जाना चाहिए और पहले इस प्रकार कहे–"आयुष्मन् श्रमणो ! यहाँ कुछ मेरे पूर्व-परिचित (जिनसे दीक्षा अगीकार की है) तथा कुछ पश्चात्-परिचित (जिनसे श्रुताभ्यास किया है) हैं, जैसे कि–(१) आचार्य, (२) उपाध्याय, (३) प्रवर्त्तक, (४) स्थविर, (५) गणी, (६) गणधर (गच्छ प्रमुख), और (७) गणावच्छेदक आदि उपस्थित हैं; अगर आपकी आज्ञा हो तो इन उपस्थित श्रमणो को आहार दे दूँ।" उस भिक्षु के ऐसा कहने पर यदि गुरुजनादि कहें–"आयुष्मन् श्रमण ! इच्छानुसार उन्हें यथा पर्याप्त आहार दे दो।" तो आचार्य की आज्ञानुसार वह साधु सबको जितना-जितना वे कहें, उतना-उतना आहार उन्हें दे दें। यदि वे कहें कि "सारा आहार दे दो", तो सारा का सारा दे दें।

PRUDENCE OF FOOD DISTRIBUTION

68. A *bhikshu* or *bhikshuni* collects food jointly for many ascetics from the house of a layman and brings it to his place of stay. Then if he distributes among his co-religionist ascetics

without asking them and giving more to some according to his sweet will, he is committing deceit. He should not do so.

Instead, on getting the food he should first of all take it to the senior ascetics and say—"Long lived *Shramans* ! Present here are some of my old and new acquaintances, such as—(1) *acharya,* (2) *upadhyaya,* (3) *pravartak,* (4) *sthavir,* (5) *gani,* (6) *ganadhar,* (7) *ganavachhedak* etc. If you allow me, I will distribute food among these ascetics present here." If the seniors say—"Long lived *Shraman* ! Give them according to their need and desire." Then following the instructions by the *acharya,* that ascetic should distribute the food to them as per their demands. If they say that give them all the food, he should do so.

कपटाचरण का निषेध

६९. से एगइओ मणुन्नं भोयणजायं पडिगाहित्ता पंतेण भोयणेण पलिच्छाएति मामेयं दाइयं संतं दट्ठु णं सयमाइए तं (जहा–) आयरिए वा जाव गणावच्छेइए वा। णो खलु मे कस्सइ किंचि वि दायव्वं सिया। माइट्ठाणं संफासे। णो एवं करिज्जा।

से तमायाए तत्थ गच्छिज्जा, २ (त्ता) पुव्वामेव उत्ताणए हत्थे पडिग्गहं कट्टु–इमं खलु इमं खलु त्ति आलोएज्जा। णो किंचि वि विणिगूहेज्जा।

से एगइओ अन्नयरं भोयणजायं पडिगाहित्ता भद्दयं भद्दयं भोच्चा विवण्णं विरसमाहरइ। माइट्ठाणं संफासे। णो एवं करिज्जा।

६९. भिक्षा में सरस स्वादिष्ट आहार प्राप्त होने पर यदि कोई भिक्षु उसे नीरस तुच्छ आहार से ढककर छिपा देता है ताकि दिखाने पर आचार्य, उपाध्याय यावत् गणावच्छेदक आदि मेरे इस आहार को स्वयं न ले लें। मुझे इसमें से किसी को कुछ भी नहीं देना है। ऐसा करने वाला साधु मायास्थान का सेवन करता है। ऐसा छल-कपट नहीं करना चाहिए।

अपितु जैसा भी आहार प्राप्त हुआ हो वह साधु उस आहार को लेकर आचार्य आदि के पास जाए और वहाँ जाते ही सबसे पहले झोली खोलकर पात्र को हाथ में ऊपर उठाकर "इस पात्र में यह है, इसमें यह है", (इस प्रकार एक-एक पदार्थ) उन्हें बता दे। थोड़ा-सा आहार भी छिपाकर नहीं रखना चाहिए।

गृहस्थ के घर से प्राप्त भोजन को यदि कोई भिक्षु मार्ग में ही सरस-सरस आहार को स्वयं खा लेवे और बचे हुए तुच्छ एवं नीरस आहार को आचार्यादि के पास ले जाये तो ऐसा वह करने वाला मायास्थान का सेवन करता है। अतः साधु को ऐसा नहीं करना चाहिए।

CENSURE OF DECEITFUL CONDUCT

69. On getting rich and tasty food if some ascetic conceals it by covering it with ordinary and tasteless food thinking that the *acharya* or other seniors could choose it for themselves. I do not intend to give anything out of this. An ascetic who does so is committing deceit. He should not do so.

Instead, he should bring whatever food he gets to the *acharya* (etc). First of all he should open his bag, take out the bowls (one by one) and say—"This bowl contains this thing, and this contains this." Not even the smallest portion should be concealed.

If on the way back, an ascetic consumes the rich and tasty things from the alms collected from the house of a layman and brings to the *acharya* (etc.) only the remaining simple and tasteless food, he is committing deceit. He should not do so.

विवेचन–इन तीनों सूत्रों में स्वाद-लोलुपता और माया से बचने का निर्देश है– (१) आहार-वितरण के समय पक्षपात न करे, (२) सरस आहार को नीरस आहार से दबाकर न रखे, (३) भिक्षा में प्राप्त सरस आहार को उपाश्रय मे लाए बिना बीच में ही न खाये। साधु का आदर्श है, भिक्षा में जो कुछ प्राप्त हुआ हो वह सबमे समान बाँटकर खाये। आगम में कहा है–असंविभागी न हु तस्स मुक्खं–संविभाग नहीं करने वाला मुक्ति से वंचित रहता है।

Elaboration—These three aphorisms contain directions to save oneself from voraciousness and deceit—(1) He should be impartial while distributing food (2) He should not conceal tasty food by covering it with tasteless food (3) Out of the collected alms he should not consume tasty food on his way back to *upashraya*. The ideal of an ascetic is to eat only after equitable distribution of collected alms. In *Agams* it is said that one who does not share is deprived of liberation.

विशेष शब्दों के अर्थ–पुरेसंथुया–पूर्व-परिचित–जिन पूज्यजनो से दीक्षा ग्रहण की है, वे दीक्षाचार्य। पच्छासथुआ–पश्चात्-परिचित–जिनसे शास्त्रों का अध्ययन किया है। पवत्ती–साधुओं को वैयावृत्य आदि में यथायोग्य प्रवृत्त करने वाला प्रवर्त्तक। थेरे–स्थविर, जो सयम आदि में विषाद पाने वाले साधुओं को स्थिर करता है। गणी–गच्छ का अधिपति। गणधरे–गुरु के आदेश से साधुगण को लेकर पृथक् विचरण करने वाला आचार्यकल्प मुनि। गणावच्छेइए–गणावच्छेदक–गच्छ के कार्यो/हितो का चिन्तक। अवियाइं–इत्यादि। खद्ध खद्धं–अधिक-अधिक। पलिच्छाएति–आच्छादित कर (ढक) देता है। सयमाइए–स्वय खाऊँगा। दाइए–दिया गया है। उत्ताणए हत्थे–खुली हथेली मे। विणिगूहेज्जा–छिपाए।

Technical Terms : *Puresanthuya*--old acquaintances like the seniors who initiated *Pacchasanthua*—new or later acquaintances like the teachers who have taught scriptures *Pavatti (pravartak)*—the senior ascetic who inspires and guides juniors in proper following of ascetic-conduct. *There (sthavir)*—the senior ascetic who re-establishes the ascetics disturbed by the hardships of ascetic-conduct. *Gani*—the head of a specific group *(gachh)* of ascetics *Ganadhare*—the senior ascetic, of the level of *acharya*, who moves about independently with his group but with the order of his guru *Ganavachheiye (ganavachhedak)*—the senior ascetic who takes care of the activities and interest of a group *(gachh) Aviyaim*—etcetera *Khaddham-khaddham*—more and more *Palichhayeti*—covers or conceals *Samaiye*—will eat myself *Daiye*—has been given *Uttanaye hatthe*—in open palm. *Viniguhejja*—conceals

बहु-उज्झितधर्मी आहार-ग्रहण का निषेध

७०. से भिक्खू वा २ से जं पुण जाणेज्जा अंतरुच्छुयं वा उच्छुगंडियं वा उच्छुचोयगं वा उच्छुमेरगं वा उच्छुसालगं वा उच्छुडालगं वा सिंबलिं वा सिंबलिथालगं वा, अस्सिं खलु पडिग्गहियंसि अप्पे भोयणजाए बहुउज्झियधम्मिए, तहप्पगारं अंतरुच्छुयं वा जाव सिंबलिथालगं वा अफासुयं जाव णो पडिगाहेज्जा।

७०. गृहस्थ के घर में आहार के लिए गया हुआ भिक्षु यह जाने कि वहाँ (अचित्त किये हुए) छिले हुए ईख के पर्व का मध्य भाग या पर्व-सहित इक्षुखण्ड (गंडेरी) है, पेरे हुए ईख के छिलके हैं, छिला हुआ अग्र भाग तथा ईख की बड़ी शाखाएँ हैं, छोटी डालियाँ हैं, मूँग आदि की फली तथा चौले की फलियाँ पकी हुई हैं, (ये सब अचित्त की हैं अतः)

परन्तु इनमें खाने योग्य भाग बहुत थोडा और फेकने योग्य भाग बहुत अधिक है, इस प्रकार के अधिक फेंकने योग्य आहार को अकल्पनीय और अनेषणीय जानकर मिलने पर भी लेना नहीं चाहिए।

CENSURE OF FOOD WITH EXCESSIVE SCRAP

70. A *bhikshu* or *bhikshuni* while entering the house of a layman in order to seek alms should find if he is offered pith of peeled sugar-cane, sugar-cane slices, fibrous portion of sugar-cane left after squeezing juice out, peeled top of a sugar-cane stalk, smaller or larger sugar-cane, pea-pods, seed-pods, that are ripe (and modified) but with a smaller eatable portion and a larger portion of scrap. If it is so, he should refrain from taking any such food considering it to be contaminated and unacceptable.

७१. से भिक्खू वा २ से जं पुण जाणेज्जा बहुअट्ठियं वा मंसं वा मच्छं वा बहुकंटगं, अस्सिं खलु पडिग्गाहियंसि अप्पे भोयणजाए बहुउज्झियधम्मिए, तहप्पगारं बहुअट्ठियं वा मंसं मच्छं वा बहुकटगं लाभे संते णो पडिगाहिज्जा।

७१ साधु या साध्वी गृहस्थ के घर जाने पर देखें कि इस गूदेदार (माँस) पके फल में गुठलियाँ (अस्थि) बहुत हैं या इस अनन्नास (मच्छ) में बहुत काँटे हैं, यह लेने पर इस आहार में खाने योग्य भाग कम है, फेंकने योग्य भाग अधिक है, तो इस प्रकार के बहुत गुठलियो तथा बहुत कॉटो वाले गूदेदार फल के प्राप्त होने पर उसे अकल्पनीय समझकर नही लेना चाहिए।

71. A *bhikshu* or *bhikshuni* while entering the house of a layman in order to seek alms should find if he is offered fruits with less pulp and more stone or kernel, or a pine-apple with more thorns and on taking it he gets a small eatable portion and a large disposable portion. If it is so, he should refrain from taking any such food considering it to be contaminated and unacceptable.

७२. से भिक्खू वा २ जाव सिया णं परो बहुअट्ठिएण मंसेण उवणिमंतेज्जा—आउसंतो समणा ! अभिकंखसि बहुअट्ठियं मंसं पडिगाहेत्तए ? एयप्पगारं णिग्घोसं सोच्चा णिसम्म से पुव्वामेव आलोएज्जा—आउसो ति वा भइणी ति वा णो खलु मे

कप्पइ बहुअट्ठियं मंसं पडिगाहेत्तए। अभिकंखसि मे दाउं, जावइयं तावइयं पोग्गलं दलयाहि, मा अट्ठियाइं।

से सेवं वदंतस्स परो अभिहट्टु अंतोपडिग्गहगंसि बहुअट्ठियं मंसं परियाभाएत्ता णिहट्टु दलएज्जा। तहप्पगारं पडिग्गहं परहत्थंसि वा परपायंसि वा अफासुयं अणेसणिज्जं लाभे संते जाव णो पडिगाहेज्जा।

से य आहच्च पडिगाहिए सिया, तं णो हि त्ति वएज्जा, नो अणहिति वएज्जा। से त्तमादाय एगंतमवक्कमेज्जा, २ (त्ता) अहे आरामंसि वा अहे उवस्सयंसि वा अप्पंडे जाव संताणए मंसगं मच्छगं भोच्चा अट्ठियाइं कंटए गहाए से त्तमायाए एगंतमवक्कमेज्जा, २ (त्ता) अहे झामथंडिल्लंसि वा जाव पमज्जिय पमज्जिय परिट्ठवेज्जा।

७२ गृहस्थ के घर पर आहार के लिए प्रवेश करने पर भिक्षु या भिक्षुणी को गृहस्थ यदि वहुत-सी गुठलियो एवं बीज वाले फलो के लिए आमन्त्रण करे–"आयुष्मन् श्रमण ! क्या आप बहुत-सी गुठलियो एवं बीज वाले फल लेना चाहते है?" इस प्रकार का कथन सुनकर भिक्षु विचार करके गृहस्थ से कह दे–"आयुष्मन् गृहस्थ (भाई) या बहन ! ऐसा वहुत-से बीज-गुठली से युक्त फल लेना मुझे नहीं कल्पता है। यदि तुम मुझे देना चाहते/चाहती हो तो इस फल का जितना गूदा (खाने योग्य भाग) है, उतना मुझे दे दो, शेष कॉटे व गुठलियॉ नहीं।"

साधु द्वारा इस प्रकार कहने पर भी वह गृहस्थ यदि अपने भाजन में से उक्त फल देने लगे तो भिक्षु जब उसी गृहस्थ के हाथ या पात्र मे रखा हो तभी उस प्रकार के फल को अप्रासुक और अनेषणीय कहकर लेने से मना कर दे। इतने पर भी वह गृहस्थ आग्रह करके साधु के पात्र मे डाल दे तो फिर न तो हॉ-हूँ कहे न धिक्कार कहे और न ही अन्यथा (भला-बुरा) कहे, किन्तु उस आहार को लेकर एकान्त मे चला जाए। वहॉ जाकर जीव-जन्तु, मकडी के जाले आदि से रहित किसी निरवद्य स्थान उद्यान में या उपाश्रय में बैठकर उक्त फल के खाने योग्य सारे भाग का उपभोग करे और फेकने योग्य वीज, गुठलियों एव कॉटो को लेकर वह एकान्त स्थल मे चला जाए, वहॉ दग्ध भूमि पर या किसी प्रासुक भूमि पर प्रतिलेखन एवं प्रमार्जन करके उन्हें परठ (डाल) दे।

72. When a *bhikshu* or *bhikshuni*, on entering the house of a layman in order to seek alms, is offered fruits with many seeds and stones with a request—"Long lived *Shraman* ! Would you like to take fruits with many seeds and stones ?" He should

contemplate and reply—"Long lived brother or sister ! I am not allowed to accept fruits with many seeds or stones. If you are keen on offering me please give me only the pulp (eatable portion) and not the kernel and thorns."

In spite of this, if that layman intends to give that fruit, the ascetic should inform that it is not suitable and acceptable and refuse to take it while the fruit is still in the hands or pot of the layman. Even then if the layman insists and puts the fruit in the ascetic's bowl, he should neither say all right nor insult or reprimand him He should retire to a solitary place with that food. Finding a place free of creatures, cobwebs etc. in a garden or an *upashraya,* he should eat all the eatable portion of that fruit. Collecting the discards he should go to a solitary place and throw these after inspecting and cleaning a spot made free of living organism by ash or otherwise.

विवेचन–जिस आहार के पक जाने पर या अग्नि से शस्त्र-परिणत हो जाने पर भी जिसमे खाने योग्य भाग थोडा रहता है और फेंकने योग्य भाग बहुत अधिक रहता है, उसे बहु-उज्झितधर्मी आहार कहा गया है। ऐसा आहार प्रासुक होने पर भी अनेषणीय और अग्राह्य होता है। इस प्रकार बहु-उज्झितधर्मी आहार में यहाँ चार प्रकार के पदार्थ बताए हैं–(१) ईख के टुकडे और उसके विविध अवयव, (२) मूँग, मोंठ, छोले आदि की हरी फलियाँ, (३) ऐसे फल जिनमें बीज और गुठलियाँ बहुत हो, जैसे–तरबूज, ककडी, सीताफल, पपीता, नींबू, बेल, अनार आदि, (४) ऐसे फल जिसमें काँटे अधिक हों, जैसे–अनन्नास आदि।

इस सूत्र में आये बहु-अट्ठियं मंस आदि शब्दों पर आचार्य श्री आत्माराम जी म ने बहुत ही तटस्थ समीक्षा की है। यहाँ उनकी टीका का सार उन्ही की भाषा में प्रस्तुत है।

Elaboration—Even after ripening, cooking or being modified otherwise, the food that still contains smaller eatable portion and larger disposable portion is called *bahu-ujjhitdharmi* food Although free of faults, such food is unacceptable and should not be taken Here four types of such things have been mentioned—(1) sugar-cane, its pieces and parts; (2) green pods of various pulses and beans; (3) multi-seeded fruits, such as water-melon, cucumber, custard apple, papaya, lemon, *bel,* pomegranate etc., and (4) thorny fruits like pine-apple.

Acharya Shri Atmaramji M. has written an impartial commentary on some terms appearing in this aphorism, such as *bahu-atthiya* and *mansa*. We give the gist of that in his own language.

अस्थि-माँस शब्द पर आचार्य श्री आत्माराम जी म. का चिन्तन

प्रस्तुत सूत्र मे प्रयुक्त 'बहु-अट्ठिय मंस' और 'मच्छ वा बहु कंटय' पाठ कुछ विवादास्पद है। कुछ विचारक इसका प्रसिद्ध शाब्दिक अर्थ ग्रहण करके जैन साधुओं को भी मॉसभक्षक कहने का साहस करते हैं। वृत्तिकार आचार्य शीलाक ने इसका निराकरण करने का विशेष प्रयत्न नही किया। वे स्वय लिखते है कि वाह्य लेप के लिए अपवाद मे माँस आदि का उपयोग किया जा सकता है।

परन्तु वृत्तिकार के पश्चात् आचारागसूत्र पर बालबोध व्याख्या लिखने वाले उपाध्याय पार्श्वचन्द्रसूरि वृत्तिकार के विचारो का विरोध करते है। उन्होने लिखा है कि आगम मे अपवाद एव उत्सर्ग का कोई भेद नही है और जो कटक आदि को एकान्त स्थान मे परठने का विधान किया है, उससे यह स्पष्ट होता है कि अस्थि एव कंटक आदि फलो में से निकलने वाले वीज (गुठली) या काँटे आदि ही हो सकते हैं। प्रज्ञापनासूत्र में बीज (गुठली) के लिए अस्थि शब्द का प्रयोग किया गया है। यथा--'एगट्ठिया बहुट्ठिया' एक अस्थि (बीज) वाले हरड आदि और बहुत अस्थि (बीज) वाले अनार, अमरूद आदि। इससे स्पष्ट होता है कि उक्त शब्दो का वनस्पति अर्थ में प्रयोग होता था अत' वृत्तिकार का कथन संगत नहीं जँचता।

जब हम प्रस्तुत प्रकरण का गहराई से अध्ययन करते हैं तो स्पष्ट हो जाता है कि वृत्तिकार का कथन प्रसंग से बाहर जा रहा है। उक्त सूत्र में गृहस्थ के घर मे प्रविष्ट साधु का आहार के सम्बन्ध में गृहस्थ के साथ होने वाले सवाद का वर्णन किया गया है न कि ओषध के सम्बन्ध मे। यदि वृत्तिकार के कथनानुसार यह मान ले कि बाह्य लेप के लिए साधु माँस ग्रहण कर सकता है तो यह प्रश्न उठे विना नहीं रहेगा कि बाह्य लेप के लिए कच्चे माँस की आवश्यकता पडेगी न कि पक्व माँस की, और कच्चे माँस के लिए किसी के घर न जाकर कसाई की दुकान पर जाना होता है और यहाँ कसाई की दुकान का वर्णन न होकर गृहस्थ के घर का वर्णन है। इससे स्पष्ट है कि वृत्तिकार का अपवाद मे मॉस ग्रहण करने का कथन आगम के अनुकूल प्रतीत नही होता। क्योकि प्रस्तुत पाठ में इसका कहीं भी संकेत नही किया गया है कि रोग को उपशान्त करने के लिए माँस को बाँधना चाहिए। अत वृत्तिकार का कथन प्रस्तुत सूत्र से विपरीत होने के कारण मान्य नही हो सकता।

प्रस्तुत सूत्र के पूर्व भाग मे वनस्पति का स्पष्ट निर्देश है और उत्तर भाग में 'माँस' शब्द का उल्लेख है। इस तरह पूर्व एवं उत्तर भाग का परस्पर विरोध दृष्टिगोचर होता है। एक ही प्रकरण में वनस्पति एव मॉस का सम्बन्ध घटित नही हो सकता और अस्थि एवं माँस शब्द का आगम एवं वैद्यक ग्रन्थो में गुठली एव गूदा अर्थ में प्रयोग मिलता है। आचारागसूत्र मे जहाँ धोवन

(प्रासुक) पानी का वर्णन किया गया है, वहाँ अस्थि शब्द का प्रयोग किया गया है। उसमें बताया गया है कि यदि कोई गृहस्थ आम्र आदि के धोवन को साधु के सामने छानकर एवं अस्थि (गुठली) निकालकर दे तो ऐसा धोवन पानी साधु को ग्रहण नहीं करना चाहिए। यहाँ गुठली के लिए अस्थि शब्द का प्रयोग हुआ है। (आचारांगसूत्र २/१, ८ तथा ४३) और यह भी स्पष्ट है कि आम्र के धोवन में अस्थि (हड्डी) के होने की कोई सम्भावना ही नहीं हो सकती। उसमें गुठली का होना ही उचित प्रतीत होता है और आम्र के धोए हुए पानी मे गुठली के अतिरिक्त और हो ही क्या सकता है। इससे स्पष्ट होता है कि अस्थि शब्द का गुठली के अर्थ में प्रयोग होता रहा है।

प्रज्ञापनासूत्र के प्रथम पद मे वनस्पति के प्रसंग मे 'मसकडाह' शब्द का प्रयोग किया गया है। वृत्तिकार ने इसका अर्थ 'समास सगिरं' अर्थात् फलो का गूदा किया है और वृक्षो का वर्णन करते हुए लिखा है कि कुछ वृक्ष एक अस्थि वाले फलो के होते हैं, जैसे–आम्र, जामुन आदि के वृक्ष। अर्थात् आम्र, जामुन आदि फलो मे एक गुठली होती है। यह तो स्पष्ट है कि फलों मे गुठली ही होती है न कि हड्डी। इससे स्पष्ट है कि आगम मे अस्थि शब्द गुठली के अर्थ में प्रयुक्त होता रहा है।

जैनागमो के अतिरिक्त आयुर्वेद के ग्रन्थों मे भी अस्थि शब्द का गुठली के अर्थ मे अनेक स्थलो पर प्रयोग हुआ है–

पथ्याया मज्जनिस्वादु:, स्नायावम्लो व्यवस्थित:।
वृन्ते तिक्तस्त्वचि कटुरस्थिस्थस्तुवरो रस:॥

-भावप्रकाश निघटु, हरीतक्यादि व, पृ ५६

अर्थात् हरड की मज्जा स्वादु है, इसकी नाड़ियों मे खट्टापन है, वृन्त में तिक्त रस है, त्वचा मे कटुपन और अस्थि--गुठली मे कसैला रस है।

मज्जा पनसज्जा वृष्या, वात पित्त कफापहा:।

–अभिनव निघटु, पृ १६०

अर्थात् कटहर की मज्जा वृष्य है, वात, पित्त और कफ को नाश करती है।

मुण्डी भिक्षुरपि प्रोक्ता, श्रावणी च तपोधना।
श्रावणाह्वा मुण्डतिका, तथा श्रावणशीर्षका॥

महाश्रावणिकाऽन्या तु, सा स्मृता भूकदम्बिका।
कदम्बपुष्पिका च स्यादव्यथाति तपस्विनी॥

अर्थात् मुण्डी, भिक्षु, श्रावणी, तपोधना श्रावणाह्वा, मुण्डतिका, श्रवणशीर्षका, भूतघ्नी पलंकषा, कदम्बपुष्पा, अरुणा, मुण्डीरिका, कुम्भला, तपस्विनी, प्रव्रजिता और परिव्रजिका ये मुण्डी के नाम है। –भावप्रक ग, पृ २३१-२३२

VIEWS OF *ACHARYA SHRI ATMARAMJI M.* ON THE TERMS *ASTHI-MANSA*

The texts—*'bahu-atthiya mansam'* and *'maccham va bahu kantayam'* in this aphorism are controversial. Some thinkers even go to the extant of calling Jain ascetic non-vegetarian on the basis of the popular word meanings of these terms Shilankachary, the commentator *(Vritti)* has not made any special effort to refute this. He even writes that in case of emergency meat etc. could be used for external application.

But Upadhyaya Parshvachandra Suri, the author of the *Balavabodh* (a style of commentary), written at a later period, opposes the views of the commentator *(Vritti)*. He writes that the difference between conduct in normal and unusual conditions is not found in *Agams* Moreover, the code of throwing *asthi* (bone) and *kantak* (thorn) at solitary place clearly indicates that it is about the stones and thorns of fruits only. In *Prajnapana Sutra* the term *asthi* has been used for seed (stone or kernel) For example—*egatthiya* and *bahitthiya* or one seeded, like *harad* (Terminalia chebula) and multi-seeded like pomegranate and guava This clearly confirms that these terms were used in connection with vegetables Therefore, the statement by the commentator *(Vritti)* does not appear to be logical

When we seriously study this topic in depth it becomes evident that the statement of the commentator *(Vritti)* is out of context. In the aphorism under reference is given the dialogue between a layman and an ascetic who has entered his house about food and not medicine If we accept the view of the author of *Vritti* that an ascetic can accept meat for external application, we cannot avoid the question that for external application only raw meat is required not cooked meat For raw meat one has to go to a butchers shop and here the description is of a layman's house not a butcher's shop This also confirms that the view of the author of *Vritti* that under exceptional circumstances meat is acceptable does not appear to be in conformity with the *Agams*. Also, in this lesson there is no indication that meat should be applied

externally for treatment of some ailment Therefore the statement of the author of *Vritti*, being out of context to the aphorism, cannot be accepted.

In the first part of the aphorism there is clear mention of vegetables. The term *'mansa'* appears only in the later part. This gives rise to a contradiction between the two parts of the same aphorism. In the same context the correlation between vegetable and meat cannot be established Also, in *Agam* and *Vaidyak* (medicine) literature evidences of uses of the terms *asthi* (bone) and *mansa* (flesh) for kernels (stones) and pulp are available. In *Acharanga Sutra*, the term *asthi* has been used where washes (modified water) is described There it is stated that if a laymen filters and takes out *asthi* (stone) from a mango wash before an ascetic and offers, the ascetic should not accept such wash Here *asthi* has been used for kernel or stone (*Acharanga Sutra 2/1, 8* and *43*) This is also very clear that there are no chances of bone *(asthi)* in mango-wash In mango-wash one can find kernel only, what else can be found in it Thus it is clear that the term *asthi* was being used for kernel or bone of a fruit or vegetable

In the first chapter of *Prajnapana Sutra* a term *'manskadaham'* has been used in context of vegetables The commentator *(Vritti)* has interpreted it as—*samansam sagiram*—which means the pulp of fruits While describing the plants he states that some trees have fruits with one *asthi*, such as—mango, rose-apple etc This means that these fruits have single seed (kernel or stone) It is very clear that fruits have seeds (kernel or stone) and not bones. This once again confirms that the term *asthi* has been in use for seeds or stones of fruits.

Besides Jain *Agams*, the term *asthi* has been used as fruit-stones in *Ayurveda* (medicine) works also For example—

"The marrow of *harad* (terminalia chebula or citrina) is tasty, its veins are sour, its stalk has pungent taste, skin is bitter and bone is astringent" —*Bhavaprakash Nighantu, Hareetakyadi v, p 56*

"The marrow of *katahar* (jack-fruit) is an aphrodisiac, it pacifies the three humours namely *vaat* (air), *pitta* (bile) and cough "

—*Abhinav Nighantu, p. 160.*

"These are the names of *Mundi—mundi, bhikshu, shravani, tapodhana, shravanahva, mundatika, shravanashirsha, bhutaghni, palankasha, kadambapushpa, aruna, mundirika, kumbhala, tapasvini, pravrajita* and *parivrajika* " —*Bhavaprakash, p 231-232*

भावप्रकाश में और भी इसी प्रकार वनस्पतियों के नामो का उल्लेख है, जैसे कि–

शब्द	अर्थ (आयुर्वेदिक)	पृष्ठ
हयपुच्छिका	माषपर्णी वनस्पति	२९६
व्याघ्रपुच्छ	एरण्ड	२०७
सिंहतुण्ड (मछली)	डडा थोहर	२०९
सिहास्य वृष	वासा	२११
जीव	वकापन (महानिव)	२१२
वत्स, कीट, इन्द्र	कुटज–कोरडसक	२१५
मर्कटी, वायसी	करजुआ (मीचका)	२१६
मर्कटी	कौचवीज	२१७
गोलोमी	श्वेतदूर्बा–सफेद दूब	२२५
मत्स्याक्षी	गाँठ दूब	२२५
मृगाक्षी	इन्द्रायण (तुम्मा)	२२९-२३०
गान्धारी	जवासा	२३१
शिखरी–मयूरक, मर्कटी	अपामार्ग (पुठकडा)	२३२
भिक्षु	ताल-मखाणा	२३३
कुमारी, कन्या	घीकुआर	२३४
गोपी, कोपा, कन्या, गोपवधू, कृशोदरी	कालाबांसा	२३५
भृग	भगरा	२३६
वायसी, काका	मको	२३७
काकनासा	कोआदूण्टी	२३८
काकजघा	एक वनस्पति	२३८

मेषशृंगी	मेंढासिगी	२३८
मत्स्याक्षी	मछोछो	२४१
मत्स्यादनी	जल-पिप्पली	२४६
गो-जिह्वा	गोभी	२४७
ताम्र-चूड	ककरौदा	२४७
व्याल, चित्रक	चीता–वनस्पति	१४९
मयूर	अजवैण	१५०
धेनुका	धनिया	१५२
मत्स्यपित्ता, मत्स्य, शकला	कुटकी	११६
चन्द्र	कवीला	१६०
रामसेवक	चिरायता	१६२
निशा	हल्दी	१६९
गजाख्या	पमाड	१७१
मातुलानी	भग	१७४
चन्द्र	काफूर	१७९

In Bhavaprakash there are mentions of many such vegetables—

क्या यहाँ व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ ग्रहण करना उचित होगा? कदापि नही। इसी प्रकार प्रस्तुत प्रकरणो मे भी लोक प्रसिद्ध अर्थ का ग्रहण न करके प्रकरण सगत और शास्त्र सम्मत वनस्पति विशेष अर्थ ही उपयुक्त हो सकता है।

Word	Botanical Meaning	Page
hayapuchhika (horse-tail)	*mashparni* plant	296
vyaghrapuchha (tiger-tail)	*erand* (castor-oil plant)	207
simhatund (belly of a lion)	*danda thohar*	209
simhasya vrish (testicles of a lion)	*vamsa*	211
jiva (being)	*vakapan-dek*	212
vatsa (son), *keet* (insect), *indra* (king of gods)	*kutaj—koradasak*	215

केश	सुगन्ध वाला	१९१
तपस्विनी	गधपूर्ण	१९२
मेघ वारिद्	मोथा	१९३
दैत्या	मुरा वनस्पति	१९४
वधू	कपूर कचरी	१९४
अगना, प्रिया	प्रियंगु औषधि	१९४
राजपुत्री, द्विजा	सम्भालू के बीज	१९५
कुक्कुर, शुक, मयूर	थुनेर	१९६
ब्राह्मणी, देवी, देवपुत्री	असवर्ग वनस्पति	१९८
जननी	पपड़ी	१८८
नटी, धमनी	नली–सुगन्धित द्रव्य	१९९
भल्लूक	आलू बुखारा	९२
मत्स्य	पोई नामक वनस्पति	१०२
कपोतिका	मूली	१०४

The famous ancient texts of Indian medicine also support our interpretation—

"In a ripe mango fruit *keshar, mansa, asthi, majja* can be clearly seen. But in an unripe fruit these are not visible separately as they are minute in size " —*Sushruta Samhita, Ch 3, verse 32, p 642*

In this verse words like hair, meat, bone, marrow have been used for fibre, pulp, kernel and core of seed.

marjari	*java* like plants	55
kukkuti	*shemal*	67
tapas, marjar	*tingoti*	68
kukkur (dog)	*shlishtapurna, vikirn, shirn romak* (these are names of *granthi parna* plant)	68
shath, kutil	*tagar*	183
pishun	*kesar* (saffron)	190

jatayu (eagle), *kaushika*, *dhurt* (rascal)	*guggul*	183
gauri	*gorochan*	110
kukkut (cock)	*kukubh* (a potter's hen), *shvet titar, tamrachud-cock,* spark of fire, *chandal, shudputra, sunishannak* plant	754
kesh (hair)	fragrant	191
tapasvini	*valchhad*	192
megh varid	*motha*	193
daitya (demon)	*mura* plant	194
vadhu (bride)	*kapur kachari*	194
angana, priya	*priyangu* medicine	194
rajputri, dvijaa	*sambhalu's* seeds	195
kukkur, shuk, mayur	*thuner*	196
brahmani, devi, devputri	*asavarg* plant	198
janani (mother)	*papadi*	188
nati, dhamni	*nali* (an aromatic plant)	199
bhalluk (bear)	*plum*	92
matsya (fish)	*poi* plant	102
kapotika (female pigeon)	*muli* (radish)	104

इन उपर्युक्त नामों को देखते हुए मनुष्य, पशु-पक्षी आदि के नामो से अनेकानेक वनस्पतियाँ अभिहित हुई है। अतएव प्रस्तुत प्रकरण में भी शठ का अर्थ धूर्त; कुटिल का वक्र और पिशुन का चुगलखोर अर्थ करना संगत नहीं है, किन्तु इन शब्दों के वनस्पति रूप अर्थ ही प्रसंगोचित है।

इन प्रमाणों से यह भलीभाँति सिद्ध हो जाता है कि फलों के गूदे को माँस और गुठली को अस्थि के नाम से निर्दिष्ट करना भी उस युग की प्रणाली रही है। ऊपर प्राचीन वैद्यक ग्रन्थों के प्रमाणों से अस्थि और माँस का गुठली और गुद्दे के अर्थ में प्रयुक्त होना प्रमाणित किया गया है।

वृक्ष के कठिन भाग एवं फलों के बीज (गुठली) के लिए अस्थि शब्द का प्रयोग हम वैद्यक एवं जैन साहित्य में अनेक स्थलों पर देख चुके हैं। वैद्यक साहित्य में कपास के अन्दर के कठिन

भाग के लिए भी अस्थि शब्द का प्रयोग किया गया है। क्षेमकुतूहल मे लिखा है–"कपास का फल अति उष्ण प्रकृति वाला कषाय एव मधुर रस वाला और गुरु होता है। वह वात, कफ को दूर करने वाला तथा रुचिकर होता है। इसमे से अस्थि (बीच का कठिन भाग) निकालकर प्रयोग करने से विशेष लाभदायक होता है।"

'अज' शब्द का वर्तमान में सामान्य विद्वान् 'बकरे' एवं 'विष्णु' के अर्थ में प्रयोग करते हैं, परन्तु यह शब्द इसके अतिरिक्त अन्य अनेक अर्थों मे प्रयुक्त होता रहा है। जैसे–सुवर्णमाक्षिक धातु, पुराने धान्य, जो अंकुरित होने के काल को अतिक्रान्त कर चुके हैं। *(शालिग्राम औषध शब्दसागर)*

इसी तरह 'कपोत' शब्द केवल कबूतर का वाचक नहीं रहा है, परन्तु सुरमा एवं सज्जी या खार के लिए भी कपोत शब्द का प्रयोग होता रहा है। क्योंकि इन पदार्थो का कपोत जैसा रंग होने के कारण इन्हें कपोत शब्द से अभिव्यक्त करते थे।

श्यामा, गोपी, गोपवधू, इन शब्दो का प्रयोग गोप-कन्या या ग्वालों की स्त्री के लिए ही प्रयोग न होकर कृष्ण एवं सारिवा वनस्पति के लिए भी प्रयोग होता था। धवला-सारिवा नामक वनस्पति को गोपी और गोप-कन्या कहा जाता था। (भावप्रकाश निघटु)

श्वेत और कृष्ण कापोतिका शब्दों से पाठक सफेद और काले मादा कबूतर का ही अर्थ समझेगे, परन्तु वैद्यक ग्रन्थों में इनका अन्य अर्थों में प्रयोग हुआ है। कल्पद्रुम कोष मे लिखा है कि जो स्वल्प आकार और लाल अग वाली होती है, वह श्वेत कापोतिका कहलाती है। श्वेत कापोतिका वनस्पति दो पत्तों वाली और कन्द के मूल में उत्पन्न होने वाली, ईषद् (थोडी) रक्त (लाल) तथा कृष्ण पिंगला, हाथ भर ऊँची, गाय के नाक जैसी और फणधारी सर्प के आकार वाली, क्षारयुक्त, रोंगटे वाली, कोमल स्पर्श वाली और गन्ने जैसी मीठी होती है। (कल्पद्रुम कोष, पृ ५७८)

इसी प्रकार के स्वरूप एवं रस वाली कृष्ण कापोतिका होती है। वह (कृष्ण कापोतिका) काले साँप जैसी वाराही कन्द के मूल में उत्पन्न होती है। वह एक पत्ते वाली महावीर्य दायिनी और बहुत काले अंजन समूह जैसी काली होती है। उसके पत्ते मध्य से उत्पन्न प्ररोह पर लगे हुए गहरे नीले मयूरपंख के समान होते हैं और वह बारह पत्तों के छत्र वाली, राक्षसों की नाशक, कन्द-मूल से उत्पन्न होने वाली और जरा-मरण को निवारण करने वाली ये दोनों कापोतिकाएँ होती हैं।

इस तरह हम देख चुके हैं कि जैनागमो में ही नहीं, अपितु वैद्यक एवं अन्य ग्रन्थों में भी माँस, मत्स्य एवं पशु-पक्षी के वाचक शब्दों का वनस्पति अर्थ में प्रयोग हुआ है। अत· प्रस्तुत सूत्र में प्रयुक्त माँस एवं मत्स्य शब्द वनस्पति वाचक हैं, न कि माँस और मछली के वाचक हैं। इससे स्पष्ट होता है कि उक्त शब्दों के आधार पर जैन मुनियों को माँस-मछली खाने वाला कहना नितान्त गलत है। *(हिन्दी टीका, पृ १२१-१२१)*

ऐसा अनुमान है कि शीलांक टीका और जिनदास चूर्णिकार का मत अपवाद मार्ग तक ही घूमता रहा है। किन्तु आचार्य हरिभद्र ने दशवैकालिक में आये इन शब्दों का अर्थ करते समय इसका भी उल्लेख किया है-अन्ये त्वभिदधति वनस्पति अधिकारे तथाविध फलाभिधाने एते। (दशवै हारिभद्रीय टीका, पत्र १७६)

यहाँ वनस्पति का प्रसंग होने से कुछ इन शब्दों का फल विशेष अर्थ भी करते हैं।

The above lists clearly indicate that various terms commonly used for human beings, animals and birds are also used to name plants. Therefore in the present context *shath* does not mean wicked and *pishun* does not mean back-biter, such words should be interpreted as plants or in their botanical or medicinal meaning

These facts prove that during that period it was conventional to use the term *mansa* for fruit pulp and *asthi* for kernel. The above said references from ancient works of medicine also confirm this fact

We have seen the use of the term *asthi* for the hard part of a tree or a fruit in Jain and medical literature In medical literature *asthi* has also been used for the hard cotton seeds In *Kshemakutuhal* it is mentioned—"The fruit of cotton-plant is very hot in nature, astringent and sweet in taste and heavy It controls *vaat* and cough and is likable To use it after removing *asthi* (seed) is more beneficial."

The term *'aj'* is interpreted by modern scholars as *'goat'* or *'Vishnu'*, but this word has been in use in its numerous other meanings besides these. For example—*suvarnamakshik* metal, old grains which have lost their capacity to sprout or grow. ***(Shaligram Aushadh Shabdasagar)***

In the same way *'kapot'* does not only mean a pigeon but also *'surma'* (fine powder used as medicine for eyes) and *'sajji'* or *'khaar'* (a mineral salt). These materials are given the name pigeon because they are of a similar colour.

Shyama, gopi and *gopevadhu* were not just used for females of cowherd-community but also for plants like *krishna* and *sariva*. *Dhavala-sariva* plant was called *gopi* and *gopekanya*. ***(Bhavaprakash Nighantu)***

A reader would normally take *shvet* and *krishna kapotika* to mean *white* and *black* female pigeon But in *vaidyak* (medicine) literature they carry other meanings *Kalpadrum Kosh* mentions that the smaller and reddish variety is called *shvet kapotika* This plant has two leaves, bulbous root, slightly red with black and yellow hues, one foot high, with a shape similar to a cows nostrils and of the size of the hood of snake, salty, hairy, soft and sweet like sugar-cane. *(Kalpadrum Kosh, p 578)*

Krishna kapotika is also of a similar shape and taste It is like a black snake and its bulbous root is of the shape of a wild boar. It has one leaf, black as a heap of soot and is a potent aphrodisiac Its leaf sprouts from a stalk at the centre of the bulb. These two *kapotikas* are of deep blue colour like pea-cock feather, with twelve leaves spread like a hood, destroyer of demons, grown out of a bulbous root and panacea for old age and death.

Thus we see that words like *mansa, matsya* and others normally used for animals and birds have been used for plants not only in Jain *Agams* but also in medicinal literature Therefore, the words *mansa* and *matsya* appearing in this aphorism mean plants and not meat or fish. This affirms that it is wrong to call Jain ascetics as non-vegetarians *(Hindi Tika, p 921-929)*

It appears that the interpretations of authors of *Tika* (*Shilanka*) and *Churni* (*Jinadas*) were limited only to exceptional situations But *Acharya Haribhadra,* while interpreting these words mentions—as the context here is plants some people interpret these words as specific fruits. *(Dashvaikalik Haribhadria Commentary, p 176)*

अग्राह्य लवण-परिभोग-परिष्ठापन की विधि

७३. से भिक्खू वा २ जाव सिया से परो अभिहट्टु अंतो पडिग्गहए बिलं वा लोणं वा उब्भियं वा लोणं, परियाभाएत्ता णीहट्टु दलएज्जा। तहप्पगारं पडिग्गहगं परहत्थंसि वा परपायंसि वा अफासुयं अणेसणिज्जं जाव णो पडिगाहेज्जा।

से य आहच्च पडिग्गाहिए सिया, तं च णाइदूरगए जाणेज्जा, से त्तमायाए तत्थ गच्छेज्जा, २ (त्ता) पुव्वामेव आलोएज्जा–आउसो त्ति वा भइणी त्ति वा इमं किं ते जाणया दिण्णं उदाहु अजाणया ? से य भणेज्जा–णो खलु मे जाणया दिण्णं, अजाणया। कामं खलु आउसो ! इयाणिं णिसिरामि, तं भुंजह व णं परियाभाएह व णं। तं परेहिं समणुण्णायं समणुसट्ठं तओ संजयामेव भुंजेज्ज वा पिएज्ज वा।

जं च णो संचाएति भोत्तए वा पायए वा, साहम्मिया तत्थ वसंति संभोइया समणुण्णा अपरिहारिया अदूरगया तेसिं अणुप्पदायव्वं सिया। णो जत्थ साहम्मिया सिया जहेव बहुपरियावण्णे कीरइ तहेव कायव्वं सिया।

एतं खलु तस्स भिक्खुस्स वा भिक्खुणीए वा सामग्गियं।

॥ दसमो उद्देसओ सम्मत्तो ॥

७३. साधु या साध्वी गृहस्थ के घर में भिक्षा के लिए जाने पर यदि गृहस्थ अपने घर के भीतर रखे हुए बर्तन मे से बिड-लवण या उद्‌भिज-लवण को विभक्त करके, उसमें से कुछ अंश निकालकर, बाहर लाकर देने लगे तो वैसे लवण को जब वह गृहस्थ के पात्र में या हाथ में हो तभी उसे अप्रासुक (अकल्पनीय) समझकर ग्रहण नहीं करे।

कदाचित् अकस्मात् उस अचित्त नमक को ग्रहण कर लिया हो, तो मालूम होने पर वह गृहस्थ यदि पास में ही हो तो, लवणादि को लेकर वहाँ जाए। वहाँ जाकर पहले उसे वह नमक दिखलाए, कहे–"आयुष्मन् गृहस्थ (भाई) या आयुष्मती बहन ! तुमने मुझे यह लवण जानकर दिया है या अनजाने में?" यदि वह कहे–"मैंने जानबूझकर नहीं दिया है, किन्तु भूल में ही दे दिया है, किन्तु आयुष्मन्, अब मैं आपको जानबूझकर दे रहा/रही हूँ। आप अपनी इच्छानुसार इसका उपभोग करें या परस्पर बाँट लें।" गृहस्थ की ओर से इस प्रकार की आज्ञा मिलने पर साधु अपने स्थान पर आकर उसे यतनापूर्वक खाए तथा पीए।

यदि स्वयं उसे खाने-पीने में समर्थ नहीं हो तो वहाँ आसपास जो साधर्मिक, सांभोगिक, समनोज्ञ एवं अपारिहारिक साधु रहते हों, उन्हें (वहाँ जाकर) दे देवे। यदि आसपास कोई साधर्मिक आदि साधु न हो तो उस आवश्यकता से अधिक आहार को जो परठने की विधि बताई है, उसके अनुसार एकान्त निरवद्य स्थान में उसे परठ (डाल) दे।

यही (एषणा विधि का विवेक) उस भिक्षु या भिक्षुणी की सर्वांगीण समग्रता है।

PROCEDURE OF USING OR REJECTING UNACCEPTABLE SALT

73. A *bhikshu* or *bhikshuni* on entering the house of a layman in order to seek alms should find if the host is offering *bid-lavan* or *udbhij-lavan* (types of salt) after taking it out from a pot placed inside the house, breaking it, picking a portion and bringing it out. If it is so, he should refuse to take any such salt while it is still in the pot or hand of the host, considering it to be faulty and unacceptable.

However, if he has accepted it inadvertently and the host is in proximity, he should carry it back to the host. Arriving there he should first show that salt and ask—"Long lived brother or sister ! Have you given me this salt knowingly or otherwise ?" Now if the host says—"I have not given it knowingly but inadvertently But, long lived one, now I am giving it to you intentionally. Please use it or share it with others as you please." After getting this permission from the donor the ascetic may return to his place of stay and consume it with due care.

If he himself is not able to consume it, he should give it to other *sadharmik* (co-religionist), *sambhogik* (affiliated), *samanojna* (conformist), *apariharik* (who has not renounced services by other ascetics) ascetics living nearby. If there are no ascetics around he should discard it at some desolate place following the prescribed procedure

This (prudence of procedure of exploration) is the totality (of conduct including that related to knowledge) for that *bhikshu* or *bhikshuni*.

विवेचन–इस सूत्र का अभिप्राय स्पष्ट करते हुए वृत्तिकार लिखते है–भिक्षु अपने रोगी साधु के लिए गृहस्थ से जाकर खांड या बूरे की याचना करता है, परन्तु वह गृहस्थ सफेद रंग देखकर भूल मे खांड या बूरे के बदले नमक देने लगता है, उस समय अगर साधु को यह मालूम हो जाए कि यह नमक है तो न ले, कदाचित् भूल से वह नमक ले लिया गया है और बाद मे पता लगता है कि यह तो खाड नही, नमक है, तो वह पुन दाता के पास जाकर यह निर्णय करे कि आपने यह वस्तु जानकर दी है या अनजाने? आगे की विधि मूल सूत्र में स्पष्ट कर दी गई है।

यहाँ 'अप्रासुक' शब्द का अर्थ सचित्त या दोष सहित से नहीं होकर अकल्पनीय अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। यदि गृहस्थ एक वस्तु के बदले भूल में दूसरी वस्तु दे दे तो वह जब तक उसका निर्णय नहीं करे तब तक उसके लिए अकल्पनीय है। निर्णय कर दुबारा उसकी आज्ञा मिलने पर वह कल्पनीय हो जाती है। (हिन्दी टीका, पृ ९३७)

॥ दशम उद्देशक समाप्त ॥

Elaboration—Explaining the underlying idea the commentator *(Vritti)* mentions—an ascetic goes to seek powdered sugar for some ailing ascetic from a layman But the donor offers salt, mistaking it for sugar due to the white colour and texture If the ascetic recognizes it as salt, he should at once refuse to take it. If he also accepts it unknowingly and realizes his mistake later, he should return to the donor and confirm if it was given intentionally. The procedure to be followed is clearly mentioned in the aphorism

Hear *'aprasuk'* word has been used to convey unacceptable and not *sachit* (contaminated with living organisms) or having some fault. If a donor gives something mistaking it for something else it is unacceptable till the confusion is removed Once the confusion is removed and permission is got, it becomes acceptable. *(Hindi Tika, p 937)*

॥ END OF LESSON TEN ॥

इक्कारसमो उद्देसओ	एकादश उद्देशक	LESSON ELEVEN

रुग्ण परिचर्या में माया का वर्जन

७४. भिक्खागा णामेगे एवमाहंसु समाणे वा वसमाणे वा गामाणुगामं वा दूइज्जमाणे मणुण्णं भोयणजायं लभित्ता–से य भिक्खु गिलाइ, से हंदइ, से हंदह णं तस्साहरह, से य भिक्खू णो भुंजेज्जा तुमं चेव णं भुंजेज्जासि। से 'एगइआ भोक्खामि' त्ति कट्टु पलिउंचिय २ आलोएज्जा, तं जहा–इमे पिंडे, इमे लोए, इमे तित्तए, इमे कडुयए, इमे कसाए, इमे अंबिले, इमे महुरे, णो खलु इत्तो किंचि, गिलाणस्स सयइ त्ति। माइट्ठाणं संफासे। णो एवं करेज्जा। तहाठियं आलोएज्जा जहाठियं गिलाणस्स सयइ त्ति, तं तित्तयं तित्तए ति वा, कडुयं २, कसायं २, अंबिलं २ महुरं २।

७४ कारणवश एक क्षेत्र में कोई साधु स्थिरवासी रहते हों। वहाँ ग्रामानुग्राम विचरण करने वाले साधु आये हों और उन्हें भिक्षा में मनोज्ञ भोजन प्राप्त होने पर (वहाँ स्थित मुनियो से) कहें–"अमुक भिक्षु जो ग्लान (रुग्ण) है, उसके लिए तुम यह मनोज्ञ आहार ले लो और उसे ले जाकर दे दो। यदि वह रोगी साधु न खाए तो तुम खा लेना।" उस भिक्षु ने (रोगी के लिए) वह आहार लेकर सोचा–'यह आहार मैं अकेला ही खाऊँगा।' यो विचारकर उस मनोज्ञ आहार को छिपाकर रोगी भिक्षु को दूसरा आहार दिखलाकर कहता है–"भिक्षुओ ने आपके लिए यह आहार दिया है। किन्तु यह आहार आपके लिए पथ्य नही है, क्योकि यह रूखा है, तीखा है, कडवा है, कसैला है, खट्टा है या अधिक मीठा है, अत रोग बढ़ाने वाला है। इससे आपको कुछ भी लाभ नहीं होगा।" इस प्रकार कपट व्यवहार करने वाला भिक्षु मायास्थान का सेवन करता है। भिक्षु को ऐसा कभी नही करना चाहिए। किन्तु जैसा जो आहार हो, उसे वैसा ही बताना चाहिए अर्थात् तिक्त को तिक्त यावत् मीठे को मीठा बताए। रोगी को स्वास्थ्य लाभ हो, वैसा पथ्य आहार देकर उसकी सेवा-शुश्रूषा करनी चाहिए।

CENSURE OF DECEIT WHILE NURSING

74. For some reason some ascetics stay permanently in some area and other itinerant ascetics arrive there. On getting good quality food as alms they offer (to the resident ascetics)—"Please take this good quality food and carry to give it to that particular

ascetic who is sick. If the sick ascetic does not consume it, you may eat." Taking that food the ascetic thinks—'I will eat this food myself.' With this intention he conceals the rich food and showing other things to the sick ascetic says—"*Bhikshus* have given this food for you. But this is not suitable for you. It will aggravate your condition as it is dry, pungent, bitter, astringent, sour or very sweet. It is not beneficial for you at all." An ascetic indulging in such behaviour is deceitful. No ascetic should ever do that. He should convey only the truth about the food; in other words pungent should be shown as pungent and sweet should be shown as sweet The sick should be given the food that helps him recover and he should be nursed with care.

७५. भिक्खागा णामेगे एवमाहंसु समाणे वा वसमाणे वा गामाणुगामं दूइज्जमाणे (वा) मणुण्णं भोयणजायं लभित्ता–से य भिक्खू गिलाइ, से हंदह णं तस्सआहरह, से य भिक्खू णो भुजेज्जा आहरेज्जासि णं। णो खलु मे अंतराए आहरिस्सामि। इच्चेयाइं आययणाइं उवाइकम्म।

७५. यदि समान समाचारी वाले स्थिरवासी साधु को अथवा ग्रामानुग्राम विचरण करके आने वाले साधुओ को भिक्षाचरी में मनोज्ञ भोजन प्राप्त होने पर आगंतुक साधुओं से यों कहें कि "जो भिक्षु रोगी है, उसके लिए यह मनोज्ञ (पथ्य) आहार ले जाओ, अगर वह रोगी भिक्षु इसे न खाए तो यह आहार वापस हमारे पास ले आना, कारण हमारे यहाँ भी रोगी साधु है।" तब वह आहार लेने वाला साधु उनसे कहे कि "यदि मुझे आने में कोई विघ्न उपस्थित न हुआ तो यह आहार वापस ले आऊँगा।" परन्तु रस-लोलुपी वह साधु आहार रोगी को न देकर स्वय खा जाता है, तो वह मायास्थान का सेवन करता है। अतः इन पूर्वोक्त कर्मों के कर्मबंधन (कारणों) का सम्यक् परित्याग करके सत्यतापूर्वक यथातथ्य व्यवहार करना चाहिए।

75. For some reason some ascetics stay permanently in some area and other itinerant ascetics arrive there. On getting good quality food as alms they offer (to the resident ascetics)—"Please take this good quality food and carry to give it to that particular ascetic who is sick. If the sick ascetic does not consume it, please bring it back because we also have some sick ascetic." The ascetic

who takes the food says—"If nothing prevents me I will certainly bring it back." But the greedy ascetic eats that food instead of giving it to the sick. Such ascetic is deceitful. Therefore, one should sincerely avoid the said causes of bondage of *karma* and indulge in truthful behaviour stating the fact as it were.

विवेचन—प्रस्तुत दोनो सूत्रो मे रोगी साधुओं की आहार सम्बन्धी परिचर्या पर विशेष ध्यान दिया गया है। क्योंकि रुग्ण व्यक्ति की परिचर्या में, औषध जितनी महत्त्वपूर्ण है, उतना ही महत्त्वपूर्ण है पथ्य-भोजन। पथ्य-भोजन नहीं मिलने से रोगी साधु के चित्त में विक्षेप व असमाधि उत्पन्न हो सकती है। अत॰ इस सामान्य-सी प्रतीत होने वाली बात को शास्त्रकार ने बड़ी गम्भीरता से लिया है और उस विषय में सेवा करने वाले मुनियों को स्वाद-लोलुप होकर उनके साथ किसी प्रकार का कपट व्यवहार नहीं करके सरल, सहज व्यवहार करने का निर्देश दिया है। इस प्रकार के कपट व्यवहार से स्वयं की आत्मा तो कलुषित होती ही है। रोगी की चित्त समाधि भी भंग होती है और अन्तरायकर्म का बंध होता है। *(हिन्दी टीका, पृ ९४३)*

Elaboration—In these two aphorisms special stress has been given to the care of the ailing ascetic with regard to his food In the care of the sick, proper food is as important as medicine If he does not get proper food the sick ascetic may get disturbed and angry Therefore the author has given a serious thought to this seemingly ordinary matter. The ascetics who nurse the sick have been instructed to be sincere and avoid deceit inspired by their cravings for food. Any such deceitful behaviour tarnishes his own soul As the sick is offended this also engenders *antaraya karma* bondage *(Hindi Tika, p 943)*

सात प्रकार की पिण्डैषणा

७६. अह भिक्खू जाणिज्जा सत्त पिंडेसणाओ सत्त पाणेसणाओ–

(१) तत्थ खलु इमा पढमा पिंडेसणा–असंसट्ठे हत्थे असंसट्ठे मत्ते। तहप्पगारेण असंसट्ठेण हत्थेण वा मत्तएण वा असणं वा ४ सयं वा णं जाएज्जा परो वा से दिज्जा, फासुयं पडिगाहिज्जा। पढमा पिंडेसणा।

(२) अहावरा दोच्चा पिंडेसणा–संसट्ठे हत्थे संसट्ठे मत्ते, तहेव दोच्चा पिंडेसणा।

७६. अब संयमी भिक्षु को सात पिण्डैषणाएँ और सात पानैषणाएँ जान लेनी चाहिए–

(१) सातों में से पहली पिण्डैषणा इस प्रकार है–अलिप्त हाथ और अलिप्त पात्र। हाथ और बर्तन किसी प्रकार की सचित्त वस्तु से लिप्त न हो तो उनसे अशन, पानादि चतुर्विध आहार की स्वय याचना करे अथवा गृहस्थ दे तो उसे प्रासुक जानकर ग्रहण कर ले। यह पहली पिण्डैषणा है।

(२) दूसरी पिण्डैषणा इस प्रकार है–लिप्त हाथ और लिप्त पात्र। यदि दाता का हाथ और बर्तन दोनो अचित्त वस्तु से लिप्त हैं तब उनसे अशनादि चतुर्विध आहार की स्वयं याचना करे या वह गृहस्थ दे तो उसे प्रासुक जानकर ग्रहण कर ले। यह दूसरी पिण्डैषणा है।

(३) अहावरा तच्चा पिंडेसणा–इह खलु पाईणं वा ४ संतेगइया सड्ढा भवंति गाहावइ वा जाव कम्मकरी वा। तेसिं च णं अण्णयरेसु विरूवरूवेसु भायणजाएसु उवणिक्खित्तपुव्वे सिया, तं जहा–थालंसि वा पिढरंसि वा सरगंसि वा परगंसि वा वरगंसि वा। अह पुणेवं जाणेज्जा असंसट्ठे हत्थे संसट्ठे मत्ते, संसट्ठे वा हत्थे असंसट्ठे मत्ते। से य पडिग्गहधारी सिया पाणिपडिग्गहिए वा, से पुव्वामेव आलोएज्जा–आउसो ति वा भगिणी ति वा एएण तुमं असंसट्ठेण हत्थेण ससट्ठेण मत्तेण। संसट्ठेण वा हत्थेण असंसट्ठेण मत्तेण अस्सिं पडिग्गहगंसि वा पाणिंसि वा णिहट्टु ओवित्तु दलयाहि। तहप्पगारं भोयणजायं सयं वा जाएज्जा परो वा से देज्जा। फासुयं एसणिज्जं जाव लाभे संते पडिगाहेज्जा। तच्चा पिडेसणा।

(३) तीसरी पिण्डैषणा इस प्रकार है–इस क्षेत्र मे पूर्व, पश्चिम आदि चारों दिशाओं मे कई श्रद्धालु व्यक्ति रहते हैं, जैसे कि वे गृहपति, गृहपत्नी, यावत् उनके नौकर, नौकरानियाँ आदि। उनके यहाँ अनेक प्रकार के बर्तनों में पहले से भोजन रखा हुआ होता है, जैसे थाल मे, तपेली या वटलोई (पिठर) में, सरक (सरकण्डों से बने सूप आदि) में, परक (बाँस से बनी छबडी या टोकरी) मे, वरक (मणि आदि से जटित बहुमूल्य पात्र) में। साधु यह जाने कि गृहस्थ का हाथ तो लिप्त नही है, बर्तन लिप्त है अथवा हाथ लिप्त है, बर्तन अलिप्त है, तब वह पात्रधारी (स्थविरकल्पी) या पाणिपात्र (जिनकल्पी) साधु पहले ही उसे देखकर कहे–"आयुष्मन् गृहस्थ या आयुष्मती बहन ! तुम मुझे असंसृष्ट हाथ से संसृष्ट बर्तन से अथवा ससृष्ट हाथ से असंसृष्ट बर्तन से हमारे पात्र में या हाथ पर वस्तु लाकर दो।" उस प्रकार के भोजन को या तो वह साधु स्वयं माँग ले या फिर बिना माँगे ही गृहस्थ लाकर दे तो उसे प्रासुक एव एषणीय समझकर मिलने पर ले लेना चाहिए। यह तीसरी पिण्डैषणा है।

(४) अहावरा चउत्था पिंडेसणा–से भिक्खू वा २ से जं पुण जाणेज्जा पिहुयं वा जाव चाउलपलंबं वा, अस्सिं खलु पडिग्गहियंसि अप्पे पच्छाकम्मे अप्पे पज्जवजाए। तहप्पगारं पिहुयं वा जाव चाउलपलंबं वा सयं वा णं जाएज्जा जाव पडिगाहेज्जा। चउत्था पिंडेसणा।

(४) चौथी पिण्डैषणा इस प्रकार है–भिक्षु यह जाने कि गृहस्थ के यहाँ तुषरहित चावल आदि अन्न रखा है, यावत् भुँजे हुए शालि आदि चावल हैं, जिन्हें लेने पर पश्चात्-कर्म दोष नहीं लगेगा और न ही तुष आदि गिराने पड़ते हैं, इस प्रकार के धान्य यावत् भुग्न शालि आदि चावल या तो साधु स्वयं माँग ले या फिर गृहस्थ बिना माँगे ही उसे दे तो प्रासुक एवं एषणीय समझकर प्राप्त होने पर ले लेना चाहिए। यह चौथी पिण्डैषणा है।

(५) अहावरा पंचमा पिंडेसणा–से भिक्खू वा २ जाव उग्गहियमेव भोयणजायं जाणेज्जा, तं जहा–सरावंसि वा डिंडिमंसि वा कोसगंसि वा। अह पुणेवं जाणेज्जा बहुपरियावण्णे पाणीसु दगलेवे। तहप्पगारं असणं वा ४ सयं वा णं जाएज्जा जाव पडिगाहेज्जा। पंचमा पिंडेसणा।

(५) पाँचवीं पिण्डैषणा इस प्रकार है–भिक्षु यह जाने कि गृहस्थ ने सचित्त जल से हाथ धोकर अपने खाने के लिए किसी सकोरे में, काँसे के बर्तन में या मिट्टी के किसी बर्तन में भोजन रखा है, उसके हाथ और पात्र जो सचित्त जल से धोए थे, अब कच्चे पानी से लिप्त नहीं हैं (सूख चुके हैं)। उस प्रकार के आहार को प्रासुक जानकर या तो साधु स्वय माँग ले या गृहस्थ स्वयं देने लगे तो वह ग्रहण कर ले। यह पाँचवीं पिण्डैषणा है।

(६) अहावरा छट्ठा पिंडेसणा–से भिक्खू वा २ पग्गहियमेव भोयणजायं जाणेज्जा जं च सयट्ठाए पग्गहियं जं च परट्ठाए पग्गहियं तं पायपरियावण्णं तं पाणिपरियावण्णं फासुयं जाव पडिगाहेज्जा छट्ठा पिंडेसणा।

(६) छठी पिण्डैषणा इस प्रकार है–भिक्षु यह जाने कि गृहस्थ ने अपने लिए या दूसरे के लिए बर्तन में से भोजन निकाला है, परन्तु दूसरे ने अभी तक उस आहार को ग्रहण नहीं किया है, तो उस प्रकार का भोजन चाहे गृहस्थ के पात्र में हो या उसके हाथ में हो, उसे प्रासुक और एषणीय जानकर मिलने पर ग्रहण कर लेना चाहिए। यह छठी पिण्डैषणा है।

(७) अहावरा सत्तमा पिंडेसणा–से भिक्खू वा २ जाव बहुउज्झियधम्मियं भोयणजायं जाणेज्जा जं चऽन्ने बहवे दुपय-चउप्पय, समण-माहण-अतिहि-किवण-वणीमगा णावकंखंति तहप्पगारं उज्झियधम्मियं भोयणजायं सयं वा णं जाएज्जा परो वा से देज्जा जाव पडिगाहिज्जा। सत्तमा पिंडेसणा। इच्चेयाओ सत्त पिंडेसणाओ।

(७) सातवीं पिण्डैषणा इस प्रकार है–गृहस्थ के घर में भिक्षा के लिए जाने पर साधु या साध्वी वहाँ बहु-उज्झितधर्मिक (जिसका अधिकांश भाग फेंकने योग्य हो, इस प्रकार का) भोजन जाने जिसे अन्य बहुत-से द्विपद-चतुष्पद, श्रमण, ब्राह्मण, अतिथि, दरिद्र और भिखारी लोग नहीं चाहते, उस प्रकार के उज्झितधर्म वाले भोजन की स्वयं याचना करे अथवा वह गृहस्थ दे दे तो उसे प्रासुक एवं एषणीय जानकर मिलने पर ले लेवे। यह सातवीं पिण्डैषणा है। इस प्रकार ये सात पिण्डैषणाएँ हैं।

SEVEN TYPES OF PINDAISHANA

76. Now the disciplined *bhikshu* should know about the seven *pindaishana* (codes of accepting food) and seven *panaishana* (codes for accepting drinks)—

(1) The first of the seven codes of accepting food is—clean hands and bowl. If the hands and bowl of the donor are not soiled with anything, the ascetic may seek alms and, if offered, take it considering it to be acceptable. This is the first *pindaishana*.

(2) The second code of accepting food is—soiled hands and bowl If the hands and bowl of the donor are soiled with *achit* (uncontaminated) thing the ascetic may seek alms and, if offered, take it considering it to be acceptable. This is the second *pindaishana*.

(3) The third code of accepting food is—in all the four direction of this area live many devotees, such as male and female devotees, servants, maids etc. In their houses food is placed in various utensils, such as plate, pan, pot, winnowing basket, precious plates (studded with jewels) etc. The ascetic should find if the hands of the donor are clean and bowl is soiled or the hands are soiled and bowl is clean. Now the ascetic who carries a bowl *(sthavir-kalpi)* or whose hands are the only bowls *(jinakalpi)* should advance and say—"Long lived brother or sister ! Please bring food with your clean hands and soiled bowl or soiled hands and clean bowl and place it in my pot or on my

hands." This way the ascetic may seek food or take it if brought and offered by the host, considering it to be faultless and acceptable. This is the third *pindaishana.*

(4) The fourth code of accepting food is—the ascetic should find if the donor has bran-free rice or other grains, roasted rice or other grains (etc) which do not entail *paschat-karma* faults or discarding bran (etc). If such things are available, the ascetic may seek these or take if brought and offered by the host, considering these to be faultless and acceptable. This is the fourth *pindaishana.*

(5) The fifth code of accepting food is—the ascetic should find if the host washed his hands with *sachit* (contaminated) water before serving food for himself in some pot made of metal or clay. He should also find that the hands or bowl washed with *sachit* water are now dry. If so the ascetic may seek food or take it if brought and offered by the host, considering it to be faultless and acceptable. This is the fifth *pindaishana*

(6) The sixth code of accepting food is—the ascetic should find that the host has taken out food for himself or others in some pot but no one has eaten from it. If so the ascetic may seek food or take it irrespective of it being in a pot or his hands, considering it to be faultless and acceptable. This is the sixth *pindaishana.*

(7) The seventh code of accepting food is—the ascetic while entering the house of a layman in order to seek alms should find if the host has food having a larger disposable portion and which is not wanted by bipeds, quadruped, *Shramans,* Brahmins, guests, destitute or beggars. If so the ascetic may seek such food or take it if brought and offered by the host, considering it to be faultless and acceptable. This is the seventh *pindaishana.* Such are the seven codes of accepting food

सात प्रकार की पानैषणा

७७. अहावराओ सत्त पाणेसणाओ। तत्थ खलु इमा पढमा पाणेसणा–असंसट्ठे हत्थे असंसट्ठे मत्ते। तं चेव भाणियव्वं, णवरं चउत्थाए णाणत्तं, से भिक्खू वा २ जाव से जं पुण पाणगजायं जाणेज्जा, तं जहा तिलोदगं वा तुसोदगं वा जवोदगं वा आयामं वा सोवीरं वा सुद्धवियडं वा, अस्सिं खलु पडिग्गहियंसि अप्पे पच्छाकम्मे, तहेव जाव पडिगाहिज्जा।

इच्चेयंसि सत्तण्हं पिंडेसणाणं सत्तण्हं पाणेसणाणं अण्णयरं पडिमं पडिवज्जमाणे नो एवं वइज्जा–मिच्छा पडिवण्णा खलु एए भयंतारो, अहमेगे सम्मे पडिवण्णे।

जे एए भयंतारो एयाओ पडिमाओ पडिवज्जित्ताणं विहरंति जो य अहमंसि एयं पडिमं पडिवज्जित्ताणं विहरामि सव्वे वि ते उ जिणाणाए उवट्ठिया अण्णोण्णसमाहीए एवं च णं विहरंति।

एवं खलु तस्स भिक्खुस्स वा भिक्खुणीए वा सामग्गियं।

॥ इक्कारसमो उद्देसओ सम्मत्तो ॥

॥ पढमं अज्झयणं सम्मत्तं ॥

७७. सात पिण्डैषणा के पश्चात् सात पानैषणाएँ हैं। इन सात पानैषणाओं में से प्रथम पानैषणा इस प्रकार है–असंसृष्ट हाथ और असंसृष्ट पात्र। इसी प्रकार (पिण्डैषणाओं की तरह) शेष सब पानैषणाओं का वर्णन समझ लेना चाहिए।

इतना विशेष समझना चाहिए कि चौथी पानैषणा मे विविधता का निरूपण है–वह भिक्षु या भिक्षुणी गृहस्थ के यहाँ प्रवेश करने पर जिन पानी के प्रकारों के सम्बन्ध में जाने, वे इस प्रकार हैं–तिल का धोवन, तुष का धोवन, जौ का धोवन, चावल आदि का पानी (ओसामण), कांजी का पानी या शुद्ध उष्ण जल। इनमे से किसी भी प्रकार का पानी ग्रहण करने पर निश्चय ही पश्चात्-कर्म नहीं लगता हो तो उस प्रकार के पानी को प्रासुक और एषणीय मानकर ग्रहण कर लेना चाहिए।

इन सात पिण्डैषणाओं तथा सात पानैषणाओं में से किसी एक प्रतिमा (प्रतिज्ञा या अभिग्रह) को स्वीकार करने वाला इस प्रकार न कहे कि इन सब साधु-भदन्तों ने मिथ्यारूप से प्रतिमाएँ स्वीकार की है, एकमात्र मैंने ही प्रतिमाओं को सम्यक् प्रकार से स्वीकार किया है। (अपितु इस प्रकार कहना चाहिए–) जो ये साधु-भगवन्त इन प्रतिमाओं

को स्वीकार करके विचरण करने वाले हैं, जो मैं भी इस प्रतिमा को स्वीकार करके विचरण करने वाला हूँ, ये सभी जिनाज्ञा में उद्यत हैं और इस प्रकार परस्पर एक-दूसरे की समाधिपूर्वक विचरण करने वाले हैं।

इस प्रकार जो साधु-साध्वी (गौरव-लाघवग्रन्थि से दूर रहकर निरहंकारता एवं आत्म-समाधि के साथ आत्मा के प्रति समर्पित होकर) पिण्डैषणा–पानैषणा का विधिवत् पालन करते हैं, उन्हीं में भिक्षुभाव की या ज्ञानादि आचार की समग्रता है।

SEVEN *PANAISHANAS*

77. After seven *pindaishanas* come seven *panaishanas.* Of these seven *panaishanas* the first is—clean hands and bowl. The remaining *panaishanas* also being same as the other *pindaishanas.*

Only the fourth has this difference—On entering the house of a layman the types of drinks about which the ascetic should know are—*sesame*-wash, bran-wash, barley-wash, rice-wash, *kanji* (sour gruel) or pure boiled water. If he is sure that any of these drinks does not entail *paschatkarma* (post-activity) fault he may take such drink considering it to be faultless and acceptable.

An ascetic who takes a vow of following any one of these seven *pindaishanas* and *panaishanas* should not claim that all other ascetics have taken wrong vows and only he has taken the vows properly. (Instead he should say—) These revered persons, who follow these codes and I who also follows these codes, we all pursue the path shown by the *Jina* with mutual respect.

This (following the codes of accepting food and drinks) is the totality (of conduct including that related to knowledge) for that *bhikshu* or *bhikshuni.*

विवेचन–इन सूत्रों में विशेष अभिग्रहधारी मुनियों के लिए सात पिण्डैषणा (आहार ग्रहण की एषणा) तथा सात पानैषणा (पानी ग्रहण की एषणा) का वर्णन है। ये अभिग्रह जिनकल्पी एवं

स्थविरकल्पी दोनों तरह के मुनियों के लिए हैं। स्थविरकल्पी सातों प्रकार के अभिग्रह ले सकता है, जबकि जिनकल्पी के लिए पहली, दूसरी छोड़कर शेष पाँच पिण्डैषणा–पानैषणा का विधान है।

यहाँ **बहु-उज्झियधम्मिय**–आहार से तात्पर्य यह नही है कि वह खाने योग्य नहीं है, किन्तु ऐसे नीरस आहार से है जिसे पशु-पक्षी या श्रमण–भिखारी आदि भी खाना नहीं चाहते हों, अथवा जो अधिक मात्रा में होने के कारण जिसे लेने पर पश्चात्-कर्म की संभावना न हो।

सयं वा जाइज्जा पद से यह सूचित किया है कि ऐसे आहार की मुनि स्वयं भी याचना कर सकता है और गृहस्थ को भी चाहिए वह भक्तिपूर्वक साधु को आहार ग्रहण करने की प्रार्थना करे।

इस अध्ययन के उपसंहाररूप में सूत्र बडा महत्त्वपूर्ण है। इसमें अपनी विशेष साधना व त्याग का अहंकार करने का निषेध है। साधना का उद्देश्य आत्म-शुद्धि है, अतः उसे अपने अहंकार पोषण या दूसरो की निंदा असूया का माध्यम नहीं बनाना चाहिए। साधु अपने अभिग्रह आदि का किसी प्रकार गर्व नही करे तथा जो अभिग्रहधारी नहीं हैं उन्हें किसी प्रकार हीन नहीं समझे। अपितु दोनों ही जिनाज्ञा के आराधक हैं यह समझे। टीकाकार ने विशेष सन्दर्भ देते हुए कहा है– एक वस्त्र रखने वाले मुनि को दो वस्त्रधारी मुनि की, दो वस्त्रधारी को तीन वस्त्रधारी या बहुत वस्त्रधारी मुनि की तथा अचेलक मुनि को सचेलक मुनि की निदा–तिरस्कार करके हीन नहीं वताना चाहिए।

सव्वे वि ते जिणाणाए–वे सब जिनाज्ञा के आराधक हैं। साधना का महत्त्व बाह्य परिवेश में नही, आभ्यन्तर दोषो के निवारण मे है।

॥ एकादश उद्देशक समाप्त ॥

॥ प्रथम अध्ययन समाप्त ॥

Elaboration—These aphorisms describe seven *pindaishanas* and seven *panaishanas* for ascetics who have taken some special resolves These resolves are meant for both *jinakalpi* and *sthavir-kalpi* ascetics. A *sthavir-kalpi* can accept resolves covering all the seven codes whereas a *jinakalpi* can only go for five, leaving the first two

Here *bahu-ujjhiyadhammiya* does not mean food that is not consumable, but that which is so tasteless that even animals, birds and destitute do not want to consume or that which does not possibly entail *paschatkarma* (post-activity) fault due to abundance.

The phrase *sayam va jaijja* informs that an ascetic may himself seek such food and a layman should also request the ascetic with due devotion to accept such food.

The concluding aphorism of this chapter is very important. It discourages any pride for one's special practices or sacrifice The goal of spiritual practices is purity of soul Therefore, one should never make it an instrument of nurturing self-pride or criticism of others. An ascetic should never be proud of his special resolves or other practices He should also not look down upon those who do not indulge in such practices Instead, he should consider both to be the followers of the tenets of the *Jina* The commentator *(Tika)* has mentioned as special reference that—an ascetic with single piece of cloth should not criticize or belittle one with two pieces of cloth, an ascetic with two pieces of cloth should not criticize or belittle one with three or more pieces of cloth, and an unclad ascetic should not criticize or belittle a clad one.

Savve vi te jinanaye—They all are followers of the tenets of the Jina. The importance of spiritual practice lies not in outer appearance but in removal of inner faults

|| END OF LESSON ELEVEN ||

|| END OF FIRST CHAPTER ||

शय्यैषणा : द्वितीय अध्ययन

आमुख

✦ द्वितीय अध्ययन का नाम 'शय्यैषणा' है।

✦ जैन परम्परा में 'शय्या' शब्द कुछ विशिष्ट अर्थ में प्रयुक्त है। यहाँ शय्या का प्रसिद्ध अर्थ बिछौना, गद्दा या सेज ही नही है, अपितु सोने-बैठने के लिए पट्टा, चौकी आदि सभी उपकरणो का समावेश 'शय्या' मे हो जाता है।

✦ 'एषणा' का अर्थ है–अन्वेषण। सयमी-साधु के योग्य द्रव्य शय्या के अन्वेषण, ग्रहण और परिभोग के सम्बन्ध मे कल्प्य-अकल्प्य का चिन्तन/विवेक करना शय्यैषणा है जिसमें शय्या सम्बन्धी एषणा का निरूपण हो, उस अध्ययन का नाम शय्यैषणा अध्ययन है।

✦ जिस प्रकार धर्म साधना के लिए शरीर परिपालनार्थ आहार-पानी की आवश्यकता होती है, वैसे ही शरीर को विश्राम देने, सर्दी-गर्मी रोगादि से उसकी सुरक्षा करके धर्मक्रिया के योग्य रखने हेतु शय्या की आवश्यकता होती है।

✦ शय्यैषणा अध्ययन के तीन उद्देशक है। प्रथम उद्देशक मे उपाश्रय से सम्बन्धित उद्‌गमादि दोषो तथा गृहस्थादि ससक्त उपाश्रय से होने वाली हानियों का विषय है। द्वितीय उद्देशक मे उपाश्रय सम्बन्धी विभिन्न दोषो की सम्भावना तथा उससे सम्बन्धित विवेक एवं त्याग का प्रतिपादन है तथा तृतीय उद्देशक मे संयमी साधु के सम-विषम स्थान मे समभाव रखने का विधान है।

● ●

SHAIYYAISHANA : SECOND CHAPTER

INTRODUCTION

- The name of the second chapter is '*Shaiyyaishana*'
- In the Jain tradition the term '*shaiyya*' represents a special meaning. Here it does not simply mean bed, which is its dictionary meaning. It includes all the equipment used for sitting, reclining or sleeping, such as bed, board, divan, stool, chair etc.
- '*Eshana*' means search or exploration To ponder and evaluate about acceptable and unacceptable with regard to search, acquisition and use of equipment for sleep for a disciplined ascetic is called *shaiyyaishana* The chapter which contains codes about search, acquisition, and use of such equipment is the *Shaiyyaishana* chapter
- As food and drinks are required to maintain the human body for spiritual pursuits, so is required bed to provide rest to the body and help protect it from heat, cold and sickness (etc) and keep it fit for spiritual pursuits
- This chapter has three lessons The first lesson contains information about faults of origin related to the place of stay and harms caused by presence of householders and others The second lesson contains various possibilities of faults related to the place of stay, *upashraya,* and the related prudence and censures The third lesson contains procedures about pursuing equanimity at convenient and inconvenient places.

● ●

सेज्जा : बीयं अज्झयणं
शय्यैषणा : द्वितीय अध्ययन
SHAIYYAISHANA : SECOND CHAPTER
THE SEARCH FOR BED

पढमो उद्देसओ | प्रथम उद्देशक | LESSON ONE

जीव-जन्तुरहित उपाश्रय-एषणा

७८. से भिक्खू वा २ अभिकंखेज्जा उवस्सयं एसित्तए, अणुपविसित्ता गामं वा णगरं वा जाव रायहाणिं वा से जं पुण उवस्सयं जाणेज्जा; सअंडं सपाणं जाव ससंताणयं, तहप्पगारे उवस्सए णो ठाणं वा सेज्जं वा णिसीहियं वा चेइज्जा।

से भिक्खू वा २ से जं पुण उवस्सयं जाणेज्जा, अप्पंडं जाव अप्प संताणगं, तहप्पगारे उवस्सए पडिलेहित्ता पमज्जित्ता तओ संजयामेव ठाणं वा ३ चेइज्जा।

७८. भिक्षु-भिक्षुणी उपाश्रय की एषणा के लिए ग्राम या नगर यावत् राजधानी मे प्रवेश करके योग्य उपाश्रय की गवेषणा करते हुए यदि जाने कि वह उपाश्रय अण्डों से यावत् मकडी के जालों से युक्त है तो वैसे उपाश्रय में साधु-साध्वी स्थान-(कायोत्सर्ग), शय्या-(सस्तारक) और निषीधिका-(स्वाध्याय) न करे।

वह साधु-साध्वी यह जाने कि उपाश्रय अण्डों यावत् मकड़ी के जालो आदि से रहित है तो वैसे उपाश्रय का प्रतिलेखन एवं प्रमार्जन करके उसमे कायोत्सर्ग, संस्तारक एवं स्वाध्याय करे।

SEARCH FOR *UPASHRAYA* FREE OF CREATURES

78. On entering a village, town or city in search of an *upashraya* (a place of stay) and while exploring for it if a *bhikshu* or *bhikshuni* finds that the *upashraya* is infested with eggs, cobwebs etc., he should avoid its use for meditation *(thanam)*, sleeping *(sejjam)* and studies *(nisihiyam)*.

However if the *bhikshu* or *bhikshuni* finds that the *upashraya* is not infested with eggs, cobwebs etc., he should inspect and clean the *upashraya* and use it for meditation *(thanam)*, sleeping *(sejjam)* and studies *(nisihiyam)*.

विवेचन–'उपाश्रय' का अर्थ है–गृहस्थ द्वारा अपने निज उपयोग के लिए बनाया हुआ वह स्थान जहाँ पर साधु-साध्वी गृहस्थ की अनुमति लेकर ठहरते हो। उसे 'वसति' भी कहते है। ऐसा स्थान निर्दोष तथा निरवद्य होना चाहिए। जहाँ ठहरने से किसी जीव की हिसा नही हो तथा साधु के कायोत्सर्ग, स्वाध्याय तथा उठने-बैठने मे किसी प्रकार की बाधा नही आती हो।

साधु उपाश्रय का चयन मुख्यतया तीन कार्यों के लिए करता है–

(१) ठाण–कायोत्सर्ग के लिए।

(२) सेज्जं–सोने-बैठने आदि के लिए।

(३) णिसीहिय–स्वाध्याय के लिए।

प्राचीन काल मे स्वाध्याय-भूमि आवास-स्थान से अलग एकान्त-स्थान मे होती थी, जहाँ लोगो के आवागमन का निषेध होता था, इसीलिए स्वाध्याय-भूमि को निषेधिकी–निसीहिया–(सर्व सामान्य के लिए निषिद्ध स्थान) कहा जाता था।

Elaboration—*Upashraya* means—a house or facility constructed by a householder for his own use where ascetics stay after seeking permission from the owner It is also called *'vasati'* Such place should be flawless and undefiled A place where the stay by an ascetic does not put any being to harm or inconvenience and where there is no disturbance to the ascetic in his activities like meditation, studies and normal movement

An ascetic explores an *upashraya* mainly for three activities—

(1) ***Thanam***—for *kayotsarg* (dissociation of mind from the body) or meditation

(2) ***Sejjam***—for sitting, sleeping and other normal activities

(3) ***Nisihiyam***—for studies

In ancient times the place for studies was different from the place of stay and in isolation and visitors were prohibited. That is why the place of study was called a prohibited area or *nishedhiki* or *nisihiya*

उपाश्रय-एषणा : औद्देशिक निषेध

७९. से जं पुण उवस्सयं जाणेज्जा–अस्सिंपडियाए एगं साहम्मियं समुद्दिस्स पाणाइं ४ समारंभ समुद्दिस्स कीयं पामिच्चं अच्छिज्जं अणिसट्ठं अभिहडं आहट्टु चेएइ। तहप्पगारे उवस्सए पुरिसंतरकडे वा अपुरिसंतरकडे वा जाव आसेविए वा अणासेविए वा २ णो ठाणं वा ३ चेइज्जा। एवं बहवे साहम्मिया एगं साहम्मिणिं। बहवे साहम्मिणीओ।

७९ कदाचित् साधु ऐसा उपाश्रय जाने, जोकि गृहस्थ द्वारा किसी एक साधर्मिक साधु के उद्देश्य से प्राणियों का समारम्भ करके बनाया गया है। उसी के उद्देश्य से खरीदा गया है, उधार लिया गया है निर्बल से छीना गया है, उसके स्वामी की अनुमति के विना लिया गया है। तो ऐसा उपाश्रय; चाहे वह पुरुषान्तरकृत हो या अपुरुषान्तरकृत हो, उसके स्वामी द्वारा उपयोग मे लिया गया हो या नही, उसमें कायोत्सर्ग आदि क्रियाएँ नही करनी चाहिए।

इसी प्रकार जो बहुत-से साधर्मिक साधुओ, एक साधर्मिणी साध्वी, बहुत-सी साधर्मिणी साध्वियो आदि के उद्देश्य से बनाया गया हो तो उस उपाश्रय मे कायोत्सर्गादि का निषेध समझना चाहिए।

CENSURE OF THE INTENTIONALLY BUILT

79. If the *bhikshu* or *bhikshuni* finds an *upashraya* that has been constructed for some particular co-religionist ascetic and the process involves violence of beings; or has been purchased or borrowed or forcibly snatched from others or taken without the permission of its owner, then it should not be used for meditation and other mentioned activities irrespective of its having been used or not used by the owner.

In the same way if it has been constructed for many co-religionist ascetics (male) or single female ascetic or many female ascetics, such *upashraya* should be considered prohibited for meditation etc. by ascetics.

पुरुषान्तरकृत उपाश्रय

८०. [१] से भिक्खू वा २ से जं पुण उवस्सयं जाणेज्जा, बहवे समण-माहण-अतिहि-किवण-वणीमए पगणिय २ समुद्दिस्स तं चेव भाणियव्वं।

[२] से भिक्खू वा २ से जं पुण उवस्सयं जाणेज्जा, बहवे समण-माहण-अतिहि-किवण-वणीमए समुद्दिस्स पाणाइं ४ जाव चेएइ। तहप्पगारे उवस्सए अपुरिसंतरकडे जाव अणासेविए णो ठाणं वा ३ चेएज्जा। अह पुणेवं जाणेज्जा पुरिसंतरकडे जाव आसेविए। पडिलेहित्ता पमज्जित्ता तओ संजयामेव ठाणं वा ३ चेएज्जा।

८०. [१] साधु-साध्वी यदि ऐसा उपाश्रय जाने, जो बहुत-से श्रमणों, ब्राह्मणों, अतिथियो, दरिद्रो एवं भिखारियों को गिन-गिनकर उनके उद्देश्य से षट्काय का समारम्भ करके बनाया गया है, जो क्रीत आदि दोषयुक्त है, वह यदि अपुरुषान्तरकृत तथा अनासेवित हो, तो ऐसे उपाश्रय में कायोत्सर्ग आदि नहीं करना चाहिए।

[२] वह साधु या साध्वी; जाने कि कोई उपाश्रय बहुत-से श्रमणों, ब्राह्मणों, अतिथियों, दरिद्रो आदि को खास उद्देश्य करके बनाया गया है। किन्तु वह उपाश्रय यदि अपुरुषान्तरकृत तथा अनासेवित हो तो, उस उपाश्रय में कायोत्सर्ग आदि नहीं करना चाहिए। किन्तु यदि ऐसा उपाश्रय पुरुषान्तरकृत है, उसके स्वामी द्वारा अधिकृत है तो उसका प्रतिलेखन तथा प्रमार्जन करके वहाँ कायोत्सर्ग आदि कर सकता है।

USED *UPASHRAYA*

80. [1] A *bhikshu* or *bhikshuni* should find if an *upashraya* has been constructed specifically for a large number of *shramans*, Brahmins, guests, destitute and beggars by sinful activities against six life-forms, and has other flaws like *kreet* (purchased specifically for someone). If it is so and it has not already been used by the owner then it should not be used for ascetic activities including meditation.

[2] If the *bhikshu* or *bhikshuni* finds that an *upashraya* has been constructed specifically for a large number of *shramans*, Brahmins, guests, destitute and beggars, and if it has not already been used by the owner then it should not be used for ascetic activities including meditation. However, if it has already been used by the owner and his permission has been taken then it can be used after inspecting and cleaning by the ascetic for his ascetic activities including meditation.

८१. से भिक्खू वा २ से जं पुण उवस्सयं जाणेज्जा अस्संजए भिक्खुपडियाए कडिए वा उक्कंबिए वा छत्ते वा लेत्ते वा घट्ठे वा मट्ठे वा संमट्ठे वा संपधूविए वा। तहप्पगारे उवस्सए अपुरिसंतरकडे जाव अणासेविए णो ठाणं वा ३ चेइज्जा। अह पुणेवं जाणेज्जा पुरिसंतरकडे जाव आसेविए, पडिलेहित्ता पमज्जित्ता तओ संजयामेव जाव चेइज्जा।

८१. साधु-साध्वी ऐसा उपाश्रय जाने, जोकि गृहस्थ ने साधुओं के निमित्त बनाया है। काष्ठादि लगाकर सँवारा है। बाँस आदि से बाँधा है। घास आदि से आच्छादित किया है। गोबर आदि से लीपा है। सँवारा है, घिसा है, चिकना किया है, समतल बनाया है। धूप आदि सुगन्धित द्रव्यों से सुवासित किया है। ऐसा उपाश्रय यदि अपुरुषान्तरकृत यावत् अनासेवित हो तो उसमें कायोत्सर्ग आदि नहीं करना चाहिए। यदि वह यह जान ले कि वह उपाश्रय पुरुषान्तरकृत यावत् गृहस्थ द्वारा आसेवित हो चुका है तो उसका प्रतिलेखन एव प्रमार्जन करके वहाँ स्थान आदि क्रियाएँ कर सकता है।

81. A *bhikshu* or *bhikshuni* should find if an *upashraya* has been constructed specifically for ascetics. It has been decorated with things like wood. It has been constructed with bamboos It has been thatched with hay or other such things. It has been plastered with cow-dung or other such things. It has been cleaned, ground, polished and leveled. It has been fumed with incense or other aromatic things. If such *upashraya* has not already been used by the owner then it should not be used for ascetic activities including meditation. However, if it has already been used by the owner or a householder then it can be used after inspecting and cleaning by the ascetic for his ascetic activities including meditation.

विशेष शब्दों के अर्थ–कडिए–चटाइयों आदि के द्वारा चारो ओर से आच्छादित या सुसंस्कृत। उक्कंबिए–खम्भों पर बाँसों को तिरछे रखकर बनाया हुआ। छत्ते–घास, दर्भ आदि से ऊपर का भाग आच्छादित कर देना। लेत्ते–दीवार आदि पर गोबर आदि से लीपना, ये उत्तरगुण (उत्तर परिकर्म) हैं, जो मूलगुणों (मूल परिकर्म) को नष्ट कर देते हैं। घट्ठे–चूने, पत्थर आदि खुरदरे पदार्थ से घिसकर विषम स्थान को सम बनाना। मट्ठे–कोमल बनाना। समट्ठे–साफ कर देना। संपधूविते–धूप आदि सुगन्ध द्रव्यों से दुर्गन्ध को सुगन्धित करना। *(निशीथ चूर्णि, उ ५, बृहत्कल्प वृत्ति, पृ. १६१)*

Technical Terms : *Kadiye*—covered or decorated on all sides with reed or cane mattress. *Ukkambiye*—to fix bamboos horizontally on pillars. *Chhatte*—to thatch with hay or other such material *Lette*—to plaster walls and floor with cow-dung or other material These are secondary activities and they obliterate the original activities. *Ghatthe*—to make a rough surface plane by grinding with lime, stone and other such material. *Matthe*—to make smooth *Samatthe*—to clean *Sampadhuvite*—to make fragrant by burning incense or any other aromatic material. *(Nishith Churni 5, Brihatkalpa Vritti, p 169)*

८२. से भिक्खू वा २ से जं पुण उवस्सयं जाणेज्जा, अस्संजए भिक्खुपडियाए खुड्डियाओ दुवारियाओ महल्लियाओ कुज्जा जहा पिण्डेसणाए जाव संथारगं संथारेज्जा बहिया वा णिण्णक्खु। तहप्पगारे उवस्सए अपुरिसंतकडे जाव अणासेविए णो ठाणं वा ३ चेइज्जा। अह पुणेवं जाणेज्जा–पुरिसंतरकडे जाव आसेविए, पडिलेहित्ता पमज्जित्ता ततो संजयामेव जाव चेइज्जा।

८२. वह साधु-साध्वी ऐसा उपाश्रय जाने, गृहस्थ ने साधुओ के लिए जिसके छोटे द्वार को बड़ा किया हो, जैसे पिण्डैषणा अध्ययन मे बताया गया है, यहॉ तक कि उपाश्रय के अन्दर और बाहर की हरियाली उखाडकर, काटकर वहॉ सस्तारक बिछाया गया हो, अथवा कोई पदार्थ उसमें से बाहर निकाला गया हो, वैसा उपाश्रय यदि अपुरुषान्तरकृत यावत् अनासेवित हो तो वहॉ कायोत्सर्गादि नहीं करना चाहिए। यदि साधु यह जाने कि पूर्वोक्त प्रकार का उपाश्रय पुरुषान्तरकृत है, यावत् आसेवित है तो उसका प्रतिलेखन एव प्रमार्जन करके यतनापूर्वक उपयोग किया जा सकता है।

82. A *bhikshu* or *bhikshuni* should find if an *upashraya* has been renovated by enlarging smaller doors (as mentioned in the *Pindaishana* chapter), or even the greenery inside or outside the house has been dug out or cut before making bed, or some other things have been removed from that place. If such *upashraya* has not already been used by the owner then it should not be used for ascetic activities including meditation. However, if it has already been used by the owner or a householder then it can be used after inspecting and cleaning by the ascetic for his ascetic activities including meditation

८३. से भिक्खू वा २ से जं पुण उवस्सयं जाणेज्जा अस्संजए भिक्खूपडियाए उदकपसूताणि कंदाणि वा मूलाणि वा पत्ताणि वा पुप्फाणि वा फलाणि वा बीयाणि वा हरियाणि वा ठाणाओ ठाणं साहरइ बहिया वा णिण्णक्खु। तहप्पगारे उवस्सए अपुरिसंतरकडे जाव णो ठाणं वा ३ चेएज्जा। अह पुणेवं जाणेज्जा पुरिसंतरकडे जाव चेएज्जा।

८३ साधु-साध्वी ऐसा उपाश्रय जाने कि गृहस्थ, जहाँ पर पानी से उत्पन्न हुए कद, मूल, पत्तों, फूलो या फलो को साधुओ के निमित्त से एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जा रहा है, भीतर से कद आदि पदार्थो को बाहर निकाल रहा है, ऐसा उपाश्रय अपुरुषान्तरकृत यावत् अनासेवित हो तो उसमें कायोत्सर्गादि क्रियाएँ नहीं करना चाहिए। यदि वह उपाश्रय पुरुषान्तरकृत यावत् आसेवित है तो उसका उपयोग कर सकता है।

83. A *bhikshu* or *bhikshuni* should find if aquatic bulbous roots, stalks, leaves, flowers or fruits are being shifted from one place to another within the premises or being brought out from the *upashraya* by a householder. If such *upashraya* has not already been used by the owner then it should not be used for ascetic activities including meditation. However, if it has already been used by the owner or a householder then it can be used after inspecting and cleaning by the ascetic for his ascetic activities including meditation

८४. से भिक्खू वा २ से जं पुण उवस्सयं जाणेज्जा अस्संजए भिक्खुपडियाए पीढं वा फलगं वा णिस्सेणिं वा उदूखलं वा ठाणाओ ठाणं साहरइ बहिया वा णिण्णक्खु। तहप्पगारे उवस्सए अपुरिसंतरकडे जाव णो ठाणं वा ३ चेएज्जा। अह पुणेवं जाणेज्जा पुरिसंतरकडे जाव चेएज्जा ।

८४. वह साधु-साध्वी ऐसा उपाश्रय जाने कि साधुओं को उसमें ठहराने की दृष्टि से गृहस्थ चौकी, पट्टे, निसैनी या ऊखल आदि सामान एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जा रहा है अथवा कोई पदार्थ बाहर निकाल रहा है, वैसा उपाश्रय अपुरुषान्तरकृत यावत् अनासेवित हो तो उसमें कायोत्सर्गादि नहीं करना चाहिए। यदि वह उपाश्रय पुरुषान्तरकृत यावत् आसेवित है, तो वहाँ स्थानादि कार्य किया जा सकता है।

84. A *bhikshu* or *bhikshuni* should find if stools, platforms, ladders, mortars and other such things are being shifted from one

place to another within the premises or being brought out from the *upashraya* by a householder in order to prepare it for the stay of ascetics. If such *upashraya* has not already been used by the owner then it should not be used for ascetic activities including meditation. However, if it has already been used by the owner or a householder then it can be used after inspecting and cleaning by the ascetic for his ascetic activities including meditation.

विवेचन–सूत्र ८१ से ८४ तक में साधुओं के निमित्त बने तथा अपुरुषान्तरकृत आदि चार प्रकार के उपाश्रय निषिद्ध बताये हैं–

(१) साधु के लिए संस्कारित–सुसज्जित किया गया हो।

(२) साधु के लिए उसकी तोड़-फोड़ तथा मरम्मत की जा रही हो।

(३) साधु के लिए उसमें से कन्द–मूल आदि स्थानान्तर किये या निकाले जा रहे हों।

(४) चौकी, पट्टे आदि सामग्री अन्यत्र ले जायी जा रही हो।

बृहत्कल्प भाष्य ५८३-५८४ मे कहा है–इस प्रकार भवन को परिकर्मित–संस्कारित करने तथा उसकी मरम्मत कराने, उसमें पडे हुए सचित्त-अचित्त सामान को स्थानान्तर करने, निकालने आदि में मूलगुण-उत्तरगुण विराधना की सम्भावना रहती है। प्रस्तुत आचारांग मे इन्हीं चार प्रकार के उपाश्रयों के उपयोग का निषेध और विधान दोनों ही बताया है। यदि वे पुरुषान्तरकृत हों, साधु के लिए ही स्थापित न किए गये हों, दाता द्वारा उपयोग मे लिए गये हों तो मुनि उनका स्वाध्याय आदि के लिए उपयोग कर सकता है।

पुरुषान्तरकृत आदि होने पर वे उपाश्रय साधु के लिए औद्देशिक, क्रीत या आरम्भकृत आदि दोषो से युक्त नहीं रहते। गृहस्थ जब किसी मकान को अपने लिए बनाता है या अपने किसी कार्य के लिए उस पर अपना अधिकार रखता है, अपने या समूह के प्रयोजन के लिए स्थापित करता है, स्वय उसका उपयोग करता है, दूसरे लोगों को उपयोग करने के लिए देता है, तब वह मकान साधु के उद्देश्य से निर्मित–संस्कारित नहीं रहता, अन्यार्थकृत हो जाता है। दशवैकालिकसूत्र ८/५१ मे साधु के लिए पर-कृत मकान में रहने का विधान है। *(वृत्ति पत्र ३६१)*

मूलगुण-दोष (आधाकर्मी) से दूषित मकान तो पुरुषान्तरकृत होने पर भी कल्पनीय नहीं होता, इसलिए अन्य विशेषण प्रयुक्त किए गये हैं–**"नीहडे अत्तट्ठिए परिभुत्ते आसेविते।"**

Elaboration—In aphorisms 81 to 84 four types of *upashrayas,* including those constructed for ascetics and unused, have been censured—

(1) Prepared and decorated for an ascetic.

(2) Repaired or renovated for an ascetic.

(3) Bulbous roots etc. are being shifted or taken away to make it suitable for an ascetic.

(4) Stools and other such things are being shifted from there.

It is mentioned in the *Brihatkalpa Bhashya 583-584*—There are chances of transgression of basic and secondary virtues during this process of preparing or renovating the house and shifting of live (vegetables etc.) and lifeless things within or without. Here, in *Acharanga Sutra,* the use of these four types of *upashrayas* has been censured as well as allowed Such houses can be used for ascetic activities like meditation provided they are *purushantarkrit* (a thing which has been used by a member of the family of a donor), not specifically prepared for ascetics and have already been used by householders

Once they are *purushantarkrit,* such *upashrayas* become free of flaws like *auddeshik, kreet* and *arambhkrit* (intended for, purchased for or sinfully constructed for ascetics). When a householder constructs a house for his own use, possesses it for his own use, allots it for his own or public use, uses it himself or allows others to use it then that house no more remains 'intended for ascetics' It becomes 'made for other use'. In *Dashavaikalik Sutra 8/51* there is a permission for an ascetic to live in a house prepared for others *(Vritti leaf 361)*

A house having flaws of basic attributes is not usable even if it is *purushantarkrit.* That is why other adjectives are used—***"nihade attatthiye paribhutte asevite."***

ऊँचे उपाश्रय में निवास का निषेध

८५. से भिक्खू वा २ से जं पुण उवस्सयं जाणेज्जा, तं जहा–खंधंसि वा मंचंसि वा मालंसि वा पासायंसि वा हम्मियतलंसि वा अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि अंतलिक्खजायंसि णण्णत्थ आगाढागाढेहिं कारणेहिं ठाणं वा ३ चेइज्जा।

से य आहच्च चेइए सिया, णो तत्थ सीओदगवियडेण वा उसिणोदगवियडेण वा हत्थाणि वा पायाणि वा अच्छीणि वा दंताणि वा मुहं वा उच्छोलेज्ज वा पधोएज्ज वा णो तत्थ ऊसढं पकरेज्जा, तं जहा–उच्चारं वा पासवणं वा खेलं वा सिंघाणं वा वंतं वा पित्तं वा पूतिं वा सोणियं वा अण्णयरं वा सरीरावयवं। केवली बूया–आयाणमेयं।

से तत्थ ऊसढं पकरेमाणे पयलेज्ज वा पवडेज्ज वा, से तत्थ पयलमाणे पवडमाणे वा हत्थं वा जाव सीसं वा अण्णयरं वा कायंसि इंदियजालं लूसेज्जा, पाणाणि वा अभिहणेज्ज वा जाव ववरोवेज्ज वा। अह भिक्खूणं पुव्वोवदिट्ठा ४ जं तहप्पगारे उवस्सए अंतलिक्खजाए णो ठाणं वा ३ चेइज्जा।

८५. साधु-साध्वी ऐसा उपाश्रय जाने, जो एक स्तम्भ पर स्थित है, मचान पर, दूसरी मंजिल पर, अथवा महल के ऊपर स्थित है, अथवा प्रासाद के तल (छत पर) बना हुआ है, अथवा इसी प्रकार के किसी ऊँचे स्थान पर स्थित है, तो किसी अत्यन्त गाढ कारण के बिना वैसे उपाश्रय मे स्वाध्याय आदि कार्य न करे।

यदि किसी विशेष अनिवार्य कारण मे ऐसे स्थान पर टहरना पड़े, तो वहॉ प्रासुक शीतल जल से या उष्ण जल से हाथ, पैर, ऑख, दॉत या मुॅह न धोए, वहॉ से मल-मूत्रादि का उत्सर्जन न करे, जैसे कि उच्चार, प्रस्रवण, मुख का मल (कफ), नाक का मैल, वमन, पित्त, मवाद, रक्त तथा शरीर के अन्य किसी भी अवयव का मल वहॉ न गिराये क्योकि केवली भगवान ने इसे कर्मबन्ध का कारण बताया है।

जैसे कि मलोत्सर्ग आदि करता हुआ वह (साधु) वहाँ से फिसल सकता है या गिर सकता है। ऊपर से फिसलने या गिरने पर उसके हाथ, पैर, मस्तक या शरीर के किसी भी भाग मे या इन्द्रियो पर चोट लग सकती है, स्थावर एव त्रस प्राणी का विनाश हो सकता है। अतः भिक्षुओं के लिए तीर्थंकर भगवान ने पहले ही यह उपदेश दिया है कि इस प्रकार के अन्तरिक्ष–उच्च स्थान में स्थित उपाश्रय में साधु कायोत्सर्ग आदि कार्य न करे ।

CENSURE OF STAY IN LOFTY *UPASHRAYA*

85. A *bhikshu* or *bhikshuni* should find if an *upashraya* is located on a pillar, scaffold, second storey, top of a palace, roof of a building or other such higher place. He should not use such *upashraya* for his ascetic activities unless there is some strong reason to do so.

If at all he has to stay at such place for some unavoidable reason, he should avoid washing hands, feet, eyes, teeth or mouth with cold or hot water and attending to natures call, such as discharging stool, urine, cough, nasal mucus, vomit, bile, pus, blood or any other such discharge of the body. This is because the omniscient has said that these cause bondage of *karma*.

For instance—While indulging in these activities the ascetic may slip and fall When he slips or falls from a high place his hand, foot, head or any other part of the body or any of the sense organs may get injured and immobile and mobile beings may get destroyed. Therefore, *Tirthankars* have advised the ascetics to avoid using *upashrayas* located at such lofty places for their ascetic activities including meditation.

विवेचन–प्राचीन काल मे श्रमण प्राय इस प्रकार के स्थानों पर ठहरते थे, जो कच्चा छोटा-सा और जीर्ण-शीर्ण होता था, जिसमें किसी गृहस्थ परिवार का निवास नही होता था। कच्चे और छोटे मकान का प्रतिलेखन-प्रमार्जन भी हो सकता था और मल-मूत्रादि विसर्जन भी समिति के अनुकूल हो जाता था। ऊपर की मजिल मे या वहुत ऊँचे मकान से मल-मूत्रादि परिष्ठान की बहुत ही कठिनाई होती है। रात के अँधेरे में नीचे उतरते समय पैर फिसल जाने, सिर या अन्य अंगों के चोट लग जाने का भय तो निश्चित रहता ही है। आचार्य श्री आत्माराम जी म. ने इस निषेध के पीछे यही कारण वताया है कि ऊपर के मकानों में चढ़ने-उतरने के लिए यदि निसैनी का उपयोग किया जाता हो तो वहाँ गिरने आदि अनेक प्रकार के खतरे रहते हैं। इसलिए उन्हें विषम स्थान कहा गया है। यदि ऊपर के मकान मे जाने-आने का रास्ता सुगम हो, चलने-फिरने से मिट्टी आदि नही गिरती हो तथा साधु को अपनी दैनिकचर्या मे किसी प्रकार की समिति–विराधना की संभावना नहीं हो तो ठहरने का निषेध भी नही है। *(हिन्दी टीका, पृष्ठ १७०)*

Elaboration—In the ancient times ascetics generally stayed in small huts or dilapidated dwellings where householders did not live Such places could be properly inspected and cleaned. Natures call could also be attended to according to the codes. But it becomes difficult to properly throw away faeces if the dwelling is at a height or in high rise buildings There are chances of slipping and getting hurt while coming down in the darkness of night According to Acharya Shri Atmaramji M. this is the only reason for this censure, as during that

period crude ladders were used for climbing and the chances of falling or other such accidents were higher. That is why higher places were called difficult places. However, staying at such higher places is not proscribed if there is an easy passage, walls do not crumble due to movement, and there is no chance of going against the codes while attending to daily chores. *(Acharanga Hindi Tika, p. 970)*

विशेष शब्दों के अर्थ–स्कन्ध–प्राकार या एक खम्भे पर टिकाया हुआ उपाश्रय। **फलिहो**–अर्गला। **मंचो**–बिना दीवार का स्थान, वही मण्डप होता है। **मालो**–घर के ऊपर जो दूसरी आदि मंजिल हो। **पासादो**–अनेक कमरों से सुशोभित महल। **हम्मतलं**–सबसे ऊपर की अटारी।

Technical Terms : *Skandh*—an *upashraya* on a pillar or scaffold. *Faliho*—door-chain or bolt *Mancho*—a covered place without walls; pavilion. *Malo*—storeys in a building. *Pasado*—a palace with many rooms. *Hammatalam*—a loft; room at the top of a house

सागारिक उपाश्रय का निषेध

८६. से भिक्खू वा २ से जं पुण उवस्सयं जाणेज्जा, सइत्थियं सखुड्डं सपसु-भत्तपाणं। तहप्पगारे सागारिए उवस्सए णो ठाणं वा ३ चेइज्जा।

८७. आयाणमेयं भिक्खुस्स गाहावइकुलेण सद्धिं संवसमाणस्स। अलसगे वा विसूइया वा छड्डी वा णं उव्वाहेज्जा। अण्णयरे वा से दुक्खे रोगायंके समुप्पज्जेज्जा। अस्संजए कलुणपडियाए तं भिक्खुस्स गायं तेल्लेण वा घएण वा णवणीएण वा वसाए वा अब्भंगेज्ज वा मक्खेज्ज वा, सिणाणेण वा कक्केण वा लोद्धेण वा वण्णेण वा चुण्णेण वा पउमेण वा आघंसिज्ज वा पघंसिज्ज वा उव्वलिज्ज वा उव्वट्टिज्ज वा, सीओदगवियडेण वा उसिणोदगवियडेण वा उच्छोलिज्ज वा पक्खालिज्ज वा सिणाविज्ज वा सिंचिज्ज वा दारुणा वा दारुपरिणामं कट्टु अगणिकायं उज्जालेज्ज वा पज्जालिज्ज वा उज्जालित्ता, पज्जालित्ता कायं आयाविज्ज वा पयाविज्ज वा।

अह भिक्खूणं पुव्वोवदिट्ठा एस पइण्णा ४ जं तहप्पगारे सागारिए उवस्सए णो ठाणं वा ३ चेइज्जा।

८६. जो उपाश्रय स्त्रियों से, बालकों से, पशुओं आदि क्षुद्र प्राणियों से तथा पशुओं या गृहस्थों के खाने-पीने आदि पदार्थों से भरा हो तो ऐसे उपाश्रय में साधु-साध्वी नहीं ठहरें।

८७. गृहस्थ परिवार के साथ (एक ही मकान में) साधु का निवास करना दोष का कारण है। वहाँ निवास करते हुए साधु को कदाचित् हाथ, पैर आदि का स्तम्भन (शून्यता

या जड़ता) हो जाये अथवा सूजन आ जाये, विशूचिका (अतिसार) या वमन रोग हो जाये अथवा अन्य कोई, शूल, पीड़ा, दुःख या रोगातंक पैदा हो जाये, तब वह गृहस्थ करुणाभाव से प्रेरित होकर उस भिक्षु के शरीर पर तेल, घी, नवनीत अथवा वसा से मालिश करेगा या चुपड़ेगा। फिर उसे प्रासुक शीतल जल या उष्ण जल से स्नान करायेगा अथवा सुगंधित द्रव्य, लोध, वर्णक, चूर्ण या पद्म से एक बार घिसेगा, बार-बार घिसेगा, शरीर पर लेप करेगा अथवा शरीर का मैल दूर करने के लिए उबटन करेगा। प्रासुक शीतल जल से या उष्ण जल से एक बार धोएगा या बार-बार धोएगा, मल-मलकर धोएगा अथवा मस्तक पर पानी छींटेगा, अरणी की लकड़ी को परस्पर रगड़कर अग्नि उज्ज्वलित-प्रज्वलित करेगा। अग्नि को सुलगाकर और अधिक प्रज्वलित करके साधु के शरीर को थोड़ा अधिक तपायेगा।

इस तरह गृहस्थ कुटुम्ब के साथ एक घर में रहने से अनेक दोष लगने की संभावना देखकर तीर्थंकर भगवान ने भिक्षु के लिए पहले से ही ऐसा नियम बताया है, ऐसे मकान में नहीं ठहरना चाहिए और कायोत्सर्ग आदि भी नही करना चाहिए।

CENSURE OF LIVING IN INHABITED *UPASHRAYA*

86. A *bhikshu* or *bhikshuni* should not stay in an *upashraya* that is crowded with women, children, animals and small creatures or with food and other things meant for householders or animals.

87. Living in the same house with householder families is a source of faults for an ascetic. While living there an ascetic may suffer from paralysis of limbs or swollen limbs, diarrhea, vomiting or other ache, pain or ailment. In such condition, inspired by compassion, the householder will apply or rub oil, butter, cream or fat on the body of the ascetic. After this he will give a bath with pure and cold or hot water; rub and anoint the body, once or repeatedly, with aromatic pastes, herbs, pigments, powder or lotus; or remove the dirt of the body by rubbing with a paste. He will wash (the effected part) with pure and cold or hot water once or many times, lightly or vigorously. He will rub dry timber to produce fire and add fuel to it to give warmth to or foment the body of the ascetic.

Anticipating the possibilities of so many faults while living with a householder family the *Tirthankars* have framed this code for ascetics that they should neither stay nor do their ascetic activities including meditation in inhabited houses.

८८. आयाणमेयं भिक्खुस्स सागारिए उवस्सए संवसमाणस्स। इह खलु गाहावई वा जाव कम्मकरी वा अण्णमण्णं अक्कोसंति वा वहंति वा रुंभंति वा उद्दविंति वा। अह भिक्खू णं उच्चावयं मणं णियंच्छिज्जा एए खलु अण्णमण्णं अक्कोसंतु वा, मा वा अक्कोसंतु, जाव मा वा उद्दवेंतु। अह भिक्खूणं पुव्वोवइट्ठा ४ जं तहप्पगारे सागारिए उवस्सए णो ठाणं वा ३ चेइज्जा।

८८. गृहस्थ परिवारयुक्त उपाश्रय मे निवास करना साधु के लिए दोषों का कारण है क्योकि उसमें गृहपति यावत् उसकी नौकर-नौकरानियाँ आदि रहती हैं। कदाचित् वे परस्पर एक-दूसरे को कठोर वचन कहें, मारें-पीटें या उपद्रव करें तो उन्हे ऐसा करते देखकर साधु के मन मे ऊँचे-नीचे भाव आ सकते है। वह सोच सकता है कि ये परस्पर मारे-पीटें या उपद्रव आदि करे अथवा नही करें। इसीलिए तीर्थंकरो ने पहले से ही ऐसा नियम बताया है कि गृहस्थयुक्त उपाश्रय मे साधु नहीं ठहरे।

88. Living in the same house with householder families is a source of faults for an ascetic. This is because the head of the family and other members including servants live there. They may abuse each other, fight or turn violent. When the ascetic witnesses this, he may get mentally disturbed. He may think whether or not they should quarrel among themselves. Therefore *Tirthankars* have framed this code for ascetics that they should neither stay nor do their ascetic activities including meditation in inhabited houses.

८९. आयाणमेयं भिक्खुस्स गाहावइहिं सद्धिं संवसमाणस्स। इह खलु गाहावइ अप्पणो सअट्ठाए अगणिकायं उज्जालिज्ज वा पज्जालिज्ज वा विज्झाविज्ज वा। अह भिक्खू उच्चावयं मणं नियंच्छिज्जा एए खलु अगणिकायं उज्जालेंतु वा, मा वा उज्जालेंतु, पज्जालेंतु वा, मा वा पज्जालेंतु, विज्झावेंतु वा, मा वा विज्झावेंतु। अह भिक्खूणं पुव्वोवइट्ठा ४ जं तहप्पगारे उवस्सए णो ठाणं वा ३ चेइज्जा।

८९. साधु का गृहस्थों के साथ एक मकान में निवास करना कर्मबन्ध का कारण है क्योंकि उसमे रहता हुआ गृहस्थ अपने काम के लिए अग्निकाय को उज्ज्वलित-प्रज्वलित

चित्र परिचय ४

Illustration No. 4
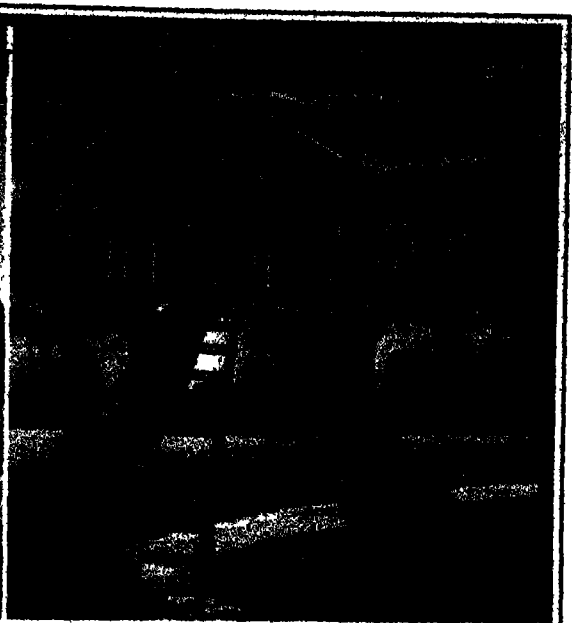
स्थान-एषणा : उपाश्रय-विवेक

(१) जो मकान एक स्तम्भ पर टिका हो, जिस पर चढने या जाने-आने का मार्ग विशेष घुमावदार हो।

(२) जो किसी मच पर स्थित हो, जहाँ चढने-उतरने मे गिरने की या जीव-विराधना की सभावना हो। (*सूत्र ८५*)

(३) जिस स्थान पर स्त्रियाँ, बालक आदि रहते हो, अथवा पशु-पक्षी बँधे रहते हो, गृहस्थ भोजन आदि बनाते हो। (*सूत्र ८६*)

(४) जिस स्थान पर गृहस्थ की पुत्रियाँ, पुत्रवधुएँ या नौकर-नौकरानियाँ स्नान आदि करती हो, भोजन पकाती हो, शृगार प्रसाधन करती हो या परस्पर झगडती हो, कलह करती हो। (*सूत्र ८८*)

इस प्रकार के स्त्री, पशु सहित उपाश्रय मे भिक्षु को ध्यान, स्वाध्याय, कायोत्सर्ग, निवास आदि नही करना चाहिए।

–अध्ययन २, सूत्र ८५-८८, पृ १७४

EXPLORATION OF PLACE : PRUDENCE ABOUT *UPASHRAYA*

(1) A house built on a pillar and with a curving passage or stair case of approach

(2) A house built on a high platform where there are chances of falling or causing harm to beings while ascending or descending (*aphorism 85*)

(3) A place where women and children live, domestic animals and birds are caged or tied (*aphorism 86*)

(4) A place where daughters, daughters-in-law or maids of the householder take bath, cook, do make-up or quarrel (*aphorism 88*)

An ascetic should not use for his meditation, studies, *kayotsarga* or stay such *upashraya* where women and animal are living

—Chapter 2, aphorism 85-88, p 174

करेगा, प्रज्वलित अग्नि को बुझायेगा। वहाँ ठहरे हुए साधु के मन में कदाचित् ऊँचे-नीचे परिणाम भी आ सकते हैं कि ये गृहस्थ अग्नि को उज्ज्वलित करें अथवा उज्ज्वलित न करें तथा ये अग्नि को प्रज्वलित करें अथवा प्रज्वलित न करे, अग्नि को बुझा दे या न बुझाएँ। इसीलिए तीर्थंकरों ने साधु के लिए ऐसा उपदेश दिया है कि वह उस प्रकार के गृहस्थ-युक्त स्थान में नही ठहरे।

89. Living in the same house with householder families is a source of faults for an ascetic This is because the head of the family will burn and intensify fire for his use and also extinguish the burning fire The ascetic staying there may have disturbing thoughts that whether or not the householder should burn or intensify a fire or extinguish a burning fire. Therefore *Tirthankars* have framed this code for ascetics that they should neither stay nor do their ascetic activities including meditation in such inhabited houses

९०. आयाणमेयं भिक्खुस्स गाहावइहि सद्धिं संवसमाणस्स। इह खलु गाहावइस्स कुंडले वा गुणे वा मणी वा मोत्तिए वा हिरण्णे वा सुवण्णे वा कडगाणि वा तुडियाणि वा तिसरगाणि वा पालंबाणि वा हारे वा अद्धहारे वा एगावली वा मुत्तावली वा कणगावली वा रयणावली वा तरुणियं वा कुमारिं अलंकियविभूसियं पेहाए अह भिक्खू उच्चावयं मणं नियंच्छिज्जा एरिसिया, वाऽऽसी णा वा, एरिसिया इया वा णं बूया, इति वा णं मणं साइज्जा। अह भिक्खूणं पुव्वोवदिट्ठा ४ जं तहप्पगारे उवस्सए णो ठाणं वा ३ चेइज्जा।

९०. गृहस्थो के साथ एक मकान में ठहरना साधु के लिए कर्मबन्ध का कारण कहा है। जो भिक्षु गृहस्थ के साथ ठहरता है उसमे निम्नलिखित कारणो से राग-द्वेष की उत्पत्ति होना सम्भव है जैसे कि–उस मकान में गृहस्थ के कुण्डल, करघनी, मणि, मुक्ता, चाँदी, सोना या सोने के कडे, बाजूबंद, तीन लडाहार, फूलमाला, अटारह लडी का हार, नौ लड़ी का हार, एकावली हार, मुक्तावली हार या कनकावली हार, रत्नावली हार अथवा वस्त्राभूषण आदि से अलंकृत और विभूषित युवती या तरुण कुमारी कन्या को देखकर भिक्षु अपने मन में ऊँच-नीच संकल्प-विकल्प कर सकता है कि ये इस प्रकार के आभूषण आदि मेरे घर में भी थे एवं मेरी स्त्री या कन्या भी इसी प्रकार की थी या ऐसी नहीं थी। वह इस प्रकार के वचन भी कह सकता है अथवा मन ही मन उनकी कामना/अनुमोदना

कर सकता है। इसीलिए तीर्थंकरों ने पहले से ही भिक्षुओं के लिए ऐसा नियम आदि बताया है कि साधु ऐसे गृहस्थ परिवार वाले स्थान में ठहरे नहीं तथा कायोत्सर्गादि क्रियाएँ भी न करे।

90. Living in the same house with householder families is a source of faults for an ascetic. This is because there are chances of such ascetic being filled with feelings of attachment and aversion for reasons such as—the ascetic may chance to look at a well dressed young woman embellished with beads, pearls, silver and gold ornaments lıke earrings, belt, bracelets, armlets, three strıng necklace, flower garland, eighteen string necklace, nine strıng necklace, single string necklace, pearl necklace, gold necklace or gem necklace. This may cause disturbing thoughts that I also had such ornaments in my house or my wife or daughter also looked like this or not. He may also silently appreciate or desire for these or express his thoughts aloud. Therefore *Tırthankars* have framed this code for ascetics that they should neither stay nor do their ascetic activitıes including meditation in inhabited houses.

९१. आयाणमेयं भिक्खुस्स गाहावइहिं सद्धिं संवसमाणस्स। इह खलु गाहावइणीओ वा गाहावइधूयाओ वा गाहावइसुण्हाओ वा गाहावइधाइओ वा गाहावइदासीओ वा गाहावइकम्मकरीओ वा, तासिं च णं एवं वुत्तपुव्वं भवइ–जे इमे भवंति समणा भगवंतो जाव उवरया मेहुणाओ धम्माओ णो खलु एएसिं कप्पइ मेहुणधम्मपरियारणाए आउट्टित्तए, जा य खलु एएहिं सद्धिं मेहुणधम्मपरियारणाए आउट्टीविज्जा पुत्तं खलु सा ओलभिज्जा ओयंसि तेयंसि वच्चंस्सि जसंस्सि संपरायियं आलोयदरिसणिज्जं।

एयप्पगारं णिग्घोसं सोच्चा णिसम्म तासिं च णं अण्णयरी सड्ढी तं तवस्सिं भिक्खुं मेहुणधम्मपरियारणाए आउट्टविज्जा। अह भिक्खूणं पुव्वोवइट्ठा ४ जं तहप्पगारे सागारिए उवस्सए णो ठाणं वा ३ चेइज्जा।

एयं खलु तस्स भिक्खुस्स वा भिक्खुणीए वा सामग्गियं।

॥ पढमो उद्देसओ सम्मत्तो ॥

९१. गृहस्थों के साथ एक स्थान में निवास करने से अनेक प्रकार के दोष लग सकते हैं। वहाँ जब वह रहेगा तब उन गृहस्थों की पुत्रियाँ, पुत्रवधुएँ, उसकी धायमाताएँ, दासियाँ या नौकरानियाँ आदि जो रहती हैं उनमें कभी परस्पर ऐसा वार्त्तालाप भी हो सकता है कि "ये जो श्रमण भगवान होते है, वे शीलवान्, गुणवान, संयमी, शान्त, ब्रह्मचारी एवं मैथुन धर्म से सदा उपरत होते हैं। अत इनके लिए मैथुन-सेवन कल्पनीय नहीं है। परन्तु जो कोई स्त्री इनके साथ मैथुन-क्रीडा करती है उसको ओजस्वी (विशाल सुदृढ़ शरीर वाला), तेजस्वी (शूरवीर), वर्चस्वी–दीप्तिमान, रूपवान् और यशस्वी तथा संग्राम मे पराक्रमी चमक-दमक वाले एव दर्शनीय पुत्र की प्राप्ति होती है।"

उनकी इस प्रकार की बाते सुनकर उनमें से कोई एक पुत्र-प्राप्ति की इच्छा रखने वाली स्त्री उस तपस्वी भिक्षु को मैथुन-सेवन के लिए प्रेरित कर दे, ऐसा भी सम्भव हो सकता है। इसीलिए तीर्थंकरो ने साधुओ के लिए ऐसी प्रतिज्ञा बताई है कि साधु उस प्रकार के गृहस्थों से युक्त उपाश्रय में न ठहरे, न कायोत्सर्गादि क्रियाएँ करे।

यह शय्यैषणा-विवेक उस भिक्षु या भिक्षुणी के आचार की समग्रता है।

91. Living in the same house with householder families is a source of faults for an ascetic The daughters, daughters-in-law, governess, female slaves and servants living there may sometimes talk that such ascetics are upright, virtuous, disciplined, composed and celibate Therefore, sexual activity is prohibited for them But if a woman can somehow have sex with an ascetic, she is sure to give birth to a brilliant, strong, brave, handsome, illustrious, valorous, scintillating and beautiful son.

Listening to such exchanges it is possible that one of these women, desirous of getting a son, could proceed to seduce the ascetic to have sex with her Therefore *Tirthankars* have framed this code for ascetics that they should neither stay nor do their ascetic activities including meditation in inhabited houses.

This prudence in searching for bed (stay) is the totality (of conduct including that related to knowledge) for that *bhikshu* or *bhikshuni.*

विवेचन–सूत्र ८६ से ९१ में जहाँ गृहस्थ परिवार रहते हों उन भवनों में साधु का निवास निषिद्ध बताया है तथा वहाँ निवास करने से उत्पन्न होने वाले खतरों से सावधान किया गया है।

संयमी साधुओं के लिए ब्रह्मचर्य-रक्षा की दृष्टि से तीन प्रकार के निवास स्थान वर्जित हैं–(१) स्त्री-संसक्त स्थान, (२) पशु-संसक्त स्थान, और (३) नपुंसक-संसक्त स्थान। इन छह सूत्रों में क्रमशः छह प्रकार के निवास स्थानों में रहने का निषेध किया है–(१) स्त्रियों से संसक्त, (२) पशुओं से संसक्त, (३) नपुंसक-संसक्त, (४) क्षुद्र–दुष्ट प्रकृति के मनुष्यों से या नन्हें शिशुओं से संसक्त, (५) हिंस्र एवं क्षुद्र (कुत्ता, बिल्ली आदि) प्राणियों से संसक्त, एवं (६) सागारिक, परिव्राजक तथा अन्यतीर्थिक–गृहस्थ तथा उसके परिवार से संसक्त उपाश्रय।

पशुओं से संसक्त धर्मस्थान में रहने से अनेक दोष लग सकते हैं, जैसे–अविवेकी गृहस्थ यदि पशुओं को भूखे-प्यासे रखता है, समय पर चारा-दाना नहीं देता, पानी नहीं पिलाता या अकस्मात् आग लग गई, तब बंधन में बँधे पशुओं का आर्त्तनाद साधु से देखा नहीं जायेगा, गृहस्थ की अनुपस्थिति में उसे करुणावश पशुओं के लिए यथायोग्य करना या कहना पड सकता है। नपुंसक-संसक्त स्थान तो ब्रह्मचर्य की हानि की दृष्टि से वर्जित है ही। क्षुद्र मनुष्यों से संसक्त मकान में रहने से वे छिद्रान्वेषी, द्वेषी एवं प्रतिकूल होकर साधु को हैरान और बदनाम करते रहेंगे।

शिशुओं से युक्त स्थान में रहने से साधु को उन नन्हें बच्चों को देखकर मोह उत्पन्न हो सकता है। उनकी माताएँ साधुओं के पास उन्हें लाएँगी, छोड देंगी, तब स्वाध्याय, ध्यान आदि क्रियाओं में बाधा उत्पन्न होगी।

सिंह, सर्प, बाघ, कुत्ता, बिल्ली आदि प्राणियों से युक्त स्थान मे रहने से साधु के मन में भय पैदा होगा, कुतूहल उत्पन्न होगा, निद्रा नहीं आयेगी।

स्त्रियों से संसक्त स्थान में रहने से ब्रह्मचर्य-हानि की सभावना है। अन्यतीर्थिक साधुओ एवं भिक्षाजीवी परिव्राजकों आदि के साथ रहने में भी संयम मे अपरिपक्व साधक उनकी बातो से बहक भी सकता है, संशयग्रस्त हो सकता है।

गृहस्थ और उसके परिवार से संसक्त मकान में रहने पर भी अनेक प्रकार के खतरे होने की संभावना है। जैसे–(१) भिक्षु को अकस्मात् दु:साध्य-रोग हो जाने पर गृहस्थ उपचार के लिए पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं वनस्पतिकाय तथा त्रसकाय की हिंसा भी कर सकता है; (२) गृहस्थों के परस्पर लड़ाई-झगड़ों से साधु के चित्त में संक्लेश उत्पन्न हो सकता है, (३) गृहस्थ अपने लिए खाना पकाने के साथ-साथ साधु के लिए भी अग्नि समारम्भ करके भोजन बना सकता है, (४) गृहस्थ के घर में विविध आभूषणों तथा सुन्दर युवतियों को देखकर अपने पूर्व गृहस्थ जीवन के स्मरण से मोहोत्पत्ति तथा कामोत्तेजना भी हो सकती है; तथा (५) कोई पुत्राभिलाषिणी स्त्री उनके साथ सहवास की प्रार्थना भी कर सकती है।

सूत्र ८९ में आये 'अगणिकायं उज्जालिज्जा' आदि पदों की व्याख्या करते हुए चूर्णिकार कहते हैं–इस पाठ का तात्पर्य यह है कि कोई श्रद्धालु गृहस्थ स्नेहवश अग्नि को इसलिए उज्ज्वलित करता है कि अग्नि के प्रज्वलित होने पर चोर या श्वापद (सिंह आदि हिंस्र प्राणी) नहीं आयेंगे, अथवा अग्नि को अच्छी तरह बुझा दो, ताकि अन्धकार देखकर चोर नहीं आयेंगे।

॥ प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

Elaboration—In the aphorisms 86-91 staying of ascetics in inhabited dwellings has been censured and warning has also been given about the dangers involved in such stay With view to protect celibacy of disciplined ascetics three types of dwellings have been censured—(1) inhabited by women, (2) inhabited by animals, and (3) inhabited by eunuches In the said aphorisms six types of dwellings have been censured—(1) inhabited by women, (2) inhabited by animals, (3) inhabited by eunuches, (4) inhabited by mean and wicked persons or infants, (5) inhabited by ferocious and violent creatures (dogs, cats etc.), and (6) inhabited by householders, *parivrajaks* and people of other faiths and their families

Places inhabited by animals may cause many flaws in conduct. A negligent householder may not feed domesticated animals and starve them or the dwelling may catch fire In such condition the wailing of the confined or tethered animal may become intolerable for the ascetic. In absence of the owner the ascetic may have to resort to telling some one to do or doing himself the needful A place inhabited by eunuches is censured for the simple reason that it is detrimental to celibacy. A place inhabited by mean and wicked people is censured because such people may find faults, criticize and turn against ascetics and annoy or slander them

Living in a dwelling where children live may inspire fondness and affection. Also when their mothers bring the infants near ascetics, the proximity may disturb their ascetic activities like meditation

Living at a place frequented by lions, snakes, tigers, dogs, cats and other such ferocious animals may invoke fear and curiosity in the ascetics and cause insomnia

Living in dwelling with women is against the code of celibacy Mendicants belonging to other faiths, like *parivrajaks* may create doubts in the mind of an immature ascetic and cause him to drift away from his faith.

Living in a dwelling where a householder and his family lives is also fraught with many dangers For example—(1) the ascetic may suddenly fall ill and the householder may resort to violence of six life-forms as part of the treatment, (2) the family squabbles and quarrels may disturb the composure of the ascetic, (3) while cooking for himself the householder may cook food specifically for the ascetic, (4) seeing of a variety of ornaments and beautiful young women may trigger the past memories and the ascetic may get attracted and sexually excited, and (5) a woman may beseech him for intercourse in order to get a son

Elaborating the phrase *'aganikayam ujjalijja' 89* commentator *(Churni)* states—it means that a devout householder lights fire to discourage thieves and ferocious animals from approaching, or extinguishes fire completely to create darkness to misguide thieves and keep them away.

|| END OF LESSON ONE ||

बीओ उद्देसओ	द्वितीय उद्देशक	LESSON TWO

गृहस्थ-ससक्त उपाश्रय में दोषोत्पत्ति

९२. गाहावई नामेगे सुइसमायारा भवंति, भिक्खू य असिणाणए मोयसमायारे से तग्गंधे दुग्गंधे पडिकूले पडिलोमे यावि भवइ, जं पुव्वकम्मं तं पच्छाकम्मं, जं पच्छाकम्मं तं पुरेकम्मं, ते भिक्खुपडियाए वट्टमाणा करेज्ज वा णो वा करेज्जा। अह भिक्खूणं पुव्वोवदिट्ठा ४ जं तहप्पगारे उवस्सए ठाणं वा ३ चेइज्जा।

९२. कोई गृहस्थ शौचाचार वाले (शुद्धाशुद्धि का अधिक विचार रखने वाले) होते हैं और भिक्षुओं के स्नान न करने के कारण तथा मोकाचारी (विशेष साधनाकाल में मोक प्रतिमा धारण करने वाले) होने के कारण उनके शरीर और वस्त्रों से आती दुर्गन्ध उस गृहस्थ को प्रतिकूल और अप्रिय भी लग सकती है। इस कारण वे गृहस्थ जो (स्नानादि) कार्य पहले करते थे, अब भिक्षुओं की उपस्थिति के कारण बाद में करेंगे और जो कार्य बाद में करते थे, वे पहले करने लगेंगे अथवा भिक्षुओं के कारण वे भोजनादि क्रियाएँ असमय में करेंगे या नहीं भी करेंगे। अथवा वे साधु भी उक्त गृहस्थ के लिहाज से प्रतिलेखनादि क्रियाएँ समय पर नही कर सकेंगे, बाद में करेंगे या सर्वथा नहीं भी करेंगे। इसलिए तीर्थंकरादि ने भिक्षुओ के लिए पहले से ही यह प्रतिज्ञा बताई है कि इस प्रकार के उपाश्रय मे नही ठहरना चाहिए।

FAULTS AT INHABITED *UPASHRAYA*

92. Some householders are sticklers for cleanliness The stench coming out of the body and clothes of the ascetics, who normally do not bathe themselves or are doing urine therapy (under some special circumstance) may be offensive or repulsive to them. For this reason they would attend to their routine chores earlier or later than the scheduled time due to the presence of ascetics. They would also eat or do other things untimely or not at all. Also, the ascetics would attend to their normal ascetic activities like inspection untimely or later or not at all due to the presence of the householder. Therefore *Tirthankars* have framed this code for ascetics that they should

neither stay nor do their ascetic activities including meditation in inhabited houses.

९३. आयाणमेयं भिक्खुस्स गाहावइहिं सद्धिं संवसमाणस्स। इह खलु गाहावइस्स अप्पणो सयट्ठाए विरूवरूवे भोयणजाए उवक्खडिए सिया, अह पच्छा भिक्खूपडियाए असणं वा ४ उवक्खडेज्ज वा उवकरेज्ज वा, तं च भिक्खू अभिकंखेज्जा भुत्तए वा पायए वा वियट्टित्तए वा। अह भिक्खूणं पुव्वोवदिट्ठा ४ जं णो तहप्पगारे उवस्सए ठाणं वा ३ चेइज्जा।

९३. गृहस्थो के साथ निवास करते हुए साधु के लिए यह भी एक कर्मबन्ध का कारण हो सकता, जैसे कि गृहस्थ अपने लिए अनेक प्रकार के भोजन तैयार करता है, उसके पश्चात् वह साधुओ के लिए अशनादि चतुर्विध आहार तैयार करने मे लगेगा, उसकी सामग्री जुटायेगा। उस आहार को देखकर साधु भी खाने या पीने की इच्छा या उस आहार में आसक्त होकर वहीं रहना चाहेगा। इसलिए भिक्षुओं के लिए तीर्थंकरों ने पहले से यह उपदेश दिया है कि भिक्षु इस प्रकार के उपाश्रय में स्थानादि कार्य नहीं करे।

93. While staying with householders another cause of bondage of *karmas* may be—a householder prepares a variety of food for himself; after that he will start making food for ascetics and collect necessary material. Seeing that food the ascetic could think of staying there with a desire or craving to eat. Therefore, *Tirthankars* have framed this code for ascetics that they should neither stay nor do their ascetic activities including meditation in inhabited houses.

९४. आयाणमेयं भिक्खुस्स गाहावइणा सद्धिं संवसमाणस्स। इह खलु गाहावइस्स अप्पणो सयट्ठाए विरूवरूवाइं दारुयाइं भिण्णपुव्वाइं भवंति, अह पच्छा भिक्खुपडियाए विरूवरूवाइं दारुयाइं भिंदेज्ज वा किणेज्ज वा पामिच्चेज्ज वा दारुणा वा दारुपरिणामं कट्टु अगणिकायं उज्जालेज्ज वा पज्जालेज्ज वा, तत्थ भिक्खू अभिकंखेज्जा आयावेत्तए वा पयावेत्तए वा वियट्टित्तए वा। अह भिक्खूणं पुव्वोवदिट्ठा ४ जं तहप्पगारे उवस्सए णो ठाणं वा ३ चेइज्जा।

९४. गृहस्थों के साथ ठहरने पर साधु को यह भी कर्मबन्ध का कारण हो सकता है; उस मकान में रहने वाला गृहस्थ अपने स्वयं के लिए पहले ही अनेक प्रकार के काष्ठ–ईंधन एकत्रित करके रखता है, फिर वह साधु के लिए भी विभिन्न प्रकार के ईंधन

काटेगा, खरीदेगा या किसी से उधार लेगा और काष्ठ (अरणि) से काष्ठ का घर्षण करके अग्निकाय को उज्ज्वलित एवं प्रज्वलित करेगा। और सम्भव है, वह साधु भी गृहस्थ की तरह सर्दी भगाने के लिए अग्नि का आतप लेना चाहेगा तथा उसमें आसक्त होकर वहीं रहना चाहेगा। इसीलिए तीर्थंकर भगवान ने पहले से ही भिक्षु के लिए यह प्रतिज्ञा बताई है कि वह इस प्रकार के उपाश्रय में नहीं ठहरे।

94. While staying with householders another cause of bondage of *karmas* may be—the householder living in that house keeps a lot of wood (fuel) stored for his own use; he will also cut, buy or borrow a variety of fuel for the ascetic as well and produce fire by rubbing pieces of this wood and inflame it by adding fuel. There are chances that the ascetic would use this fire to warm himself just as the householder does and drawn by the warmth he could like to stay there itself. Therefore *Tirthankars* have framed this code for ascetics that they should neither stay nor do their ascetic activities including meditation in inhabited houses.

९५. से भिक्खू वा २ उच्चार-पासवणेणं उब्बाहिज्जमाणे राओ वा वियाले वा गाहावइकुलस्स दुवारबाहं अवंगुणेज्जा, तेणो य तस्संधिचारी अणुपविसेज्जा, तस्स भिक्खुस्स णो कप्पइ एवं वइत्तए-अयं तेणो पविसइ वा, ण वा पविसइ, उवल्लियइ वा णो वा उवल्लियइ, आवयइ वा णो वा आवयइ, वयइ वा णो वा वयइ, तेण हडं, अण्णेण हडं, तस्स हडं, अण्णस्स हडं, अयं तेणे, अयं उवचरए, अयं हंता, अयं इत्थमकासी। तं तवस्सिं भिक्खुं अतेणं तेणमिति संकइ। अह भिक्खूणं पुव्वोवदिट्ठा ४ जाव णो चेइज्जा।

९५. गृहस्थयुक्त मकान मे ठहरने पर भिक्षु को रात में या विकाल में मल-मूत्रादि की बाधा होने पर यदि गृहस्थ के घर का द्वार खोला और उसी समय कोई चोर या उसका साथी घर में प्रविष्ट हो गया तो उस समय साधु को मौन रखना पड़ेगा। उसे ऐसा कहना नहीं कल्पता कि यह चोर घर में प्रवेश कर रहा है या प्रवेश नहीं कर रहा है, यह छिप रहा है या नहीं छिप रहा है, नीचे कूद रहा है या नहीं कूद रहा है, बोल रहा है या नहीं बोल रहा है, इसने कुछ चुराया है या किसी दूसरे ने चुराया है, उसका धन चुराया है अथवा दूसरे का धन चुराया है; यही चोर है और यह उसका उपचारक (साथी) है, यह मारने वाला है, इसी ने यहाँ यह कार्य किया है। और यदि भिक्षु कुछ भी नहीं कहता है

(मौन रहता है) तो उस तपस्वी साधु पर (गृहस्थ को) चोर होने की शंका हो जायेगी जो वास्तव मे चोर नहीं है। इसीलिए तीर्थकर भगवान ने पहले से ही साधु के लिए यह प्रतिज्ञा बताई है कि वह गृहस्थ-संसक्त उपाश्रय मे नही ठहरे।

95. While staying in an inhabited house it may so happen that during the night or other odd hours the householder opens the gate to attend to nature's call. At that time if a thief or his companion enters, the ascetic will have to remain silent. It is against his code to say—a thief is entering the house or not entering, he is hiding or not hiding, he is jumping down or not, he is speaking or not, he has stolen or some other person has stolen, he has stolen things belonging to the householder or someone else, this is the thief and this is his companion, he is the killer or he has committed this crime. And if the ascetic remains silent the householder will have suspicion of the austere ascetic being a thief when in fact he is not. Therefore *Tirthankars* have framed this code for ascetics that they should neither stay nor do their ascetic activities including meditation in inhabited houses

विवेचन–सूत्र ९२ मे आये 'मोकसमायारे' शब्द का अभिप्राय है भिक्षु आवश्यकता होने पर अपने स्वमूत्र का घाव आदि धोने के लिए तथा औषध रूप मे उपयोग कर सकता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन काल मे भी 'स्वमूत्र चिकित्सा' और 'गौमूत्र चिकित्सा' की जाती थी। आजकल तो 'स्वमूत्र चिकित्सा' पर काफी अनुसधान व प्रयोग हो रहे हैं तथा अनेक दुस्साध्य रोगो का उपचार 'स्वमूत्र चिकित्सा' द्वारा किया जा रहा है। प्राचीन काल मे ऋषियों व श्रमणो को भी इस चिकित्सा पद्धति का ज्ञान था यह इससे सूचित होता है।

इन सूत्रों मे 'उवस्सए' शब्द आया है। यहाँ पर इसका अर्थ उपाश्रय के अर्थ मे नहीं किन्तु गृहस्थ के मकान के अर्थ मे हुआ है। आचार्य श्री आत्माराम जी म के कथनानुसार यहाँ 'उपाश्रय' शब्द का प्रयोग गृहस्थ की भोजनशाला के निकटवर्ती स्थान में हुआ लगता है तथा अगले सूत्र ९५ के अनुसार यह स्थान गृहस्थ का अन्तरगृह भी हो सकता है। शयन-कक्ष के पास का स्थान भी हो सकता है। जहाँ से भिक्षु को बाहर जाने-आने मे असुविधा भी हो सकती है तथा गृह-द्वार खुला रहने पर घर में चोर आदि के घुस जाने का भय भी रहता है। इस प्रकार गृहस्थ के निवासयुक्त घर में रहने पर भिक्षु को अनेक प्रकार के दोष, असुविधाएँ, उपद्रव तथा अविश्वास आदि का कारण बन सकता है।

'अतेण तेणमिति' शब्द की व्याख्या करते हुए चूर्णिकार ने लिखा है–साधु गृहस्थ को चोर के विषय में कहता है, परन्तु खोजने पर चोर का पता नहीं चले तो गृहस्थ साधु पर ही अविश्वास करने लगता है–शायद यही चोरो का उपचरक–गुप्तचर होगा, इसी ने चोरों को भेद बताया होगा। यदि साधु चोरों का पता बताता है तो चोरों को भय हो सकता है, मौन रहने पर गृहस्थ को अप्रतीति–अविश्वास हो सकता है।

Elaboration—The term *'mokasamayare' 92* conveys that if needed an ascetic could use his own urine to wash his wounds or as medicine This indicates that in ancient times too 'auto-urine therapy' or 'cow-urine therapy' were prevalent In modern times a lot of research is being done on 'auto-urine therapy' and many incurable diseases are being cured with its help. This confirms that sages and *Shramans* of that period were also aware of this therapy.

The term *'uvassaye'* has been frequently used in these aphorisms. Here it does not mean *upashraya* but the residence of a householder. According to Acharya Shri Atmaramji M here *upashraya* appears to have been used for a place near the cooking or eating area of a householder. In context of aphorism 95, it could be some inner room of the house. It could also be a place near the bedroom from where it is inconvenient for the ascetic to move around freely There is a fear of a thief entering the house if the gate is left open Thus living in an inhabited house may be a source of numerous faults, inconvenience, disturbance and suspicion for an ascetic

Explaining the phrase *'atenam tenamiti'* the commentator *(Churni)* states—an ascetic tells the householder about a thief but if the thief is not found after searching, the householder starts suspecting the ascetic, thinking that the ascetic is an accessory to the theft as he alone must have provided information to the thief If the ascetic gives indication about the hiding place of thieves it harms the thieves and if he does not, he himself invites suspicion and displeasure of the householder

सदोष-निर्दोष स्थान का विवेक

९६. से भिक्खू वा २ से जं पुण उवस्सयं जाणेज्जा, तं जहा—तणपुंजेसु वा पलालपुंजेसु वा सअंडे जाव ससंताणए। तहप्पगारे उवस्सए णो ठाणं वा सेज्जं वा णिसीहियं वा चेइज्जा।

से भिक्खू वा २ से जं पुण उवस्सयं जाणेज्जा तणपुंजेसु वा पलालपुंजेसु वा अप्पंडे जाव चेइज्जा।

९६. साधु-साध्वी उपाश्रय के विषय में यह जाने कि यदि उसमें घास के ढेर या पुआल के ढेर लगे हों, अण्डे, बीज, हरियाली, ओस, सचित्त जल, कीड़ी नगर, काई, लीलण-फूलण, गीली मिट्टी या मकड़ी के जाले लगे हों तो इस प्रकार के उपाश्रय में साधु ध्यान, शयन व स्वाध्याय आदि क्रियाएँ नहीं करे।

यदि वह जाने कि वहाँ रखे हुए घास के ढेर या पुआल के ढेर, अण्डों, बीजों यावत् मकड़ी के जालों से रहित है तो उस उपाश्रय में कायोत्सर्गादि क्रियाएँ कर सकता है।

PRUDENCE ABOUT FAULTY AND FAULTLESS PLACE

96. A *bhikshu* or *bhikshuni* should find if an *upashraya* has heaps of grass and hay, eggs, seeds, green plants, dew, *sachit* water, anthill, moss, fungus, damp sand or cobwebs If it is so the ascetic should avoid its use for his stay, sleep, meditation or other ascetic activities.

If he finds that it is free of heaps of grass and hay, eggs, seeds, green plants, dew, *sachit* water, anthill, moss, fungus, damp sand or cobwebs, the ascetic may use it for his stay, sleep, meditation or other ascetic activities.

नवविध शय्या-विवेक

९७. से आगंतारेसु वा आरामागारेसु वा गाहावइकुलेस वा परियावसहेसु वा अभिक्खणं २ साहम्मिएहिं ओवयमाणेहिं नो उवइज्जा।

९७. धर्मशालाओं में, उद्यान में बने विश्रामगृहों में, गृहस्थ के घरों में या तापसों के मठों आदि में जहाँ अन्य मत के साधु बार-बार आते-जाते हों, वहाँ निर्ग्रन्थ साधुओं को मासकल्प आदि नहीं करना चाहिए।

NINE TYPES OF PRUDENCE OF STAY

97. An ascetic should not use *upashrayas,* garden-houses, residences of householders, hermitage or other such abodes where mendicants of other faiths frequent, for his month-long or other specific period stay.

९८. से आगंतारेसु वा ४ जे भयंतारो उडुबद्धियं वा वासावासियं वा कप्पं उवाइणित्ता तत्थेव भुज्जो संवसंति अयमाउसो कालातिक्कंतकिरिया वि भवति।

९८. हे आयुष्मन् ! जिन धर्मशाला आदि स्थान पर साधु भगवन्तों ने ऋतुबद्ध मासकल्प या वर्षावास कल्प किया है, उन्हीं स्थानों में अगर वे बिना कारण पुनः-पुनः निवास करते हैं, तो वे कालातिक्रान्त क्रिया दोष के भागी होते हैं।

98. If a *bhikshu* or *bhikshuni* uses time and again for his stay without special reason an *upashraya* or other such places of stay already used by other ascetics as their seasonal month long-stay or monsoon-stay, O long lived one ! He is guilty of the fault of transgressing the periodic code *(Kalatikranta kriya).*

९९. से आगंतारेसु वा ४ जे भयंतारो उडुबद्धियं वा वासावासियं वा कप्पं उवाइणावित्ता तं दुगुणाति दुगुणेण अपरिहरित्ता तत्थेव भुज्जो संवसंति। अयमाउसो उवट्ठाणकिरिया यावि भवति।

९९. हे आयुष्मन् ! जिन साधु भगवन्तों ने धर्मशाला आदि मे, ऋतुबद्धकल्प या वर्षावासकल्प व्यतीत किये हैं, अन्य स्थान पर उससे दुगुना-दुगुना काल बिताये बिना पुनः उन्हीं स्थानों पर आकर निवास करते है तो उनकी वह शय्या उपस्थान क्रिया दोष से युक्त होती है।

99. If the ascetics return to stay at *upashrayas* or other such places of stay where they made seasonal month long-stay or monsoon-stay without spending double the time at other place, O long lived one ! They are guilty of the fault of transgressing the re-stay code *(Upasthana kriya).*

१००. इह खलु पाईणं वा ४ संतेगतिया सड्ढा भवंति, तं जहा—गाहावइ वा जाव कम्मकरीओ वा, तेसिं च णं आयारगोयरे णो सुणिसंते भवइ, तं सद्दहमाणेहिं

पत्तियमाणेहिं रोयमाणेहिं बहवे समण-माहण-अतिहि-किवण-वणीमए समुद्दिस्स तत्थ २ अगारीहिं अगाराइं चेतिइयाइं भवंति, तं जहा–आएसणाणि वा आयतणाणि वा देवकुलाणि वा सहाणि वा पवाणि वा पणियगिहाणि वा पणियसालाओ वा जाणगिहाणि वा जाणसालाओ वा सुहाकम्मंताणि वा दब्भकम्मंताणि वा वब्भकम्मंताणि वा वव्वकम्मंताणि वा इंगालकम्मंताणि वा कट्ठकम्मंताणि वा सुसाणकम्मंताणि वा गिरिकम्मंताणि वा कंदरकम्मंताणि वा संतिकम्मंताणि वा सेलोवट्ठाणकम्मंताणि वा भवणगिहाणि वा। जे भयंतारो तहप्पगाराइं आएसणाणि वा जाव भवणगिहाणि वा तेहिं उवयमाणेहिं उवयंति अयमाउसो ! अभिक्कंतकिरिया या वि भवति।

१०० आयुष्मन् ! इस ससार मे पूर्व आदि दिशाओ में कई श्रद्धालु होते हैं, जैसे कि गृहस्वामी यावत् दास-दासियाँ; उन्होने निर्ग्रन्थ साधुओ का आचार-व्यवहार तो भली प्रकार नहीं सुना है, किन्तु (उन्होंने यह सुन रखा है कि साधु-महात्माओं को निवास के लिए स्थान आदि का दान देने से स्वर्गादि फल मिलता है।) इस कथन पर श्रद्धा, प्रतीति एवं अभिरुचि रखते हुए उन गृहस्थों ने बहुत-से शाक्यादि श्रमणो, ब्राह्मणों, अतिथि-दरिद्रो और भिखारियों आदि के उद्देश्य से अपने-अपने गॉव या नगरो में बड़े-बडे मकान बनवा दिये है। जैसे कि लुहार की शालाएँ, देवालय की पाश्र्ववर्ती धर्मशालाएँ, सभाएँ, प्रपाएँ (प्याऊ), दुकाने, मालगोदाम, यानगृह, रथादि बनाने के कारखाने, चूने के कारखाने, दर्भ, चर्म एव वल्कल के कारखाने, कोयले के कारखाने, काष्ठ-कर्मशाला, श्मशान भूमि में बने हुए घर, पर्वत पर बने हुए मकान, पर्वत की गुफा मे निर्मित आवासगृह, शान्ति गृह, पाषाण मण्डप या भूमिगृह आदि। उस प्रकार के लुहारशाला से लेकर भूमिगृह आदि तक के गृहस्थ निर्मित आवास स्थानों मे, यदि शाक्यादि श्रमण, ब्राह्मण आदि पहले ठहर चुके हैं, उन स्थानों पर बाद में निर्ग्रन्थ आकर ठहरते है, तो वह स्थान अभिक्रान्त क्रियायुक्त होता है अर्थात् श्रमण निर्ग्रन्थ को उस स्थान पर ठहरना कल्पता है।

100. In this world there live many devout citizens, their families and servants in the east, west, south and north. Although they have not heard about the proper code of conduct of *Nirgranth* ascetics, however (they have heard that giving a place of stay for sages and monks in charity begets fruits like passage to heaven). Having faith, awareness and interest in this statement these householders have constructed large buildings for the use of Buddhists, *Shramans,* Brahmins, destitute and

beggars in their villages or towns. For example—smithy; hostels adjacent to temples; assembly halls; water-huts; shops; warehouses; garages; chariot-workshops; lime-factories; processing houses for grass, leather and bark; coal-factory; carpentry; dwellings on cremation ground, hills, caves; rest-houses, stone-houses and cellars. If such smithy and other said dwellings have already been used for stay by Buddhists, Brahmins etc and then *Nirgranth* ascetics come and stay, O long lived one ! That place is said to be 'already used' *(Abhikranta kriya).* This means it is proper for an ascetic to stay there.

१०१. इह खलु पाईणं वा जाव ४ तं रोयमाणेहिं बहवे समण-माहण-अतिहि-किवण-वणीमए समुद्दिस्स तत्थ तत्थ अगारीहिं अगाराइं चेइयाइं भवंति, तं जहा—आएसणाणि वा जाव गिहाणि वा, जे भयंतारो तहप्पगाराइं आएसणाणि वा जाव भवणगिहाणि वा तेहिं अणोवयमाणेहिं उवयंति—अयमाउसो ! अणभिक्कंतकिरिया या वि भवति।

१०१ आयुष्मन् ! इस ससार मे पूर्वादि दिशाओ मे अनेक ऐसे श्रद्धालु होते हैं, जिन्हे निर्ग्रन्थ साधुओ के आचार-विचार का ज्ञान नहीं होता, किन्तु (दान का फल स्वर्गादि की प्राप्ति होती है, इस प्रकार की) श्रद्धा, प्रतीति और अभिरुचि से प्रेरित होकर बहुत-से श्रमण, ब्राह्मण आदि को उद्देश्य करके विशाल मकान बनवाते हैं, जैसे कि लोहकारशाला यावत् भूमिगृह आदि। ऐसी लोहकारशाला यावत् भूमिगृह आदि स्थानों को गृहस्थों ने तथा परिव्राजक, शाक्यादि श्रमण आदि ने अपने काम में नही लिए हैं, (अर्थात् बनने के बाद से अव तक खाली पडे रहे हैं), तो ऐसे मकानों मे अगर निर्ग्रन्थ श्रमण आकर पहले-पहल ठहरते हैं, उन्हे अनभिक्रान्त क्रिया लगती है (वह स्थान अकल्पनीय है)।

101. In this world there live many devout citizens, their families and servants in the east, west, south and north. Although they have not heard about the proper code of conduct of *Nirgranth* ascetics, however (they have heard that giving a place of stay for sages and monks in charity begets fruits like passage to heaven). Having faith, awareness and interest in this statement these householders have constructed large buildings for the use of Buddhists, *Shramans,* Brahmins, destitute and

beggars in their villages or towns. For example—smithy; hostels adjacent to temples; assembly halls; water-huts; shops; warehouses; garages; chariot-workshops; lime-factories; processing houses for grass, leather and bark; coal-factory; carpentry; dwellings on cremation ground, hills, caves; rest-houses; stone-houses and cellars. If such smithy and other said dwellings have not already been used for stay by householders Buddhists, Brahmins etc. and *Nirgranth* ascetics come and stay there for the first time, O long lived one ! They are guilty of transgression of the code of already-used-place *(Anabhikranta kriya).* This means it is not proper for an ascetic to stay there.

१०२. इह खलु पाईणं वा, ४ संतेगइया सड्ढा भवंति, तं जहा–गाहावइ वा जाव कम्मकरीओ वा तेसिं च णं एवं वुत्तपुव्वं भवइ–जे इमे भवंति समणा भगवंतो सीलमंता जाव उवरया मेहुणाओ धम्माओ, णो खलु एएसिं भयंताराणं कप्पइ आहाकम्मिए उवस्सए वत्थए। से जाणिमाणि अम्हं अप्पणो सयट्ठाए चेइयाइं भवंति, तं जहा–आएसणाणि वा जाव गिहाणि वा सव्वाणि ताणि समणाणं णिसिरामो। अवियाइं वयं पच्छा अप्पणो सयट्ठाए चेइस्सामो, तं जहा–आएसणाणि वा जाव गिहाणि वा। एयप्पगारं णिग्घोसं सोच्चा णिसम्म जे भयंतारो तहप्पगाराइं आएसणाणि वा जाव गिहाणि वा उवागच्छंति, इयराइयरेहिं पाहुडेहिं वट्टंति, अयमाउसो ! वज्जकिरिया यावि भवइ।

१०२. ससार में पूर्वादि दिशाओ में कई श्रद्धालु गृहस्थ होते हैं जैसे कि–गृहपति यावत् उनकी नौकरानियाँ, उन्हें पहले से ही यह ज्ञात होता है, फलत· वे बातचीत करते हुए परस्पर कहते हैं–ये श्रमण भगवन्त शीलवान् यावत् मैथुन-सेवन से उपरत होते हैं, इन भगवन्तों को आधाकर्मदोष से दूषित उपाश्रय में निवास करना कल्पता नहीं है। अत: हमने अपने काम के लिए जो ये लोहकारशाला यावत् भूमिगृह आदि बनवाए हैं, वे सब स्थान हम इन श्रमणों को दे देते हैं तथा हम अपने लिए बाद में दूसरे लोहकारशाला आदि मकान बना लेंगे। उन गृहस्थों का इस प्रकार का वार्त्तालाप सुनकर तथा समझकर भी जो निर्ग्रन्थ श्रमण गृहस्थों द्वारा दिये गये उक्त लोहकारशाला आदि मकानों में आकर ठहरते हैं, वहाँ ठहरकर वे अन्यान्य छोटे-बड़े भेंट दिये हुए स्थानों का उपयोग करते हैं, तो आयुष्मन् शिष्य ! उनकी वह शय्या वर्ज्य क्रियायुक्त हो जाती है।

102. In this world there live many devout citizens, their families and servants in the east, west, south and north who are familiar with code of monks. As they are already aware of this they discuss among themselves—these *Shramans* are virtuous and celibate; they are not allowed to stay at *upashrayas* with *aadhakarma* fault (anything specifically meant or prepared for ascetics). Therefore we will give smithy and other said dwellings constructed for our use to these *Shramans;* we will construct more for our own use later. Those *Shramans* who come and stay in the said smithy and other dwellings even after hearing and understanding this, and staying there use other small and large donated places, O long lived one ! They are guilty of transgression of the code of prohibited places *(Varjya kriya).*

१०३. इह खलु पाईणं वा ४ संतेगइया सड्ढा भवंति, तेसिं च णं आयारगोयरे जाव तं रोयमाणेहिं बहवे समण-माहण जाव पगणिय २ समुद्दिस्स तत्थ २ अगारीहिं अगाराइं चेइयाइं भवंति, तं जहा–आएसणाणि वा जाव गिहाणि वा, जे भयंतारो तहप्पगाराइं आएसणाणि वा जाव गिहाणि वा उवागच्छंति, २ इयराइयरेहिं पाहुडेहिं अयमाउसो ! महावज्जकिरिया यावि भवति।

१०३. संसार में बहुत-से श्रद्धालुजन रहते हैं जो श्रमणों के आचार-व्यवहार से तो अपरिचित होते हैं, लेकिन श्रद्धा, प्रतीति और रुचि से प्रेरित होकर बहुत-से श्रमण, ब्राह्मण यावत् भिक्षाचरों को गिन-गिनकर तथा उनके उद्देश्य से यत्र-तत्र लोहकारशाला यावत् भूमिगृह आदि विशाल भवन बनवाते हैं। जो निर्ग्रन्थ साधु उस प्रकार के भवनों में आकर रहते हैं, वहाँ रहकर वे अन्यान्य छोटे-बड़े उपहार रूप में भेंट दिये गये स्थान में आकर निवास करते हैं तो वे महावर्ज्य क्रिया दोष के भागी होते हैं।

103. In this world there live many devout citizens. Although they have not heard about the proper code of conduct of *Nirgranth* ascetics, however, inspired by faith, awareness and interest these householders construct smithy and other said types of large buildings at different places specifically for the use of Buddhists, *Shramans,* Brahmins, destitute and beggars after assessing their numbers. The *Nirgranth* ascetics who come and

stay there and also use for stay other such large and small gifted places, O long lived one ! They are guilty of transgression of the code of strictly prohibited places *(Mahavarjya kriya).*

१०४. इह खलु पाईणं वा ४ संतेगइया जाव तं सद्दहमाणेहिं जाव रोयमाणेहिं बहवे समणजायं समुद्दिस्स तत्थ तत्थ अगारीहि अगाराइं चेइयाइं भवंति, तं जहा– आएसणाणि वा जाव गिहाणि वा, जे भयंतारो तहप्पगाराइं आएसणाणि वा जाव गिहाणि वा उवागच्छंति, २ इयराइयरेहिं पाहुडेहिं अयमाउसो ! सावज्जकिरिया यावि भवति।

१०४. इस संसार मे कई श्रद्धालु व्यक्ति रहते हैं वे श्रमणों के प्रति श्रद्धा, प्रतीति और रुचि रखते हैं। सभी प्रकार के श्रमणों के उद्देश्य से लोहकारशाला यावत् भूमिगृह आदि बनवाते हैं। सभी श्रमणों के उद्देश्य से बनाये गये उन मकानों में जो निर्ग्रन्थ श्रमण आकर ठहरते हैं तथा गृहस्थों द्वारा उपहार रूप मे प्रदत्त अन्यान्य गृहों का उपयोग करते हैं, वे सावद्य क्रिया के भागी होते हैं।

104. In this world there live many devout citizens who are not properly aware of the code of conduct of ascetics but still have faith, awareness and interest in them. They construct smithy and other said types of large buildings at different places for one specific type of *Shramans.* The *Nirgranth* ascetics who come and stay at dwellings made for all types of *Shramans* and also use for stay other such gifted places, O long lived one ! They are guilty of transgression of the code of prohibition of places made for this purpose *(Savadya kriya).*

१०५. इह खलु पाईणं वा ४ जाव तं रोयमाणेहिं एगं समणजायं समुद्दिस्स तत्थ तत्थ अगारीहिं अगाराइं चेइयाइं भवंति, तं जहा–आएसणाणि वा जाव गिहाणि वा महया पुढविकायसमारंभेणं जाव महया तसकायसमारंभेणं महया संरंभेणं महया समारंभेणं महया आरंभेणं महया विरूवरूवेहिं पावकम्मकिच्चेहिं, तं जहा–छावणओ लेवणओ संथार-दुवार-पिहणओ, सीओदगए वा परिट्ठवियपुव्वे भवइ। अगणिकाए वा उज्जालियपुव्वे भवइ। जे भयंतारो तहप्पगाराइं आएसणाणि वा जाव गिहाणि वा उवागच्छंति इयराइयरेहिं पाहुडेहिं दुपक्खं ते कम्मं सेवंति, अयमाउसो ! महासावज्जकिरिया यावि भवइ।

१०५. इस संसार में गृहपति आदि कई व्यक्ति होते हैं जो साधुओं के आचार-व्यवहार के सम्बन्ध में तो अच्छी प्रकार नहीं जानते, किन्तु उनके प्रति श्रद्धा, प्रतीति और रुचि रखते हैं, उन्होंने किसी एक ही निर्ग्रन्थ श्रमण वर्ग के उद्देश्य से लोहकारशाला यावत् भूमिगृह आदि मकान यत्र-तत्र बनवाये हैं। उन मकानों का निर्माण पृथ्वीकाय के महान् समारम्भ यावत् त्रसकाय के महान् संरम्भ-समारम्भ और आरम्भ से तथा नाना प्रकार के महान् पापकर्मजनक कृत्यों से हुआ है। जैसे कि–साधुओं के लिए मकान पर छत आदि डाली गई है, उसे लीपी-पोती गयी है, संस्तारक के स्थान को सम बराबर बनाया है, दरवाजे बनवाये हैं, इन कार्यों में पहले ही सचित्त शीतल पानी डाला गया है, (शीतनिवारणार्थ–) अग्नि भी पहले प्रज्वलित की गयी है। जो निर्ग्रन्थ श्रमण उस प्रकार के आरम्भ–समारम्भ से निर्मित मकानों में आकर रहते हैं, भेंटस्वरूप दिये गये छोटे-बड़े गृहों में ठहरते हैं, वे द्विपक्ष–(द्रव्य से साधुरूप और भाव से गृहस्थरूप) कर्म का सेवन करते हैं। आयुष्मन् ! (उन श्रमणों के लिए) यह शय्या महासावद्य क्रिया दोष से युक्त होती है।

105. In this world there live many devout citizens who have faith, awareness and interest in *Shramans*. They construct smithy and other said types of large buildings at different places specifically for the use of all types of *Shramans*. These dwellings have been constructed sinfully with intense sinful intent and grave sinful action against six life-forms and by indulging in a variety of other sinful deeds. For example—for the benefit of ascetics a roof has been laid, plastered and polished; the ground has been leveled for making bed; doors have been made; water has already been poured; fire has already been burnt (for warmth); and other such things have already been done. The *Nirgranth* ascetics who come and stay at such sinfully constructed dwellings and also use for stay other such gifted places, in fact, live in contradictions (physically as an ascetic and mentally as a householder). O long lived one ! They are guilty of grave transgression of the code of prohibition of places made for this purpose *(Mahasavadya kriya)*.

१०६. इह खलु पाईणं वा ४ जाव तं रोयमाणेहिं अप्पणा सयट्ठाए तत्थ २ अगारीहिं अगाराइं चेइयाइं भवंति, तं जहा–आएसणाणि वा जाव गिहाणि वा महया

पुढविकायसमारंभेणं जाव अगणिकाये वा उज्जालियपुव्वे भवइ। जे भयंतारो तहप्पगाराइं आएसणाणि वा जाव गिहाणि वा उवागच्छंति इयराइयरेहिं पाहुडेहिं एगपक्खं ते कम्मं सेवंति। अयमाउसो ! अप्पसावज्जकिरिया यावि भवति।

एयं खलु तस्स भिक्खुस्स वा भिक्खुणीए वा सामग्गियं।

॥ बीओ उद्देसओ सम्मत्तो ॥

१०६. इस संसार में अनेक गृहपति आदि श्रद्धालु व्यक्ति रहते हैं। वे साधुओ के प्रति श्रद्धा, प्रतीति और रुचि रखते हैं। उन्होंने अपने प्रयोजन के लिए यत्र-तत्र मकान बनवाए हैं, जैसे कि लोहकारशाला यावत् भूमिगृह आदि। उनके निर्माण में पृथ्वीकाय यावत् त्रसकाय का महान् संरम्भ, समारम्भ एवं आरम्भ हुआ है। वे अनेक प्रकार के पापजनक कृत्यों से बने हैं। वहाँ पहले सचित्त पानी डाला गया है, अग्नि भी प्रज्वलित की गई है। जो पूज्य निर्ग्रन्थ (–गृहस्थ द्वारा अपने लिए निर्मित) उन लोहकारशाला यावत् भूमिगृह आदि वास स्थानों में आकर निवास करते हैं तथा अन्य प्रशस्त उपहाररूप दिये गये पदार्थों का उपयोग करते हैं वे एकपक्ष (भाव से साधुरूप) का सेवन करते हैं। हे आयुष्मन् ! उन श्रमणों के लिए यह शय्या अल्पसावद्य क्रिया निर्दोष रूप होती है।

यह (शय्यैषणा-विवेक) ही उस भिक्षु या भिक्षुणी के लिए (ज्ञानादि आचारयुक्त भिक्षुभाव की) समग्रता है।

106. In this world there live many devout citizens who have faith awareness and interest in *Shramans.* They construct smithy and other said types of large buildings at different places for their own use. These dwellings have been constructed sinfully with intense sinful intent and grave sinful action against six life-forms and by indulging in a variety of other sinful deeds. Water has already been poured; fire has already been burnt (for warmth); and other such things have already been done there. The *Nirgranth* ascetics who come and stay at such dwellings (constructed for a householder for his own use) and also use for stay other such piously gifted places, do not live in contradictions (physically as an ascetic and mentally also as an ascetic). O long lived one ! They are not guilty of transgression of the code of prohibition of places made on purpose *(alpasavadya kriya).*

This (prudence in searching for bed or place of stay) is the totality (of conduct including that related to knowledge) for that *bhikshu* or *bhikshuni*.

विवेचन–सूत्र ९७ से लेकर १०६ तक नौ प्रकार की शय्याओं का प्रतिपादन किया गया है। शय्या का अर्थ है ठहरने का स्थान। बृहत्कल्पभाष्य में भी शय्याविधिद्वार में इन्हीं नौ प्रकार की शय्याओं का विस्तार से निरूपण किया गया है।

कालातिक्कंतोवट्ठाण-अभिकंत-अणभिकंता य।
वज्जा य महावज्जा सावज्ज महऽप्पकिरिया य॥

अर्थात् शय्या नौ प्रकार की होती है, जैसे कि–(१) कालातिक्रान्ता, (२) उपस्थाना, (३) अभिक्रान्ता, (४) अनभिक्रान्ता, (५) वर्ज्या, (६) महावर्ज्या, (७) सावद्या, (८) महासावद्या, और (९) अल्पसावद्या।

इन शय्याओं के लक्षण तथा भाव इस प्रकार हैं–

(१) कालातिक्रान्ता क्रिया–जहाँ साधु ऋतुबद्ध (मासकल्प–शेष काल) और वर्षा काल (चौमासे) में रहे हों, ये दोनों काल पूर्ण होने पर भी जहाँ ठहरा जाये।

(२) उपस्थाना क्रिया–ऋतुबद्धवास और वर्षावास का जो काल नियत है, उससे दुगुना काल अन्यत्र दूसरे स्थान पर बिताये बिना ही यदि पुन· उसी उपाश्रय में आकर साधु ठहरते हैं तो वह उपस्थाना क्रिया कहलाती है।

उदाहरण के लिए एक मासकल्प ठहरकर दो मास बाहर बिताना तथा एक वर्षावास करके दो वर्षावास अन्यत्र बिताना यह विधि है, इसका उल्लंघन करने पर उपस्थाना क्रिया लगती है।

(३) अभिक्रान्ता क्रिया–जो शय्या (धर्मशाला) आदि सबके लिए सर्वदा खुली है उसमें पहले से अन्यतीर्थिक गृहस्थ आदि ठहरे हुए हैं, बाद में निर्ग्रन्थ साधु भी आकर ठहर जाते हैं तो वह अभिक्रान्ता क्रिया कहलाती है।

(४) अनभिक्रान्ता क्रिया–वैसी ही सार्वजनिक-सार्वकालिक शय्या में अन्य परिव्राजक गृहस्थ अभी तक ठहरे नहीं हैं, उसमे यदि सर्वप्रथम निर्ग्रन्थ साधु आकर ठहर जाते हैं, तो वह अनभिक्रान्ता क्रिया कहलाती है।

(५) वर्ज्या क्रिया–वह शय्या कहलाती है, जो गृहस्थ ने अपने लिए बनवायी थी, किन्तु बाद में उसे साधुओं को रहने के लिए दे दी और स्वयं ने अपने लिए दूसरा स्थान बनवा लिया। वह साधु के लिए वर्ज्या–त्याज्य है और वहाँ ठहरना वर्ज्या क्रिया कहलाती है।

(६) महावर्ज्या क्रिया–जो स्थान बहुत-से श्रमणों, भिक्षाचरों, ब्राह्मणों आदि के उद्देश्य से गृहस्थ नये सिरे से आरम्भ करके बनवाता है, वह महावर्ज्या शय्या कहलाती है। वह अकल्पनीय है।

(७) सावद्या क्रिया–जो शय्या पाँचों ही प्रकार के श्रमणों (निर्ग्रन्थ, शाक्य, तापस, गैरिक और आजीवक) के लिए गृहस्थ ने बनाई है, वह सावद्या शय्या कहलाती है। यहाँ ठहरना सावद्या क्रिया कहलाता है।

(८) महासावद्या क्रिया–जिसे गृहस्थ केवल निर्ग्रन्थ श्रमणों के निमित्त ही बनवाता है, वह महासावद्या शय्या कहलाती है। वहाँ ठहरना महासावद्या क्रिया है।

(९) अल्पसावद्या क्रिया–जो भवन आदि पूर्वोक्त कालातिक्रान्तादि सभी दोषों से रहित है, गृहस्थ ने केवल अपने ही लिए बनाये हैं और विचरण करते हुए साधु अनायास ही उसमें आकर ठहर जाते हैं, इसे अल्पसावद्या क्रिया कहते हैं। 'अल्प' शब्द यहाँ अभाव का वाचक है। अतएव ऐसी शय्या सावद्या क्रियारहित अर्थात् निर्दोष है। *(बृहत्कल्पभाष्य मलयगिरि वृत्ति, गा. ५९३-५९९)*

इन नौ प्रकार की शय्याओं में से सात शय्याएँ दोषयुक्त होने से साधुओ के लिए वर्जनीय हैं, दोष सहित हैं। आचार्य श्री आत्माराम जी म. ने अभिक्रान्ता और अल्पसावद्या क्रिया वाले मकानों को साधु के लिए ग्राह्य बताया है। अभिक्रान्ता और अनभिक्रान्ता शय्या को वृत्तिकार क्रमश. अल्पदोषा और अकल्पनीया बताते हैं। अनभिक्रान्ता में भी वे आवासगृह जब तक पुरुषान्तरकृत, परिभुक्त एव आसेवित नहीं होते हैं तभी तक अकल्पनीय हैं।

पाँच प्रकार के श्रमण ये होते हैं–'**निग्गंथ-सक्क-तावस-गेरुअ-आजीव पचहा समणा**'–(१) निर्ग्रन्थ, (२) शाक्य (बौद्ध), (३) तापस, (४) गैरिक, और (५) आजीवक।

जहाँ गृहस्थ केवल अपने निमित्त अपने ही प्रयोजन के लिए मकानो का निर्माण कराता है, उसमें आरम्भजनित क्रिया उस गृहस्थ को लगती है, क्योंकि साधु का उद्देश्य सम्मिलित नहीं होता। साधु तो वहाँ विहार करता हुआ अनायास–सहज रूप में ही आकर ठहर जाता है। उसके लिए वह अल्पक्रिया शय्या निर्दोष है, कल्पनीय है।

Elaboration—In aphorisms 97 to 106 nine types of beds have been defined. Bed here means place of stay. In the chapter about places of stay in *Brihatkalpa Bhashya* also the same nine types of places of stay have been discussed in detail.

Beds are of nine types, *viz* —(1) *Kalatikranta,* (2) *Upasthana,* (3) *Abhikranta,* (4) *Anabhikranta,* (5) *Varjya,* (6) *Mahavarjya,* (7) *Savadya,* (8) *Mahasavadya,* and (9) *Alpasavadya.*

The attributes and meanings of these are as follows—

(1) ***Kalatikranta kriya***—When an ascetic has lived at a place for a seasonal stay (a month or other specific period) or a monsoon-stay

and prolongs his stay even after completion of that period, it is called *kalatikranta kriya* (extended stay).

(2) ***Upasthana kriya***—When an ascetics returns and stays at an *upashraya* where he spent a seasonal or monsoon-stay without spending double the time at other places, it is called *upasthana kriya* (re-stay).

For example if he has stayed at a place for one month he should spend two months at other places before coming back to the same place. If he has spent one monsoon-stay at a place he should spend two monsoon-stays at other places before coming back to the same place. If he is not following this code he is guilty of transgressing the code of *upasthana*.

(3) ***Abhikranta kriya***—If a dwelling is always open for all and has already been used for stay by mendicants of other faith or householders and then only *Nirgranth* ascetics come and stay, it is known as *abhikranta kriya* (staying at already used place).

(4) ***Anabhikranta kriya***—If a dwelling is always open for all and has not yet been used for stay by mendicants of other faith or householders and *Nirgranth* ascetics are first to come and stay it is known as *anabhikranta kriya* (staying at unused place).

(5) ***Varjya kriya***—It is a place constructed by a householder for his own use but later given to ascetics for their stay and a new place constructed for his own use. As it is to be avoided by an ascetic it is called *varjya* (prohibited) Using such place for stay is called *varjya kriya* (staying at prohibited place).

(6) ***Mahavarjya kriya***—A dwelling specifically constructed by a householder for the use of Buddhists, *Shramans,* Brahmins, destitute and beggars is strictly prohibited for *Nirgranth* ascetics. Staying there is called *mahavarjya kriya* (staying at strictly prohibited place).

(7) ***Savadya kriya***—A dwelling intentionally made by a householder for all five types of *Shramans (Nirgranth, Shakya, Tapas,*

Gairik and *Ajivak*) is called *savadya* dwelling. Staying here is called *savadya kriya*

(8) ***Mahasavadya kriya***—A dwelling intentionally made by a householder only for *Nirgranth Shramans* is called *mahasavadya* dwelling. Staying here is called *mahasavadya kriya.*

(9) ***Alpasavadya kriya***—The dwellings which are free of *kalatikranta* and other said flaws and the householder has constructed them for his own use are called *alpasavadya.* If the itinerant ascetics come there and stay as routine it is called *alpasavadya kriya*. Here the prefix 'alpa' is used to indicate absence. Therefore such dwelling is free of *savadya kriya* or flawless. (*Malayagiri Vritti of Brihatkalpa Bhashya, verses 593-599*)

Out of these nine types of dwellings seven have flaws and therefore prohibited for ascetics. Acharya Shri Atmaramji M. finds *abhikranta* and *alpasavadya* dwellings acceptable for ascetics The commentator *(Vritti)* defines *abhikranta* and *anabhikranta* as 'having minute flaws' and improper respectively. Even the *anabhikranta* category is proscribed only as long as the place remains unused

Five types of *Shramans* are—(1) *Nirgranth* or Jain, (2) *Shakya* or Buddhist, (3) *Tapas,* (4) *Gairik,* and (5) *Ajivak*

When a householder constructs dwellings for himself and his own use, he himself is responsible for the sinful deeds involved This is because this does not involve the purpose of use by ascetics as they come and stay there simply by chance. Therefore for ascetics *alpasavadya kriya* is faultless and acceptable.

विशेष शब्दों के अर्थ–उडुबद्धियं–ऋतुबद्धकाल–शेषकाल, यानी चातुर्मास छोडकर आठ मास। वासावासियं–वर्षावास सम्बन्धी काल–चातुर्मास काल या चातुर्मास कल्प। उवाइणित्ता–व्यतीत करके। अपरिहरित्ता–परिहार न करके, यानी अन्यत्र न बिताकर। आएसणाणि–लुहार, सुनार आदि की शालाएँ। आयतणाणि–देवालयों के पास बनी हुई धर्मशालाएँ या कमरे। पणियगिहाणि–दुकानें। पणियसालाओ–विक्रय वस्तुओं को रखने के गोदाम। कम्मंताणि–कारखाने। सेलोवट्ठाण–पाषाण-मण्डप। भवणगिहाणि–भूमिगृह या तलघर।

सूत्र १०५ में आये 'दुपक्खं ते कम्मं सेवंति'–पद की वृत्तिकार ने इस प्रकार व्याख्या की है–"द्रव्य से वे साधुवेशधारी हैं, किन्तु साधु जीवन में आधाकर्म-दोषयुक्त उपाश्रय-सेवन के कारण भाव से गृहस्थ हो चुके हैं। इस प्रकार द्रव्य से साधु के और भाव से गृहस्थ के कर्मों का सेवन करने के कारण वे 'द्विपक्षकर्म' का सेवन करते हैं।

संतेगतिया सड्ढा–कुछ एक श्रद्धालु होते हैं–वृत्तिकार ने इसका भद्र प्रकृति वाले श्रावक अर्थ किया है। किन्तु आचार्य श्री आत्माराम जी म. के कथनानुसार ऐसा श्रद्धालु भक्त जो साध्वाचार से परिचित नहीं है, किन्तु उनके प्रति श्रद्धाभाव रखता है, उनके लिए यहाँ 'सड्ढा' शब्द प्रयुक्त हुआ है।

सूत्र १०९ में उल्लिखित स्थानों की सूची से यह भी पता चलता है कि उस युग में भिन्न-भिन्न प्रकार के उद्योगों के लिए उनके अनुकूल अलग-अलग स्थान बनाये जाते थे। सुसाण कम्मताणि आदि पदों से यह भी सूचित होता है कि श्मशान, जंगल एवं गिरि-कन्दराओं में भी स्थान बने होते थे जिनमें वानप्रस्थ, सन्यासी आदि आकर निवास करते थे। ऐसे शान्त एकान्त स्थानों में निर्ग्रन्थ श्रमण भी आकर ठहर जाते थे।

॥ द्वितीय उद्देशक समाप्त ॥

Technical Terms : *Udubaddhiyam (ritubaddha)*—seasonal period or remaining period; this means eight months of an year other than the monsoon period. *Vasavasiyam (varshavas)*—the four month monsoon period or monsoon-stay. *Uvainitta*—after spending. *Aparihartta*—not spending at other place. *Ayesanani*—workshops such as smithy and gold-smithy. *Ayatanani*—hostels or tenements made near temples. *Paniyagihani*—shops. *Paniyasalao*—warehouses. *Kammantani*—factories. *Selovatthan*—stone pavilion. *Bhavanagihani*—cellar or basement

The commentator *(Vritti)* has defined the phrase ***'dupakkham te kammam sevanti'*** (105) as—Physically or in appearance they are ascetics but as they use an *upashraya* proscribed due to *aadhakarmi* fault (intentionally made for them), mentally they have become householders. Thus they live in contradictions *(dupakkham kammam* or *dvipaksh karma)* because physically they act as ascetics and mentally as a householder.

Santegatiya saddha—There are some devotees, according to the commentator *(Vritti) 'saddha'* means a noble householder. But according to Acharya Shri Atmaramji M it means a devotee who is ignorant about the ascetic praxis but is devoted to ascetics.

The list of dwelling places given in aphorism 109 informs us that during that period different types of work places were constructed to suit different industries. *Susan kammatani* and other such phrases inform that dwellings were also made at places like cremation ground, jungle, mountains, caves etc where hermits and sages frequented and stayed. *Nirgranth Shramans* (Jain ascetics) also used such peaceful and solitary places.

|| END OF LESSON TWO ||

तइओ उद्देसओ	तृतीय उद्देशक	LESSON THREE

सदोष उपाश्रय : गृहस्थ का कपट व्यवहार

१०७. से य णो सुलभे फासुए उंछे अहेसणिज्जे, णो य खलु सुद्धे इमेहिं पाहुडेहिं, तं जहा—छावणतो लेवणतो संथार-दुवार पिहाणतो पिण्डवाएसणाओ।

से य भिक्खू चरियारए ठाणरए णिसीहियारए सेज्जा-संथार-पिण्डवाएसणारए, संति भिक्खुणो एवमक्खाइणो उज्जुकडा णियागपडिवण्णा अमायं कुव्वमाणा वियाहिया।

संतेगइया पाहुडिया उक्खित्तपुव्वा भवइ, एवं णिक्खित्तपुव्वा भवइ, परिभाइयपुव्वा भवइ, परिभुत्तपुव्वा भवइ, परिट्ठवियपुव्वा भवइ।

एवं वियागरेमाणे समिया वियागरेइ ?

हंता भवइ।

१०७. प्रासुक, उंछ और एषणीय उपाश्रय सुलभ नहीं है। क्योंकि इन सावद्य क्रियाओं के कारण शुद्ध उपाश्रय मिलना दुर्लभ है। जैसे कि कहीं साधु के निमित्त उपाश्रय का छप्पर छाने से या छत डालने से, कहीं उसे लीपने-पोतने से, कहीं संस्तारक भूमि सम करने से, कहीं उसे बन्द करने के लिए द्वार लगाने से, कहीं शय्यातर-गृहस्थ द्वारा साधु के लिए आहार बनाकर देने से एषणा दोष लगाने के कारण। (उपाश्रय सुलभ नहीं है)

क्योंकि कई साधु विहारचर्या वाले हैं, कई कायोत्सर्ग करने वाले हैं, कई एकान्त स्वाध्याय करने वाले हैं, कई साधु (वृद्ध, रोगी, अशक्त आदि के लिए) शय्या-संस्तारक एवं पिण्डपात (आहार-पानी) की गवेषणा करने वाले हैं। उक्त क्रियाओं के लिए अनुकूल स्थान मिलना सुलभ नहीं है। इस प्रकार कितने ही सरल एवं निष्कपट साधु संयम या मोक्ष का पथ स्वीकार किये हुए माया न करते हुए गृहस्थों को उपाश्रय के गुण-दोष बतला देते हैं।

कई गृहस्थ पहले से साधु को देने के लिए उपाश्रय बनवाकर रख लेते हैं, फिर कपटपूर्वक कहते हैं—"यह मकान हमने परिव्राजकों के लिए रख छोड़ा है (उक्खित्तपुव्वा) या यह मकान हमने पहले से अपने लिए बनाकर रख छोड़ा है (निक्खित्तपुव्वा) अथवा पहले से यह मकान भाई-भतीजों को देने के लिए रखा है (परिभाइयपुव्वा)। दूसरों ने भी पहले इस मकान का उपयोग कर लिया है (परिभुत्तपुव्वा), नापसन्द होने के कारण बहुत पहले से हमने इस मकान को खाली छोड़ रखा है (परिट्ठवियपुव्वा), अतः पूर्णतया निर्दोष

होने के कारण आप इस मकान का उपयोग कर सकते हैं।" विवेकी साधु इस प्रकार गृहस्थ के कपट को सम्यक्तया जानकर दोषयुक्त प्रतीत होने पर उस उपाश्रय में न ठहरे।

(शिष्य पूछता है-) "गृहस्थों के पूछने पर जो साधु निष्कपटभाव से उपाश्रय के गुण-दोष को बतला देता है, क्या वह सम्यक् कहता है?"

(शास्त्रकार उत्तर देते है-) "हाँ, वह सम्यक् कथन करता है।"

UPASHRAYA WITH FLAWS : DECEPTION BY HOUSEHOLDER

107. It is not easy to get fault-free (free of primary and secondary faults) and acceptable *upashraya.* It is difficult to get an acceptable *upashraya* because these contemptible activities are involved—for the use of an ascetic at some place the *upashraya* is thatched; at some place it is plastered or polished; at some place the floor is leveled for spreading bed; at some place a door is fixed to secure the *upashraya;* at some place food is cooked by the householder specifically for the ascetic (which is a fault related to food collection).

Many ascetics are itinerant, many practice *kayotsarg* (dissociation of mind from the body; a type of meditation), many pursue studies in isolation, and many are involved in exploration of bed and food (for aged, ailing and emaciated ascetics). It is not easy to find a place suitable for these activities. Thus many unassuming and guileless ascetics following the path of discipline or liberation frankly tell householders about the ascetic norms related to *upashraya.*

Some householders first construct an *upashraya* with an intention to provide it to ascetics, but later mislead by saying—"We made this house for *parivrajaks,* or for our own use, or for our relatives. Others have lived in this house in the past or we have kept this house unoccupied since long because we did not like it. Therefore this has no flaws related to the ascetic use and you may use this house for your stay." Being completely aware of

the householder's deception and finding about the faults involved, a prudent ascetic should not stay in such *upashraya*.

(The disciple asks—) "Is the statement of an ascetic who, being asked by a householder frankly explains the ascetic norms about *upashraya*, proper."

(The preceptor says—) "Yes, it is proper."

विवेचन—इस सूत्र की पूर्व पृष्ठभूमि को स्पष्ट करते हुए चूर्णि, वृत्ति में इस प्रकार का उल्लेख है—कोई मुनि किसी गाँव में आये और भिक्षा के लिए गये, तब गृहस्थ कहता है, यहाँ आहार-पानी की सुलभता है। आप यहाँ क्यों नहीं ठहरते? साधु कहता है इस वसति में आहार तो सुलभ है, परन्तु ठहरने के लिए स्थान सुलभ नहीं है। आगे मुनि का उत्तर मूल पाठ में प्रस्तुत है।

शुद्ध-निर्दोष भवन आदि के लिए सर्वप्रथम तीन बातें अपेक्षित हैं—(१) प्रासुक—आधाकर्मादि दोष से रहित, (२) उंछ—छादनादि उत्तरगुण-दोष से रहित, और (३) एषणीय—मूलोत्तरगुण विशुद्ध। इन तीनों के अतिरिक्त वह स्थान साधु की कायोत्सर्ग, स्वाध्याय आदि आवश्यक क्रियाओं के लिए उपयुक्त भी होना चाहिए। इसीलिए निर्दोष एवं उपयुक्त स्थान का मिलना दुर्लभ बताया है।

'पिण्डवाएसणाओ' का तात्पर्य वृत्तिकार इस प्रकार बताते हैं—गृहस्थ से आज्ञा लेकर साधु उसके उपाश्रय में निवास करे, तब वह शय्यातर गृहस्थ साधु के लिए भक्तिवश आहार आदि बनवाकर मुनि से लेने का आग्रह करे और मुनि ग्रहण करे तो शय्यातरपिण्ड-ग्रहण नामक दोष लगता है, और शय्यातर के नहीं लेने पर मुनि के प्रति उसके मन में रोष, दोष, अवज्ञा आदि का भाव आना सम्भव है। अतः ऐसा मुनिचर्या का जानकार शय्यादाता मिलना भी दुर्लभ है। *(वृत्ति पत्रांक ३६८)*

Elaboration—The commentaries (both *Churni* and *Vritti*) explaining the background of this aphorism state—Some ascetic comes to a village and goes to a house to seek alms. The householder tells him that the village has ample facilities for ascetic-alms; why does he not stay there ? The ascetic informs that although food is available, a place of stay is not. The aphorism is in reply to this doubt.

For a faultless place of stay the three primary requirements are—(1) ***Prasuk***—it should be free of *aadhakarmik* (made intentionally for ascetics) and other such faults; (2) ***Unchh***—it should be free of secondary faults like thatching; and (3) ***Eshaniya***—it should be free

of all primary and secondary faults Besides these, that place should also be suitable for meditation, studies and other such essential ascetic activities That is why finding a fault free and suitable place of stay is considered difficult.

The commentator *(Vritti)*, explaining *'pindavayesanao'*, states—When an ascetic stays at an *upashraya* after seeking permission from a householder, out of devotion for the ascetic the householder may prepare food and request the ascetic to accept it. If the ascetic takes that food he is guilty of the fault of accepting food from the host If he does not accept, the host may get angry and misbehave with or ignore the ascetic. Thus getting a host who is aware of the ascetic praxis is also difficult *(Vritti leaf 368)*

उपाश्रय ग्रहण में विवेक कैसे रखें ?

१०८. से भिक्खू वा २ से जं पुण उवस्सयं जाणेज्जा–खुड्डियाओ खुड्डुवारियाओ णिययाओ संणिरुद्धाओ भवंति, तहप्पगारे उवस्सए राओ वा वियाले वा णिक्खममाणे वा पविसमाणे वा पुराहत्थेण पच्छापाएण तओ संजयामेव णिक्खमेज्ज वा पविसेज्ज वा। केवली बूया आयाणमेयं।

जे तत्थ समणाण वा माहणाण वा छत्तए वा मत्तए वा डंडए वा लट्ठिया वा भिसिया वा णालिया वा चेले वा चिलिमिली वा चम्मए वा चम्मकोसए वा चम्मच्छेयणए वा दुबद्धे दुणिक्खित्ते अणिकंपे चलाचले, भिक्खू य राओ वा वियाले वा णिक्खममाणे वा पविसमाणे वा पयलेज्ज वा पवडेज्ज वा, से तत्थ पयलमाणे वा पवडमाणे वा हत्थं वा पायं वा जाव इंदियजालं वा लूसेज्ज वा पाणाणि वा ४ अभिहणेज्ज वा जाव ववरोवेज्ज वा।

अह भिक्खूणं पुव्वोवइट्ठा ४ जं तहप्पगारे उवस्सए पुराहत्थेण पच्छापाएण तओ संजयामेव णिक्खमेज्ज वा पविसेज्ज वा।

१०८. साधु या साध्वी को यदि ऐसा उपाश्रय मिले जो छोटा है या छोटे दरवाजों वाला है तथा नीचा है, जिसके द्वार बन्द रहते हैं तथा चरक आदि परिव्राजकों से रुका हुआ है। किसी कारणवश साधु को इस प्रकार के उपाश्रय में ठहरना पड़े तो वह रात्रि में या विकाल में भीतर से बाहर निकलता हुआ या बाहर से भीतर प्रवेश करता हुआ पहले हाथ से (या रजोहरण से) टटोलकर देखे, फिर पैर से निकले या प्रवेश करे। केवली भगवान कहते हैं–(अन्यथा) यह कर्मबन्ध का कारण होता है।

क्योंकि वहाँ पर शाक्य आदि श्रमणों के या ब्राह्मणों के जो छत्र, पात्र, दण्ड, लाठी, योग आसन, नालिका (एक प्रकार की लम्बी लाठी या घटिका), वस्त्र, चिलमिली (पर्दा या मच्छरदानी), मृगचर्म, चर्मकोश (चमड़े की थैली) या चर्म-छेदनक (चमड़े का पट्टा) है, वे अच्छी तरह से बँधे हुए या रखे हुए नहीं हैं, अस्थिर (हिलने वाले) हैं, कुछ अधिक चंचल हैं, उनको आघात पहुँचने की संभावना रहती है। रात्रि में या विकाल में अन्दर से बाहर या बाहर से अन्दर निकलता या प्रवेश करता हुआ साधु यदि फिसल पड़े या गिर पड़े (तो उनके उपकरण टूट जायेंगे) अथवा उस साधु को फिसलने या गिर पड़ने से उसके हाथ, पैर, सिर या अन्य इन्द्रियों के चोट लग सकती है या वे टूट सकते हैं, अथवा प्राणियों को आघात लगेगा, वे दब जायेंगे यावत् उनका विनाश भी हो सकता है।

इसलिए तीर्थंकरों ने साधुओं के लिए यह उपदेश दिया है कि इस प्रकार के उपाश्रय में रात को या विकाल में पहले हाथ से टटोलकर फिर पैर रखना चाहिए तथा यतनापूर्वक भीतर से बाहर या बाहर से भीतर गमनागमन करना चाहिए।

HOW TO BE PRUDENT ABOUT ACCEPTING AN *UPASHRAYA*

108. If a *bhikshu* or *bhikshuni* gets an *upashraya* that is small or has small entrance or is low or its gate remains closed and is occupied by *charak* and other *parivrajaks*, and the ascetic has to stay there for some reason then while going out or entering that dwelling, during the night or some other odd hour, he should first explore with his hands (or ascetic-broom) and then only put his foot forward. The omniscient says—(otherwise) it causes bondage of *karmas*.

This is because there are chances of causing damage to a variety of equipment belonging to *Shakya* and other *Shramans* or Brahmins, lying there in unpacked, disorderly, loose and unstable condition. The equipment being—umbrella, pot, stick, staff, mattress, pipe (used as staff), robe, curtain or mosquito-net, hide, leather bag or leather belt. During the night or other odd hour, while entering or going out if an ascetic slips and falls he may damage these things or damage or break his own limbs or other parts of the body or harm, crush or kill other creatures.

Therefore for ascetics the *Tirthankars* have advised that while going out or entering such dwelling, during the night or

some other odd hour, he should first explore with his hands and then only put his foot forward. He should be careful while going out or coming in.

उपाश्रय की याचना विधि

१०९. से आगंतारेसु वा ४ अणुवीयी उवस्सयं जाएज्जा। जे तत्थ ईसरे जे तत्थ समाहिट्ठाए ते उवस्सयं अणुण्णविज्जा–कामं खलु आउसो ! अहालंदं अहापरिण्णायं वसिस्सामो।

जाव आउसंतो, जाव आउसंतस्स उवस्सए, जाव साहम्मियाइं, एत्ताव ता उवस्सयं गिण्हिस्सामो, तेण परं विहरिस्सामो।

१०९. साधु धर्मशालाओं आदि ठहरने के स्थान को जानकर विचार करे कि इसका स्वामी कौन है तथा यह किसके अधिकार में है? फिर उपाश्रय (स्थान) की याचना करे– "आयुष्मन् ! यदि आप आज्ञा दें तो आपकी इच्छानुसार जितने काल तक और जितना भाग आप ठहरने के लिए देना चाहें, उतने काल तक, उतने भाग में हम ठहर जायेंगे।"

(मुनि के कहने पर) गृहस्थ यदि पूछे कि "आप कितने समय तक यहाँ रहेंगे?" तब मुनि उत्तर दे–"आयुष्मन् सद्गृहस्थ ! शेष काल में एक मास तक और वर्षाकाल में चार मास तक एक जगह रह सकते हैं; किन्तु आप जितने समय तक तथा उपाश्रय के जितने भाग में ठहरने की आज्ञा देंगे, उतने समय और स्थान तक रहकर फिर हम विहार कर जायेंगे। तथा जो भी साधर्मिक साधु यहाँ आयेंगे, वे भी आपकी आज्ञा के अनुसार उतने समय और उतने भाग में रहकर फिर विहार कर जायेंगे।"

PROCEDURE OF SEEKING *UPASHRAYA*

109. Finding an *upashraya* or any other place of stay the ascetic should inquire that who is the owner or manager of the place ? After this he should beg for it—"Long lived one ! If you permit me I would like to stay in a portion allotted by you for a period allowed by you."

If the householder asks (on the request of the ascetic)—"How long will you stay here ?" The ascetic should reply—"O long lived noble householder ! We are allowed to stay at one place for four months during the monsoon season and only for a month during

the remaining period of the year. However, we will stay in the portion you provide for the period you specify and then depart from there. Any other co-religionist ascetics who happen to come here will also stay in a portion you provide for a period you specify and then depart from there."

शय्यातर आहार-निषेध

११०. से भिक्खू वा २ जस्सुवस्सए संवसेज्जा तस्स पुव्वामेव णामगोत्तं जाणेज्जा तओ पच्छा तस्स गिहे णिमंतेमाणस्स वा अणिंतेमाणस्स वा असणं वा ४ अफासुयं जाव णो पडिगाहेज्जा।

११०. साधु-साध्वी जिस गृहस्थ के स्थान में ठहरें, उसका नाम और गोत्र पहले से जान लें। वह साधु को घर पर आहार के लिए निमंत्रित करे या न करे, तब भी उसके पश्चात् उसके घर का अशनादि चतुर्विध आहार अप्रासुक अनेषणीय जानकर ग्रहण न करे।

CENSURE OF FOOD PROVIDED BY THE HOST

110. The *bhikshu* or *bhikshuni* should find in advance the name and clan of the householder at whose place he stays. After that he should not accept any food coming from his house considering it to be faulty and unacceptable, irrespective of whether or not he is invited.

विवेचन—साधु को स्थान देने वाले को जैन परिभाषा में 'शय्यातर' कहा जाता है। शय्या अर्थात् स्थान का दान करके संसार से तिरने वाला 'शय्यातर' कहलाता है। शय्यातर के घर का आहार-पानी लेने का निषेध है। इसके पीछे कारण यह बताया गया है कि प्रायः साधु-संन्यासी जिसके घर पर ठहरते हैं उसको उनके भोजन आदि की सारी व्यवस्था करनी पड़ती है। इससे उस गृहस्थ पर साधु एक भाररूप बन सकते हैं। जिससे बहुत से व्यक्ति अपना स्थान आदि उनको देने से मना भी कर देते हैं। गृहस्थ पर साधु किसी प्रकार का भार न बने और साधुओं के लिए उसे किसी प्रकार का आरंभ नहीं करना पड़े, यही दृष्टि इस निषेध के पीछे है। *(हिन्दी टीका, पृ १०२६)*

Elaboration—In Jain terminology the host who provides a place of stay to an ascetic is called *'shayyatar'* One who swims *(tar)* across the ocean of mundane existence by donating a place of stay *(shayya)* is *'shayyatar'*. Accepting food coming from the house of the *shayyatar* is

prohibited. The reason given for this is that generally a person at whose house mendicants stay has to make all necessary arrangements including food. This may make these mendicants a burden on the householder and many people could start refusing to provide a place of stay to visiting mendicants for this reason. This censure is designed to avoid ascetics becoming a burden on householders and causing them to indulge in any sinful activity. *(Hindi Tika, p 1026)*

आठ निषिद्ध उपाश्रय

१११. से भिक्खू वा २ से जं पुण उवस्सयं जाणेज्जा सागारियं सागणियं सउदयं, णो पण्णस्स णिक्खमण-पवेसाए णो पण्णस्स वायण जाव चिंताए, तहप्पगारे उवस्सए णो ठाणं वा ३ चेइज्जा।

१११. साधु-साध्वी को यदि ऐसा उपाश्रय मिले, जो गृहस्थों से संसक्त हो, अग्नि से युक्त हो, सचित्त जल से युक्त हो, तो उसमें प्रज्ञावान साधु-साध्वी का निर्गमन–प्रवेश करना उचित नहीं है। ऐसा उपाश्रय वाचना, (पृच्छा, परिवर्तना, अनुप्रेक्षा और धर्मानुयोग–) चिन्तन के लिए भी उपयुक्त नहीं है। ऐसे उपाश्रय में कायोत्सर्ग (शयन-आसन तथा स्वाध्याय) आदि कार्य भी नहीं करना चाहिए।

EIGHT PROHIBITED *UPASHRAYAS*

111. A *bhikshu* or *bhikshuni* should find if the available *upashraya* is occupied by householders, has fire in it and has *sachit* water in it If it is so, it is not proper for a wise ascetic to enter and leave that house Such house is unsuitable for his discourse (inquiry, revision, analysis, religious discussion) and contemplation as well. Even meditation (rest and study) and other ascetic activities should not be done there.

११२. से भिक्खू वा २ जं पुण उवस्सयं जाणेज्जा गाहावइकुलस्स मज्झंमज्झेणं गंतुं पत्थए पडिबद्धं वा, णो पण्णस्स णिक्खमण जाव चिंताए, तहप्पगारे उवस्सए णो ठाणं वा ३ चेइज्जा।

११२. साधु या साध्वी ऐसा उपाश्रय जाने, जहाँ गृहस्थ के घर बीच में से होकर जाना पड़ता हो, अथवा जो उपाश्रय गृहस्थ के घर से प्रतिबद्ध (सटा हुआ हो अथवा जिसमें आने

के अनेक मार्ग) हों, वहाँ प्रज्ञावान साधु को आना-जाना नहीं चाहिए और ऐसा उपाश्रय वाचनादि के लिए भी उपयुक्त नहीं है। ऐसे उपाश्रय में साधु को नहीं ठहरना चाहिए।

112. A *bhikshu* or *bhikshuni* should find if the available *upashraya* is accessible only through the residence of the householder or is connected with such residence (or has many entrances). If it is so, it is not proper for a wise ascetic to enter and leave that house. Such house is unsuitable for his discourse (etc.). An ascetic should not stay in such *upashraya*.

११३. से भिक्खू वा २ से जं पुण उवस्सयं जाणेज्जा इह खलु गाहावइ वा जाव कम्मकरीओ वा अण्णमण्णं अक्कोसंति वा जाव उद्दवेंति वा, णो पण्णस्स जाव चिंताए। से एवं णच्चा तहप्पगारे उवस्सए णो ठाणं वा ३ चेइज्जा।

११३. साधु-साध्वी यदि ऐसा उपाश्रय जाने जहाँ गृह-स्वामी, उसकी पत्नी यावत् दास-दासियाँ आदि परस्पर एक-दूसरे को कोसती हों–झिड़कती हों, मारती-पीटती यावत् उपद्रव करती हों प्रज्ञावान साधु इस प्रकार के उपाश्रय में निर्गमन-प्रवेश तथा वाचनादि नहीं करे।

113. A *bhikshu* or *bhikshuni* should find if the owner, his wife, servants etc. of the available *upashraya* (habitually) abuse or beat each other or create disturbance. If it is so, it is not proper for a wise ascetic to enter and leave that house. Such house is unsuitable for his discourse (etc.) as well.

११४. से भिक्खू वा से जं पुण उवस्सयं जाणेज्जा इह खलु गाहावइ वा जाव कम्मकरीओ वा अण्णमण्णस्स गायं तेल्लेण वा घएण वा णवणीएण वा वसाए वा अब्भंगे ति वा मक्खे ति वा, णो पण्णस्स जाव चिंताए, तहप्पगारे उवस्सए णो ठाणं वा ३ चेइज्जा।

११४. साधु-साध्वी ऐसा उपाश्रय जाने, जहाँ गृहस्थ यावत् उसकी नौकरानियाँ एक-दूसरे के शरीर पर तेल, घी, नवनीत या वसा से मर्दन करती हों, चुपड़ती हों, तो प्रज्ञावान साधु का वहाँ जाना-आना एवं वाचनादि करना उचित नहीं है।

114. A *bhikshu* or *bhikshuni* should find if in the available *upashraya* its owner, his wife, servants etc. (habitually) rub or

apply oil, butter or fat on each other's body. If it is so, it is not proper for a wise ascetic to enter and leave that house. Such house is unsuitable for his discourse (etc.) as well.

११५. से भिक्खू वा २ से जं पुण उवस्सयं जाणेज्जा, इह खलु गाहावइ वा जाव कम्मकरीओ वा अण्णमण्णस्स गायं सिणाणेण वा कक्केण वा लोद्धेण वा वण्णेण वा चुण्णेण वा पउमेण वा आघंसंति वा पघंसंति वा उव्वलेंति वा उव्वट्टेंति वा, णो पण्णस्स णिक्खमण पवेसे जाव णो ठाणं वा ३ चेइज्जा।

११५. साधु या साध्वी ऐसे उपाश्रय को जाने जहाँ गृह-स्वामी यावत् उसकी नौकरानियाँ परस्पर एक-दूसरे के शरीर को स्नान के पानी से, कर्क से, लोध से, वर्णद्रव्य से, चूर्ण से, पद्म से मलती हों, रगड़ती हों, मैल उतारती हों तथा उबटन करती हों; वहाँ साधु आना-जाना एव वाचनादि कार्य नही करे।

115. A *bhikshu* or *bhikshuni* should find if in the available *upashraya* its owner, his wife, servants etc (habitually) massage, rub, brush and anoint each other's body with water, aromatic pastes, herbs, pigments, powder or lotus, to remove dirt. If it is so, it is not proper for a wise ascetic to enter and leave that house. Such house is unsuitable for his discourse (etc.) as well.

११६. से भिक्खू वा २ से जं पुण उवस्सयं जाणेज्जा, इह खलु गाहावइ वा जाव कम्मकरीओ वा अण्णमण्णस्स गायं सीतोदगवियडेण वा उसिणोदगवियडेण वा उच्छोलेंति वा पहोवेंति वा सिंचंति वा सिणायंति वा, णो पण्णस्स जाव णो ठाणं वा २ चेइज्जा।

११६. भिक्षु या भिक्षुणी ऐसा उपाश्रय जाने कि जहाँ गृह-स्वामी यावत् नौकरानियाँ परस्पर एक-दूसरे के शरीर पर शीतल जल से या उष्ण जल से छींटे मारती हों, धोती हों, सींचती हों या स्नान कराती हों, ऐसा स्थान प्राज्ञ साधु को आवागमन तथा स्वाध्याय के लिए उपयुक्त नहीं है।

116. A *bhikshu* or *bhikshuni* should find if in the available *upashraya* its owner, his wife, servants etc. (habitually) sprinkle or pour cold or hot water on each other's body and wash or bathe each other's body with cold or hot water. If it is so, it is not

proper for a wise ascetic to enter and leave that house. Such house is unsuitable for his discourse (etc.) as well.

११७. इह खलु गाहावइ वा जाव कम्मकरीओ वा णिगिणा ठिया णिगिणा उवल्लीणा मेहुणधम्मं विण्णवेंति रहस्सियं वा मंतं मंतेति, णो पण्णस्स जाव णो ठाणं वा ३ चेइज्जा।

११७. साधु या साध्वी ऐसा उपाश्रय जाने, जिसमें गृह-स्वामिनी, यावत् नौकरानियाँ आदि नग्न खड़ी रहती हों या नग्न बैठी रहती हों और नग्न होकर गुप्त रूप से मैथुन सम्बन्धी परस्पर वार्तालाप करती हों अथवा किसी रहस्यमय अकार्य के सम्बन्ध में गुप्त मंत्रणा करती हों, तो वहाँ प्राज्ञ साधु को आवागमन तथा वाचनादि स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

117. A *bhikshu* or *bhikshuni* should find if in the available *upashraya* its owner's wife, maids etc. (habitually) stand or sit naked and furtively discuss erotic topics or some secret conspiracy. If it is so, it is not proper for a wise ascetic to enter and leave that house. Such house is unsuitable for his discourse (etc.) as well.

११८. से भिक्खू वा २ से जं पुण उवस्सयं जाणेज्जा आइण्णं सलेक्खं, णो पण्णस्स जाव णो ठाणं वा २ चेइज्जा।

११८. साधु-साध्वी यदि ऐसा उपाश्रय जाने, जो स्त्री-पुरुषों आदि के चित्रों से सुसज्जित (आकीर्ण) है, तो ऐसे उपाश्रय में प्राज्ञ साधु को आवागमन, कायोत्सर्गादि तथा पंचविध स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

118. A *bhikshu* or *bhikshuni* should find if the available *upashraya* is decorated with paintings on various themes including male and female figure. If it is so, it is not proper for a wise ascetic to enter and leave that house. Such house is unsuitable for his discourse (etc.) as well.

विवेचन—इन आठ सूत्रों में निम्नलिखित आठ प्रकार के उपाश्रयों में ठहरने का निषेध किया गया है—

(१) जो उपाश्रय, गृहस्थ, अग्नि और जल से युक्त हो।

(२) जिसमें गृहस्थ के घर के बीचोंबीच होकर जाना पडता हो, या जो गृहस्थ के शयन-कक्ष आदि से बिलकुल लगा हो अथवा जिसके अनेक द्वार हो।

(३) जहाँ गृहस्थ तथा उससे सम्बन्धित पुरुष-स्त्रियाँ परस्पर एक-दूसरे से लडती, उपद्रव आदि करती हों।

(४) जहाँ गृहस्थ पुरुष-स्त्रियाँ एक-दूसरे के तेल आदि की मालिश करती हों, चुपड़ती हों।

(५) जहाँ पुरुष-स्त्रियाँ एक-दूसरे के शरीर पर सुगधित, चूर्ण आदि मलती, जिसके उबटन आदि करती हों।

(६) जहाँ पडौस में पुरुष-स्त्री परस्पर एक-दूसरे को नहलाते-धुलाते हों।

(७) जहाँ पडौस में पुरुष-स्त्रियाँ नगी खडी-बैठी रहती हों, विषयवर्धक वार्त्तालाप करती हों।

(८) जिसकी दीवारो पर स्त्रियो के चित्र हों।

Elaboration—In these eight aphorisms stay by ascetics in eight types of *upashrayas* has been censured—

(1) Which has fire and water in it

(2) Which is accessible from within the residence of a householder, or is adjacent to the bed room of a householder or has numerous entrances

(3) Where the owner and his relatives quarrel or create disturbance.

(4) Where male and female members of the household rub or apply each other's body with oil and other such things

(5) Where male and female members of the household rub or apply water, aromatic pastes etc on each other's body

(6) Where male and female members of the household bathe each other

(7) Where male and female members of the household sit naked and discuss erotic subjects

(8) Where there are erotic paintings or pictures of women on the walls

संस्तारक सम्बन्धी पाँच विकल्प

११९. (१) से भिक्खू वा २ अभिकंखेज्जा संथारगं एसित्तए। से जं पुण संथारगं जाणेज्जा सअंडं जाव ससंताणगं, तहप्पगारं संथारगं लाभे संते णो पडिगाहेज्जा।

(२) से भिक्खू वा २ से जं पुण संथारगं जाणेज्जा अप्पंडं जाव संताणगं गरुयं, तहप्पगारं संथारगं लाभे संते णो पडिगाहेज्जा।

(३) से भिक्खू वा २ से जं पुण संथारगं जाणेज्जा अप्पंडं जाव संताणगं लहुयं अप्पडि हारियं तहप्पगारं संथारगं लाभे संते णो पडिगाहेज्जा।

(४) से भिक्खू वा २ से जं पुण संथारगं जाणेज्जा अप्पंडं जाव संताणगं लहुयं पडिहारियं, णो अहाबद्धं, तहप्पगारं लाभे संते णो पडिगाहेज्जा।

(५) से भिक्खू वा २ से जं पुण संथारगं जाणेज्जा अप्पडं जाव संताणगं लहुयं पडिहारियं अहाबद्धं, तहप्पगारं संथारगं जाव लाभे संते पडिगाहेज्जा।

११९. (१) साधु या साध्वी संस्तारक या फलक आदि ग्रहण करना चाहें तो वह संस्तारक के सम्बन्ध में जाने कि यदि वह अण्डों से यावत् मकड़ी के जालों से युक्त है तो ऐसा संस्तारक मिलने पर भी ग्रहण नहीं करना चाहिए।

(२) साधु या साध्वी जाने कि संस्तारक अण्डों यावत् मकड़ी के जालों से तो रहित है, किन्तु भारी है, वैसा संस्तारक भी मिलने पर ग्रहण नहीं करे।

(३) साधु या साध्वी जाने कि वह संस्तारक अण्डों यावत् मकड़ी के जालों से रहित है, हलका भी है, किन्तु अप्रातिहारिक है, (दाता जिसे वापस लेना न चाहता हो) तो ऐसा संस्तारक भी मिलने पर ग्रहण नहीं करे।

(४) साधु या साध्वी जाने कि वह संस्तारक अण्डों यावत् मकड़ी के जालों से रहित है, हल्का भी है, प्रातिहारिक (दाता जिसे वापस लेना स्वीकार करता है) किन्तु ठीक से बँधा हुआ नहीं है, तो ऐसा संस्तारक भी मिलने पर ग्रहण न करे।

(५) साधु या साध्वी जाने कि वह संस्तारक अण्डों यावत् मकड़ी के जालों से रहित है, हलका है, प्रातिहारिक है और सुदृढ़ बँधा हुआ भी है, तो ऐसा संस्तारक मिलने पर ग्रहण करे।

FIVE TYPES OF BED

119. (1) When a *bhikshu* or *bhikshuni* wants to have a bed or plank (etc.), he should find if that bed is infested with eggs and

other things including cobwebs. If it is so, he should not accept it when given.

(2) When a *bhikshu* or *bhikshuni* finds that the bed is free of eggs and other things including cobwebs but it is heavy, he should not accept it when given.

(3) When a *bhikshu* or *bhikshuni* finds that the bed is free of eggs and other things including cobwebs and is light weight also but it is non-returnable (the donor does not intend to take it back), he should not accept it when given.

(4) When a *bhikshu* or *bhikshuni* finds that the bed is free of eggs and other things including cobwebs, is light weight and is returnable also but it is not properly tied, he should not accept it when given.

(5) When a *bhikshu* or *bhikshuni* finds that the bed is free of eggs and other things including cobwebs, is light weight, is returnable and it is properly tied also, then he should accept it when given.

विवेचन—इस सूत्र में संस्तारक ग्रहण सम्बन्धी पाँच विकल्प बताये हैं। चूर्णिकार ने इसका विवेचन इस प्रकार किया है—

(१) पहला, **सअण्ड**—जीव-जन्तु सहित सस्तारक, (२) द्वितीय, संस्तारक जीव-जन्तुरहित है, किन्तु भारी है, (३) तीसरा, संस्तारक जीव-जन्तु से रहित है, हल्का है, किन्तु अप्रातिहारिक—गृहस्थ को वापस लौटाने योग्य नहीं हो, (४) चौथा सस्तारक अण्डे से रहित, हल्का और प्रातिहारिक भी है लेकिन ठीक से बँधा नहीं है, उक्त चारों प्रकार के संस्तारक ग्रहण न करे। (५) पाँचवाँ संस्तारक जीव-जन्तु से रहित, वजन में हल्का, प्रातिहारिक और सुदृढ़ रूप से बँधा हुआ है, वह संस्तारक ग्रहण योग्य है।

Elaboration—This aphorism defines five conditions about accepting bed (etc.). The commentator *(Churni)* has elaborated it as follows—

(1) A bed infested with insects; (2) a bed free of insects but is heavy; (3) a bed free of insects and is light weight also but non-returnable; (4) a bed free of insects, light weight and returnable also

but not properly tied; these four types of beds are not to be accepted. (5) The fifth type is a bed free of insects, light weight, returnable and properly tied also; this type of bed is acceptable.

विशेष शब्दों का अर्थ–लहुयं के दो अर्थ हैं–आकार में छोटा और वजन में हल्का। संस्तारक से तात्पर्य है वे उपकरण जो साधु के सोने, बैठने, लेटने आदि के काम में आते हैं। प्राकृत शब्द कोष में संस्तारक के अनेक अर्थ बताये हैं, जैसे–शय्या, दर्भ, घास, कुश, पराल आदि का बिछौना, पाट, चौकी, फलक, पत्थर की शिला या ईंट-चूने से बनी हुई शय्या; साधु का निवास स्थान। *(पाइय सद्द महण्णवो, पृ ८४१)*

Technical Terms : *Lahuyam*—small, in size and/or weight *Sanstarak* means the equipment used by an ascetic for sleeping, sitting, reclining etc In the Prakrit dictionary many meanings of this word are mentioned—bed made of grass, hay, straw or other such fibrous things; table, stool, plank, a bed made of rock or brick and mortar; place where ascetics stay. *(Paia Sadda Mahannavo, p 841)*

संस्तारक एषणा की चार प्रतिमाएँ

१२०. इच्चेयाइं आयतणाइं उवाइकम्म अह भिक्खू जाणेज्जा इमाहिं चउहिं पडिमाहिं संथारगं एसित्तए–

(१) तत्थ खलु इमा पढमा पडिमा–से भिक्खू वा २ उद्दिसिय २ संथारगं जाएज्जा, तं जहा–इक्कडं वा कढिणं वा जंतुयं वा परगं वा मोरगं वा तणगं वा सोरगं वा कुसं वा कुच्चगं वा पिप्पलगं वा वलगं वा पलालगं वा। से पुव्वामेव आलोएज्जा–आउसो त्ति वा भगिणी ति वा दाहिसि मे इत्तो अण्णयरं संथारगं ? तहप्पगारं संथारगं सयं वा णं जाएज्जा परो वा से देज्जा, फासुयं एसणिज्जं जाव लाभे संते पडिगाहेज्जा। पढमा पडिमा।

(२) अहावरा दोच्चा पडिमा–से भिक्खू वा २ पेहाए संथारगं जाएज्जा, तं जहा–गाहावइं वा जाव कम्मकरिं वा। से पुव्वामेव आलोएज्जा–आउसो ति वा भगिणी ति वा दाहिसि मे एत्तो अण्णयरं संथारगं ? तहप्पगारं संथारगं सयं वा णं जाएज्जा जाव पडिगाहेज्जा। दोच्चा पडिमा।

(३) अहावरा तच्चा पडिमा–से भिक्खू वा २ जस्सुवस्सए संवसेज्जा जे तत्थ अहासमण्णागए, तं जहा–इक्कडेइ वा जाव पलालेइ वा, तस्स लाभे संवसेज्जा, तस्स अलाभे उक्कुडुए वा णेसज्जिए वा विहरेज्जा। तच्चा पडिमा।

(४) अहावरा चउत्था पडिमा–से भिक्खू वा २ अहासंथडमेव संथारगं जाएज्जा। तं जहा–पुढविसिलं वा कट्ठसिलं वा अहा संथडमेव, तस्स लाभे संवसेज्जा, तस्स अलाभे उक्कुडुए वा णेसज्जिए वा विहरेज्जा। चउत्था पडिमा।

१२१. इच्चेयाणं चउण्हं पडिमाणं अण्णयरं पडिमं पडिवज्जमाणे जाव अण्णोण्णसमाहीए एवं च णं विहरंति।

१२०. इन (संस्तारक सम्बन्धी) आयतनों–दोषों का परिहार करते हुए साधु को इन चार प्रतिमाओं से संस्तारक की एषणा करनी चाहिए–

(१) पहली प्रतिमा–साधु या साध्वी अपनी आवश्यक वस्तुओं का नामोल्लेख करके संस्तारक की याचना करे, जैसे–इक्कड नामक तृण, कढिणक नामक तृण, जंतुक नामक तृण, परक (मुंडक) नामक घास, मोरंग नामक घास (या मोर की पाँखों से बना हुआ), सभी प्रकार का तृण, कुश, दूब आदि कूर्चक, वर्वक नामक तृण या चावलों की पराल आदि। साधु किसी भी प्रकार की घास या उससे बना हुआ संस्तारक देखकर गृहस्थ से उसका नाम लेकर कहे–"आयुष्मन् सद्गृहस्थ ! क्या तुम मुझे इन संस्तारक में से अमुक संस्तारक दोगे?" इस प्रकार प्रासुक एवं निर्दोष संस्तारक की स्वयं भी याचना करे अथवा गृहस्थ ही बिना याचना किए दे तो साधु उसे ग्रहण कर ले। यह प्रथम प्रतिमा है।

(२) दूसरी प्रतिमा–साधु या साध्वी गृह के स्थान में रखे हुए संस्तारक को देखकर उसकी याचना करे कि "हे आयुष्मन् गृहस्थ ! क्या तुम मुझे इन संस्तारकों में से किसी एक संस्तारक को दोगे?" इस प्रकार निर्दोष एवं प्रासुक संस्तारक की स्वयं याचना करे अथवा दाता बिना याचना किये ही दे तो प्रासुक एवं एषणीय जानकर उसे ग्रहण करे। यह द्वितीय प्रतिमा है।

(३) तीसरी प्रतिमा–वह साधु या साध्वी जिस उपाश्रय में रहना चाहता है, यदि उसी उपाश्रय में इक्कड यावत् पराल आदि के संस्तारक विद्यमान हों तो गृह-स्वामी की आज्ञा लेकर उस संस्तारक को ग्रहण कर ले। यदि उपाश्रय में संस्तारक विद्यमान न हो तो वह उत्कटुक आसन, पद्मासन आदि आसनों में बैठकर रात्रि व्यतीत करे। (परन्तु बाहर से लाकर तृण आदि न बिछाए) यह तीसरी प्रतिमा है।

(४) चौथी प्रतिमा–साधु या साध्वी जिस उपाश्रय में ठहरे हों, उस उपाश्रय में पहले से ही संस्तारक बिछा हुआ हो, जैसे कि पत्थर की शिला या लकड़ी का तख्त आदि बिछा हुआ रखा हो तो उस संस्तारक की गृह-स्वामी से आज्ञा लेकर उस पर शयन आदि कर सकता है। यदि वहाँ कोई भी संस्तारक नहीं मिले तो वह उत्कटुक आसन तथा पद्मासन आदि आसनों से बैठकर रात्रि व्यतीत करे। यह चौथी प्रतिमा है।

१२१. इन चारों प्रतिमाओं में से किसी एक प्रतिमा को धारण करने वाला साधु अन्य प्रतिमाधारी साधुओं की निन्दा या अवहेलना न करे। किन्तु ऐसा विचार करे कि ये जो साधु इन चार प्रतिमाओं में से किसी एक को स्वीकार करके विचरण करते हैं, और मैं जिस (एक) प्रतिमा को स्वीकार करके विचरण करता हूँ; ये सब जिनाज्ञा के आराधक हैं। इस प्रकार पारस्परिक समाधिपूर्वक विचरण करे।

FOUR CODES OF EXPLORING FOR BED

120. Avoiding these faults (regarding bed) an ascetic should seek bed according to the following four *pratimas* or codes—

(1) **First Pratima**—A *bhikshu* or *bhikshuni* should beg for a bed specifying the name of the desired type; for example—a bed made of *ikkad, kadhinak, jantuk, parak* or *mundak, morang, kurchak, varvak* or any other type of grass, reed, straw, fibre or feathers. Seeing any type of straw or a bed made of straw an ascetic should tell the householder specifying its name—"Long lived noble householder ! Out of these beds would you please give me that particular bed ?" In this manner he should beg for a faultless and acceptable bed or accept it even if it is offered without begging. This is the first code.

(2) **Second Pratima**—Seeing a bed lying in the house, a *bhikshu* or *bhikshuni* should beg thus—"O long lived householder ! Would you please give me any one of these beds ?" In this manner he should beg for a faultless and acceptable bed or accept it even when it is given without begging. This is the second code.

(3) **Third Pratima**—If beds of dry grass and other said types of material are available in the *upashraya* an ascetic wants to stay, he should take a bed after seeking permission from the owner. If beds are not available in the *upashraya* he should spend the night sitting in *utkatuk,* lotus or any other yogic posture (refraining from bringing straw for outside and making bed). This is the third code.

(4) **Fourth Pratima**—If a bed is already made, for example that of rock wooden plank (etc.), in the *upashraya* an ascetic wants to stay, he may use it after seeking permission from the owner. If there is no bed available there, he should spend the night sitting in *utkatuk,* lotus or any other yogic posture. This is the fourth code.

121. An ascetic observing any one of these codes should not criticize or belittle other ascetics who follow other codes. Instead he should think that the ascetics who observe any one of these four codes and he, himself who also observes one of these codes are all followers of the order of the *Jina.* This way all ascetics should lead their life with mutual respect.

विवेचन—वृत्तिकार ने संस्तारक सम्बन्धी इन चार प्रतिज्ञाओं के अलग-अलग नाम व अर्थ किये हैं–(१) उद्दिष्टा–तृण फलक आदि में से जिस किसी एक संस्तारक का नामोल्लेख किया है, वही मिलने पर ग्रहण करूँगा, दूसरी नहीं। (२) प्रेक्ष्या–जिसका पहले नामोल्लेख किया था, वही यदि उपाश्रय में देखूँगा, तब ग्रहण-करूँगा, दूसरा नहीं। (३) विद्यमाना–यदि उद्दिष्ट और दृष्ट संस्तारक शय्यातर के घर या उपाश्रय में मिलेगा तो ग्रहण करूँगा, अन्य स्थान से लाकर उस पर शयन नहीं करूँगा। (४) यथासंस्तृतरूपा–यदि उपाश्रय में सहज रूप से रखा या बिछा हुआ पाट पत्थर की शिला आदि संस्तारक मिलेगा तो ग्रहण करूँगा, अन्यथा नहीं। *(वृत्ति पत्रांक ३७२)*

Elaboration—The commentator *(Vritti)* has given different names and meanings to these four resolutions—(1) *Uddishta* (desired)—I will accept a bed only if I get a predetermined type of bed out of the types mentioned here and no other. (2) *Prekshya* (seen)—I will accept the bed only if I see the said predetermined type of bed in the *upashraya* and no other. (3) *Vidyamana* (existing)—I will accept the bed only if I find the predetermined and available bed lying in the *upashraya* or residence of the householder who offered stay and not bring one from outside for use. (4) *Yathasanstritarupa* (generally available)—If I find an ordinarily lying plank, rock or other type of bed then only I will accept it otherwise not. *(Vritti leaf 372)*

संस्तारक वापस करने सम्बन्धी विवेक

१२२. (१) से भिक्खू वा २ अभिकंखेज्जा संथारगं पच्चप्पिणित्तए। से जं पुण संथारगं जाणेज्जा सअंडं जाव ससंताणगं, तहप्पगारं संथारगं णो पच्चप्पिणेज्जा।

(२) से भिक्खू वा २ अभिकंखेज्जा संथारगं पच्चप्पिणित्तए। से जं पुण संथारगं जाणेज्जा–अप्पंडं जाव संताणगं, तहप्पगारं संथारगं पडिलेहिय २ पमज्जिय २ आयाविय २ विहुणिय २ ततो संजयामेव पच्चप्पिणेज्जा।

१२२. (१) साधु-साध्वी यदि (प्रतिहारिक) संस्तारक गृहस्थ को वापस देना चाहे, उस समय यदि वह संस्तारक अण्डों यावत् मकड़ी के जालों से युक्त हो, तो उस प्रकार का संस्तारक गृहस्थ को वापस नहीं लौटाए।

(२) साधु-साध्वी यदि गृहस्थ को संस्तारक वापस सौंपना चाहे, यदि वह संस्तारक अण्डों यावत् मकड़ी के जालों से रहित हो तो उसका प्रतिलेखन प्रमार्जन करके, उसे धूप देकर यतनापूर्वक झाड़कर दाता गृहस्थ को सौंप देवे।

PRUDENCE ABOUT RETURNING THE BED

122. (1) When a *bhikshu* or *bhikshuni* wants to return the bed to the householder he should find if it is infested with eggs, living beings and cobwebs. If it is so, he should not return it.

(2) When a *bhikshu* or *bhikshuni* wants to return the bed to the householder he should find if it is infested with eggs, living beings and cobwebs. If it is not so, he should inspect it, clean it, place it in sun for sometime, blow it clean and then return it to the donor.

उच्चार-प्रस्रवण-प्रतिलेखना विवेक

१२३. से भिक्खू वा २ समाणे वा वसमाणे वा गामाणुगामं दूइज्जमाणे वा पुव्वामेव पण्णस्स उच्चार-पासवणभूमिं पडिलेहेज्जा केवली बूया आयाणमेयं।

अपडिलेहियाए उच्चार-पासवणभूमीए, भिक्खू वा २ राओ वा वियाले वा उच्चारपासवणं परिट्ठवेमाणे पयलेज्ज वा पवडेज्ज वा, से तत्थ पयलमाणे वा पवडमाणे वा हत्थं वा पायं वा जाव लूसेज्जा पाणाणि वा ४ जाव ववरोएज्जा। अह भिक्खूणं पुव्वोवदिट्ठा ४ जं पुव्वामेव पण्णस्स उच्चार-पासवणभूमिं पडिलेहेज्जा।

१२३. जो साधु या साध्वी किसी कारणवश स्थिरवास कर रहा हो या उपाश्रय में मासकल्पादि से स्थित हो अथवा ग्रामानुग्राम विहार करते हुए उपाश्रय में आकर ठहरा हो, वह बुद्धिमान् साधु कि जहाँ ठहरना हो वहाँ पहले ही उसके आसपास में उच्चार-प्रस्रवण-विसर्जन की भूमि को अच्छी प्रकार देखभाल कर ले। केवली भगवान ने अप्रतिलेखित उच्चार-प्रस्रवण भूमि का उपयोग करना कर्मबन्ध का हेतु बताया है।

क्योंकि अप्रतिलेखित भूमि में कोई भी साधु या साध्वी रात्रि में या विकाल में मल-मूत्रादि परठता हुआ फिसल सकता है या गिर सकता है। फिसलने या गिरने पर उसके हाथ, पैर, सिर या शरीर के किसी अवयव को चोट लग सकती है अथवा उसके गिरने से वहाँ स्थित अन्य प्राणियों को आघात भी लग सकता है, वे दब सकते हैं या वे मर सकते हैं।

इस सम्भावना के कारण तीर्थंकरादि ज्ञानी पुरुषों ने पहले ही भिक्षुओं के लिए यह उपदेश दिया है कि साधु को उपाश्रय में ठहरने से पहले मल-मूत्र-परिष्ठापन करने हेतु निर्दोष भूमि की प्रतिलेखना कर लेनी चाहिए।

INSPECTION OF PLACE OF DEFECATION

123. The *bhikshu* or *bhikshuni* who permanently stays at a place for some reason or one who spends a specific period at a *upashraya* or stays at a place during his wanderings from one village to another, should first look for and inspect a nearby place for defecation and waste disposal. The omniscient has said that use of unexamined place for defecation is a cause of bondage of *karma.*

This is because while defecation or waste disposal during the night or odd hours that ascetic may stumble and fall. When he slips or falls his hand, foot, head or any other part of the body may get injured and immobile and mobile beings existing there may be harmed, crushed or destroyed.

Due to this possibility *Tirthankars* and other sages have advised the ascetics to inspect and find a proper and fault-free place for defecation and waste disposal.

विवेचन–ठहरने के स्थान पर उच्चार-प्रस्रवण भूमि की प्रतिलेखना करना साधु की समाचारी का महत्त्वपूर्ण अंग है, इसकी उपेक्षा करने से अनेक प्रकार के दोष लगने की संभावना है। ऐसी भूमि को स्थण्डिल भूमि कहा जाता है। उत्तराध्ययनसूत्र में स्थण्डिल भूमि के विषय में दस बातें

देखने की सूचना दी गई है, जैसे-(१) जहाँ जनता का आवागमन न हो, किसी की दृष्टि न पड़ती हो। (२) जिस स्थान का उपयोग करने पर अन्य किसी को कष्ट या नुकसान न हो। (३) जो स्थान सम हो। (४) जहाँ घास या पत्ते न हों। (५) चींटी, कुंथु आदि जीव-जन्तु न हों। (६) वह स्थान बहुत ही छोटा न हो। (७) जिसके नीचे की भूमि अचित्त हो। (८) अपने निवास स्थान-गाँव से दूर न हो। (९) जहाँ चूहे आदि के बिल न हों। (१०) जहाँ प्राणी या बीज फैले हुए न हों। *(उत्तराध्ययनसूत्र, अ २४, गा १६-१८)*

Elaboration—To inspect the place for defecation and waste disposal is an important part of the ascetic praxis. Ignoring it gives rise to chances of committing many faults This place is called *sthandil* land. In *Uttaradhyayan Sutra* ten points are mentioned for choosing a *sthandil* land—(1) Where people do not frequent and look at (2) Use of that place does not cause any harm to anyone (3) It is a level land (4) Where there is no grass or leaves. (5) It is free of insects like ant and worms. (6) It is not very narrow. (7) The ground is not *sachit* (infested with beings) (8) It is not far from the place or village of stay (9) It should not have rat holes, etc (10) Where seeds or insects are not spread around. ***(Uttaradhyayan Sutra 24/16-18)***

शय्या-शयनादि सम्बन्धी पाँच विवेक सूत्र

१२४. (१) से भिक्खू वा २ अभिकंखेज्जा सेज्जासंथारगभूमिं पडिलेहित्तए, णण्णत्थ आयरिएण वा उवज्झाएण वा जाव गणावच्छेइएणं वा बालेण वा वुड्ढेण वा सेहेण वा गिलाणेण वा आएसेण वा अंतेण वा मज्झेण वा समेण वा विसमेण वा पवाएण वा णिवाएण वा पडिलेहिय २ पमज्जिय २ तओ संजयामेव बहुफासुयं सेज्जासंथारगं संथरेज्जा।

(२) से भिक्खू वा २ बहुफासुयं सेज्जासंथारगं संथरित्ता अभिकंखेज्जा बहुफासुए सेज्जासंथारए दुरुहित्तए। से भिक्खू वा २ बहुफासुए सेज्जासंथारए दुरूहमाणे पुव्वामेव ससीसोवरियं कायं पाए य पमज्जिय २ ततो संजयामेव बहुफासुए सेज्जासंथारए दुरूहेज्जा, दुरूहित्ता तओ संजयामेव बहुफासुए सेज्जासंथारए सएज्जा।

(३) से भिक्खू वा २ बहुफासुए सेज्जासंथारए सयमाणे णो अण्णमण्णस्स हत्थेण हत्थं पाएण पायं काएण कायं आसाएज्जा। से अणासायमाणे तओ संजयामेव बहुफासुए सेज्जासंथारए सएज्जा।

१२४. (१) साधु-साध्वी जब शय्या-संस्तारक भूमि की प्रतिलेखना करनी चाहे, तो आचार्य, उपाध्याय (प्रवर्त्तक, स्थविर, गणी, गणधर), गणावच्छेदक, बालक, वृद्ध, शैक्ष (नव-दीक्षित), ग्लान एवं अतिथि साधु के द्वारा ग्रहण की हुई भूमि को छोड़कर उपाश्रय के अन्दर, मध्य स्थान में या सम और विषम स्थान में अथवा हवादार और हवारहित स्थान में भूमि की प्रतिलेखना प्रमार्जना करके अपने लिए प्रासुक शय्या-संस्तारक को यतना के साथ बिछाए।

(२) साधु-साध्वी प्रासुक शय्या-संस्तारक पर आरूढ़ होकर शयन करना चाहे तब पहले मस्तक सहित शरीर के ऊपरी भाग से लेकर पैरों तक भलीभाँति प्रमार्जना करके फिर उस प्रासुक शय्या-संस्तारक पर आरूढ़ हों। उस शय्या-सस्तारक पर आरूढ़ होकर शयन करे।

(३) साधु-साध्वी प्रासुक शय्या-संस्तारक पर शयन करते हुए परस्पर एक-दूसरे को, अपने हाथ से दूसरे के हाथ की, अपने पैर से दूसरे के पैर की और अपने शरीर से दूसरे के शरीर की आशातना (स्पर्श) नहीं करे। एक-दूसरे की आशातना न करते हुए यतनापूर्वक शय्या-संस्तारक पर शयन करे।

PRUDENCE OF GOING TO BED

124. (1) When a *bhikshu* or *bhikshuni* wants to inspect the place for his bed, he should find a place other than that occupied by the *acharya, upadhyaya (pravartak, sthavir, gani, ganadhar), ganavachhedak,* child, aged, newly initiated, sick and guest ascetics. Finding such place within the *upashraya* at the end or in the middle, with even or uneven surface, airy or without ventilation, he should inspect and clean the ground and carefully spread a clean bed for himself.

(2) When a *bhikshu* or *bhikshuni* wants to enter the bed and sleep, he should first properly clean his body starting from head and ending at feet. Only after this he should enter the bed and go to sleep.

(3) While in bed a *bhikshu* or *bhikshuni* should not disturb (touch) each other; (this includes) not touching hands with hands, legs with legs and body with body. Without disturbing each other he should sleep carefully in the bed.

१२५. से भिक्खू वा २ ऊससमाणे वा णीससमाणे वा कासमाणे वा छीयमाणे वा जंभायमाणे वा उड्डोए वा वातणिसग्गे वा करेमाणे पुव्वामेव आसयं वा पोसयं वा पाणिणा परिपिहेत्ता ततो संजयामेव ऊससेज्ज वा जाव वायणिसग्गं वा करेज्जा।

१२५. साधु या साध्वी (शय्या-संस्तारक पर सोते-बैठते समय) उच्छ्वास या निःश्वास लेते हुए, खाँसते हुए, छींकते हुए या उबासी लेते हुए, डकार लेते हुए अथवा अपानवायु छोड़ते हुए पहले ही मुँह या गुदा स्थान को हाथ से अच्छी तरह ढाँककर यतना से उच्छ्वास आदि ले यावत् पानवायु छोड़े।

125. A *bhikshu* or *bhikshuni* (while sleeping or sitting in bed) should properly cover mouth or anus with hands before breathing, coughing, sneezing, yawning, belching or breaking wind and then only attend to such demand of the body.

विवेचन–इन सूत्रों में बड़ों की अशातना टालने, हिंसा से बचने तथा व्यावहारिक सभ्यता का ध्यान रखने की सूचना दी है–

(१) सूत्र में बताये अनुसार आचार्यादि विशिष्ट ११ श्रेणीगत साधुओं के लिए शय्या-संस्तारक भूमि छोडकर शेष बचे हुए स्थान पर शय्या-संस्तारक बिछाए।

(२) शय्या-संस्तारक पर जाते समय भी सिर से पैर तक प्रमार्जना करे।

(३) यातनापूर्वक शय्या-संस्तारक पर सोए।

(४) शयन करते हुए अपने हाथ, पैर और शरीर दूसरे के हाथ, पैर और शरीर से आपस मे टकराएँ नहीं। वृत्तिकार का कथन है–एक साधु को दूसरे साधु से एक हाथ दूर सोना चाहिए। *(वृत्ति पत्राक ३७३)*

(५) शय्या पर उठते, बैठते या सोते समय श्वासोच्छ्वास, खाँसी, छींक, उबासी, डकार, अपानवायु आदि करने से पूर्व हाथ से उस स्थान को ढककर रखे।

Elaboration—In these aphorisms directions have been given to avoid disrespect to elders and any type of violence as well as to stick to social etiquette—

(1) As indicated in the aphorism ascetics should leave enough area for the senior ascetics including the *acharya*. He should spread his bed in the remaining area only.

(2) He should clean his body before entering bed.

(3) He should sleep carefully in the bed.

(4) While sleeping he should avoid touching hands, feet and body of other ascetics with his own hands, feet and body. The commentator *(Vritti)* informs that an ascetic should sleep at least one cubit away from another ascetic

(5) While sleeping or sitting in bed and breathing, coughing, sneezing, yawning, belching or breaking wind, he should properly cover the involved part of the body with hands

विशेष शब्दों के अर्थ—आएसेण—पाहुना, अभ्यागत अतिथि, साधु। आसाएज्जा—संघट्टा करे, स्पर्श करे या टकराए। जभायमाणे—उबासी—जम्हाई लेते हुए। उड्डोए—डकार लेते समय। वातणिसग्गे—अधोवायु छोड़ते समय। आसय—आस्य-मुख। पोसयं—मलद्वार—गुदा। *(पाइय सद्द महण्णवो)*

Technical Terms : *Ayesena*—guest, ascetic *Asayejja*—to touch; to collide. *Jambhayamane*—while yawing *Uddoye*—while belching *Vatanisagge*—while breaking wind. *Asyayam*—mouth. *Posayam*—anus *(Paia Sadda Mahannavo)*

सम-विषम शय्या में समभाव

१२६. से भिक्खू वा २ समा वेगया सेज्जा भवेज्जा, विसमा वेगया सेज्जा भवेज्जा, पवाया वेगया सेज्जा भवेज्जा, णिवाया वेगया सेज्जा भवेज्जा, ससरक्खा वेगया सेज्जा भवेज्जा, अप्पससरक्खा वेगया सेज्जा भवेज्जा, सदंसमसगा वेगया सेज्जा भवेज्जा, अप्पदंसमसगा वेगया सेज्जा भवेज्जा, सपरिसाडा वेगया सेज्जा भवेज्जा, अपरिसाडा वेगया सेज्जा भवेज्जा, सउवसग्गा वेगया सेज्जा भवेज्जा, णिरुवसग्गा वेगया सेज्जा भवेज्जा, तहप्पगाराइं सेज्जाहिं संविज्जमाणाहिं पग्गहियतरागं विहारं विहरेज्जा। णो किंचि वि गिलाएज्जा।

एयं खलु तस्स भिक्खुस्स वा भिक्खुणीए वा सामग्गियं सदा जएज्जासि।

—त्ति बेमि।

॥ तइओ उद्देसओ सम्मत्तो ॥

॥ बीयं अज्झयणं सम्मत्तं ॥

शय्यारूढ होने पर
यतना
शयन-विधि

चित्र परिचय ५

Illustration No. 5
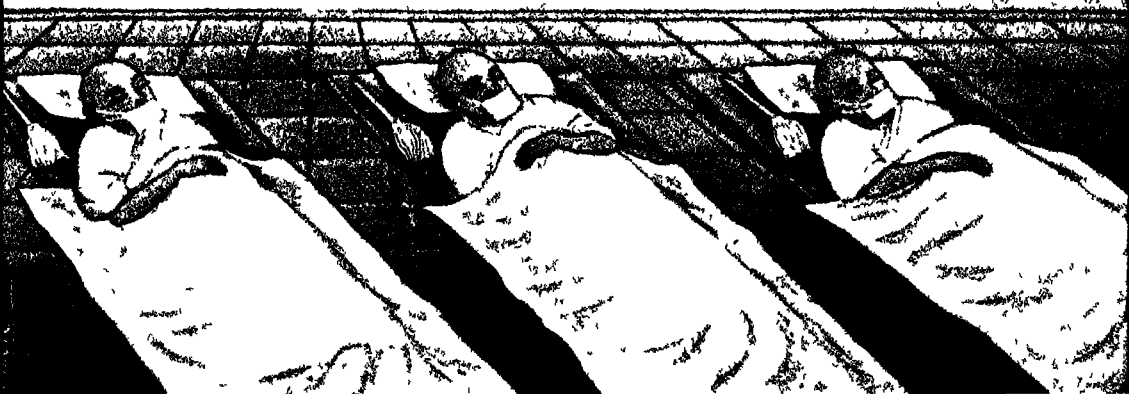
शय्या-सम्बन्धी-विवेक

(१) **योग्य संस्तारक**–भिक्षु अपने सोने, बैठने आदि कामो के लिए इस प्रकार के शुद्ध सस्तारक (आसन) ले सकता है, जैसे–लकडी की बनी चौकी, (पाट) पटिया, तखत, सूखा पुआल या घास की चटाई या पत्थर की शिला, पत्थर-चूने की बनी चौकी आदि। (*पहली प्रतिमा, सूत्र ११६*)

(२) **ध्यान के आसन**–यदि कही जीवरहित निर्दोष सस्तारक उपलब्ध नही हो तो भिक्षु उपाश्रय मे खडा रहकर, पद्मासन आदि विधि से बैठकर ध्यान, स्वाध्याय करता हुआ रात्रि व्यतीत करे, परन्तु सदोष पाट आदि का उपयोग नही करे। (*तीसरी प्रतिमा, सूत्र १२०*)

(३) **शय्या-विवेक**–भिक्षु शयन के लिए अपनी शय्या पर आरूढ होकर सर्वप्रथम काउस्सग्ग करे, फिर प्रमार्जनी से सम्पूर्ण शरीर की प्रतिलेखना करे। (*सूत्र १२४*)

(४) यदि खाँसी, छीक, उबासी आवे तो हाथ से यतना करे तथा सोते समय परस्पर एक दूसरे से टकराए नही इतनी दूरी रखकर यतनापूर्वक शयन करे।

–अध्ययन २, सूत्र १२५, पृ २२३

PRUDENCE OF GOING TO BED

(1) **Suitable bed**—An ascetic can use the following faultless things for sitting, sleeping (etc)—wooden stool, plank or bed, hay or grass mattress, rock or a platform made of stone and mortar (*First Avagraha Pratima, aphorism 116*)

(2) **Meditational postures**—If uncontaminated and faultless bed is not available at some place the ascetic should spend the night standing or sitting in the lotus pose doing meditation or studies He should never use a faulty bed (etc.). (*Third Avagraha Pratima, aphorism 120*)

(3) **Prudence of sleeping**—When an ascetic enters his bed to sleep first of all he should perform *kayotsarg* (dissociation of mind from the body) and then wipe his body with the specified piece of cloth (*pramarjani*) (*aphorism 124*)

(4) If he has to cough, sneeze or yawn he should cover his mouth with his hand. While sleeping the ascetics should keep a safe distance from each other to avoid touching

—Chapter 2, aphorism 125, p. 223

१२६. साधु-साध्वी को कभी सम शय्या मिले, कभी विषम मिले, कभी हवादार तथा कभी बन्द हवा वाला स्थान प्राप्त हो, कभी धूल से भरा उपाश्रय मिले, कभी धूल से रहित स्थान मिले, डाँस-मच्छरों से युक्त या डाँस-मच्छरों से रहित उपाश्रय मिले, इसी तरह कभी जीर्ण-शीर्ण, टूटा-फूटा, गिरा हुआ स्थान मिले, या कभी नया सुदृढ़ स्थान मिले, कदाचित् उपसर्गयुक्त शय्या मिले, कदाचित् उपसर्गरहित शय्या मिले। इस प्रकार की शय्या प्राप्त होने पर जैसी भी सम-विषम आदि शय्या मिले उसमें समभावपूर्वक रहना चाहिए। मन में जरा भी खेद या ग्लानि का अनुभव नहीं करना चाहिए।

यह शय्यैषणा-विवेक उस भिक्षु या भिक्षुणी का सम्पूर्ण भिक्षुभाव है, वह सब प्रकार से समाहित होकर विचरण करने का प्रयत्न करता है।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

॥ तृतीय उद्देशक समाप्त ॥

॥ द्वितीय अध्ययन समाप्त ॥

EQUANIMITY IN COMFORT AND DISCOMFORT

126. A *bhikshu* or *bhikshuni* may sometimes get either a comfortable or an uncomfortable bed, an airy or a stuffy place, a clean or a dusty *upashraya,* a mosquito free or mosquito filled *upashraya;* in the same way he may sometimes get an old, dilapidated and ruined place or a new and well built place; or he may get a bed with or without nuisance. No matter whatever comfortable or uncomfortable bed or place he gets, he should live there with equanimity. He should not have even a trace of annoyance or dislike in his mind.

This prudence in search for place of stay is the totality (of conduct including that related to knowledge) for that *bhikshu* or *bhikshuni.* He endeavours to remain composed in all respects.

—So I say.

॥ END OF LESSON THREE ॥

॥ END OF SECOND CHAPTER ॥

ईर्या : तृतीय अध्ययन

आमुख

✦ तृतीय अध्ययन का नाम 'ईर्या' है।

✦ 'ईर्या' का अर्थ केवल गमन करना नहीं है अपितु साधु जब एक स्थान से दूसरे स्थान पर किसी विशेष उद्देश्य से कल्प-नियमानुसार संयमभावपूर्वक यतना एव विवेक के साथ गमनादि चर्या/क्रियाएँ करता है तो उसे 'ईर्या' कहा जाता है।

✦ स्थान, गमन, निषद्या और शयन इन चारो अर्थ मे यहाँ 'ईर्या' शब्द का व्यवहार हुआ है।

✦ किस द्रव्य के सहारे से, किस क्षेत्र में, कहाँ और किस समय मे कब, कैसे एवं किस भाव से गमन करना यह सब ईर्या अध्ययन मे प्रतिपादित है।

✦ धर्म और संयम के लिए आधारभूत शरीर की सुरक्षा के लिए पिण्ड–आहार और शय्या–स्थान की भाँति ईर्या की भी नितान्त आवश्यकता होती है। पिछले दो अध्ययनो में क्रमश: पिण्ड-विशुद्धि एव शय्या-विशुद्धि का वर्णन किया गया है, वैसे ही इस अध्ययन में 'ईर्या-विशुद्धि' का वर्णन किया गया है, जिसमे (१) आलम्बन, (२) काल, (३) मार्ग, (४) यतना–इन चारो का विचार किया जाता है। यही ईर्या अध्ययन का उद्देश्य है।

✦ संघ, गच्छ तथा गण आदि की सेवा के लिए गमन करना आलम्बन-ईर्या है। गमन करने योग्य समय में गति करना काल-ईर्या है, सुमार्ग पर गमन करना मार्ग-ईर्या है। यतनापूर्वक गमन करना यतना-ईर्या है।

✦ ईर्या अध्ययन के तीन उद्देशक हैं। प्रथम उद्देशक में वर्षा काल में एक स्थान में निवास तथा ऋतुबद्ध काल मे विहार के गुण-दोषो का निरूपण है।

✦ द्वितीय उद्देशक मे नौकारोहण-यतना, थोडे पानी में चलने की यतना तथा ईर्या से सम्बन्धित अन्य वर्णन है।

✦ तृतीय उद्देशक मे मार्ग में गमन के समय अहिंसा, सत्य आदि की रक्षा करने के विषय में मार्गदर्शन है।

● ●

IRYA : THIRD CHAPTER

INTRODUCTION

- The name of the third chapter is *'Irya'*
- *'Irya'* does not just mean the simple act of going. When for some specific purpose an ascetic indulges in various acts of movement including going from one place to another adhering to the codes of conduct with discipline and prudence, it is called *'irya'*.
- Here *'irya'* is used in four contexts—area, movement, alms collection and place of stay
- Using what material, in which area, where and at what hour, when, how and with what attitude movement should be made, all this is included in this chapter.
- To protect the body for religious pursuits and ascetic-discipline *irya* is also as essential as food and place of stay. In the two preceding chapters purity of food and purity of place of stay have been discussed In the same way purity in movement is discussed in this chapter This includes (1) *alamban* (purpose), (2) *kaal* (time), (3) *marg* (path), and (4) *yatana* (precaution or care). That is the purpose of this chapter titled *Irya*
- To move about to serve the religious organization, such as *sangh, gachha* and *gana* is **alamban-irya.** To move at time suitable for movement is **kaal-irya.** To move on the right path is **marg-irya.** Moving with care is **yatna-irya.**
- This *Irya* chapter has three lessons. The first lesson details the attributes and faults of monsoon-stay and movement during the rest of the year.
- The second lesson contains details about care to be taken while moving in shallow water or riding a boat and also some other discussions about *irya*.
- The third lesson contains directions about protecting the vows like ahimsa and truth while moving around. ●●

इरिया : तइयं अज्झयणं
ईर्या : तृतीय अध्ययन
IRYA : THIRD CHAPTER
THE MOVEMENT

पढमो उद्देसओ | प्रथम उद्देशक | LESSON ONE

वर्षावास योग्य स्थान की एषणा

१२७. अब्भुवगए खलु वासावासे अभिपवुट्ठे, बहवे पाणा अभिसंभूया, बहवे बीया अहुणुब्भिण्णा, अंतरा से मग्गा बहुपाणा बहुबीया जाव ससंताणगा, अणभिक्कंता पंथा, णो विन्नाया मग्गा, सेवं नच्चा णो गामाणुगामं दूइज्जेज्जा, तओ संजयामेव वासावासं उवल्लिएज्जा।

१२७. वर्षाकाल प्रारम्भ होने पर वर्षा हो जाने से बहुत-से प्राणी उत्पन्न हो जाते हैं, बहुत-से बीज अंकुरित हो जाते हैं, भूमि घास आदि से हरी हो जाती है। मार्ग मे बहुत-से प्राणियों व बहुत-से बीजों की उत्पत्ति हो जाती है (हरियाली हो जाती है, बहुत स्थानों में पानी भर जाता है, स्थान-स्थान पर पाँच वर्ण की लीलण-फूलण आदि हो जाती है, कीचड़ या पानी से मिट्टी गीली हो जाती है), कई जगह मकडी के जाले हो जाते है। वर्षा के कारण मार्ग अवरुद्ध हो जाते हैं, मार्ग पर चला नहीं जा सकता तथा मार्ग एवं उन्मार्ग का पता नहीं चलता। ऐसी स्थिति में साधु को एक ग्राम से दूसरे ग्राम विहार नहीं करना चाहिए किन्तु वर्षाकाल में एक स्थान पर ही स्थिर रहकर वर्षावास करना चाहिए।

EXPLORATION OF PLACE SUITABLE FOR MONSOON-STAY

127. As it starts raining with the onset of monsoon season numerous beings are generated, seeds sprout, and the land turns green with grass and other vegetation. On the road too numerous beings are born and seeds sprout (the land turns green, water is collected at many places, fungus and moss of five colours are generated, sand turns to mire) and many places are covered with cobwebs. Paths are blocked due to rain, it becomes

difficult to walk and it is hard even to find a path. In such conditions an ascetic should not move from one village to another. Instead, he should spend the monsoon season staying at one place (village).

१२८. से भिक्खू वा २ से जं पुण जाणेज्जा गामं वा जाव रायहाणिं वा, इमंसि खलु गामंसि वा जाव रायहाणिंसि वा णो महइ विहारभूमि, णो महइ वियारभूमि, णो सुलभे पीढ-फलग-सेज्जा-संथारए, णो सुलभे फासुए उंछे अहेसणिज्जे, जत्थ बहवे समण-माहण-अतिहि-किवण-वणीमगा उवागया उवागमिस्संति च, अच्चाइण्णा वित्ती, णो पण्णस्स णिक्खमण जाव चिंताए। सेवं णच्चा तहप्पगारं गामं वा णगरं वा जाव रायहाणिं वा णो वासावासं उवल्लिएज्जा।

१२८. साधु-साध्वी जहाँ वर्षावास करना चाहें उस ग्राम, नगर यावत् राजधानी के विषय में भलीभाँति जान लेना चाहिए कि जिस ग्राम, नगर यावत् राजधानी में एकान्त में स्वाध्याय करने के लिए विशाल भूमि न हो, मल-मूत्र विसर्जन के योग्य निर्दोष भूमि न हो, पीठ (चौकी), फलक (पट्टे), शय्या एवं संस्तारक की प्राप्ति सुलभ न हो और न ही प्रासुक, निर्दोष एवं एषणीय आहार-पानी ही सुलभ हो, जहाँ पर बहुत-से श्रमण, ब्राह्मण, अतिथि, दरिद्र न ही भिखारी लोग हों, कुछ आ गये हों, दूसरे आने वाले हों, जिस कारण मार्गों पर जनता की भीड़ हो, साधु-साध्वी को भिक्षा आदि आवश्यक कार्यों से अपने स्थान से निकलना और प्रवेश करना भी कठिन हो, स्वाध्याय आदि क्रियाएँ भी निरुपद्रव न हो सकती हों, ऐसे ग्राम, नगर आदि में साधु-साध्वी वर्षावास व्यतीत न करे।

128. A *bhikshu* or *bhikshuni* should find about the village, city or capital where he wants to spend a monsoon-stay if that village or city or capital does not have large area for studies in solitude; fault-free land for disposing excreta; easy availability of stool, plank, place of stay and bed; availability of pure, fault-free, and acceptable food. He should also find whether already there are numerous *Shramans,* Brahmins, guests, destitute and beggars; many more have come; and many are likely to come and because of this the roads are crowded, it is difficult for ascetics to come out of or return to their place of stay for alms collection and other necessary work; and even studies and essential activities cannot be performed without disturbance. If it is so, the *bhikshu*

or *bhikshuni* should not spend monsoon-stay in such village, city or capital.

विवेचन--प्राचीन परम्परा के अनुसार वर्ष में तीन चातुर्मास होते हैं-हेमन्त ऋतु, ग्रीष्म ऋतु और वर्षा ऋतु। इनमें वर्षा ऋतु का चातुर्मास आषाढ़ी पूर्णिमा-श्रावण कृष्णा प्रतिपदा से प्रारम्भ होकर कार्तिक पूर्णिमा तक होता है। वर्षा ऋतु प्रारम्भ होने पर ग्रामानुग्राम विहार नहीं करना चाहिए। आचार्य श्री आत्माराम जी म. के अनुसार यदि आषाढ़ी पूर्णिमा से पहले वर्षा प्रारम्भ होने से हरियाली आदि हो जाये तो साधु को उसी समय एक स्थान पर स्थित हो जाना चाहिए। इसमें मुख्य रूप में जीव विराधना से बचने की दृष्टि है, साथ ही वर्षा व कीचड़ आदि के कारण शरीर विराधना भी होती है। इस कारण वर्षावास में एक स्थान पर रहने का विधान किया गया है।

Elaboration—According to the ancient tradition an year is divided into three quarters or seasons—winter, summer and monsoon. The monsoon season starts after *Ashadh Purnima* (the full-moon night or the last day of the month of *Ashadh*), *i e* , on the first day of the dark half of the month of *Shravan* and ends on *Kartik Purnima* When the monsoon season starts ascetics should stop wandering from one village to another. According to Acharya Shri Atmaramji M. if it rains before *Ashadh Purnima* and the area turns green, ascetics should at once commence their monsoon-stay This is mainly with the view of avoiding harm to beings There are also chances of harm to one's own body due to rain and slime. That is the reason for staying at one place during monsoon season

१२९. से भिक्खू वा २ से जं पुण जाणेज्जा गामं वा जाव रायहाणिं वा, इमंसि खलु गामंसि वा जाव रायहाणिंसि वा महइ विहारभूमि, महइ वियारभूमि, सुलभे जत्थ पीढ-फलग-सेज्जा-संथारए, सुलभे फासुए उंछे अहेसणिज्जे, णो जत्थ बहवे समण जाव उवागमिस्संति य अप्पाइन्ना वित्ती जाव रायहाणिं वा तओ संजयामेव वासावासं उवल्लिएज्जा।

१२९. साधु-साध्वी उस ग्राम यावत् राजधानी के सम्बन्ध में जाने कि इस ग्राम आदि में स्वाध्याय-योग्य विशाल भूमि मल-मूत्र-विसर्जन के लिए उपयुक्त स्थण्डिल भूमि, पीठ, फलक, शय्या एवं संस्तारक की प्राप्ति सुलभ है और प्रासुक, निर्दोष एवं एषणीय आहार-पानी की प्राप्ति भी सुलभ है। यहाँ बहुत-से श्रमण, ब्राह्मण आदि नहीं आये हैं तथा न ही आयेंगे, मार्गों पर जनता की भीड़ भी अधिक नहीं होगी। जिस कारण भिक्षा आदि

कार्यों के लिए अपने स्थान से जाना-आना कठिन नहीं होगा यह सब जानकर ऐसे ग्रा. यावत् राजधानी में संयमी साधु वर्षावास व्यतीत करे।

129. A *bhikshu* or *bhikshuni* should find if that village or city or capital has large area for studies in solitude; fault-free land for disposing excreta; easy availability of stool, plank, place of stay and bed; and even pure, fault-free and acceptable food available; whether there are not many *Shramans,* Brahmins, guests, destitute and beggars; neither more have come nor more to come; and because of this the roads are not crowded, it is not difficult for ascetics to come out of or return to their place of stay for alms collection and other necessary work; and even studies and essential activities can be performed without disturbance. If it is so, the *bhikshu* or *bhikshuni* should spend monsoon-stay in such village, city or capital.

१३०. अह पुणेवं जाणेज्जा चत्तारि मासा वासाणं वीतिक्कंता, हेमंताण य पंच-दस-रायकप्पे परिवुसिते, अंतरा से मग्गा बहुपाणा जाव संताणगा, णो जत्थ बहवे समण जाव उवागमिस्संति य सेवं णच्चा णो गामाणुगामं दूइज्जेज्जा।

१३०. साधु-साध्वी यह भी जाने कि वर्षाकाल के चार मास व्यतीत हो जाने पर विहार कर देना चाहिए। (यह मुनि का उत्सर्ग मार्ग है) किन्तु कार्तिक मास में पुनः वर्षा हो जाने से मार्ग आवागमन के योग्य नहीं हो, मार्ग में अनेक प्राणी, अण्डे, हरियाली आदि हो तथा अन्य श्रमण, ब्राह्मण, परिव्राजक आदि भी उस मार्ग से नहीं जा रहे हों तो, उस स्थान पर हेमन्त ऋतु (मार्गशीर्ष मास) की पाँच-दस रात्रि और अधिक भी रहना कल्पता है। ऐसे कीचड़ वाले मार्ग से विहार नहीं करना चाहिए।

130. The *bhikshu* or *bhikshuni* should also know that he should leave the place when the four month period of the monsoon season comes to an end. (This is the ideal ascetic way) but if it rains again in the *Kartik* month and there are many beings, eggs, vegetation etc. on the path and other *Shramans,* Brahmins and *Parivrajaks* are also not using that path, then he/she is allowed to extend the stay for five or ten days. Moving on such marshy path should be avoided.

१३१. अह पुणेवं जाणेज्जा चत्तारि मासा वासाणं वीतिक्कंता, हेमंताण य पंच-दस-रायकप्पे परिवुसिते अंतरा से मग्गा अप्पंडा जाव संताणगा, बहवे जत्थ समण जाव उवागमिस्संति य। सेवं णच्चा तओ संजयामेव गामाणुगामं दूइज्जेज्जा।

१३१. यदि साधु-साध्वी यह जाने कि चातुर्मास व्यतीत होने पर हेमन्त ऋतु के १५ दिन भी व्यतीत हो गये हैं। अब मार्ग हरियाली, अण्डा आदि से रहित आवागमन के योग्य हो गया है। अन्य अनेक शाक्यादि भिक्षु भी आने लगे हैं, तो यह जानकर मुनि वहाँ से यतनापूर्वक ग्रामानुग्राम विहार कर सकता है।

131. When the *bhikshu* or *bhikshuni* finds that after the end of the monsoon season a fortnight of the winter season has also passed; the path is now free of vegetation, eggs etc. and suitable for movement; and numerous Buddhist and other mendicants have also started moving around; he can resume his careful itinerant way.

विवेचन—मुनि वर्षावास के चार मास तक एक स्थान पर स्थिर रहता है। चातुर्मास समाप्त होने पर कार्तिक पूर्णिमा के पश्चात् मार्गशीर्ष कृष्णा प्रतिपदा को विहार कर देना चाहिए यह सामान्य नियम है। किन्तु यदि कार्तिक मास में वर्षा हो जाने पर कीचड होने से रास्ता चलने योग्य न हो तो अधिक से अधिक पाँच-दस रात्रि वहाँ और रह सकता है। चूर्णिकार तथा आचार्य श्री आत्माराम जी म. के मतानुसार १५ अहोरात्रि तक उसी स्थान पर रह सकता है। *(हिन्दी टीका, पृ १०६५)*

Elaboration—Ascetics stay at one place during the four months of monsoon season At the end of the four month period on the *Kartik Purnima* he should leave the place on the first day of the dark fortnight of the month of *Margsheersh*. That is the normal rule However, if it rains even in the *Kartik* month and the roads are not passable due to slime, he may extend his stay for a maximum period of five to ten days. According to the commentator *(Churni)* and Acharya Shri Atmaramji M. he may extend his stay there up to a fortnight. *(Hindi Tika p 1065)*

विहारचर्या में यतना की विधि

१३२. से भिक्खू वा २ गामाणुगामं दूइज्जमाणे पुरओ जुगमायं पेहमाणे दट्ठूण तसे पाणे उद्धट्टु पायं रीएज्जा, साहट्टु पायं रीएज्जा, वितिरिच्छं वा कट्टु पायं

रीएज्जा, सति परक्कमे संजयामेव परक्कमेज्जा, णो उज्जुयं गच्छेज्जा, तओ संजयामेव गामाणुगामं दूइज्जेज्जा।

१३२. ग्रामानुग्राम विहार करते हुए साधु-साध्वी अपने सन्मुख युगमात्र (–गाड़ी के जुए के बराबर चार हाथ प्रमाण) भूमि को देखता हुआ चले और मार्ग में त्रस प्राणियों को देखे तो अगला पाँव उठाकर चले। यदि दोनों ओर जीव हों तो पैरों को सिकोड़कर चले अथवा पैरों को तिरछे–टेढ़े रखकर चले (यह विधि अन्य मार्ग के अभाव में बताई गई है)। यदि दूसरा कोई जीवरहित मार्ग हो तो उसी मार्ग से यतनापूर्वक जाये, किन्तु जीव-जन्तुओं से युक्त सरल (–सीधे) मार्ग पर न चले। इस प्रकार यतनापूर्वक ग्रामानुग्राम विचरण करना चाहिए।

PRECAUTIONS DURING MOVEMENT

132. While moving from one village to another a *bhikshu* or *bhikshuni* should walk keeping about six feet of ground in his vision. If he sees mobile beings on the ground he should lift his toes and walk on heels If there are beings on both sides he should walk on sides of his feet or bringing both feet nearer (this method is to be used in absence of an alternative path). However, if there is an alternative path free of beings, he should always take that path with due care and not the path that is straight but infested with beings. Thus he should move about from one village to another with due care.

१३३. से भिक्खू वा २ गामाणुगाणं दूइज्जमाणे, अन्तरा से पाणाणि वा बीयाणि वा हरियाणि वा उदए वा मट्टिया वा अविद्धत्था, सति परक्कमे जाव णो उज्जुयं गच्छेज्जा, तओ संजयामेव गामाणुगामं दूइज्जेज्जा।

१३३. ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए साधु-साध्वी यह जाने कि मार्ग में त्रस प्राणी हैं, बीज बिखरे हैं, हरियाली है, सचित्त पानी है या सचित्त मिट्टी है, जो अभी तक अचित्त नहीं हुई है, ऐसी स्थिति में यदि दूसरा निर्दोष मार्ग हो तो उसी मार्ग से यतनापूर्वक जाए, किन्तु जीवादि युक्त सरल मार्ग से नहीं जाये। यदि अन्य मार्ग नहीं हो तो यतनापूर्वक उस मार्ग से चले।

133. While moving from one village to another a *bhikshu* or *bhikshuni* should find if there are mobile beings, scattered seeds,

vegetation, water and sand yet to be uncontaminated on the path. If it is so and an alternative path free of beings is available he should always take that alternative path with due care and not the path that is straight but infested with beings. However, if no alternative path is available he may take the available one with due care.

मार्ग में दस्यु आदि के उपद्रव

१३४. से भिक्खू वा २ गामाणुगामं दूइज्जमाणे, अंतरा से विरूवरूवाणि पच्चंतिगाणि दस्सुगायतणाणि मिलक्खूणि अणारियाणि दुस्सन्नप्पाणि दुप्पन्नवणिज्जाणि अकालपडिबोहीणि अकालपरिभोईणि, सइ लाढे विहाराए संथरमाणेहिं जणवएहिं णो विहारवत्तियाए पवज्जेज्जा गमणाए। केवली बूया–आयाणमेयं।

ते णं बाला 'अयं तेणे, अयं उवचरए, अयं ततो आगए' त्ति कट्टु तं भिक्खुं अक्कोसेज्ज वा जाव उवद्दवेज्ज वा, वत्थं पडिग्गहं कंबलं पादपुंछणं अच्छिंदेज्ज वा भिंदेज्ज वा अवहरेज्ज वा परिट्ठवेज्ज वा। जह भिक्खूणं पुव्वोवदिट्ठा ४ जं तहप्पगाराणि विरूवरूवाणि पच्चंतियाणि जाव विहारवत्तियाए णो पवज्जेज्जा गमणाए। तओ संजयामेव गामाणुगामं दूइज्जेज्जा।

१३४. विचरण करते हुए साधु-साध्वी को मार्ग में यदि विभिन्न देशों की सीमा पर रहने वाले दस्युओं (चोरों) के, म्लेच्छों के या अनार्यों के स्थान आते हों, जिन्हें बड़ी कठिनाई से समझाया जा सकता है, जिन्हें कठिनाई से धर्मबोध देकर अनार्य कर्मों से हटाया जा सकता है, ऐसे अकाल (कुसमय) में जागने वाले, कुसमय में खाने-पीने वाले मनुष्य रहते हो, तो अन्य मार्ग से विहार हो सकता हो अथवा अन्य आर्य क्षेत्र विद्यमान हों तो साधु उन म्लेच्छादि के स्थानो में विहार करने का मन में विचार न करे। केवली भगवान कहते हैं–वहाँ जाना कर्मबन्ध का कारण है।

(क्योंकि) वे अज्ञानी म्लेच्छ लोग साधु को देखकर–"यह चोर है, यह गुप्तचर है, यह हमारे शत्रु के गाँव से आया है" इत्यादि शब्द कहकर उस भिक्षु को कठोर वचन कहेंगे, रस्सों से बाँधेंगे, अनेक उपद्रव करेंगे और वे दुष्ट पुरुष उसके वस्त्र, पात्र, कम्बल, पाद-पोंछन आदि उपकरणों को तोड़-फोड़ देंगे, अपहरण कर लेंगे या उन्हें कहीं दूर फेंक देंगे ऐसा होना सम्भव है। इसीलिए भिक्षुओ के लिए तीर्थंकर आदि ज्ञानी पुरुषों ने पहले से ही उपदेश किया है कि भिक्षु उन दस्यु तथा अनार्य आदि लोगों के स्थानों में विहार करने

का विचार मन में न करे। अर्थात् ऐसे स्थानों को छोड़कर संयमी साधु अन्यत्र ग्रामानुग्राम विहार करे।

BANDITS AND OTHER PROBLEMS

134. An itinerant *bhikshu* or *bhikshuni* should find if on his way there are domains of bandits, rustics or uncivilized people who are averse to learning, difficult to persuade to abandon uncivilized ways by preaching religion; who remain awake during odd hours and eat at odd hours. If it is so he should not even think of taking that path if another is available or there are areas where civilized people live. The omniscient has said that going there is the cause of bondage of *karmas*.

(This is because) When those ignorant uncivilized people see ascetics they will utter harsh words—"He is a thief, he is a spy, he comes from a hostile village", they will also tie him with ropes and torture him. It is also possible that they will tear, break, destroy, snatch or throw away his belongings including dress, pots, blanket and ascetic-broom. Therefore, for ascetics *Tirthankars* and other sages have said that the ascetics should not think of moving around in areas where bandits and uncivilized people live. In other words they should avoid such areas during there wanderings.

१३५. से भिक्खू वा २ गामाणुगामं दूइज्जमाणे, अंतरा से अरायाणि वा जुवरायाणि वा दोरज्जाणि वा वेरज्जाणि वा विरुद्धरज्जाणि वा, सति लाढे विहाराए संथरमाणेहिं जणवएहिं णो विहारवत्तियाए पवज्जेज्जा गमणाए। केवली बूया आयाणमेयं।

ते णं बाला अयं तेणे तं चेव जाव गमणाए। ततो संजयामेव गामाणुगामं दूइज्जेज्जा।

१३५. ग्रामानुग्राम विहार करते हुए साधु या साध्वी जाने कि बीच मार्ग में यह प्रदेश अराजक है या इस गणराज्य मे अशान्ति है या यहाँ केवल युवराज का शासन है अथवा दो राजाओं का शासन चलता है अथवा राजा तथा प्रजा में परस्पर विरोध है, ऐसी स्थिति

में विहार के योग्य अन्य जनपदों के होते उन स्थानों में विहार करने का विचार नहीं करे। केवली भगवान ने कहा है–ऐसे प्रदेशों में जाना कर्मबन्ध का कारण है।

(क्योंकि) वे अज्ञानीजन साधु के प्रति शका कर सकते हैं कि "यह चोर है" आदि सूत्र १३४ के अनुसार समझें। अतः साधु को इन प्रदेशो में विहार नहीं करना चाहिए।

135. An itinerant *bhikshu* or *bhikshuni* should find if on his way there is an anarchy or a disturbed republic or a state ruled by a minor prince or a state ruled by two kings or a kingdom with a dispute between ruler and the ruled. If it is so he should not even think of taking that path if other suitable areas are available. The omniscient has said that going there is the cause of bondage of *karmas.*

(This is because) When those ignorant uncivilized people see ascetics they will utter harsh words—"He is a thief" . .. (same as aphorism 134)..... they should avoid such areas during there wanderings.

विहारपथ में विकट अटवी

१३६. से भिक्खू वा २ गामाणुगामं दूइज्जेज्जा, अतरा से विहं सिया, से जं पुण विहं जाणेज्जा एगाहेण वा दुयाहेण वा तियाहेण वा चउयाहेण वा पंचाहेण वा पाउणिज्जा वा णो वा पाउणिज्जा। तहप्पगारं विहं अणेगाहगमणिज्जं सति लाढे जाव गमणाए। केवली बूया–आयाणमेयं। अंतरा से वासे सिया पाणेसु वा पणएसु वा बीयेसु वा हरिएसु वा उदएसु वा मट्टियाए वा अविद्धत्थाए। अह भिक्खूणं पुव्वोवदिट्ठा ४ जं तहप्पगारं विहं अणेगाहगमणिज्जं जाव णो गमणाए। तओ संजयामेव गामाणुगामं दूइज्जेज्जा।

१३६. साधु-साध्वी ग्रामानुग्राम विहार करते हुए जाने कि आगे लम्बा अटवी मार्ग आने वाला है। वह अटवी मार्ग एक दिन, दो दिन, तीन दिन, चार दिन या पाँच दिनों में पार किया जा सकता है अथवा पार करना अति कठिन है। तो अन्य मार्ग होने पर उस भयंकर अटवी मार्ग से विहार करके नहीं जाये। केवली भगवान ने इसे कर्मबन्ध का कारण बताया है, (क्योंकि) मार्ग में वर्षा हो जाने पर द्वीन्द्रिय आदि जीवों की उत्पत्ति हो सकती है, लीलन-फूलन, बीज, हरियाली सचित्त पानी और मिट्टी आदि के कारण संयम

चित्र परिचय ६

Illustration No. 6
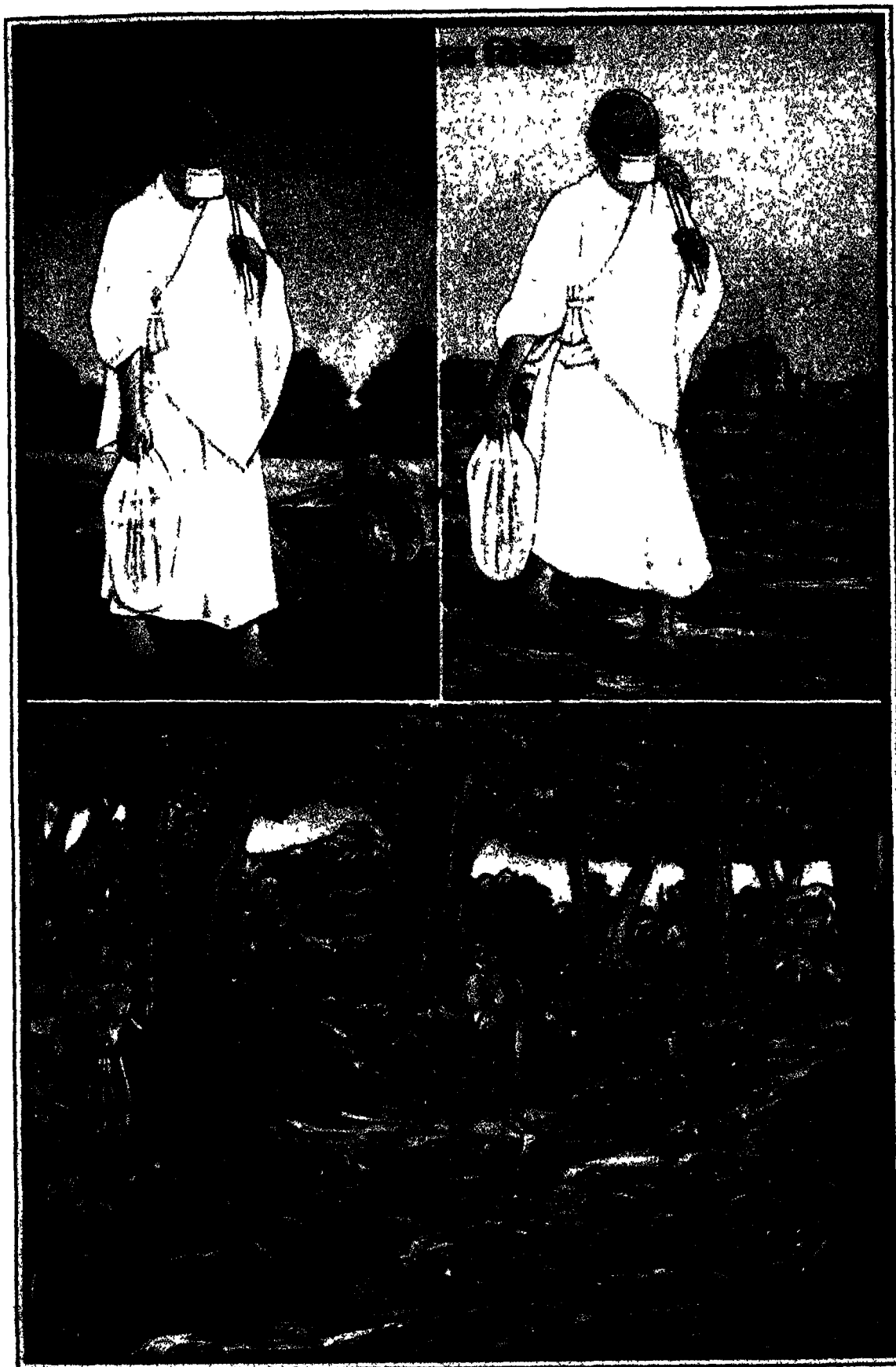
ईर्यागमन-विवेक

(१) **गमन की विधि**–ग्रामानुग्राम विहार करते या भिक्षा के लिए जाते हुए मार्ग मे अपने शरीर प्रमाण (युगमात्र) भूमि को देखते हुए मद-मद गति से चले।

(२) यदि मार्ग मे कीचड पत्थर या हरियाली व त्रस प्राणी आदि आ जाये तथा दूसरा योग्य मार्ग न हो तो अति सावधानी के साथ अगला एक पॉव जमाकर पिछला पॉव उठाते हुए जीव-विराधना से बचकर धीरे धीरे गमन करे। (*सूत्र १३२*)

(३) **विषम मार्ग छोड़ दे**–विहार करते हुए मार्ग मे यदि ऐसा भयानक लम्बा, अटवी मार्ग आता हो जिसे पार करने मे कई दिन लग सकते हो, जहॉ मार्ग मे नदी, नाले आदि वनस्पति आने की सभावना हो तथा उस मार्ग मे चोर, लुटेरे, दस्यु आदि छिपे रहते हो तो ऐसे विषम मार्ग से विहार नही करना चाहिए।

–अध्ययन ३, सूत्र १३६ पृ २३६

PRUDENCE OF MOVEMENT

(1) **Procedure of movement—**While wandering from one village to another or going to seek alms an ascetic should watch an area equal to the dimensions of his body and walk carefully and slowly

(2) If there is slime, stones, vegetation or mobile beings on the path and there is no alternate path, the ascetic should walk very slowly, step by step and taking extra care to avoid harming beings (*aphorism 132*)

(3) **Avoid dangerous path—**An ascetic should avoid a dangerous path while going from one village to another, such as—a long, dangerous and desolate path that could take days to cross, where there are rivers, canals or other water-bodies or vegetation on the way; which are frequented by thieves, bandits, dacoits (etc).

—Chapter 3, aphorism 136, p. 236

की विराधना होना सम्भव है। इसीलिए भिक्षुओं के लिए तीर्थंकरादि ने पहले से ही उपदेश किया है कि मुनि अन्य मार्ग के रहते इस प्रकार के भयंकर अटवी मार्ग से विहार करके जाने का विचार न करे। अन्य निरापद मार्ग से ग्रामानुग्राम विहार करे।

DESOLATE AREAS ON THE WAY

136. An itinerant *bhikshu* or *bhikshuni* should find if on his way there is a difficult desolate terrain ahead, which can be crossed only in one two, three, four or five days and that too with great hardships. If it is so he should not take that path if other path is available. The omniscient has said that going there is the cause of bondage of *karmas* (This is because) if it rains two-sensed beings may be created; ascetic-discipline may be violated due to presence of fungus and moss, seeds, vegetation, contaminated water and sand etc. on the path. Therefore *Tirthankars* (etc.) have said that ascetics should not think of taking such desolate path when an alternative path is available. They should follow the safe alternative path.

विवेचन—विहार की विधि—विहार या गमनागमन करने की सामान्य विधि यह है कि साधु-साध्वी अपने शरीर के सामने की लगभग चार हाथ (गाडी के जुए के बराबर) भूमि के देखते हुए दिन में ही चले। जहाँ तक हो सके वह ऐसे मार्ग से गमन करे, जो साफ, सम और जीव-जन्तु, कीचड, हरियाली, पानी, गड्ढे आदि से रहित हो। विहार करते हुए मार्ग में आने वाले इन पाँच प्रकार के विघ्नों से भी बचने का ध्यान रखना चाहिए—

(१) यदि वह मार्ग त्रस जीवों से संकुल हो। (२) मार्ग में त्रस प्राणी, बीज, हरित, उदक और सचित्त मिट्टी आदि हो। (३) उस मार्ग में अनेक देशों के सीमावर्ती दस्युओं, म्लेच्छों, अनार्यों, दुर्बोध्य एवं अधार्मिक लोगों के स्थान पडते हों। (४) मार्ग में अराजक या विरोधी शासक वाले देश आदि आते हों। (५) यात्रा-पथ अनेक दिनों में पार किया जा सके, ऐसा लम्बा विकट अटवी मार्ग हो।

अनजाने या अचानक प्रथम दोनों प्रकार के मार्ग आ जायें तो उन पर यतनापूर्वक चलकर पार करना चाहिए। अन्तिम तीन विघ्नों वाले मार्गों को छोड़कर दूसरे विघ्नरहित मार्ग से विहार करना चाहिए।

वृत्तिकार ने यतना चार प्रकार की बताई है—(१) द्रव्य-यतना—जीव-जन्तुओं को देखकर चलना, (२) क्षेत्र-यतना—युग मात्र भूमि को देखकर चलना। (३) काल-यतना—अमुक काल में

(वर्षा काल को छोडकर) चलना, (४) भाव-यतना–संयम और साधना के भाव से उपयोगपूर्वक चलना। *(वृत्ति पत्रांक ३७७)* चूर्णिकार जिनदासमहत्तर ने 'जुगमायाए' का अर्थ शरीर प्रमाण भी किया है।

ऐसे कुराज्य वाले मार्ग से जाने पर क्या कष्ट होते है इस पर वृत्तिकार ने एक उदाहरण दिया है–श्रावस्ती का राजकुमार एकलविहारी बनकर ऐसे अटवी मार्ग से विहार कर रहा था। मार्ग में राजपुरुषों ने उसे वैराज्य का गुप्तचर समझकर पकड लिया। अनार्य पुरुषों ने उसे बाँध लिया और शरीर में तीक्ष्ण नोक वाले घास-दर्भ का प्रवेश कराकर असह्य पीडा पहुँचाई। *(उत्तराध्ययन सूत्र २ की टीका के अनुसार)*

Elaboration—Procedure of movement (wandering)—The general procedure of wandering is that an ascetic should move out only during the day time keeping about six feet of ground in his vision. As far as possible he should take to a clean and level path free of beings, slime, vegetation, water, pits (etc) He should also take care to avoid paths with following five types of obstacles—

(1) Path crowded with mobile beings (2) Path having beings, seeds vegetation, water, pits (etc) on the way (3) Path that passes through domains of bandits, rustics, imbeciles and irreligious people (4) Path that passes through anarchist or hostile states (5) Desolate and difficult terrain that takes long time to pass through.

If first two types of obstacles are seen all of a sudden and unknowingly then he should walk carefully to cross over. The last three should be avoided by taking to an alternative and safe path.

The commentator *(Vritti)* has enumerated four types of care (precautions)—(1) **Dravya Yatana** or **physical-care**—to walk avoiding creatures and animals. (2) **Kshetra Yatana** or **area-care**—to walk keeping in view six feet area ahead. (3) **Kaal Yatana** or **time-care**—to move about during specific time or period (such as not wandering during monsoon). (4) **Bhava Yatana** or **mental-care**—to move cautiously with a disciplined spiritual attitude *(Vritti leaf 377)* Jinadas Mahattar, the commentator *(Churni)*, has also interpreted *'jugamayaye'* as body length.

The commentator *(Vritti)* has given an example of troubles faced while wandering through a disturbed area—The prince of Shravasti was once wandering alone through such desolate area. The police of the state took him to be a spy and arrested. Rustics tied him and tortured him by stinging with *darbh*-grass having sharp and pointed tip. *(Uttaradhyayan Sutra Tika, Ch 2)*

विशेष शब्दों के अर्थ–**उद्धट्टु**–पैर को उठाकर। **साहट्टु**–पैर को सिकोड़कर, आगे के भाग को उठाकर एड़ी से चले। **वितिरिच्छं कट्टु**–पैर को तिरछा करके चले या दूसरा मार्ग हो तो उसी मार्ग से जाए। **दुप्पण्णवणिज्जाणि**–दु:ख से धर्मबोध दिया जा सके और अनार्य-आचार छुड़ाया जा सके, ऐसे लोगों के स्थान। **अकालपडिबोहीणि**–कुसमय में जागने वाले लोगों के स्थान। **अरायाणि**–जहाँ का राजा मर गया है या कोई राजा नहीं है। **जुवरायाणि**–जब तक राज्याभिषेक न किया जाए, तब तक वह युवराज कहलाता है। **वेरज्जाणि**–शत्रु राजा ने आकर जिस राज्य को हडप लिया है, वह वैर-राज्य है। **विरुद्धरज्जाणि**–जहाँ का राजा धर्म और साधुओं आदि का विरोधी है। **विहं**–कई दिनो में पार किया जा सके, ऐसा अटवी मार्ग। (चूर्णि)

Technical Terms : *Uddhattu*—lifting toes *Sahattu*—to walk on heel bringing feet together. *Vitirichham kattu*—to walk with slanted legs or to take alternative path if available. *Duppannavanijjani*—places of people difficult to be made civilized by preaching religion. *Akalapadibohini*—places of people who are awake at odd hours. *Arayani*—place without a king *Yuvarayani*—place with a minor ruler; an uncrowned ruler is called *yuvaraj Verajjani*—a kingdom conquered by a hostile king. *Viruddharajjani*—a state where the king is against religion and ascetics. *Viham*—a desolate terrain which takes many days to cross *(Churni)*

नौकारोहण-विधि

१३७. से भिक्खू वा २ गामाणुगामं दूइज्जेज्जा, अंतरा से नावासंतारिमे उदए सिया, से जं पुण नावं जाणेज्जा–असंजए भिक्खुपडियाए किणेज्ज वा, पामिच्चेज्ज वा, नावाए वा नावपरिणामं कट्टु, थलाओ वा नावं जलंसि ओगाहेज्जा, जलाओ वा नावं थलंसि उक्कसेज्जा पुण्णं वा णावं उस्सिंचेज्जा, सण्णं वा नावं उप्पीलावेज्जा, तहप्पगारं नावं उड्ढगामिणिं वा अहेगामिणिं वा तिरियगामिणिं वा परं जोयणमेराए अद्धजोयणमेराए वा अप्पतरे वा भुज्जतरे वा णो दुरूहेज्जा गमणाए।

१३७. साधु-साध्वी ग्रामानुग्राम विहार करते हुए यदि उस मार्ग में नौका द्वारा पार योग्य जल हो (तो वह नौका द्वारा उस नदी आदि को पार करे), परन्तु इस बात का ध्यान रखे कि वह नौका गृहस्थ साधु के निमित्त मूल्य देकर लेता हो या उधार ले रहा हो अथवा अपनी नौका से उसकी नौका की अदला-बदली कर रहा हो या नौका को स्थल से जल में अथवा जल से स्थल में खींचकर लाता हो, जल से भरी हुई नौका को खाली करता हो अथवा कीचड में फँसी हुई नौका को बाहर निकालकर साधु के लिए तैयार करके साधु को उस पर चढ़ने की प्रार्थना करे, तो इस प्रकार की ऊर्ध्वगामिनी, अधोगामिनी या तिर्यक्गामिनी नौका जोकि उत्कृष्ट एक योजन-प्रमाण क्षेत्र में या अर्द्ध-योजन-प्रमाण क्षेत्र में चलने वाली हो, एक बार या बार-बार गमन करने के लिए थोड़े या बहुत समय के लिए साधु उस नौका से नदी को पार न करे।

PROCEDURE OF RIDING A BOAT

137. If an itinerant *bhikshu* or *bhikshuni* comes across a water-body that could be crossed in a boat (he should use a boat) But (before that) he should find if a householder buys or borrows the boat or gets in exchange of his own boat or draws a boat from land into water or from water to land or empties a water filled boat or pulls out a boat from marsh, prepares it specifically for the ascetic and requests the ascetic to board. If it is so, the ascetic should not use, once or many times for a short or a long period, such boat that plies one *yojan* or half *yojan* upstream, downstream or across for crossing a water-body

१३८. से भिक्खू वा २ पुव्वामेव तिरिच्छसंपाइमं नावं जाणेज्जा, जाणित्ता से त्तमायाए एगंतमवक्कमेज्जा, २ (त्ता) भंडगं पडिलेहेज्जा, २ (त्ता) एगओ भोयणभंडग करेज्जा, २ (त्ता) ससीसोवरियं कायं पाए पमज्जेज्जा, २ सागारं भत्तं पच्चक्खाएज्जा, २ (त्ता) एगं पायं जले किच्चा एगं पायं थले किच्चा तओ संजयामेव नावं दुरूहेज्जा।

१३८. आवश्यक होने पर नौका में बैठना पड़े तो साधु-साध्वी तिर्यक्गामिनी नौका से जाने की तैयारी करे। पहले गृहस्थ से आज्ञा लेकर एकान्त स्थान में जाये, भण्डोपकरण का प्रतिलेखन करे, तत्पश्चात् सभी उपकरणों को इकट्ठे करके बाँध ले। फिर सिर से पैर तक पूरे शरीर की प्रतिलेखना करे। पश्चात् आगार सहित भक्त-पान का प्रत्याख्यान करे। फिर एक पैर जल में और एक पैर स्थल में रखकर यतनापूर्वक उस नौका पर चढ़े।

138. If it is necessary to board a boat he should be inclined to use a boat going across. He should first seek permission from the householder and retire to a lonely place, inspect his equipment and pack them together. After this he should inspect his own body from head to toe and take a vow of limited fasting. Then he should carefully board the boat keeping one foot in water and the other on land.

१३९. से भिक्खू वा २ नावं दुरूहमाणे णो नावाओ पुरआ दुरूहेज्जा, णो नावाओ मग्गओ दुरूहेज्जा, णो नावाओ मज्झओ दुरूहेज्जा, णो बाहाओ पगिज्झिय २ अंगुलियाए उद्दिसिय २ ओणमिय २ उण्णमिय २ णिज्झाएज्जा।

१३९. साधु-साध्वी नौका पर चढ़ते हुए न तो नौका के अगले भाग मैं बैठे, न पिछले भाग में बैठे और न ही मध्य भाग में। नौका के बाजुओं को पकड़-पकड़कर या अँगुली द्वारा बता-बताकर या उसे ऊँची या नीची करके जल को नहीं देखे।

139. While boarding a boat a *bhikshu* or *bhikshuni* should choose neither the stern nor the prow or the middle of the boat. He should refrain from looking down at the water by holding the sides of the boat or raising, lowering or pointing with fingers.

१४०. से णं परो नावागओ नावागयं वएज्जा–आउसंतो समणा ! एयं ता तुमं नावं उक्कसाहि वा वोक्कसाहि वा खिवाहि वा रज्जूए वा गहाय आकसाहि। णो से तं परिण्णं परिजाणेज्जा, तुसिणीओ उवेहेज्जा।

१४०. नौका में आरूढ़ साधु से यदि नाविक कहे कि "आयुष्मन् श्रमण ! तुम इस नौका को ऊपर की ओर खींचो, नौका को नीचे की ओर खींचो या रस्सी को पकड़कर नौका को अच्छी तरह से बाँध दो अथवा रस्सी से इसे जोर से कस दो।" नाविक के द्वारा कहे गये इन वचनों को साधु स्वीकार न करे, किन्तु मौन धारण कर बैठा रहे।

140. If the boatman tells to an ascetic riding the boat—"Long lived *Shraman* ! Please pull the boat upwards or downwards or hold the rope and tie the boat fast or draw the rope tight." The ascetic should not comply with this request from the boatman and silently ignore it.

१४१. से णं परो णावागओ नावागयं वएज्जा–आउसंतो समणा ! णो संचाएसि तुमं नावं उक्कसित्तए वा वोक्कसित्तए वा खिवित्तए वा रज्जुए वा गहाय आकसित्तए। आहर एवं नावाए रज्जुयं, सयं चेवं णं वयं नावं उक्कसिस्सामो वा जाव रज्जूए वा गहाय आकसिस्सामो। णो से तं परिण्णं परिजाणेज्जा, तुसिणीओ उवेहेज्जा।

१४१. नौकारूढ़ साधु को यदि नाविक ऐसा कहे कि "आयुष्मन् श्रमण ! यदि तुम नौका को ऊपर या नीचे की ओर खींच नहीं सकते, रस्सी पकडकर नौका को बाँध नहीं सकते या जोर से कस नही सकते, तो नाव पर रखी हुई रस्सी को लाकर हमे दे दो। हम स्वयं नौका को ऊपर या नीचे की ओर खींच लेंगे, फिर रस्सी से इसे जोर से कस देंगे।" साधु नाविक के इस प्रकार के वचनों को भी स्वीकार न करे, उपेक्षाभाव से चुपचाप बैठा रहे।

141. If the boatman tells to an ascetic riding the boat—"Long lived *Shraman* ! If you cannot pull the boat upwards or downwards or hold the rope and tie the boat fast or draw the rope tight, please hand over the rope lying on the boat to me. I will pull the boat upwards or downwards and tie it fast with rope on my own." The ascetic should not comply even with this request from the boatman and silently ignore it.

१४२. से णं परो नावागओ नावागयं वएज्जा–आउसंतो समणा ! एयं ता तुमं नाव आलित्तेण वा पिट्टेण वा वंसेण वा वलएण वा अवल्लएण वा वाहेहि। णो से तं परिण्णं जाव उवेहेज्जा।

१४२. नौका में आरूढ़ साधु से नाविक यह कहे कि "आयुष्मन् श्रमण ! जरा इस नौका को तुम डांड (चप्पू) से, पीठ से, बडे बॉस से, बल्ली से और अबलुक (बाँस विशेष) से आगे कर दो– चलाओ।" नाविक के इस प्रकार के वचनों को मुनि स्वीकार न करे, मौन होकर बैठा रहे।

142. If the boatman tells to an ascetic riding the boat—"Long lived *Shraman* ! Please push the boat forward with an oar, rudder, bamboo, pole or scull." The ascetic should not comply with this request from the boatman and silently ignore it.

१४३. से णं परो नावागओ नावागयं वएज्जा–आउसंतो समणा ! एयं ता तुमं नावाए उदयं हत्थेण वा पाएण वा मत्तेण वा पडिग्गहएण वा नावा उस्सिंचणएण वा उस्सिंचाहि। णो से तं परिण्णं परिजाणेज्जा।

१४३. नौका में बैठे हुए साधु से नाविक यदि कहे कि "आयुष्मन् श्रमण ! इस नौका में भरे हुए जल को तुम हाथ से, पैर से, भाजन से, पात्र से, नौका से उलीचकर बाहर निकाल दो।" साधु नाविक के इस कथन को सुनकर मौन धारण कर बैठा रहे।

143. If the boatman tells to an ascetic riding the boat—"Long lived *Shraman* ! Please bail out the water filled in the boat with your hands, feet, a bowl or a pot." The ascetic should not comply with this request from the boatman and silently ignore it.

१४४. से णं परो नावागओ नावागयं वएज्जा–आउसंतो समणा ! एयं ता तुमं नावाए उत्तिंग हत्थेण वा पाएण वा बाहुणा वा ऊरुणा वा उदरेण वा सीसेण वा काएण वा नावा उस्सिंचणएण वा चेलेण वा मट्टियाए वा कुसपत्तएण वा कुविंदेण वा पिहेहि। णो से तं परिण्णं परिजाणेज्जा।

१४४. नौका में बैठे साधु से नाविक कहे कि "आयुष्मन् श्रमण ! नाव के इस छिद्र को अपने हाथ से, पैर से, भुजा से, जंघा से, पेट से, सिर से या शरीर से अथवा नौका के जल निकालने वाले उपकरणों से, वस्त्र से, मिट्टी से, कुशपात्र से, कुरुविंद नामक घास विशेष से बन्द कर दो, रोक दो।" नाविक के इस कथन को भी साधु स्वीकार न करके मौन रहे।

144. If the boatman tells to an ascetic riding the boat—"Long lived *Shraman* ! Please block or plug the hole with your hand, foot, arm, thigh, belly, head or body; or with bailing implements, cloth, clay, *kush*-grass or *kuruvind*-grass." The ascetic should not comply with this request from the boatman and silently ignore it.

१४५. से भिक्खू वा २ नावाए उत्तिंगेण उदयं आसवमाणं पेहाए, उवरूवरिं नावं कज्जलावेमाणं पेहाए, णो परं उवसंकमित्तु एवं बूया–आउसंतो गाहावइ ! एया ते नावाए उदयं उत्तिंगेण आसवइ, उवरूवरिं वा नावा कज्जलावेइ। एतप्पगारं मणं वा वायं वा णो पुरओ कट्टु विहरेज्जा। अप्पुस्सुए अबहिलेस्से एगत्तिगएणं अप्पाणं वियोसेज्ज समाहीए। तओ संजयामेव नावासंतारिमे उदए आहारियं रीएज्जा।

एयं खलु सया जइज्जासि।

–त्ति बेमि।

॥ पढमो उद्देसओ सम्मत्तो ॥

१४५. (नौका में बैठे) साधु-साध्वी नौका में छिद्र से पानी भरता हुआ देखकर नाविक के पास जाकर इस प्रकार न कहे कि "आयुष्मन् गृहपते ! तुम्हारी इस नौका में छिद्र द्वारा पानी आ रहा है, नौका जल से परिपूर्ण हो रही है।" इस प्रकार अपने मन एवं वचन को उस ओर नहीं लगाता हुआ स्थिर रहे। वह शरीर एवं उपकरणादि पर मूर्च्छा न रखे तथा अपनी लेश्या को सयमवाह्य प्रवृत्ति में न लगाये, अपनी आत्मा को एकत्वभाव में लीन रखे तथा ज्ञान-दर्शन-चारित्ररूप समाधि में स्थित रहकर अपने शरीर-उपकरण आदि से ममत्व हटा ले।

इस प्रकार नौका द्वारा पार करने योग्य जल को पार करने के बाद तीर्थंकरों द्वारा बताई गई विधि अनुसार उसका पालन करता हुआ विचरण करे।

–ऐसा मैं कहता हूँ।

145. If a *bhikshu* or *bhikshuni* riding a boat happens to see water rushing in from a hole in the boat he should not approach the boatman and say—"Long lived householder ! Water is leaking in from the hole in your boat or the boat is getting filled with water." He should not divert his mind or speech thus but remain still. He should have no attachment for his body and equipment He should not divert his energy towards activities outside his code of discipline He should focus his attention to oneness with soul, remain composed in his discipline of right knowledge-perception-conduct and abandon his fondness for body and equipment.

After crossing the water-body aboard a boat this way he should resume his wandering following the procedure laid down by *Tirthankars.*

—So I say.

विवेचन–इन सूत्रों में नौकारोहण की बताई गई विधि विशेष ध्यान देने योग्य है–

(१) जहाँ पर इतना जल हो कि पैरों से चलकर वह मार्ग पार नहीं किया जा सकता हो तो साधु जलयान मे बैठकर उस मार्ग को पार कर सकता है।

(२) ऊर्ध्वगामिनी और अधोगामिनी नौका से शास्त्रकार का क्या अभिप्राय है यह मूल सूत्र में स्पष्ट नहीं है, परन्तु आचार्य श्री आत्माराम जी म के अनुमान से ऊर्ध्वगामिनी नौका का अर्थ

जल के ऊपर आकाश में चलने वाला एक प्रकार का हवाई जहाज और अधोगामिनी का अर्थ जल के नीचे चलने वाली पनडुब्बी जैसी नौका से हो सकता है। साधु को केवल तिर्यक्गामिनी नौका अर्थात् जल पर सीधी चलने वाली नौका में बैठने की आज्ञा है।

(३) नौका में बैठा हुआ साधु नौका सम्बन्धी सभी व्यवहार से निर्लिप्त रहकर केवल अपने ज्ञान-दर्शन-चारित्र में ही विचरण करे। नौका के संचालन सम्बन्धी क्रियाओं से स्वयं को अलिप्त रखे।

(४) नौका-यात्रा के मध्य यदि किसी प्रकार की दुर्घटना होती देखे तो भिक्षु उस समय घबराये नहीं, अपने शरीर एवं उपकरणों की मूर्च्छा ममता नहीं रखे, किन्तु आहार-पानी का त्यागकर समाधिमरण के लिए तैयार रहे। आत्मा को एकत्वभाव में लीन रखता हुआ जीवन-मरण के भय से मुक्त रहे।

बृहत्कल्पसूत्र की वृत्ति तथा निशीथचूर्णि में नौकारोहण सम्बन्धी वर्णन काफी विस्तार के साथ आया है। अत· अधिक जानकारी के लिए उन ग्रन्थों को देखना चाहिए।

Elaboration—Attention should be paid to the procedure of boat ride detailed in these aphorisms—

(1) If there is a water-body on the way that is impossible to cross on foot an ascetic can cross it aboard a boat.

(2) The purpose of using the terms *urdhvagamini* (plying up) and *adhogamini* (plying down) is not clear in the text, therefore, we translate these terms as upstream and downstream However, according to Acharya Shri Atmaramji M. *urdhvagamini nauka* could mean a type of aeroplane flying over water And *adhogamini nauka* could mean a boat moving under water; something like modern submarine. An ascetic is allowed to ride only a *tiryakgamini nauka* or an ordinary boat plying across the surface of water.

(3) An ascetic riding a boat should remain apathetic to any activity on boat other than his contemplation over right knowledge-perception-conduct. He should not bother himself about any act related to navigation of the boat.

(4) If during his boat ride the ascetic witnesses any accident he should not get disturbed. He should be free of any attachment for his

body and equipment and be prepared to take resolve to abandon food and embrace meditative death. Focussing on his oneness with soul, he should be free of the fear of life and death.

In the *Vritti of Brihatkalpa sutra* and the *Churni of Nishith* one finds detailed description of boat ride. For more information refer to these.

विशेष शब्दों के अर्थ–अप्पुस्सुओ–जिसे जीने-मरने का हर्ष-शोक नहीं है। **अबहिलेस्से**–कृष्णादि तीन लेश्याएँ बाह्य हैं अथवा उपकरण मे आसक्त बाह्य लेश्या वाला है। **एगत्तिगओ**–मेरा शाश्वत आत्मा अकेला है, इस भावना से ओतप्रोत अथवा उपकरणों का त्याग करके एकीभूत रहे। **वोसज्ज**–उपकरण, शरीर आदि का व्युत्सर्ग करके बैठे।

॥ प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

Technical Terms : *Appussuo*—one who is free of the pleasure or sorrow of life and death. *Abahilesse*—one who has outer *leshyas* namely black, blue, grey or attachment for equipment. Three *leshyas* (the colour-code indicator of state of soul) including black are outer *leshyas*. *Egattigao*—my eternal soul is solitary, one should be filled with this feeling, in other words one should focus on his oneness with soul and be free of his attachment for equipment. *Vosajja*—he should sit abandoning attachment for body and equipment

॥ END OF LESSON ONE ॥

बीओ उद्देसओ	द्वितीय उद्देशक	LESSON TWO

नौकारोहण में उपसर्ग आने पर : जल-तरण

१४६. से णं परो णावागओ णावागयं वइज्जा–आउसंतो समणा ! एयं ता तुमं छत्तगं वा जाव चम्मछेयणगं वा गेण्हाहि, एयाणि ता तुमं विरूवरूवाणि सत्थजायाणि धारेहि, एयं ता तुमं दारगं वा दारिगं वा पज्जेहि। णो से तं परिण्णं परिजाणेज्जा, तुसिणीओ उवेहेज्जा।

१४६. नौकारूढ़ मुनि से नौका में बैठे हुए गृहस्थ आदि यदि कहें कि "आयुष्मान् श्रमण ! तुम हमारे छत्र, भाजन, बर्तन, दण्ड, लाठी, योगासन, नलिका, वस्त्र, यवनिका, मृगचर्म, चमड़े की थैली अथवा चर्म-छेदनक शस्त्र को तो पकडकर रखो; इन विविध प्रकार के शस्त्रों को सँभालकर रखना अथवा हमारे इन बालक या बालिकाओ को पानी पिला दो (या खिलाओ-पिलाओ)।" साधु उनके वचनों को सुनकर स्वीकार न करे, मौन धारण करके बैठा रहे।

IN FACE OF AFFLICTIONS

146. If householders or others in a boat tell to the ascetic—"Long lived *Shraman* ! Please hold our umbrella, bowl, pot, stick, staff, mattress, pipe, dress, curtain, piece of leather, leather bag or chisel and take proper care; or feed water to these children." The ascetic should not comply with this request and silently ignore it.

१४७. से णं परो णावागए णावागयं वइज्जा–आउसंतो ! एस णं समणे णावाए भंडभारिए भवइ, से णं बाहाए गहाय णावाओ उदगंसि पक्खिवेज्जा। एतप्पगारं निग्घोसं सोच्चा णिसम्म से य चीवरधारी सिया खिप्पामेव चीवराणि उव्वेढेज्ज वा णिव्वेढेज्ज वा, उप्फेसं वा करेज्जा।

१४७. (साधु का ऐसा उदासीन व्यवहार देखकर) यदि नौकारूढ़ व्यक्ति नौका पर बैठे अन्य यात्रियों से इस प्रकार कहे–"आयुष्मन् गृहस्थ ! यह श्रमण भाण्ड-पात्र की तरह नौका पर केवल भारभूत है, (न तो कुछ सुनता है, न कोई काम करता है) अतः इसकी बाँहें पकड़कर नौका से बाहर जल में फेंक दो।" इस प्रकार के वचन सुनकर यदि वह

मुनि वस्त्रधारी है तो शीघ्र ही वस्त्रों को फैलाकर अपने शरीर पर अच्छी तरह बाँधकर लपेट ले तथा कुछ वस्त्र अपने सिर के चारों ओर लपेट ले।

147. (At this display of apathy by the ascetic) If the person tells his fellow passengers—"Long lived householder ! This *Shraman* is a burden on the boat just like pots and utensils (he neither listens nor does any work). Therefore, hold him by his arms and throw him out of the boat into the water. Hearing these words, if the ascetic is clad, he should spread his clothes and wrap them well around his body; he should also wrap some clothes around his head.

१४८. अह पुणेवं जाणेज्जा–अभिंकतकूरकम्मा खलु बाला बाहाहिं गहाय णावाओ उदगंसि पक्खिवेज्जा। से पुव्वामेव वइज्जा–आउसंतो गाहावइ ! मा मेत्तो बाहाए गहाय णावाओ उदगंसि पक्खिवह, सयं चेव णं अहं णावाओ उदगंसि ओगाहिस्सामि।

से णेवं वयंतं परो सहसा बलसा बाहाहिं गहाय णावाओ उदगंसि पक्खिवेज्जा, तं णो सुमणे सिया, णो दुम्मणे सिया, णो उच्चावयं मणं णियंच्छेज्जा, णो तेसिं बालाणं घायए वहाए समुट्ठेज्जा। अप्पुस्सुए जाव समाहीए। तओ संजयामेव उदगंसि पवज्जेज्जा।

१४८. तथा वह साधु यह विचार करे कि ये अत्यन्त क्रूर कर्म करने वाले अज्ञानी लोग मुझे अवश्य ही बाँहें पकड़कर नौका से बाहर पानी में फेकना चाहते हैं, अतः फेंके जाने से पूर्व ही उन गृहस्थों को सम्बोधित करके कहे–"आयुष्मन् गृहस्थो ! आप मुझे बाँहें पकड़कर जबर्दस्ती नौका से बाहर जल में मत फेंको; मैं स्वयं ही इस नौका को छोड़कर जल में प्रवेश कर जाऊँगा।"

साधु के कहने पर कोई नाविक सहसा बलपूर्वक साधु की भुजाएँ पकड़कर उसे नौका से बाहर जल में फेंक दे तो जल मे गिरा हुआ साधु मन मे किसी प्रकार का हर्ष तथा शोक न करे, वह मन में किसी प्रकार का ऊँचा-नीचा संकल्प-विकल्प भी न लाये और न ही उन अज्ञानीजनों को मारने-पीटने के लिए उद्यत हो तथा न ही वह उनसे किसी प्रकार का प्रतिशोध लेने का विचार करे। किन्तु वह मुनि जीवन-मरण में हर्ष-शोक से रहित होकर, अपनी चित्तवृत्ति को शरीरादि बाह्य वस्तुओं के मोह से हटाकर अपने आप को आत्मैकत्वभाव में लीन करता हुआ यतनापूर्वक जल में प्रवेश कर जाये।

148. And the ascetic should think that these extremely cruel and ignorant people are certainly going to hold him by his arms

and throw in the water. Therefore even before they proceed he should tell them—"Long lived householder ! Please do not forcibly throw me out of the boat, I will leave the boat and enter the water on my own."

Even when the ascetic has said this, if someone suddenly holds him by arms and throws him into the water, the ascetic should neither be glad nor sorry, he should neither be dejected nor excited and he should not even prepare to retaliate physically. He should also not think of taking a revenge. Instead, he should become free of the pleasure or sorrow of life and death, divert his attention from body and other outer things, focus his attention to oneness with soul and enter the water with due care

१४९. से भिक्खू वा २ उदगंसि पवमाणे णो हत्थेण हत्थं, पाएण पायं, काएण कायं आसादेज्जा। से अणासादए अणासायमाणे ततो संजयामेव उदगंसि पवेज्जा।

१४९. साधु या साध्वी जल में डूबते समय (अप्काय के जीवों की घात न हो, इस दृष्टि से–) अपने एक हाथ से दूसरे हाथ का, एक पैर से दूसरे पैर का तथा शरीर के अन्य अंगोपांगों का भी परस्पर स्पर्श न करे। वह अंगों का परस्पर स्पर्श न करता हुआ यतनापूर्वक जल में बहता हुआ चला जाये।

149. While submerging in water the *bhikshu* or *bhikshuni* should not touch one of his hands with another, one of his legs with another or any part of his body with another (with the view that water-bodied being may not come to any harm). Thus without bringing different parts of his body in contact with each other he should drift away in the water with due care.

१५०. से भिक्खू वा २ उदगंसि पवमाणे णो उम्मुग्ग-णिमुग्गियं करेज्जा, मा मेयं उदयं कण्णेसु वा अच्छीसु वा णक्कंसि वा मुहंसि वा परियावज्जेज्जा ततो संजयामेव उदगंसि पवेज्जा।

१५०. साधु जल में बहते समय उन्मज्जन-निमज्जन–डुबकी लगाना और बाहर निकलने का प्रयास भी न करे। और न ही इस बात की चिन्ता करे कि यह पानी मेरे

कानों में, आँखों में, नाक में या मुँह में आ रहा है। अपितु यतनापूर्वक समभाव के साथ जल में बहता जाए।

150. While drifting in the water the ascetic should not even try to dive down or come up. He should also not worry that water is entering his ears, eyes, nose or mouth. He should continue to drift in the water with equanimity and due care.

१५१. से भिक्खू वा २ उदगंसि पवमाणे दुब्बलियं पाउणेज्जा, खिप्पामेव उवहिं विगिंचेज्ज वा विसोहेज्ज वा, णो चेव णं साइज्जेज्जा।

१५१. जल मे बहते हुए साधु या साध्वी यदि दुर्बलता का अनुभव करे तो शीघ्र ही अपनी उपधि (उपकरणों) का त्याग कर दे। वह उपधि एवं शरीरादि पर से ममत्व छोड़ दे, किसी प्रकार की आसक्ति न रखे।

151. While drifting in the water ıf the *bhıkshu* or *bhıkshunı* experiences weakness he should abandon his burden (equipment). He should have no fondness or attachment for his body and equipment.

१५२. अह पुणेवं जाणेज्जा पारए सिया उदगाओ तीरं पाउणित्तए। ततो संजयामेव उदउल्लेण वा ससणिद्धेण वा काएण दगतीरए चिट्ठेज्जा।

१५२. यदि वह यह जाने कि मैं उपधि सहित ही इस जल से पार होकर किनारे पहुँच जाऊँगा। तो किनारे पर पहुँचकर जब तक शरीर से जल टपकता रहे तथा शरीर गीला रहे, तब तक वह नदी के किनारे पर ही खड़ा रहे।

152. If he realizes that he will be able to cross the water-body even with his belongings (he should do so). Once he reaches the bank he should remain standing on the river bank as long as water drips and his body is wet.

१५३. से भिक्खू वा २ उदउल्लं वा ससणिद्धं वा कायं णो आमज्जेज्ज वा पमज्जेज्ज वा संलिहेज्ज वा णिल्लिहेज्ज वा उव्वलेज्ज वा उव्वट्टेज्ज वा आयावेज्ज वा पयावेज्ज वा।

अह पुणेवं जाणेज्जा विगतोदए मे काए छिण्णसिणेहे। तहप्पगारं कायं आमज्जेज्ज वा पमज्जेज्ज वा जाव पयावेज्ज वा। ततो संजयामेव गामाणुगामं दूइज्जेज्जा।

चित्र परिचय ७

Illustration No. 7

नौकारोहण विधि

(१) भिक्षु को ग्रामानुग्राम विहार करते समय यदि मार्ग मे कोई बड़ी नदी आ जाये जिसे नाव द्वारा पार करने के सिवाय अन्य कोई रास्ता न हो तो भिक्षु प्रथम नौका-स्वामी की स्वीकृति प्राप्त करे।

(२) फिर अपना सभी सामान कधे व पीठ पर बाँध लेवे। फिर एक पैर जल मे और एक पैर स्थल मे रखता हुआ यतनापूर्वक नौका मे चढे। (*सूत्र १३८*)

(३) नौका मे सयत होकर निर्लिप्त और निर्भीक भाव से बैठ जाये। (*सूत्र १३९*)

(४) नौका-यात्रा के मध्य यदि किसी कारणवश उसे उतरना पडे या कोई विपत्ति आ जाये तो सब उपकरण अपने शरीर से बॉधकर, जीवन-मरण की चिन्ता से मुक्त रहकर कायोत्सर्ग करके जल मे प्रवेश कर जाये। अथवा यात्रा निर्विघ्न सम्पन्न होने पर किनारे पर कुछ देर गीला शरीर व वस्त्र आदि सुखाने के लिए कायोत्सर्ग करके खडा रहे। फिर सूखी निर्दोष भूमि पर अकेला मौनभावपूर्वक आगे विहार करे।

–अध्ययन ३, सूत्र १४८-१५४

PROCEDURE OF BOARDING A BOAT

(1) While wandering from one village to another if an ascetic comes across a large river and there is no other way to cross the river but in a boat, he should first of all seek permission from the owner of the boat.

(2) After that he should tie his possessions on his shoulders and back Then he should carefully go aboard the boat putting one feet in water and the other on land. (*aphorism 138*)

(3) He should compose himself and sit in the boat without any fear or attachment (*aphorism 139*)

(4) During the boat ride if he has to abandon the boat for some reason or some disaster strikes, the ascetic should tie his possessions to his body and enter the water dissociating his mind from his body and freeing himself of any thoughts of life and death When he reaches the bank he should stand there in *kayotsarga* to dry his body and clothes Finally, he should resume his solitary wandering silently on dry and faultless land.

—Chapter 3, aphorism 148-154

१५३. वह साधु जल टपकते हुए या जल से भीगे हुए शरीर को एक बार या बार-बार हाथ से स्पर्श नहीं करे, न उसे एक या अधिक बार सहलाए, न उसे एक या अधिक बार घिसे, न उस पर मालिश करे और न ही उबटन की तरह शरीर से मैल उतारे। वह शरीर और उपधि को धूप में सुखाने का प्रयत्न भी न करे।

जब वह यह जान ले कि अब मेरा शरीर पूरी तरह सूख गया है, उस पर जल की बूँद या जल का लेप भी नहीं रहा है, तभी अपने हाथ से शरीर का स्पर्श करे, उसे सहलाए, उसे रगड़े, मर्दन करे यावत् धूप में खड़ा रहकर उसे थोड़ा या अधिक गर्म भी करे। और फिर यतनापूर्वक ग्रामानुग्राम विचरण करे।

153. The ascetic should not touch, wipe, rub, massage or knead his body with his hands, once or repeatedly, while it is still dripping or wet. He should not even try to dry his body and burden in sun.

When he finds that his body is absolutely dry, there is not even a drop or trace of water on it, only then he may touch, wipe, rub, massage or knead his body with his hands and even warm his body in sun. After that he may resume his itinerant way taking due care.

विवेचन–इन आठ सूत्रों में नौकारोहण करने के पश्चात् आने वाले संकट की तथा उससे पार होने की विधि का वर्णन है। यथा–(१) नौकारूढ़ मुनि को नाविक आदि साधु की मर्यादा विरुद्ध कार्य करने के लिए कहें; (२) मौन रहने पर वे उसे भला-बुरा कहकर पानी में फेंक देने का विचार करे, तब मुनि उन्हें साधु का आचार समझाये। इस पर वे न मानें; (३) तब मुनि धर्म-विरुद्ध कार्यों को स्वीकार न करके चुपचाप बैठा रहे; (४) जल में फेंक देने की बात कानों मे पड़ते ही मुनि अपने सारे शरीर पर वस्त्र लपेटने का प्रयास करे; (५) यदि जबर्दस्ती उसे जल में फेंक दे तो वह जल-समाधि लेकर शीघ्र ही इस कष्ट से छुटकारा पाने का न तो हर्ष करे, न ही डूबने का दुःख करे, न ही फेकने वालों के प्रति मन में दुर्भावना लाए, न किसी प्रकार का प्रतिकार या मारने-पीटने का प्रयास करे। अपितु समाधिपूर्वक जल मे प्रवेश कर जाये।

इस प्रसंग में आचार्य श्री आत्माराम जी म ने यह स्पष्ट किया है कि नदी पार करके किनारे पर आने के पश्चात् ईर्यापथिक प्रतिक्रमण करने का कोई उल्लेख आगम में नहीं है, इससे यह स्पष्ट होता है कि आगम में बताई विधि के अनुसार नदी पार करने में कोई दोष या पाप नहीं है। किन्तु आगम में बताई विधि के अनुसार प्रवृत्ति नहीं की हो तथा मन-वचन-काय में थोड़ा-बहुत* भी प्रमाद-संक्लेश-द्वेष आ गया हो तो उसकी शुद्धि के लिए प्रतिक्रमण करने की

आवश्यकता है। इसी सन्दर्भ में आचार्यश्री लिखते है—मास मे एक बार से अधिक महानदी पार करने का निषेध है। एक बार का निषेध नहीं है। *(बृहत्कल्पसूत्र, उ ४)* यह भी विधान है कि यदि कोई साध्वी जल में गिर गई हो तो साधु उसे पकडकर निकाल सकता है। *(स्थानांगसूत्र ५/२१)* आगम मे यह भी उल्लेख है कि एक समय मे समुद्र के जल में दो एवं नदी के जल में तीन जीव सिद्ध हो सकते हैं। *(उत्तरा ३६/५०-५४)*

इन उल्लेखों से स्पष्ट है कि हिंसा-अहिसा का सम्बन्ध भावों से है। विवेक, यतना तथा आगम मर्यादा के अनुसार आचरण करता हुआ साधु दोष का भागी नहीं होता। यदि उस विधि में कोई स्खलना व प्रमाद हो जाता है तो उसके लिए ईर्यापथिक प्रतिक्रमण करके शुद्धि कर लेना चाहिए। *(हिन्दी टीका, पृ १०११)*

Elaboration—In the preceding eight aphorisms procedures of overcoming afflictions while riding a boat have been detailed For example—(1) if the boatman or others ask the ascetic to go against the ascetic code, (2) and on ignoring they abuse him and plan to throw him out of the boat, then the ascetic should inform them about ascetic conduct If they do not accept this, (3) he should ignore their request and sit silently, (4) as soon as he hears the talk about throwing him into the water he should wrap his clothes around his body; (5) if they forcibly throw him into water, he should neither be glad of soon getting rid of the affliction by entering water nor sorry for drowning, he should not even have ill feelings for the offenders or desire to retaliate physically or take revenge Instead, he should enter the water with equanimity.

In this context Acharya Shri Atmaramji M. clarifies that there is no mention of any *iryapathik pratikraman* (procedure of atonement after movement on a path) in the *Agam.* Therefore there is no fault or sin involved in crossing a river according to the procedure laid down in *Agam* But if the procedure has not been followed strictly and there is even a trace of stupor, pain or anger in mind, speech and body than it becomes necessary to atone for it. Acharya Shri Atmaramji M. further states that it is prohibited to cross a river more than once in a month. It is allowed only once a month *(Brihatkalpa Sutra, Ch 4)* There is also a rule that if a female ascetic falls into a river, a male ascetic can hold

her and help coming out *(Sthananga Sutra 5/21)* There is also a mention that at one time two beings can attain the status of *Sidaha* from a sea and three from a river *(Uttaradhyayan Sutra 36/50-54).*

It is evident from these references that violence and *ahimsa* are related to feelings. The ascetic who follows the ascetic conduct with prudence, care and code laid down in *Agam* avoids faults or sin However, if there is some laxity or stupor in following the procedure he should do the necessary atonement *(iryapathik pratikraman).* *(Hindi Tika, p 1099)*

मार्ग चलते बातें

१५४. से भिक्खू वा २ गामाणुगामं दूइज्जमाणे णो परेहिं सद्धिं परिजविय २ गामाणुगामं दूइज्जेज्जा। ततो संजयामेव गामाणुगामं दूइज्जेज्जा।

१५४. ग्रामानुग्राम विहार करते हुए साधु-साध्वी गृहस्थों के साथ वार्त्तालाप करते हुए न चले। किन्तु ईर्यासमिति का यथाविधि पालन करता हुआ ग्रामानुग्राम विहार करे।

TALKING WHILE WALKING

154. An itinerant *bhikshu* or *bhikshuni* should not talk with householders while walking. He should properly follow the code of movement *(iryasamiti)* while going from one village to another.

जघाप्रमाण-जल में तरने की विधि

१५५. से भिक्खू वा २ गामाणुगामं दूइज्जेज्जा, अंतरा से जंघासंतारिमे उदगे सिया, से पुव्वामेव ससीसोवरियं कायं पाए य पमज्जेज्जा, से एगं पायं जले किच्चा एगं पायं थले किच्चा ततो संजयामेव जंघासंतारिमे उदगे अहारियं रीएज्जा।

१५५. साधु-साध्वी ग्रामानुग्राम विहार करते हुए मार्ग में जंघाप्रमाण (जंघा से पार करने योग्य) जल (जलाशय या नदी) आ जाये तो उसे पार करने के लिए वह पहले सिर से लेकर पैर तक प्रतिलेखना करे। प्रतिलेखना करके एक पैर को जल में और एक पैर को स्थल में रखकर (अर्थात् एक पैर ऊँचा उठाकर दूसरा पैर रखे) भगवान के द्वारा कथित ईर्यासमिति की विधि के अनुसार जंघा से तरणीय जल को पार करे।

PROCEDURE OF CROSSING KNEE-DEEP WATER

155. When an itinerant *bhikshu* or *bhikshuni* comes to a knee-deep water-body, in order to cross it he/she should first inspect and clean his/her body from head to toe. After that he/she should put one foot in water and the other on land and cross the shallow water-body following the procedure laid down by *Tirthankars.*

१५६. से भिक्खू वा २ जंघासंतारिमे उदगे अहारियं रीयमाणे णो हत्थेण हत्थं जाव अणासायमाणे ततो संजयामेव जंघासंतारिमे उदगे अहारियं रीएज्जा।

१५६. जंघा से तरणीय जल-प्रवाह को विधि के अनुसार पार करते हुए साधु-साध्वी हाथ से हाथ का, पैर से पैर का तथा शरीर के विविध अवयवों का परस्पर स्पर्श नहीं करे। इस प्रकार वह ईर्यासमिति की विधि के अनुसार यतनापूर्वक उस जंघातरणीय जल को पार करे।

156. While following this procedure of crossing he/she should not touch one of his/her hands with the other, one of his/her legs with the other and different parts of his/her body with each other. This way he/she should cross the shallow water-body carefully following the procedure laid down by *Tirthankars.*

१५७. से भिक्खू वा २ जंघासंतारिमे उदए अहारियं रीयमाणे णो सायवडियाए णो परिदाहपडियाए। महइमहालयंसि उदगंसि कायं विओसेज्जा। ततो संजयामेव जंघासंतारिमेव उदए अहारियं रीएज्जा।

१५७. साधु-साध्वी जंघाप्रमाण जल में विधि के अनुसार चलते हुए शारीरिक सुख-शान्ति के लिए या दाह उपशान्त करने के लिए गहरे और विस्तृत जल में प्रवेश न करे और जब उसे यह अनुभव होने लगे कि मैं उपकरणादि सहित जल से पार नहीं हो सकता हूँ तो वह उनको छोड़ दे, उसके पश्चात् वह यतनापूर्वक आगम विधि से उस जंघाप्रमाण जल को पार करे।

157. While following this procedure of crossing he/she should not enter deep or large water-body for physical pleasure or pacifying heat. If he/she feels that he/she cannot cross carrying his/her equipment he/she should abandon them. After that

he/she should cross the shallow water-body carefully following the procedure laid down by *Tirthankars.*

१५८. अह पुणेवं जाणेज्जा पारए सिया उदगाओ तीरं पाउणित्तए। ततो संजयामेव उदल्लेण वा ससणिद्धेण वा काएण दगतीरए चिट्ठेज्जा।

१५८. यदि वह जाने कि मैं उपधि सहित ही जल से पार हो सकता हूँ तो वह उपकरण सहित पार हो जाये। परन्तु किनारे पर आने के बाद जब तक उसके शरीर से पानी की बूँदें टपकती हों, जब तक उसका शरीर जरा-सा भी गीला हो तब तक वह जल के किनारे पर ही खड़ा रहे।

158. If he is confident that he can cross even carrying his equipment he may do so. Once he reaches the bank he should remain standing on the river bank as long as water drips and his body is wet.

१५९. से भिक्खू वा २ उदउल्लं वा कायं ससणिद्धं वा कायं णो आमज्जेज्ज वा पमज्जेज्ज वा।

अह पुणेवं जाणेज्जा विगतोदए मे काए छिण्णसिणेहे। तहप्पगारं कायं आमज्जेज्ज वा जाव पयावेज्ज वा। ततो संजयामेव गामाणुगामं दूइज्जेज्जा।

१५९. साधु-साध्वी जल से भीगे हुए शरीर को एक बार या बार-बार हाथ से स्पर्श न करे, वह भीगे हुए शरीर को सुखाने के लिए आतापना भी नहीं देवे।

जब वह यह जान ले कि अब मेरा शरीर पूरी तरह सूख गया है, उस पर जल की बूँद या जल का लेप नहीं रहा है, तभी अपने हाथ से उस शरीर का स्पर्श करे, तत्पश्चात् वह संयमी साधु यतनापूर्वक ग्रामानुग्राम विचरण करे।

159. The ascetic should not touch his body once or repeatedly, while it is still wet. He should not even try to dry his body in sun.

When he finds that his body is absolutely dry, there is not even a drop or trace of water on it, only then he may touch his body with his hands. After that he may resume his itinerant way taking due care.

विवेचन--जिस नदी आदि का पानी पैरों से चलकर पार किया जा सकता हो उसे आगम में 'जंघा सतारिमं'--जंघा बल से संस्तरणीय कहा है। जो पानी वक्षस्थल या पेट से ऊपर आता हो, मस्तक भी डूब जाता हो उस जल को नौका से पार करने का विधान पूर्व सूत्रों में दिया गया है।

वृत्तिकार के अनुसार 'जघा संतरणीय' का अर्थ है-घुटनों से नीचे भाग तक का पानी। क्योंकि तभी वह एक पैर ऊपर उठाकर एक पैर पानी मे रखकर चल सकता है।

नदी पार करते समय यदि उपकरण साथ मे लेकर चलना कठिन प्रतीत होता हो तो वह उपकरणो को वहीं छोड दे। सार रूप में इन सूत्रों में छह विधियाँ बताई हैं-(१) पहले अपने शरीर का प्रमार्जन करे। फिर एक पैर जल मे और एक पैर स्थल में रखकर सावधानी से चले। (२) उस समय शरीर के अंगोपांगो का परस्पर स्पर्श न करे। (३) शरीर की गर्मी शान्त करने या सुखसाता के उद्देश्य से गहरे जल में प्रवेश न करे। (४) उपकरण सहित पार करने की क्षमता न हो तो उपकरणो का त्याग कर दे, क्षमता हो तो उपकरण सहित पार कर जाय। (५) शरीर पर जब तक पानी की एक बूँद भी रहे, तब तक वह नदी के किनारे ही खडा रहे। (६) जब शरीर पर से पानी बिलकुल सूख जाये, तब ईर्यापथिम-प्रतिक्रमण करके आगे विहार करे। *(वृत्ति पत्राक ३८०)*

Elaboration—The water-body that can be crossed walking is called *'jangha santariman'* (crossed with the help of legs). The water-body that is navel deep, chin deep or head deep should be crossed in a boat following the procedure given in preceding aphorisms.

According to the commentator *(Vritti)* *'jangha santaraniya'* means knee-deep water. Because only then it can be crossed keeping one foot in water and the other on land.

If the ascetic finds it difficult to cross carrying his equipment, he should abandon the same. In brief, six procedures have been detailed in these aphorisms—(1) First he should clean his body and then walk carefully putting one foot in water and the other on land. (2) While doing so he should avoid touching parts of his body. (3) He should not enter deeper water for pleasure or pacifying heat. (4) Only if it is possible to cross with the load of equipment he may do so otherwise not (5) As long as there is even a trace of water on his body he should remain standing on the bank. (6) When the body is absolutely dry he should proceed after due atonement *(iryapathik pratikraman). (Vritti leaf 380)*

विषम-मार्गादि से गमन का निषेध

१६०. से भिक्खू वा २ गामाणुगामं दूइज्जमाणे णो मट्टियागएहिं पाएहिं हरियाणि छिंदिय २ विकुज्जिय २ विफालिय २ उम्मग्गेण हरियवहाए गच्छेज्जा 'जसेयं पाएहिं मट्टियं खिप्पामेव हरियाणि अवहरंतु'। माइट्ठाणं संफासे। णो एवं करेज्जा। से पुव्वामेव अप्पहरियं मग्गं पडिलेहेज्जा, २ ततो संजयामेव गामाणुगामं दूइज्जेज्जा।

१६०. साधु-साध्वी विहार करते हुए गीली मिट्टी एवं कीचड़ से भरे हुए पैरों से हरी घास आदि का छेदन करके तथा हरे पत्तों को एकत्रित कर मोड़-तोड़कर या दबाकर एवं मसलता हुआ मिट्टी न उतारे और न हरितकाय की हिंसा करने के लिए उन्मार्ग में गमन करे कि पैरों पर लगी हुई यह कीचड़ और गीली मिट्टी हरियाली के स्पर्श से अपने आप हट जायेगी, ऐसा करने वाला साधु मायास्थान का स्पर्श करता है। साधु को इस प्रकार नहीं करना चाहिए। किन्तु पहले ही हरियालीरहित मार्ग को देखकर उसी मार्ग से विहार करना चाहिए।

CENSURE OF TAKING A DIFFICULT PATH

160. An itinerant *bhikshu* or *bhikshuni* should not clean the slime or mud sticking to his feet by cutting or trampling or crushing green grass or leaves. Neither should he take a wrong path and harm vegetation thinking that the slime and mud sticking to his feet will be removed automatically. An ascetic doing so is resorting to deception. He should not do so. He should select in advance a path having no vegetation. After that he may resume his itinerant way taking due care.

१६१. से भिक्खू वा २ गामाणुगामं दूइज्जमाणे अंतरा से वप्पाणि वा फलिहाणि वा पागाराणि वा तोरणाणि वा अग्गलाणि वा अग्गलपासगाणि वा गड्डाओ वा दरीओ वा सइ परक्कमे संजयामेव परक्कमेज्जा, णो उज्जुयं गच्छेज्जा। केवली बूया–आयाणमेयं।

से तत्थ परक्कममाणे पयलेज्ज वा पवडेज्ज वा, से तत्थ पयलमाणे वा पवडमाणे वा रुक्खाणि वा गुच्छाणि वा गुम्माणि वा लयाओ वा वल्लीओ वा तणाणि वा गहणाणि वा हरियाणि वा अवलंबिय २ उत्तरेज्जा, जे तत्थ पाडिपहिया उवागच्छंति ते पाणी जाएज्जा, २ ततो संजयामेव अवलंबिय २ उत्तरेज्जा। ततो संजयामेव गामाणुगामं दूइज्जेज्जा।

१६१. विहार करते हुए साधु-साध्वी के मार्ग में यदि खेत की क्यारियाँ, कोट की खाइयाँ या नगर के चारों ओर नहरें हों, किले हों या नगर के मुख्य द्वार तोरण हों, अर्गलाएँ हों, अर्गलापाशक हों, गड्ढे, गुफाएँ या भूगर्भ-मार्ग हों तो अन्य मार्ग होते हुए उसी अन्य मार्ग से गमन करना चाहिए लेकिन ऐसे सीधे किन्तु विषम मार्ग से गमन न करे। केवली भगवान ने कहा है–ऐसा मार्ग दोषयुक्त होने से कर्मबन्ध का कारण है।

क्योंकि ऐसे विषम मार्ग से जाने से साधु-साध्वी का पाँव फिसल सकता है वह साधु गिर सकता है। फिसलने या गिर पडने से शरीर के किसी अंग-उपांग को चोट आ सकती है, वहाँ जो भी वृक्ष, गुच्छ (पत्तों का समूह या फलों का गुच्छा), झाड़ियाँ, लताएँ, बेलें, तृण अथवा गहन–(वृक्षों के कोटर या वृक्षलताओं के झुण्ड) आदि होते हैं उनका तथा हरितकाय का सहारा ले-लेकर चले या उतरे अथवा वहाँ पर जो पथिक आ रहे हों, उनका हाथ (हाथ का सहारा) माँगकर उनके हाथ का सहारा मिलने पर उसे पकड़कर चलना पड़ सकता है। इन सब दोषों के कारण साधु ऐसे मार्ग को छोड़कर अन्य निर्दोष मार्ग से गमन करे।

161. An itinerant *bhikshu* or *bhikshuni* should find if there are furrows, moats, canals, forts, city-gates, bolts, bolt-holes, ditches, caves or subterranean path. If it is so he should not take such direct but difficult path when an alternative path is available. The omniscient has said that such faulty path is cause of bondage of *karmas*.

This is because while walking on such path *bhikshu* or *bhikshuni* may slip or stumble and fall. On stumbling he may hurt some part of his body He may have to hold to or lean on trees, bunch of leaves, bushes, creepers, grass or hollow of tree to help him move. He may have to seek and hold hands of travellers passing that way to help him move. For these reasons an ascetic should select alternative and safe path.

१६२. से भिक्खू वा २ गामाणुगामं दूइज्जमाणे अंतरा से जवसाणि वा सगडाणि वा रहाणि वा सचक्काणि वा परचक्काणि वा सेणं वा विरूवरूवं संणिरुद्धं पेहाए सइ परक्कमे संजयामेव णो उज्जुयं गच्छेज्जा।

१६२. साधु-साध्वी विहार करते हुए जाने, मार्ग में यदि जौ, गेहूँ आदि धान्यों के ढेर हों, बैलगाड़ियाँ या रथ पड़े हों, स्वदेश-शासक या परदेश-शासक की सेना के नाना प्रकार के पड़ाव पड़े हों, तो उन्हें देखकर यदि कोई दूसरा (निरापद) मार्ग हो तो उसी मार्ग से यतनापूर्वक जाए, किन्तु उस सीधे दोषयुक्त मार्ग से न जाये।

162. An itinerant *bhikshu* or *bhikshuni* should find if there are heaps of grains such as barley and wheat, bullock-carts or chariots or variety of camps of friendly or hostile armies. If it is so he should not take such direct but difficult path when an alternative path is available.

१६३. से णं से परो सेणागओ वइज्जा आउसंतो ! एस णं समणे सेणाए अभिचारियं करेइ, से णं बाहाए गहाय आगसह। से णं परो बाहाहिं गहाय आगसेज्जा, तं णो सुमणे सिया जाव समाहीए। ततो संजयामेव गामाणुगामं दूइज्जेज्जा।

१६३. क्योंकि सेना के पड़ाव वाले मार्ग से जाने पर सम्भव है, साधु को देखकर कोई सैनिक किसी दूसरे सैनिक से कहे-"आयुष्मन् ! यह श्रमण हमारी सेना का गुप्त भेद ले रहा है, अतः इसकी बाहें पकड़कर खींचो अथवा उसे घसीटो।" तब वह सैनिक साधु को बाहें पकड़कर खींचने या घसीटने लगे, उस समय साधु अपने मन में न प्रसन्न हो न ही रुष्ट; बल्कि समभाव एवं समाधिपूर्वक कष्ट सह लेना चाहिए और यतनापूर्वक विचरण करते रहना चाहिए।

163. This is because it is possible that on seeing an ascetic one soldier may tell to another—"Long lived one ! This *Shraman* is spying upon our army. Hold him by his arms and drag him here." In case it so happens that he is held by arms and dragged, the ascetic should neither be happy nor dejected. He should tolerate the affliction with equanimity and resume his itinerant way taking due care.

१६४. से भिक्खू वा २ गामाणुगामं दूइज्जमाणे, अंतरा से पाडिवहिया उवागच्छेज्जा, ते णं पाडिवहिया एवं वएज्जा-आउसंतो समणा ! केवइए एस गामे वा जाव रायहाणी वा, केवइया एत्थ आसा, हत्थी, गामपिंडोलगा, मणुस्सा परिवसंति ? से बहुभत्ते बहुउदए बहुजणे बहुजवसे ? से अप्पभत्ते अप्पुदए अप्पजणे अप्पजवसे ? एयप्पगाराणि पसिणाणि पुट्ठो णो आइक्खेज्जा, एयप्पगाराणि पसिणाणि णो पुच्छेज्जा।

एयं खलु तस्स भिक्खुस्स वा भिक्खुणीए वा सामग्गियं जं सव्वट्ठेहिं।

–त्ति बेमि।

॥ बीओ उद्देसओ सम्मत्तो ॥

१६४. साधु या साध्वी को विहार करते हुए मार्ग में सामने से पथिक आते हुए मिलें और वे साधु से पूछें कि "आयुष्मन् श्रमण! यह गाँव कितना बड़ा या कैसा है? यावत् यह राजधानी कैसी है? यहाँ पर कितने घोडे, हाथी तथा भिखारी हैं तथा कितने मनुष्य निवास करते हैं? क्या इस गाँव में यावत् राजधानी में आहार, पानी, मनुष्य एवं धान्य विपुल मात्रा में है या अल्प ही है?" इस तरह के प्रश्न पूछे जाने पर साधु उनका उत्तर न दे तथा उन प्रातिपथिकों से भी इस प्रकार की बातें न करे। अपितु मौन भावपूर्वक विहार करता रहे।

यही उस भिक्षु या भिक्षुणी की साधुता की सर्वांगपूर्णता है।

–ऐसा मैं कहता हूँ।

164. If an itinerant *bhikshu* or *bhikshuni* is approached by travellers on the way and asked—"Long lived *Shraman* ! How large and of what type is this village or city ? How many horses, elephants and beggars are there and what is its population ? Is there plenty of food, water, people and grains in this village or city ? Is there scarce food, water, people and grains in this village or city ?" When asked such questions the ascetic should neither answer such questions nor otherwise talk with those travellers on such topics. Instead he should continue his wandering silently.

This is the totality (of conduct including that related to knowledge) for that *bhikshu* or *bhikshuni*.

—So I say.

विवेचन–इन सूत्रों में साधु के विहार में आने वाले विषम मार्ग से सावधान करने के लिए सूचनाएँ दी गई हैं। यदि अन्य निरापद मार्ग मिल जाये तो वैसे संकटास्पद मार्ग से जाने का निषेध भी किया है। सूत्र १६१ में वृत्तिकार ने इस प्रकार का विकल्प भी दिया है कि यदि किसी कारणवश ऐसे विषम मार्ग से जाना पडे और ऊबड़-खाबड मार्ग में पाँव फिसलता हो तो स्थविरकल्पी श्रमण वृक्ष, लता आदि का सहारा लेकर मार्ग पार कर सकता है तथा जिनकल्पी मुनि सामने आते पथिक

के हाथ का सहारा माँगकर उसके सहारे पथ पार कर सकते हैं। जैसा कि कहा है–"**जिणकप्पितो पाडिपहिय हत्थं जाइत्तु उत्तरति, थेरा रुक्खादीणि वा।**" (चूर्णि.) किन्तु आचार्य श्री आत्माराम जी म. ने ऐसे दोषयुक्त मार्ग से जाने का स्पष्ट निषेध मानते हुए वनस्पति का सहारा तथा पथिक के हाथ का सहारा नहीं लेने की विधि मान्य की है। *(हिन्दी टीका, पृ. ११०८)*

Elaboration—These aphorisms contain information to warn an ascetic about difficult path during his wanderings. If he can find an alternative and safe path he is advised not to proceed on the difficult path The commentator *(Vritti)* has interpreted aphorism 161 giving alternatives that if it becomes inevitable to take a difficult path and an ascetic stumbles he may hold a tree or a creeper to help him cross the path if he is a *sthavir-kalpi* In case he is a *Jinakalpi* ascetic he may seek help from a passing traveller and hold his hand to cross over But Acharya Shri Atmaramji M. maintains that taking such difficult path is clearly proscribed and ascetics are not allowed to take any help whatsoever *(Hindia Tika, p. 1108)*

विशेष शब्दों का अर्थ–**वप्पाणि**–उन्नत भू-भाग या खेत की क्यारियाँ। **फलिहाणि**–खाइयाँ या नगर के चारो ओर बनी हुई नहरें। **पागाराणि**–दुर्ग या किले। **तोरणाणि**–नगर के मुख्य द्वार। **दरीओ**–गुफाएँ या भू-गर्भ मार्ग। **गुच्छाणि**–पत्तों का समूह या फलों के गुच्छे। **गुम्माणि**–झाड़ियाँ। **गहणाणि**–वृक्ष-लताओं के झुण्ड या वृक्षों के कोटर। **पाडिपहिया**–सामने से आने वाले पथिक। **अभिचारियं**–गुप्तचर का कार्य, जासूसी। **आगसह**–खींचो या घसीटो। *(–पाइय सद्द महण्णवो)*

॥ द्वितीय उद्देशक समाप्त ॥

Technical Terms : *Vappani*—raised land or furrows in a farm. *Falihani*—moats or canals dug around a city. *Pagarani*—forts. *Toranani*—city gates. *Dario*—caves or subterranean paths. *Guchhani*—bunch of flowers or fruits. *Gummani*—bushes. *Gahanani*—dense thickets or hollow of tree. *Padipahiya*—a passerby approaching from the front *Abhichariyam*—the act of spying. *Agasaha*—pull or drag. *(Paia Sadda Mahannavo)*

॥ END OF LESSON TWO ॥

तइओ उद्देसओ	तृतीय उद्देशक	LESSON THREE

मार्ग में वप्र आदि अवलोकन का निषेध

१६५. से भिक्खू वा २ गामाणुगामं दूइज्जमाणे अंतरा से वप्पाणि वा फलिहाणि वा जाव दरीओ वा कूडागाराणि वा पासायाणि वा नूमगिहाणि वा रुक्खगिहाणि वा पव्वयगिहाणि वा रुक्खं वा चेइयकडं थूभं वा चेइयकडं आएसणाणि वा जाव भवणगिहाणि वा णो बाहाओ पगिज्झिय २ अंगुलियाए उद्दिसिय २ ओणमिय २ उण्णमिय २ णिज्झाएज्जा। तओ संजयामेव गामाणुगामं दूइज्जेज्जा।

१६५. भिक्षु या भिक्षुणी विहार करते हुए मार्ग में–खेत के क्यारे, गड्ढे, गुफाएँ या भू-गर्भ तथा कूटागार (पर्वत पर बने घर), प्रासाद, भूमिगृह, वृक्षों को काट-छाँटकर बनाए हुए गृह, पर्वतीय गुफा, वृक्ष के नीचे बना हुआ व्यन्तरादि चैत्य-स्थल, चैत्यमय स्तूप, लोहकार आदि की शाला, आयतन–देवालय एवं भवनगृह आयें तो इनको अपनी बाँहें ऊपर उठाकर, अँगुलियों से निर्देश करके, शरीर को ऊँचा-नीचा करके ताक-ताककर न देखे, किन्तु यतनापूर्वक अपने विहार में प्रवृत्त रहे।

CENSURE OF LOOKING AROUND

165. While walking on the way if a *bhikshu* or *bhikshuni* comes across furrows in a farm, ditches, caves, subterranean or mountain dwellings, mansions, cellars, tree-houses, cavern, temple under a tree, stupa like temple, smithy or other workshops, temple and other abodes, he should not look upon or peep at them raising his arms, pointing with fingers or bowing up and down. Instead he should continue his itinerant way taking due care.

१६६. से भिक्खू वा २ गामाणुगामं दूइज्जमाणे अंतरा से कच्छाणि वा दवियाणि वा णूमाणि वा वलयाणि वा गहणाणि वा गहणविदुग्गाणि वा वणाणि वा वणविदुग्गाणि वा पव्वयाणि वा पव्वयविदुग्गाणि वा अगडाणि वा तलागाणि वा दहाणि वा णदीओ वा वावीओ वा पोक्खरणीओ वा दीहियाओ वा गुंजालियाओ वा सराणि वा सरपंतियाणि वा; सरसरपंतियाणि वा णो बाहाओ पगिज्झिय २ जाव णिज्झाएज्जा। केवली बूया–आयाणमेयं।

जे तत्थ मिगा वा पक्खी वा सरीसिवा वा सीहा वा जलचरा वा थलचरा वा खचरा वा सत्ता ते उत्तसेज्ज वा, वित्तसेज्ज वा, वाडं वा सरणं वा कंखेज्जा, वारे ति मे अयं समणे।

अह भिक्खूणं पुव्वोवदिट्ठा ४ जं णो बाहाओ पगिज्झिय २ जाव णिज्झाएज्जा। तओ संजयामेव आयरिय-उवज्झाएहिं सद्धिं गामाणुगामं दूइज्जेज्जा।

१६६. साधु-साध्वियों के मार्ग में विहार करते हुए यदि कच्छ (–नदी के निकटवर्ती नीचे प्रदेश जहाँ खरबूजे आदि के खेत हों) घास संग्रह करने के लिए छोड़ी गई राजकीय भूमि, भूमिगृह, नदी आदि से वेष्टित भूभाग, निर्जल प्रदेश का अरण्य, गहन दुर्गम वन, गहन दुर्गम पर्वत, पर्वत पर भी दुर्गम स्थान, कूप, तालाब, द्रह (झीलें), नदियाँ, बावड़ियाँ, पुष्करिणियाँ, दीर्घिकाएँ (लम्बी बावड़ियाँ), गहरे और टेढ़े-मेढ़े जलाशय, बिना खोदे तालाब, सरोवर, सरोवर की पंक्तियाँ और बहुत-से मिले हुए तालाब हों तो इनको भी अपनी भुजाएँ ऊँची उठाकर, अँगुलियों से संकेत करके तथा शरीर को ऊँचा-नीचा करके ताक-ताककर न देखे। केवली भगवान ने यह कर्मबन्ध का कारण बताया है।

(क्योंकि) ऐसा करने से जो इन स्थानों में मृग, पशु, पक्षी, साँप, सिंह, जलचर, स्थलचर, खेचर, जीव रहते हैं, वे साधु की इन चेष्टाओं को देखकर त्रास पायेंगे, किसी बाड़ आदि की शरण में छुप जाना चाहेंगे। वहाँ रहने वालों को साधु के विषय में शंका होगी कि यह साधु हमें हटा रहा है, इसलिए तीर्थंकरादि ज्ञानियों ने भिक्षुओं के लिए पहले ही उपदेश दिया है कि बाँहें ऊँची उठाकर यावत् शरीर को ऊँचा-नीचा करके साधु न देखे। अपितु आचार्य और उपाध्याय के साथ ग्रामानुग्राम विहार करता हुआ संयम का पालन करे।

166. While walking on the way if a *bhikshu* or *bhikshuni* comes across furrows near a river, barns, houses, river islands, arid forest, dense forest, difficult mountains, formidable heights on mountains, well, pond, lake, rivers, pools, streams, long pools, deep and oblong water tanks and other types of water-bodies, he should not look or peep at them raising his arms, pointing with fingers or bowing up and down. The omniscient has said that that is a cause of bondage of *karmas*.

This is because by doing so various beings, such as deer, animals, birds, snakes, lions and other reptiles, animals and

birds dwelling there will be disturbed and would seek hiding places. Also, others living there will become apprehensive that this ascetic is trying to displace them. Therefore *Tirthankars* and other sages have said that an ascetic should not look around raising his hands (as mentioned). Instead, in the company of *acharya* and *upadhyaya,* he should continue his itinerant way taking due care.

विवेचन–इन दो सूत्रों में साधु की विहारचर्या में संयम के विषय में निर्देश किया गया है। साधु-जीवन में प्रत्येक प्रवृत्ति के पीछे प्रेक्षा-संयम, इन्द्रिय-सयम एवं अंगोपांग-संयम की बात को बराबर दुहराया गया है। साधु को विहार करते समय अपनी आँखों पर, अँगुलियों पर, हाथ-पैरों पर एवं सारे शरीर पर संयम रखने की प्रेरणा दी है, साधु का ध्यान केवल अपने विहार या मार्ग की ओर होना चाहिए। वृत्तिकार कहते हैं–चक्षु आदि के असंयम से साधु के सम्बन्ध में वहाँ के निवासी लोगों को शंका-कुशंका पैदा हो सकती है कि यह चोर है, गुप्तचर है। यह साधु-वेश में अजितेन्द्रिय है। इसके अतिरिक्त वहाँ रहने वाले पशु-पक्षी डरेंगे, अनेक त्रस्त होकर इधर-उधर भागेंगे, शरण ढूँढ़ेंगे। भागते हुए पशु-पक्षियों को कोई शिकारी पकड़कर मार भी सकता है।

Elaboration—These two aphorisms contain instructions about discipline during wanderings. With every activity of ascetic life, emphasis has been given to disciplines of mind, senses and body. Ascetics have been advised to exercise complete control over their eyes, fingers, limbs and other parts of the body while wandering. His attention should be focussed on his wandering or the path The commentator *(Vritti)* says—Indiscipline of eyes and other parts of the body may give rise to doubts in the minds of the local people that this is a thief or a spy or an impostor Besides this, animals and other creatures living there will be disturbed and run for another shelter. During this displacement they might be trapped or killed by hunters.

विशेष शब्दों के अर्थ–**कूडागाराणि**–रहस्यमय गुप्त स्थान अथवा पर्वत के कूट (शिखर) पर बने हुए गृह। **दवियाणि**–अटवी में घास के संग्रह के लिए बने हुए मकान। **णूमाणि**–भूमिगृह। **वणयाणि**–नदी आदि से वेष्टित भूभाग। **गहणाणि**–निर्जल प्रदेश, रन। **गहणविदुग्गाणि**–रन में सेना के छिपने के स्थान के कारण दुर्गम। **वणविदुग्गाणि**–नाना जाति के वृक्षों के कारण दुर्गम स्थल। **पव्वयदुग्गाणि**–अनेक पर्वतों के कारण दुर्गम प्रदेश। **गुंजालियाओ**–लम्बी, गम्भीर तथा टेढ़ी-मेढ़ी जल की वापिकाएँ।

Technical Terms : *Kudagarani*—a se place or dwellings made on hilltop. *Daviyani*—barns made for sto ..g grass. *Numani*—cellars. *Vanayani*—an area surrounded by river; river island. *Gahanani*—arid area. *Gahanaviduggani*—desolate areas in desert used as hiding place for armies. *Vanaviduggani*—an area made difficult by dense growth of trees. *Pavvayaduggani* ...fficult hilly terrain. *Gunjaliyao*—long, deep and curving water ways.

आचार्यादि के साथ विहार में विनय-विधि

१६७. से भिक्खू वा २ आयरिय-उवज्झाएहिं सद्धिं गामाणुगामं दूइज्जमाणे णो आयरिय-उवज्झायस्स हत्थेण हत्थं जाव अणासायमाणे तओ संजयामेव आयरिय-उवज्झाएहिं सद्धिं जाव दूइज्जेज्जा।

१६७. आचार्य और उपाध्याय के साथ विहार करते हुए साधु-साध्वी उनके हाथ का, पैर से पैर का तथा अपने शरीर से उनके शरीर का स्पर्श न करे। उनकी आशातना न करता हुआ ईर्यासमितिपूर्वक उनके साथ विहार करे।

CODE OF MODESTY WITH SENIORS

167. While wandering with *acharya* (leader of a group of ascetics) and *upadhyaya* (senior ascetic responsible for teaching texts) a *bhikshu* or *bhikshuni* should not touch their hands with his hands, legs with his legs and bodies with his body. Taking care to avoid insulting them he should walk with them observing the discipline of movement *(iryasamiti)*.

१६८. से भिक्खू वा २ आयरिय-उवज्झाएहिं सद्धिं दूइज्जमाणे अंतरा से पाडिवहिया उवागच्छेज्जा, ते णं पाडिवहिया एवं वएज्जा–आउसंतो समणा ! के तुब्भे, कओ वा एह, कहिं वा गच्छिहिह ?

जे तत्थ आयरिए वा उवज्झाए वा से भासेज्ज वा वियागरेज्ज वा आयरिय-उवज्झायस्स भासमाणस्स वा वियागरेमाणस्स वा णो अंतरा भासं करेज्जा, ततो संजयामेव आहाराइणियाए दूइज्जेज्जा।

१६८. आचार्य और उपाध्याय के साथ विहार करते हुए साधु को मार्ग में यदि आते हुए पथिक मिलें और वे पूछें कि "आयुष्मन् श्रमण ! आप कौन हैं, कहाँ से आये हैं और कहाँ जायेंगे ?"

तब जो आचार्य या उपाध्याय साथ में हैं, वे उन्हें सामान्य या विशेष रूप से उत्तर देंगे। आचार्य या उपाध्याय उनके प्रश्नों का उत्तर दे रहे हों, तब वह साधु उनके बीच में न बोले। किन्तु ईर्यासमिति का ध्यान रखता हुआ रत्नाधिक क्रम-दीक्षा से छोटे-बड़े के क्रमानुसार रत्नाधिकों के साथ विचरण करे।

168. While wandering with *acharya* and *upadhyaya,* when a *bhikshu* or *bhikshuni* is approached by a traveller and asked—"Long lived *Shraman* ! Who are you, where from do you come and where will you go ?"

Then the accompanying *acharya* and *upadhyaya* will provide a general or specific answer. When they are doing so, the ascetic should not intervene. Instead he should walk with them observing the discipline of movement as well as protocol of seniority (based on seniority of initiation).

विहार-विधि

१६९. से भिक्खू वा २ आहाराइणियं गामाणुगामं दूइज्जमाणे णो राइणियस्स हत्थेण हत्थं जाव अणासायमाणे। ततो संजयामेव आहाराइणियं गामाणुगामं दूइज्जेज्जा।

१६९. यदि कभी रत्नाधिक साधुओं के साथ ग्रामानुग्राम विहार करता हुआ मुनि अपने हाथ से रत्नाधिक साधु के हाथ को, शरीर से उनके शरीर का स्पर्श न करे। उनकी आशातना न करता हुआ साधु रत्नाधिकों के क्रमपूर्वक उनके साथ विहार करे।

PROCEDURE OF WANDERING

169. While wandering with senior ascetics a *bhikshu* or *bhikshuni* should not touch their hands with his hands, legs with his legs and body with his body. Taking care to avoid insulting them he should wander with them observing the discipline of movement as well as protocol.

१७०. से भिक्खू वा २ आहाराइणियं दूइज्जमाणे अंतरा से पाडिवहिया उवागच्छेज्जा, तेणं पाडिवहिया एवं वइज्जा-आउसंतो समणा ! के तुब्भे ?

जे तत्थ सव्वराइणिए से भासेज्ज वा वियागरेज्ज वा। राइणियस्स भासमाणस्स वा वियागरेमाणस्स वा णो अंतरा भासं भासेज्जा। ततो संजयामेव अहाराइणियाए गामाणुगामं दूइज्जेज्जा।

१७०. रत्नाधिक साधुओं [illegible] ार करने वाले साधु को मार्ग में आते हुए यदि कुछ पथिक मिलें और वे [illegible] आयुष्मन् श्रमण ! आप कौन हैं, कहाँ से आये हैं और कहाँ जायेंगे ?"

तब जो उन साधुओं में सबसे बड़े साधु हैं, वे उनको उत्तर देंगे। जब रत्नाधिक उत्तर देते हों, तब अन्य साधु बीच में न बोले। किन्तु रत्नाधिक का ध्यान रखता हुआ उनके साथ विहार करे।

170. While wandering with senior ascetics, when a *bhikshu* or *bhikshuni* is approached by a traveller and asked—"Long lived *Shraman* ! Who are you, where from do you come and where will you go ?"

Then the senior most ascetic will provide the answer. When they are doing so, the ascetic should not intervene. Instead he should walk with them observing the discipline of movement as well as protocol.

हिंसाजनक प्रश्नों में मौन एवं भाषा-विवेक

१७१. से भिक्खू वा २ दूइज्जमाणे अंतरा से पाडिपहिया उवागच्छेज्जा, ते णं पाडिपहिया एवं वएज्जा—आउसंतो समणा ! अवियाइं एत्तो पडिपहे पासह मणुस्सं वा गोणं वा महिसं वा पसुं वा पक्खिं वा सरीसवं वा जलयरं वा, से त्तं मे आइक्खह, दंसेह। तं णो आइक्खेज्जा, णो दंसेज्जा। णो तस्स तं परिजाणेज्जा, तुसिणीए उवेहेज्जा। जाणं वा णो जाणं ति वदेज्जा। ततो संजयामेव गामाणुगामं दूइज्जेज्जा।

१७१. ग्रामानुग्राम विहार करते समय संयमी साधु-साध्वी के मार्ग में कुछ पथिक आ जाएँ और वे यों पूछें—"आयुष्मन् श्रमण ! क्या आपने इस मार्ग में किसी मनुष्य को, मृग को, भैंसे को, पशु या पक्षी को, सर्प को या किसी जलचर जीव को जाते हुए देखा है? यदि देखा हो तो हमें बतलाओ कि वे किस ओर गये हैं, हमें दिखाओ।" तब साधु न तो उन्हें कुछ बतलाए न ही उनकी बात को स्वीकार करे, अपितु उपेक्षापूर्वक मौन रहे। अथवा जानता हुआ भी यह न कहे कि मैं नहीं जानता। फिर यतनापूर्वक विहार करे।

IGNORE QUESTIONS LEADING TO VIOLENCE

171. While wandering from one village to another, when a *bhikshu* or *bhikshuni* is approached by a traveller and asked—"Long lived *Shraman* ! Have you seen some man, deer, buffalo, other animal, bird, snake or other reptile moving on this path ? If yes, please tell us where it has gone. Please show us." At this the ascetic should neither tell them anything nor respond to their request. Instead he should ignore them silently. Even if he knows he should not say so but resume his wandering with due care.

१७२. से भिक्खू वा २ गामाणुगामं दूइज्जमाणे अंतरा से पाडिपहिया उवागच्छेज्जा ते णं पाडिपहिया एवं वएज्जा–आउसंतो समणा ! अवियाइं इत्तो पडिपहे पासह उदगपसूयाणि कंदाणि वा मूलाणि वा तयाणि वा पत्ताणि वा पुप्फाणि वा फलाणि वा बीयाणि वा हरियाणि वा उदगं वा संणिहियं अगणिं वा संणिक्खित्तं, से आइक्खह जाव दूइज्जेज्जा।

१७२. ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए साधु-साध्वी को मार्ग में आते हुए कुछ पथिक मिल जायें और वे इस प्रकार पूछें–"आयुष्मन् श्रमण ! क्या आपने इस मार्ग में जल में पैदा होने वाले कन्द या मूल अथवा छाल, पत्ते, फूल, फल, बीज, हरित अथवा संग्रह किया हुआ पेय-जल या निकटवर्ती जल का स्थान अथवा अप्रज्वलित रखी हुई अग्नि देखी है? अगर देखी हो तो हमें बताओ, दिखाओ, कहाँ है?" इसके उत्तर में साधु उन्हें कुछ न दिखाए, अपितु मौन रहे। यतनापूर्वक विहार करता रहे।

172. While wandering from one village to another, when a *bhikshu* or *bhikshuni* is approached by a traveller and asked—"Long lived *Shraman* ! Have you seen aquatic bulbous roots, stalks or bark, leaves, flowers, fruits, seeds, other plants, stored drinking water, other nearby source of water or non-kindled fire on the path ? If yes, please tell us and show where it is." At this the ascetic should not show them anything but remain silent. He should resume his wandering with due care.

१७३. से भिक्खू वा गामाणुगामं दूइज्जमाणा, अंतरा से पाडिपहिया उवागच्छेज्जा, ते णं पाडिपहिया एवं वइज्जा–आउसंतो समणा ! अवियाइं एत्तो पडिपहे पासह जवसाणि वा जाव से णं वा विरूवरूवं संणिविट्ठं, से आइक्खह जाव दूइज्जेज्जा।

१७३. विहार करते हुए साधु-साध्वी को मार्ग में आते हुए पथिक आकर पूछे कि "आयुष्मन् श्रमण ! क्या आपने इस मार्ग में जौ, गेहूँ आदि धान्यों का ढेर, शासकों के सैन्य के पड़ाव आदि देखे हैं? देखे हों तो हमें बताओ।" इस पर साधु मौन धारण करके रहे यावत् ग्रामानुग्राम विहार करता रहे।

173. While wandering from one village to another, when a *bhikshu* or *bhikshuni* is approached by a traveller and asked—"Long lived *Shraman* ! Have you seen heaps of wheat, barley and other grains and army camps etc. on this path ? If yes, please tell us." At this the ascetic should ignore them silently and resume his wandering with due care.

१७४. से भिक्खू वा २ गामाणुगामं दूइज्जमाणे अंतरा से पाडिपहिया जाव आउसंतो समणा ! केवतिए एत्तो गामे वा जाव रायहाणिं ? से आइक्खह जाव दूइज्जेज्जा।

१७४. विहार करते हुए साधु-साध्वी को प्रातिपथिक मिल जायें और वे पूछें कि "यह गॉव कैसा है या कितना बड़ा है यावत् राजधानी कैसी है ?" आदि प्रश्न पूछें तो उनकी बात का उत्तर न दे। मौन धारण करके रहे। संयमपूर्वक ग्रामानुग्राम विहार करे।

174. While wandering from one village to another, when a *bhikshu* or *bhikshuni* is approached by a traveller and asked—"Long lived *Shraman* ! How large and what type of village or city is this ?" Or other such questions. At this the ascetic should ignore them silently and resume his wandering.

१७५. से भिक्खू वा २ गामाणुगामं दूइज्जेज्जा अंतरा से पाडिपहिया जाव आउसंतो समणा ! केवइए एत्तो गामस्स वा नगरस्स वा जाव रायहाणीए वा मग्गे ? से आइक्खह तहेव जाव दूइज्जेज्जा।

१७५. विचरण करते साधु-साध्वी को मार्ग में आते हुए कुछ पथिक मिल जायें और वे पूछें–"आयुष्मन् श्रमण ! यहाँ से ग्राम यावत् राजधानी कितनी दूर है तथा यहाँ से ग्राम

यावत् राजधानी का मार्ग अब कितना शेष रहा है?" साधु इन प्रश्नों के उत्तर में भी मौन धारण करके रहे।

175. While wandering from one village to another, when a *bhikshu* or *bhikshuni* is approached by a traveller and asked—"Long lived *Shraman* ! How far is the village or city from this place ? or how much distance remains to be covered to reach the village or city ?" At this the ascetic should ignore them silently and resume his wandering.

विवेचन—सूत्र १७१-१७२ इन दो सूत्रों में मार्ग में मिलने वाले प्रातिपथिकों (यात्रियों) द्वारा पशु-पक्षियों और वनस्पति, जल एवं अग्नि के विषय में पूछे गए प्रश्नों का उत्तर देने का निषेध किया गया है। क्योंकि बहुत सम्भव है कि मनुष्य एवं पशु-पक्षी आदि के विषय में प्रश्न करने वाला या तो शिकारी हो या वधिक, बहेलिया, कसाई या लुटेरा आदि में से कोई हो सकता है। साधु द्वारा बताने पर वह उसी दिशा में जाकर उस जीव को पकड सकता है या उसकी हत्या कर सकता है; और इस हत्या में अहिंसा–महाव्रती साधु निमित्त बन सकता है। दूसरे सूत्रो में ऐसे असंयमी, भूखे-प्यासे, शीत-पीड़ित, लोगों द्वारा पूछे जाने वाले प्रश्न हैं, जो साधु के बता देने पर उन जीवों की विराधना व आरम्भ-समारम्भ कर सकते हैं। अत. दोनों प्रकार के प्रश्नों में ऐसा न कहे कि मैं जानता हूँ–"जाणं वा नो जाणं ति वएज्जा।" किन्तु जानता हुआ भी मौन धारण करके रहे। ऐसी स्थिति में जिनकल्पिक मुनि तो मौन रहकर अपने प्राणों को न्यौछावर करने में तनिक भी नहीं हिचकते, लेकिन स्थविरकल्पी मुनि के सम्बन्ध में दो विचारधाराएँ विकल्प रूप में प्रचलित हैं।

पहली यह कि साधु को ऐसी भाषा का प्रयोग नहीं करना चाहिए जिससे अनेक प्राणियों की हिंसा होती हो और साथ ही सत्य महाव्रत धारक साधु को किसी भी परिस्थिति में असत्य भाषण नहीं करना चाहिए। अतः जानता हुआ भी वह ऐसा नहीं कहे कि "मैं जानता हूँ।" ऐसा मौन धारण करने पर ही सम्भव है। इस मत का समर्थन आचार्य श्री आत्माराम जी म. करते हैं तथा इसके पक्ष में उन्होंने उपाध्याय श्री पार्श्वचन्द्र जी म. कृत बालावबोध को उद्धृत किया है।

दूसरा पक्ष है वृत्तिकार का। उन्होंने जीवदया की भावना को अधिक महत्त्व देते हुए कहा है–"यदि ऐसी विकट परिस्थिति हो तो साधु जानता हुआ भी यह कहे कि "मैं नहीं जानता।" स्व. आचार्य श्री जवाहरलाल जी म ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सद्धर्म मण्डन' में वृत्तिकार के कथन का समर्थन किया है कि यहाँ साधु की भावना असत्य बोलने की नहीं है अपितु जीवों की रक्षा करने की है।

आचार्य श्री आत्माराम जी म. स्पष्ट रूप में लिखते हैं–"जानते हुए यह भी नहीं कहना चाहिए कि मैं जानता हूँ और झूठ भी नहीं बोलना चाहिए अतः मौन ही रहना चाहिए।" *(हिन्दी टीका, पृ. ११२८)*

Elaboration—In aphorisms 171 and 172 it is advised that ascetics should not reply to any questions regarding animals and birds or plants, water and fire. This is because in all probabilities the person who is asking such questions is a hunter, butcher, bird-catcher or bandit. If the ascetic provides him information he may go in that direction, he may trap or kill the being. In such violent act the ascetic, who observes the great vow of *ahimsa,* also becomes instrumental. In the other aphorisms are questions generally asked by people who are indisciplined, hungry or oppressed by cold. They may also cause harm or destruction of beings. Therefore to both type of questions he should not say that he knows the answer. He should remain silent irrespective of being aware or not aware of the information sought. In such predicament a *Jinakalpi* ascetic remains silent even at the cost of his life. However, in case of a *Sthavir-kalpi* ascetic two opinions prevail.

First is that an ascetic should refrain from using words that may lead to harm to beings. But at the same time the ascetic observing the great vow of truth should also never utter a lie. Thus, even when he knows he should not say that he knows. This can be done only if he remains silent. Acharya Shri Atmaramji M. conforms to this view and in his support he quotes from the *Balavabodh* by Upadhyaya Shri Parshva Chandraji M.

The second opinion is by the author of *Vritti.* Giving greater importance to the feeling of clemency for all beings he says—"Under such critical conditions even if an ascetic knows, he should say that he does not know." Late Acharya Shri Jawaharlalji M. has supported this view of the commentator *(Vritti)* in his famous work *'Saddharma Mandan'* stating that here the intention of the ascetic is not to tell a lie but to save beings.

Acharya Shri Atmaramji M. clearly mentions that even when he knows he should not say that he knows and he should also not tell a lie. So he should remain silent. *(Hindi Tika, p. 1128)*

हिंस्र पशुओं से भयभीत न हों

१७६. से भिक्खू वा २ गामाणुगामं दूइज्जमाणे अंतरा से गोणं वियालं पडिपहे पेहाए जाव चित्ताचेल्लडयं वियालं पडिपहे पेहाए णो तेसिं भीओ उम्मग्गेणं गच्छेज्जा, णो मग्गाओ उम्मग्गं संकमेज्जा, णो गहणं वा वणं वा दुग्गं वा अणुपविसेज्जा, णो रुक्खंसि दुरूहेज्जा, णो महइमहालयंसि उदयंसि कायं विओसेज्जा, णो वाडं वा सरणं वा सेणं वा सत्थं वा कंखेज्जा, अप्पुस्सुए जाव समाहीए। ततो संजयामेव गामाणुगामं दूइज्जेज्जा।

१७६. साधु-साध्वी को विहार करते हुए मार्ग में उन्मत्त साँड, साँप यावत् चीते आदि हिंसक पशुओ को सामने आते देखकर उनसे भयभीत नहीं होना चाहिए तथा उनसे डरकर उन्मार्ग से नहीं जाना चाहिए और न ही एक मार्ग को छोड़कर दूसरे मार्ग पर जाना चाहिए तथा न तो गहन वन एवं विषम स्थान में प्रवेश करना चाहिए, न ही वृक्ष पर चढ़ना चाहिए और न ही गहरे और विस्तृत जल में प्रवेश करना चाहिए। (तथा सुरक्षा के लिए) किसी बाड़ की शरण, सेना का आश्रय भी नहीं ढूँढ़ना चाहिए अपितु शरीर के प्रति राग-द्वेषरहित होकर काया का व्युत्सर्ग कर समाधिभाव में स्थिर रहना चाहिए।

NO FEAR OF FIERCE ANIMALS

176. While wandering from one village to another, when a *bhikshu* or *bhikshuni* is faced with approaching mad bull, snake, leopard and other fierce animals he should not be frightened. Out of fear he should not take to a wrong path, not leave one path and take to another, not enter into deep forest or other intractable place, not climb a tree or enter a deep and large water-body. He should also not seek shelter behind a fence or with an army for his security. Instead, he should be free of any attachment for his body, dissociate his mind from his body and remain firm in his meditation

दस्युओं से निर्भय रहे

१७७. से भिक्खू वा २ गामाणुगामं दूइज्जेज्जा, अंतरा से विहं सिया, से जं पुण विहं जाणेज्जा, इमंसि खलु विहंसि बहवे आमोसगा उवकरणपडियाए संपडियापि गच्छेज्जा, णो तेहिं भीओ उम्मग्गं चेव गच्छेज्जा जाव समाहीए। ततो संजयामेव गामाणुगामं दूइज्जेज्जा।

चित्र परिचय ८

Illustration No. 8
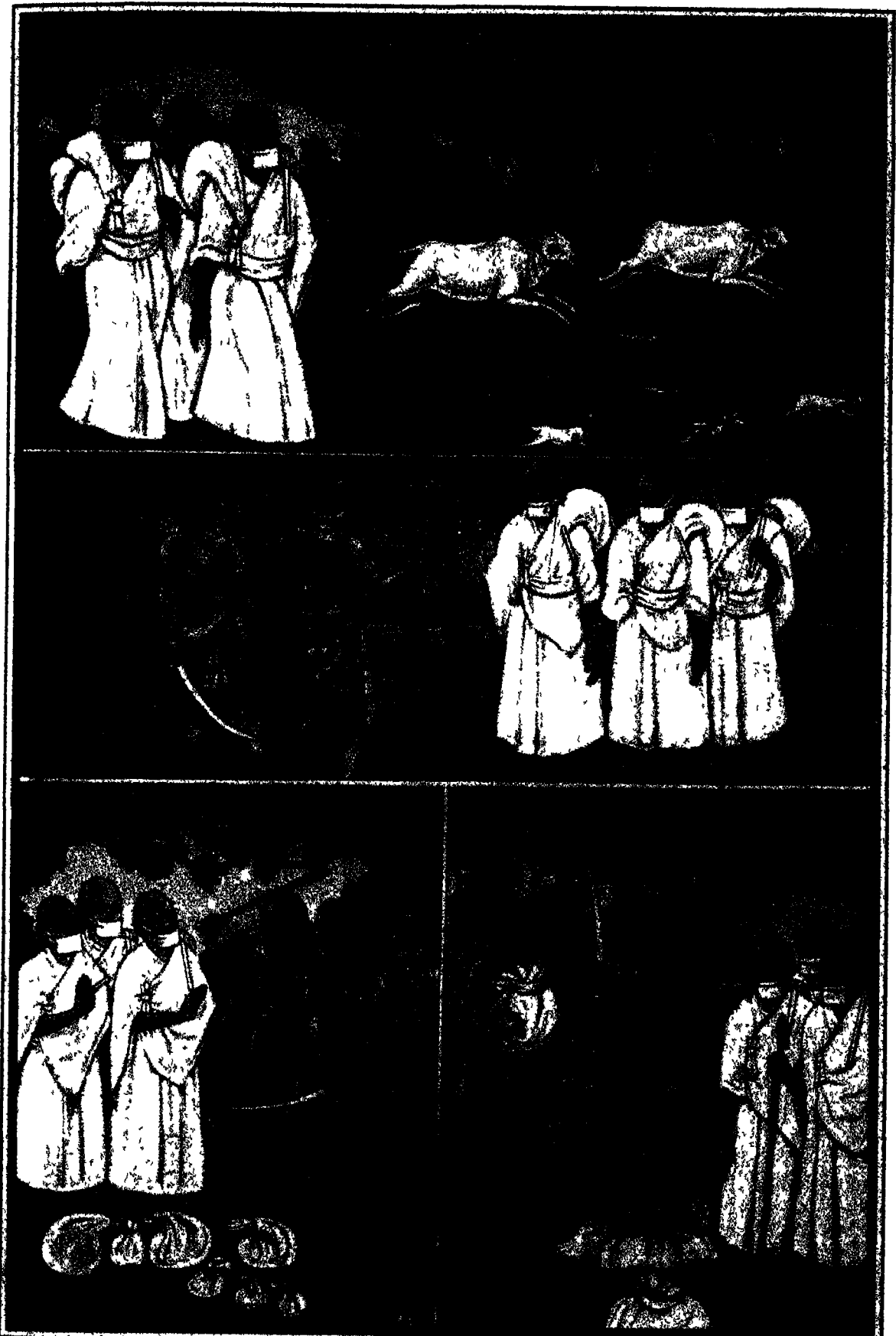
भाषा-संयम एवं निर्भयता

(१) **हिंसक प्रश्नों का उत्तर न दे**—अटवी आदि मे विहार करते हुए साधुओ को मार्ग मे सिह, बाघ, हाथी, गाय, हिरण, खरगोश, सियार तथा अन्य पशु-पक्षी इधर से उधर जाते हुए दिखाई दे, और

(२) उनके पीछे आते हुए हिंसक, लुटेरे, शिकारी व्यक्ति यदि साधु से पूछे कि "श्रमण ! तुमने इधर किसी सिह, गाय आदि को जाते देखा है ? देखा हो तो हमे बताओ वे किधर गये ?" ऐसे समय मे साधु उन्हे कोई उत्तर नही देवे। निर्भय होकर मौनपूर्वक रहे। (सूत्र १७१)

(३) **निर्भय रहे**—अटवी आदि मे विहार करते समय यदि चोर, लुटेरे इकट्ठे होकर साधु को देखकर पूछे—"तुम्हारे पास यह क्या है ? तुम्हारा जो भी सामान है हमे दे दो। नही तो हम लूटेगे।" ऐसी स्थिति मे साधु अपना सामान एक तरफ रख दे और चुपचाप खडा रहे। किसी प्रकार की दीनता आदि नही दिखाए।

(४) अवसर जानकर उन्हे धर्म उपदेश दे सकते है। अथवा चोर, लुटेरो द्वारा लुटने पर नगर मे जाकर किसी से शिकायत न करे।

—अध्ययन ३, सूत्र १७६ १७८

DISCIPLINE OF SPEECH AND FEARLESSNESS

(1) **Avoid answers that lead to violence**—While passing through a jungle (etc) an ascetic may happen to see lion, tiger, elephant, cow, deer, rabbit, jackal and other animals moving about

(2) If some chasing bandits or hunters ask the ascetic, "*Shraman* ! Did you see some lion, cow etc passing this way ? If yes, tell me which direction they have taken ?" The ascetic should not answer such question He should remain silent boldly (*aphorism 171*)

(3) **Be courageous**—While passing through a jungle if thieves or bandits gather and ask, "What is this you have ? Give all your belongings otherwise we will snatch them from you ?" In such situation the ascetic should place his belongings on one side and stand silent He should not feel afraid or humiliated.

(4) If he gets an opportunity he may give them a sermon. He should also avoid making a complaint against the thieves when he reaches a city.

—Chapter 3, aphorism 176, 178

१७७. ग्रामानुग्राम विहार करते हुए साधु-साध्वी को मार्ग में अनेक दिनों में पार करने योग्य विकट अटवी आ जाये तो उस अटवी-मार्ग के विषय में साधु पहले यह जान ले कि इस अटवी-मार्ग में अनेक चोर इकट्ठे होकर साधु के उपकरण छीनने की दृष्टि से आ जाते हैं। उस अटवी-मार्ग में वे चोर इकट्ठे होकर आ जाएँ तो साधु उनसे भयभीत होकर उन्मार्ग में न जाए, वह किसी बाड़ आदि का आश्रय न खोजे तथा निर्भय और शरीर के प्रति अनासक्त होकर शरीर और उपकरणों का व्युत्सर्ग करके समाधिभाव में स्थिर रहता हुआ यतनापूर्वक विचरण करे।

NO FEAR OF BANDITS

177. While wandering from one village to another, when a *bhikshu* or *bhikshuni* approaches the edge of some desolate area that can be crossed in many days, he should know in advance that in such areas many bandits come to snatch away ascetic-equipment. If it so happens that a group of bandits approach the ascetic; out of fear, he should not take to a wrong path and should also not seek shelter behind a fence (etc.). Instead he should be free of any attachment for his body and equipment, dissociate his mind from his body and remain firm in his meditation

१७८. से भिक्खू वा २ गामाणुगामं दूइज्जेज्जा, अंतरा से आमोसगा संपिंडिया गच्छेज्जा, ते णं आमोसगा एवं वएज्जा आउसंतो समणा ! आहर एयं वत्थं वा ४, देहि, णिक्खिवाहि, तं णो देज्जा, णिक्खिवेज्जा, णो वंदिय २ जाएज्जा, णो अंजलिं कट्टु जाएज्जा, णो कलुणपडियाए जाएज्जा, धम्मियाए जायणाए जाएज्जा, तुसिणीयभावेण वा उवेहिज्जा।

१७८. ग्रामानुग्राम विहार करते हुए साधु के पास यदि मार्ग में चोर आदि मिलकर आये और कहें कि "आयुष्मन् श्रमण ! ये वस्त्र, पात्र, कंबल और पाद-प्रोंछन आदि लाओ हमें दे दो या यहाँ पर रख दो।" इस प्रकार कहने पर साधु वे (उपकरण) उन्हें न दे अपितु भूमि पर रख दे, फिर उन उपकरणों को वापस लेने के लिए उनकी स्तुति (प्रशंसा) करके, हाथ जोड़कर या दीन-वचन कहकर याचना न करे। यदि वापस लेना हो तो उन्हें धर्म का मार्ग बताकर माँगे अथवा मौन धारण करके रहे।

178. While wandering from one village to another, when a *bhikshu* or *bhikshuni* is approached by bandits and asked—

"Long lived *Shraman* ! Give these clothes, pots, blankets and ascetic-brooms to us or put these on the ground." At this the ascetic should not give his equipment to the bandits. Instead, he should place them on the ground. He should refrain from praising, joining his palms and requesting the bandits to get back his equipment. If he wants to get them back he should first show them the religious path, otherwise remain silent.

१७९. ते णं आमोसगा सयं करणिज्जं ति कट्टु अक्कोसेंति वा जाव उद्दवेंति वा वत्थं वा ४ अच्छिंदेज्ज वा जाव परिट्ठवेज्ज वा, तं णो गामसंसारियं कुज्जा, णो रायसंसारियं कुज्जा, णो परं उवसंकमित्तु बूया–आउसंतो गाहावइ ! एए खलु आमोसगा उवकरण-वडियाए सयं करणिज्जं ति कट्टु अक्कोसंति वा जाव परिट्ठवेंति वा। एयप्पगारं मणं वा वइं वा णो पुरओ कट्टु विहरेज्जा। अप्पुस्सुए जाव समाहीए। ततो संजयामेव गामाणुगामं दूइज्जेज्जा।

एयं खलु तस्स भिक्खुस्स वा भिक्खुणीए वा सामग्गियं सदा जएज्जासि।

–त्ति बेमि।

॥ तइओ उद्देसओ सम्मत्तो ॥

॥ तइयं अज्झयणं सम्मत्तं ॥

१७९. तब वे चोर यदि अपना काम जो करना चाहते हों, उस अनुसार साधु को अपशब्द कहें, मारें-पीटें अथवा उसका वध करने का प्रयत्न करें और उसके वस्त्रादि को फाड़ डालें, तोड़-फोड़कर दूर फेंक दें, तो भी वह भिक्षु ग्राम मे जाकर लोगों से उस बात की शिकायत न करे, न ही राजा के आगे फरियाद करे, न ही किसी गृहस्थ के पास जाकर कहे कि "आयुष्मन् गृहस्थ ! इन चोरो ने हमारे उपकरण छीनने के लिए हमें मारा-पीटा है, हमारे उपकरणादि नष्ट करके दूर फेंक दिये हैं।" ऐसे विचारों को साधु मन में भी न लाए और न वचन से भी व्यक्त करे। किन्तु राग-द्वेषरहित होकर समाधिभाव में विचरण करे।

यही उस साधु-साध्वी के भिक्षु जीवन की समग्रता–सर्वांगपूर्णता है।

–ऐसा मैं कहता हूँ।

179. If the bandits, as is normal for them, abuse and manhandle the ascetic or try to kill him or tear apart his dress

and throw it away, the ascetic should not go into the village and report to the villagers. He should neither lodge a complaint to the king nor go and tell some householder—"Long lived householder ! Those bandits have beaten me and deprived me of my belongings or damaged my equipment and thrown them away." An ascetic should neither have such thoughts nor utter them. Being free of attachment he should compose himself and move about.

This is the totality (of conduct including that related to knowledge) for that *bhikshu* or *bhikshuni*.

—So I say.

विवेचन—इन छह सूत्रों में विहार मार्ग में होने वाले उपद्रवों की चर्चा की गई है। प्राचीन काल में यातायात के साधन सुलभ न होने से अनुयायी लोगों को साधु के विहार की कुछ भी जानकारी नहीं मिल पाती थी। विहार बडे कष्टप्रद होते थे। रास्ते में हिंस्र पशुओं का तथा चोर-डाकुओं का बडा भय बना रहता था, बडी भयानक लम्बी-लम्बी अटवियाँ होती थीं, ऐसी विकट परिस्थिति में साधु की निर्भयता और अनासक्ति की पूरी कसौटी हो जाती थी।

मार्ग में चोर उसके वस्त्रादि छीन ले या उसे मारे-पीटे तो भी न तो चोरों के प्रति प्रतिशोध की भावना रखे, न उनसे दीनतापूर्वक वापस देने की याचना करे और न कहीं उसकी फरियाद करे, अपितु शान्ति से, समाधिपूर्वक उस उपसर्ग को सहन करे।

बृहत्कल्पसूत्र के भाष्य तथा निशीथ चूर्णिकार आदि के उल्लेखों से ज्ञात होता है कि उस युग मे श्रमणों को इस प्रकार के उपद्रवों का काफी सामना करना पड़ता था। कभी बोटिक चोर (म्लेच्छ) किसी आचार्य या गच्छ का वध कर डालते, संयमियों का अपहरण कर ले जाते तथा उनकी सामग्री नष्ट कर डालते–*(निशीथ चूर्णि, पीठिका* २८९) इस प्रकार के प्रसंग उपस्थित होने पर अपने आचार्य की रक्षा के लिए कोई वयोवृद्ध साधुगण का नेता बन जाता और गण का आचार्य सामान्य भिक्षु का वेश धारण कर लेता–(*बृहत्कल्पभाष्य* १/३००५-६ तथा *निशीथभाष्य, पीठिका* ३२१) कभी ऐसा भी होता कि **आक्रान्तिक** चोर चुराये हुए वस्त्र को दिन में ही साधुओं को वापस कर जाते किन्तु **अनाक्रान्तिक** चोर रात्रि के समय उपाश्रय के बाहर प्रस्रवण भूमि में डालकर भाग जाते। *(बृहत्कल्पभाष्य १/३०११)*

॥ तृतीय उद्देशक समाप्त ॥

॥ तृतीय अध्ययन समाप्त ॥

Elaboration—These six aphorisms detail the disturbances faced on the path. In ancient times the followers or devotees generally remained unaware of the itinerary of an ascetic due to paucity of means of transportation and communication. The wanderings of ascetics were extremely rigorous and painful. There was a continued fear of ferocious animals and bandits on the way. There were large desolate and fearsome areas to cross. Such difficult conditions were perfect tests for an ascetic's courage and detachment.

If on the way the bandits deprive him of his belongings or beat him, he should be free of any feeling of revenge. He should neither beg his things back nor lodge a complaint. He should tolerate this affliction peacefully and remain composed.

Brihatkalpasutra Bhashya, Nishith Churni and other texts inform that *Shramans* had to face such afflictions frequently. Uncivilized thieves sometimes killed some *acharya* or his disciples, kidnapped ascetics and destroyed their belongings (*Nishith Churni, leaf 289).* Faced with such predicament some aging ascetic would become the leader and the *acharya* would dress as ordinary ascetic (Brihatkalpa *Bhashya 1/3005-6* and *Nishith Bhashya Churni, leaf 321*). It also happened that some thieves would return the dresses sometimes during the day and others throw the dresses at the place where ascetics defecate and disappear *(Brihatkalpa Bhashya 1/3011)*

|| END OF LESSON THREE ||

|| END OF THIRD CHAPTER ||

भाषाजात : चतुर्थ अध्ययन

आमुख

✦ इस चतुर्थ अध्ययन का नाम 'भाषाजात' है।

✦ भाषाजात का अर्थ है–भाषा के प्रकार, भाषा की प्रवृत्तियाँ, भाषा-प्रयोग आदि का वर्णन। इस अध्ययन में भाषा सम्बन्धी समग्र वर्णन होने से इसका भाषाजात नाम है तथा भाषासमिति के विवेक से सम्बन्धित विषय होने से 'भाषैषणा' भी कहा गया है।

✦ इसके दो उद्देशक हैं। यद्यपि दोनों का उद्देश्य है–भिक्षु को वचन-शुद्धि का विवेक बताना। किस प्रकार की भाषा बोलें, किस प्रकार की नहीं बोले इसका सम्यक् विवेक करना 'भाषैषणा' है। प्रथम उद्देशक में १६ प्रकार की वचन-विभक्ति बताकर भाषा-प्रयोग के सम्बन्ध में विधि-निषेध बताया गया है।

✦ दूसरे उद्देशक में भाषा की उत्पत्ति के सन्दर्भ में क्रोधादि समुत्पन्न भाषा को छोड़कर निर्दोष के वचन बोलने का विधान है।

●●

BHASHAJATA : FOURTH CHAPTER

INTRODUCTION

- The title of this fourth chapter is *Bhashajat*.
- *Bhashajat* means—types of language, styles of language, uses of language and other information about language. As this chapter contains all information about language it is named *Bhashajat*. As the subject dealt in this chapter relates to prudence about language it is also called *Bhashaishana*.
- It has two lessons. The basic theme of both the lessons is to tell ascetics about the prudence of purity of language. What type of language should he use, what should he avoid, proper judgment of this is called *Bhashaishana*. In the first lesson are given the codes of proper use of language by explaining sixteen grammatical classifications.
- The second lesson refers to the origin of language in context of the mental states like anger and details the code of desired and censured use

● ●

भासज्जाया : चउत्थं अज्झयणं
भाषाजात : चतुर्थ अध्ययन
BHASHAJATA : FOURTH CHAPTER
PROPER LANGUAGE

पढमो उद्देसओ | **प्रथम उद्देशक** | **LESSON ONE**

भाषा-सम्बन्धी विवेक

१८०. से भिक्खू वा २ इमाइं वय-आयाराइं सोच्चा णिसम्म इमाइं अणायाराइं अणायरियपुव्वाइं जाणेज्जा–जे कोहा वा वायं विउंजंति, जे माणा वा वायं विउंजंति, जे मायाए वा वायं विउंजंति, जे लोभा वा वायं विउंजंति, जाणओ वा फरुसं वयंति, अजाणओ वा फरुसं वयंति। सव्वं चेयं सावज्जं वज्जिज्जा विवेगमायाए।

धुवं चेयं जाणेज्जा, अधुवं चेयं जाणेज्जा। असणं वा ४ लभिय, णो लभिय, भुंजिय, णो भुंजिय अदुवा आगओ, अदुवा णो आगओ, अदुवा एइ, अदुवा णो एइ, अदुवा एहिइ, अदुवा णो एहिइ, एत्थ वि आगए, एत्थ वि णो आगए, एत्थ वि एति, एत्थ वि णो एति, एत्थ वि एहिति, एत्थ वि णो एहिति।

१८०. साधु या साध्वी-वचन सम्बन्धी इन आचारों को सुनकर, हृदयंगम करके, भाषा-सम्बन्धी अनाचारों (जो पूर्व मुनियों द्वारा आचरित नहीं हैं) को जानने का प्रयत्न करे। जो क्रोध से वाणी का प्रयोग करते हैं, इसी प्रकार अभिमानपूर्वक एवं छल-कपट सहित भाषा बोलते हैं अथवा लोभ के वशीभूत होकर वचन बोलते हैं, जानबूझकर (किसी के दोषों को जानते हुए) कठोर वचन बोलते हैं अथवा अनजाने में कठोर वचन बोल देते हैं–इस प्रकार की सब भाषाएँ सावद्य हैं, जो साधु के लिए वर्जनीय हैं। साधु इस प्रकार की सावद्य एवं अनाचरणीय भाषाओं का विवेकपूर्वक त्याग करे।

वह साधु या साध्वी ध्रुव (भविष्य के विषय में निश्चयात्मक) भाषा को जानकर उसका त्याग कर दे। अध्रुव (अनिश्चयात्मक) भाषा को भी जानकर उसको छोड़े। (कोई साधु आहार के लिए गया हो तो ऐसा न कहे–) "वह अशनादि आहार लेकर ही आयेगा, या आहार लिए बिना ही आयेगा। वह आहार करके ही आयेगा या आहार बिना किये ही आ जायेगा। वह अवश्य आया था या नहीं आया था। वह आता है अथवा नहीं आता है।

वह भविष्य में अवश्य आयेगा अथवा नहीं आयेगा। वह यहाँ भी आया था अथवा वह यहाँ नहीं आया था। वह यहाँ अवश्य आता है अथवा कभी नहीं आता। वह यहाँ अवश्य आयेगा या कभी नहीं आयेगा।" (इस प्रकार की एकान्त निश्चयात्मक भाषा का व्यवहार साधु-साध्वी को नहीं करना चाहिए।)

PRUDENCE OF LANGUAGE

180 A *bhikshu* or *bhikshuni* should try to know about misconduct related to speech (that which has been avoided by past seers) by listening and understanding these codes of conduct. The language used under influence of anger, that used under influence of pride, that used under influence of deceit, that used under influence of greed and harsh language uttered with or without awareness (of faults of others) are all sinful and so proscribed for ascetics. Ascetics should consciously or prudently avoid such sinful and reprehensible speech.

That *bhikshu* or *bhikshuni* should consciously avoid language conveying certainty (about future) as well as uncertainty. (If an ascetic has gone to collect alms, it should not be said about him that—) "He will certainly return with food or without food. He will certainly come after eating or without eating. I am sure he came or did not come. I am sure he comes or does not come. He is sure to come or not come." He also came here or did not come here. He comes here for sure or never comes. He will certainly come here or will never come. (Ascetics should not use such language conveying absolute certainty.)

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में मुख्यतया छह प्रकार की सावद्य भाषा का प्रयोग साधु के लिए निषिद्ध है—(१) क्रोध से, (२) अभिमान से, (३) माया-कपट से, (४) लोभ से, (५) किसी के दोष जानते या अनजान में ही कठोरतापूर्वक, और (६) भूत, भविष्य, वर्तमान काल सम्बन्धी निश्चयात्मक भाषा। जिस विषय में वस्तु-तत्त्व का पूर्ण निश्चय न हो, उस विषय में निश्चयात्मक वचन नहीं बोलना चाहिए।

Elaboration—This aphorism contains censure of six types of sinful speech for ascetics—(1) inspired by anger, (2) inspired by conceit,

(3) inspired by deceit, (4) inspired by greed, (5) harsh language with or without awareness of fault of others, and (6) language conveying absolute certainty about past, present and future. One should never use language conveying absolute certainty about things one is not certain about.

षोडष वचन एवं संयत भाषा-प्रयोग

१८१. अणुवीयि णिट्ठाभासी समियाए संजए भासं भासेज्जा, तं जहा–

एगवयणं १, दुवयणं २, बहुवयणं ३, इत्थीवयणं ४, पुरिसवयणं ५, णपुंसगवयण ६, अज्झत्थवयणं ७, उवणीयवयणं ८, अवणीयवयणं ९, उवणीय-अवणीयवयणं १०, अवणीय-उवणीयवयणं ११, तीयवयणं १२, पडुप्पण्णवयणं १३, अणागयवयणं १४, पच्चक्खवयणं १५, परोक्खवयणं १६।

से एगवयणं वदिस्सामीति एगवयणं वदेज्जा, जाव परोक्खवयणं वदिस्सामीति परोक्खवयणं वदेज्जा। इत्थी वेस, पुरिसो वेस, णपुंसगं वेस, एवं वा चेयं, अण्णं वा चेयं, अणुवीयि णिट्ठाभासी समियाए संजए भासं भासेज्जा।

१८१. भाषासमिति से युक्त संयमी साधु-साध्वी विवेक तथा संयमपूर्वक भाषा का प्रयोग करे।

जैसे कि (ये १६ प्रकार के वचन हैं–) (१) एकवचन, (२) द्विवचन, (३) बहुवचन, (४) स्त्रीलिंग-वचन, (५) पुल्लिंग वचन, (६) नपुंसक वचन, (७) अध्यात्म वचन, (८) उपनीत–(प्रशंसात्मक) वचन, (९) अपनीत–(निन्दात्मक) वचन, (१०) उपनीताऽपनीत–(प्रशंसापूर्वक निन्दा) वचन, (११) अपनीतोपनीत–(निन्दापूर्वक प्रशंसा) वचन, (१२) अतीत काल सम्बन्धी वचन, (१३) वर्तमान काल सम्बन्धी वचन, (१४) अनागत काल सम्बन्धी वचन, (१५) प्रत्यक्ष वचन और (१६) परोक्ष वचन।

यदि उसे 'एकवचन' बोलना हो तो वह एकवचन ही बोले, यावत् परोक्ष वचन पर्यन्त जिस किसी वचन को बोलना हो, तो उसी वचन का प्रयोग करे। यह स्त्री है, यह पुरुष है, यह नपुंसक है, यह वही है या यह कोई अन्य है, इस प्रकार जब विचार करके निश्चय कर लेवे तभी भाषा-सम्बन्धी दोषों को टालकर संयत भाषा में बोले।

SIXTEEN TYPES OF SPEECH AND PROPER LANGUAGE

181. Disciplined ascetics exercising control over their speech should use speech with prudence and discipline. The sixteen types of speech are—(1) singular, (2) dual, (3) plural, (4) feminine gender, (5) masculine gender, (6) neuter gender, (7) spiritual words, (8) words of praise, (9) words of criticism, (10) words of praise with criticism, (11) words of criticism with praise, (12) past tense, (13) present tense, (14) future tense, (15) direct speech (first person), and (16) indirect speech (second and third person).

When it is required to utter singular he should utter singular only. In the same way he should also do for all the said types of speech up to indirect speech. Also before uttering that this is a woman, man or eunuch, or that particular thing or person or other; he should deliberate and ensure and then only speak in disciplined language avoiding related faults.

विवेचन–साधु जिस किसी प्रकार का कथन करना चाहता हो, पहले उस विषय मे अच्छी प्रकार छानबीन कर ले कि मैं जिस वचन का प्रयोग करना चाहता हूँ, वह वास्तव में यथार्थ है या नहीं? दूसरी बात, उसे भाषा शास्त्र, व्याकरण आदि का भलीभाँति बोध होना चाहिए ताकि अपने भावों को स्पष्ट और शुद्ध रूप में अभिव्यक्त कर सके।

इस सूत्र में बताये हुए ८ प्रकार के वचन निषिद्ध हैं–(१) अस्पष्ट वचन, (२) संदिग्ध वचन, (३) केवल अनुमान पर आधारित वचन, (४) केवल सुनी-सुनाई बात के आधार पर, (५) प्रत्यक्ष देखी हुई परन्तु छानबीन न की हुई सन्देहयुक्त बात, (६) स्पष्ट हो परन्तु प्राणघातक, मर्मस्पर्शी, आघात जनक हो तो वह भी न बोले, (७) द्वयर्थक वचन (दोहरे अर्थ वाली बात), तथा (८) अपेक्षारहित तथा एकान्त कथन। अध्यात्म वचन की व्याख्या करते हुए आचार्य श्री आत्माराम जी म. ने लिखा है–जो वचन बोलने का विचार हो, परन्तु उसको छिपाने के लिए अन्य वचन बोलने का विचार करके बोलते हुए अकस्मात् मुख से वही वचन निकल जाना अध्यात्म वचन है। जैसे–कोई व्यापारी रुई खरीदने के लिए दूसरे गाँव में गया और निश्चय किया कि मैं किसी के सामने रुई का नाम नहीं लूँगा परन्तु जब उसे प्यास लगी तो कुएँ पर जाकर पानी पिलाने वाले को कहा–"मुझे जल्दी रुई पिलाओ, अर्थात् हृदय में छिपी बात मुँह पर अकस्मात् आ गई। इसे अध्यात्म वचन कहा जाता है। *(विवेचन, पृ ११४४)*

Elaboration—An ascetic should properly inquire if the information on the subject he wants to speak about is correct or not and the part of

speech he intends to use is correct or not. Another thing is that he should have complete knowledge of the language, grammar and other related subjects in order to be able to express his ideas with clarity and accuracy.

Of the types of speech mentioned in this aphorism, eight are proscribed—(1) garbled speech, (2) doubtful statement, (3) statement based on assumption, (4) statement based on hearsay, (5) statement about apparent but doubtful and not investigated topic, (6) clear and correct but causing death or physical and sentimental pain, (7) speech having double meaning, and (8) absolute and dogmatic statement. Defining *adhyatma vachan* (spiritual statement or inner voice) Acharya Shri Atmaramji M. writes that while talking about other things, to utter involuntarily about matters originally intended to be kept concealed is called *adhyatma vachan*. An example—A merchant went to a village to buy cotton but to keep his mission secret he resolved not to talk about cotton with anyone. When he got thirsty he went to a well and involuntarily asked the attendant—"Please serve me cotton at once." (*Tika* by Acharya Shri Atmaramji M.)

विशेष शब्दों के अर्थ–निट्ठाभासी–निश्चित करने के बाद कथन करने वाला, स्पष्ट भाषी। अणुवीयि–पहले बुद्धि से निरीक्षण-परीक्षण करके–छानबीन करके फिर बोलने वाला। अज्झत्थवयण–आध्यात्मिक कथन, जो शास्त्रीय प्रमाण, अनुभय, युक्ति या प्रत्यक्ष से निश्चित हो, अथवा अन्तःकरण प्रेरित वचन। उवणीयवयणं–प्रशसात्मक वचन, जैसे–यह रूपवान है। अवणीयवयणं–अप्रशंसात्मक वचन, जैसे–यह रूपहीन है। उवणीय-अवणीयवयणं–किसी का कोई गुण प्रशंसा-योग्य है, कोई अवगुण निन्दा-योग्य है, उसके विषय में कथन करना, जैसे–यह व्यक्ति रूपवान है किन्तु चरित्रहीन है। अवणीय-उवणीयवयणं–किसी के निन्दा के साथ प्रशंसात्मक वचन बोलना, जैसे–यह पुरुष कुरूप है, किन्तु सदाचारी है।

Technical Terms *Nitthabhasi*—one who speaks after ascertaining; a frank person *Anuvviyi*—one who inquires and examines before speaking. *Ajjhatthvayana*—spiritual statement; that which is authenticated by scriptural texts, experience, logic or apparent reality; inner voice. *Uvaniyavayanam*—words of praise, e.g., she is beautiful. *Avaniyavayanam*—words of criticism, *e.g.,* he is ugly. *Uvaniya-*

avaniyavayanam—words of praise with criticism, e.g., he is handsome but corrupt. *Avanıya-uvaniyavayanam*—words of criticism with praise, e.g., he is ugly but honest

चार प्रकार की भाषा : विहित-अविहित

१८२. इच्चेयाइं आययाणाइं उवाइकम्म।

अह भिक्खू जाणेज्जा चत्तारि भासर्ज्जायाइं, तं जहा–सच्चमेगं पढमं भासजायं, बीयं मोसं, तइयं सच्चामोसं, जं णेव सच्चं णेव मोसं णेव सच्चामोसं णाम तं चउत्थं भासज्जायं।

से बेमि–जे य अईया जे य पडुप्पण्णा जे अणागया अरहंता भगवंतो सव्वे ते एयाणि चेव चत्तारि भासज्जायाइं भासिंसु वा भासंति वा भासिस्संति वा, पण्णविंसु वा ३ सव्वाइं च णं एयाणि अचित्ताणि वण्णमंताणि गंधमंताणि रसमंताणि फासमंताणि चयोवचइयाइं विप्परिणामधम्माइं भवंती त्ति अक्खायाइं।

१८२. भाषा-सम्बन्धी इन दोष स्थानों का त्याग करके (भाषा का प्रयोग करना चाहिए)।

साधु को भाषा के चार भेद भी जान लेना चाहिए। वे इस प्रकार हैं–(१) सत्य भाषा, (२) मृषा भाषा, (३) सत्यामृषा, और (४) असत्यामृषा–जो न सत्य है, न असत्य है और न ही सत्यामृषा (व्यवहारभाषा) है।

मैं यह जो कुछ कहता हूँ उसे–भूतकाल में जितने भी तीर्थंकर भगवान हो चुके हैं, वर्तमान में जो भी तीर्थंकर भगवान हैं और भविष्य में जो भी तीर्थंकर भगवान होंगे, उन सबने इन्हीं चार प्रकार की भाषाओं का कथन किया है, कथन करते हैं और कथन करेंगे; अथवा उन्होंने यही प्ररूपण किया है, करते हैं और करेंगे। तथा ये सब भाषा के पुद्गल अचित्त हैं, वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श वाले हैं, तथा चय-उपचय (वृद्धि-ह्रास अथवा मिलने-बिछुड़ने) वाले एवं विविध प्रकार के परिणामों को धारण करने वाले हैं।

FOUR TYPES OF SPEECH

182. A *bhikshu* or *bhikshunı* should avoid these faults related to speech.

A *bhikshu* or *bhikshunı* should also know about the four kinds of speech. They are—(1) true, (2) untrue (3) true-untrue,

and (4) neither true nor untrue or true-untrue (normal language in use).

I so pronounce that all the omniscients of the past have stated, spoken, propagated and elaborated; all the omniscients of the present state, speak, propagate and elaborate; and all the omniscients of the future will state, speak, propagate and elaborate these four kinds of speech. Also, all the speech-particles are insentient, have properties of colour, smell, taste and touch, and undergo growth and decay or integration and disintegration causing a variety of effects.

१८३. से भिक्खू वा २ से जं पुण जाणेज्जा–पुव्वं भासा अभासा, भासिज्जमाणी भासा भासा, भासासमयवीइकंतं च णं भासिया भासा अभासा।

१८३. साधु-साध्वी को भाषा के विषय में यह भी जानना चाहिए कि (भाषावर्गणा के एकत्रित पुद्गल) बोलने से पूर्व अभाषा है, बोलते समय भाषा भाषा कहलाती है तथा बोलने के पश्चात् बोली हुई भाषा अभाषा हो जाती है।

183. A *bhikshu* or *bhikshuni* should also know about speech (the combination of the speech-particles) that before utterance it is non-speech (or pre-speech), during utterance it is speech and after utterance it is non-speech (post-speech).

१८४. से भिक्खू वा २ से जं पुण जाणिज्जा–जा य भासा सच्चा १, जा य भासा मोसा २, जा य भासा सच्चामोसा ३, जा य भासा असच्चाऽमोसा ४, तहप्पगारं भासं सावज्जं सकिरियं कक्कसं कडुयं णिट्ठुरं फरुसं अण्हयकरिं छेयणकरिं भेयणकरिं परियावणकरिं उद्दवणकरिं भूतोवघाइयं अभिकंख णो भासेज्जा।

१८४. साधु-साध्वी को भाषा के इन भेदों को जानना चाहिए–(१) जो भाषा सत्य है, (२) जो भाषा मृषा है, (३) जो भाषा सत्यामृषा है, (४) अथवा जो भाषा असत्यामृषा (व्यवहारभाषा) है। इन चारों भाषाओं में से जो मृषा–असत्य और मिश्रभाषा है, उसका व्यवहार साधु-साध्वी के लिए सर्वथा वर्जनीय है। केवल सत्य और असत्यामृषा (व्यवहारभाषा) का प्रयोग ही उसके लिए आचरणीय है। उसमें भी यदि सत्यभाषा–कभी सावद्य, अनर्थदण्ड क्रियायुक्त, कर्कश, कटुक, निष्ठुर, कर्मों की आस्रवकारिणी तथा छेदन,

भेदन, परितापकारिणी, उपद्रवकारिणी एवं जीवों का घात करने वाली हो तो विवेकशील साधु-साध्वी को मन से विचार करके ऐसी सत्य भाषा का भी प्रयोग नहीं करना चाहिए।

184. A *bhikshu* or *bhikshuni* should also know about the four kinds of speech. They are—(1) true, (2) untrue, (3) true-untrue, and (4) neither true nor untrue or true-untrue (normal language in use). Out of these four, the two namely untrue and true-untrue are completely proscribed for ascetics. It is proper for him only to use speech that is true and normal or popular language. However, if the true is at times sinful, inspiring sinful action, rough, harsh, rude, bitter, causing inflow of *karmas,* shrill, splitting, hurting, disturbing and provocative to beings, a prudent *bhikshu* or *bhikshuni* should ponder over it and avoid the use of such truth.

१८५. से भिक्खू वा २ से जं पुण जाणेज्जा–जा य भासा सच्चा, सुहुमा जा य भासा असच्चामोसा तहप्पगारं भासं असावज्जं अकिरियं जाव अभूओवघाइयं अभिकंख भासेज्जा।

१८५. साधु-साध्वी को यह भी जानना चाहिए कि जो भाषा सूक्ष्म (गम्भीरतापूर्वक कुशाग्र बुद्धि से विचार करने पर) सत्य हो, तथा जो असत्यामृषा भाषा हो, साथ ही ऐसी दोनों भाषाएँ असावद्य, अक्रिय यावत् जीवों के लिए घातक न हों तो संयमशील साधु को मन से पहले पर्यालोचन करके इन्हीं दोनों भाषाओं का प्रयोग करना चाहिए।

185. A *bhikshu* or *bhikshuni* should also know (by serious contemplation with his sharp wit) if the speech is true or normal language and at the same time it is not sinful (etc. up to...), violent to beings. If it is so, a disciplined ascetic should first ponder over it and use only these two types of speech.

सावद्य भाषा का निषेध

१८६. से भिक्खू वा २ पुमं आमंतेमाणे आमंतिए वा अपडिसुणेमाणं णो एवं वइज्जा–होले ति वा, गोले ति वा, वसुले ति वा, कुपक्खे ति वा, घडदासे ति वा, साणे ति वा, तेणे ति वा, चारिए ति वा, मायी ति वा, मुसावाइ ति वा, एयाइं तुमं ते जणगा वा। एयप्पगारं भासं सावज्जं सकिरियं जाव अभिकंख णो भासेज्जा।

१८६. संयमशील साधु या साध्वी किसी पुरुष को आमंत्रित (सम्बोधित) करते हुए, उसके न सुनने पर (खीजकर) उसे इस प्रकार न कहे–"अरे होल (मूर्ख) ! रे गोले ! हे वृषल (शूद्र) ! हे कुपक्ष (दास या निन्द्यकुलीन) ! अरे घटदास (दासीपुत्र) ! या ओ कुत्ते ! ओ चोर ! अरे गुप्तचर ! अरे कपटी ! ऐसे ही तुम हो, ऐसे ही तुम्हारे माता-पिता हैं।" विवेकशील साधु इस प्रकार की सावद्य, सक्रिय यावत् जीवोपघातिनी भाषा न बोले।

CENSURE OF SINFUL SPEECH

186. When he does not get a response on calling someone, a *bhikshu* or *bhikshuni* should not, out of irritation, say—You fool ! You slave ! You wretch ! You low-born ! You son-of-a-maid, You dog ! You thief ! You spy ! You cheat ! So are you and so are your parents." A disciplined ascetic should avoid such sinful (etc. up to violent to beings) speech.

१८७. से भिक्खू वा २ पुमं आमंतेमाणे आमंतिए वा अपडिसुणेमाणे एवं वइज्जा– अमुगे ति वा, आउसो ति वा, आउसंतारो ति वा, सावगे ति वा, उवासगे ति वा, धम्मिए ति वा, धम्मप्पिए ति वा। एयप्पगारं भासं असावज्जं जाव अभूतोवघाइयं अभिकंख भासेज्जा।

१८७. संयमशील साधु या साध्वी किसी पुरुष को आमन्त्रित कर रहे हो, और यदि वह आमंत्रण न सुने तो उसे इस प्रकार सम्बोधित करे–"हे अमुक भाई ! हे आयुष्मन् ! हे आयुष्मानो ! ओ श्रावक ! हे उपासक ! हे धार्मिक ! हे धर्मप्रिय !" इस प्रकार की निरवद्य यावत् पापरहित भाषा विचारपूर्वक बोलना चाहिए।

187. When he does not get a response on calling someone, a *bhikshu* or *bhikshuni* should say—"O mister.... ! O long lived one ! O long lived ones ! O layman ! O devotee ! O religious one ! O devout one !" A disciplined ascetic should thoughtfully use such speech that is not sinful (etc. up to violent to beings).

१८८. से भिक्खू वा २ इत्थिं आमंतेमाणे आमंतिए य अप्पडिसुणेमाणीं णो एवं वइज्जा–होली ति वा, गोली ति वा, इत्थिगमेणं णेयव्वं।

१८८. साधु या साध्वी किसी महिला को बुला रहे हों, आवाज देने पर भी यदि वह नहीं सुने तो उसे ऐसे नीच सम्बोधनों से सम्बोधित नहीं करे–"अरी होली (मूर्खे) ! अरी

गोली ! (जितने सम्बोधन पुरुष के लिए दिये गये हैं, उन्हें स्त्रीलिंग वचन में समझना चाहिए, जैसे–अरी वृषली शूद्रे ! हे कुपक्षे ! हे घटदासी ! ऐ कुत्ती ! अरी चोरटी ! हे गुप्तचरी ! अरी मायाविनी ! अरी झूठी ! ऐसी ही तू है और ऐसे ही तेरे माता-पिता हैं !)" विचारशील साधु-साध्वी इस प्रकार की सावद्य यावत् जीवोपघातिनी भाषा नहीं बोले।

188. When he does not get a response on calling some female, a *bhikshu* or *bhikshuni* should not, out of irritation, say—"You hussy ! You wench !. . . (repeat the aforesaid list of abusive terms adapted for females)." A disciplined ascetic should avoid such sinful (etc. up to violent to beings) speech.

१८९. से भिक्खू वा २ इत्थिं आमंतेमाणे आमंतिए य अपडिसुणेमाणीं एवं वदेज्जा–आउसो ति वा, भगिणी ति वा, भोई ति वा, भगवइ ति वा, साविगे ति वा, उवासिए ति वा, धम्मिए ति वा, धम्मप्पिए ति वा। एयप्पगारं भासं अमावज्जं जाव अभिकंख भासेज्जा।

१८९. भिक्षु द्वारा महिला को आमन्त्रित करने पर भी यदि वह न सुने तो उसे इस प्रकार सम्बोधित करे–"आयुष्मती ! बहन (भगिनी) ! भवती, भगवति ! श्राविके ! उपासिके ! धार्मिके ! धर्मप्रिये !" इस प्रकार की निरवद्य यावत् कोमल मधुर भाषा विचारपूर्वक बोले।

189. When he does not get a response on calling some female, a *bhikshu* or *bhikshuni* should say—"O lady.... ! O long lived one ! O long lived ones ! O lay-woman ! O devotee ! O religious one ! O devout one !" A disciplined ascetic should thoughtfully use such speech that is not sinful (etc. up to violent to beings).

विवेचन–'पुव्वं भासा अभासा' ..... इत्यादि पाठ की व्याख्या वृत्तिकार ने इस प्रकार की है–भाषावर्गणा के पुद्गल वाक् योग से, मुख से निकलने से पूर्व भाषा नहीं कहलाते, बल्कि अभाषा रूप ही होते हैं, भाषावर्गणा के पुद्गल जब वाक् योग से निकल रहे हों, तभी वह भाषा कहलाती है। बोलने का समय बीत जाने पर शब्दों का प्रध्वंश हो जाने से बोली गई भाषा अभाषा हो जाती है। इसका अर्थ है–जो भाषा बोली नहीं गई है या बोली जाने पर भी नष्ट हो चुकी, वह भाषा की संज्ञा प्राप्त नहीं करेगी, वर्तमान में प्रयुक्त भाषा ही 'भाषा संज्ञा' प्राप्त करती है। *(वृत्ति पत्रांक ३८७)*

बारह दोषों से युक्त सत्य भाषा भी त्याज्य है (१) सूत्र १८४ में यह स्पष्ट किया है कि 'सत्य' कही जाने वाली भाषा में भी यदि निम्न दोष हों तो वह असत्य और अवाच्य हो जाती है। बारह दोष ये हैं-(१) सावद्य (पापसहित), (२) सक्रिया (अनर्थदण्ड प्रवृत्तिरूप क्रिया से युक्त), (३) कर्कशा (क्लेशकारिणी), (४) निष्ठुरा (निर्दयतापूर्ण, डाँट-फटकारयुक्त), (५) परुषा (कठोर, स्नेहरहित, मर्मोद्घाटिनी, (६) कटुका (कड़वी, चित्त में उद्वेग पैदा करने वाली), (७) आस्रवजनक, (८) छेदकारिणी (प्रीतिछेद करने वाली), (९) भेदकारिणी (फूट डालने वाली, स्वजनों में भेद पैदा करने वाली), (१०) परितापकरी, (११) उपद्रवकरी (कलह, दंगे या उपद्रव फैलाने वाली, भयभीत करने वाली), (१२) भूतोपघातिनी (हिंसा को बढ़ावा देने वाली)।

सूत्र १८६ से १८९ द्वारा शास्त्रकार ने स्त्री-पुरुषों के सम्बोधन में निषिद्ध और विहित भाषा-प्रयोग का विवेक बताया है। होले-गोले आदि शब्द प्राचीन समय में निष्ठुर वचन के रूप में प्रयुक्त होते थे। इस प्रकार के शब्द सुनने वाले का हृदय दुःखी व क्षुब्ध हो जाता था। अतः दशवैकालिक ७/१४ तथा सूत्रकृतांग १/९/२७ में भी इस प्रकार के सम्बोधनों का निषेध है।

प्राचीन चूर्णियों के अनुसार ऐसा लगता है कि ये सम्बोधन पुरुष के लिए जहाँ निष्ठुर वचन थे, वहाँ स्त्री के लिए 'होले', 'गोले' तथा 'वसुले'-मधुर व प्रिय आमंत्रण भी माने जाते थे। गोल देश में ये आमंत्रण प्रसिद्ध थे। आचार्य जिनदास महत्तर के अनुसार 'हले' आमंत्रण का प्रयोग वरदा-तट में, और 'हला' का प्रयोग लाट देश (मध्य और दक्षिण गुजरात) में होता था। 'भट्टे' शब्द का प्रयोग लाट देश में ननद के लिए किया जाता था। *(दशवै. चूर्णि. पृ. २५०)*

संभवतः ये निम्न वर्ग में 'प्रणय-आमन्त्रण' हों, इसलिए भी इनका प्रयोग निषिद्ध माना गया है। उद्देश्य यह है कि किसी भी व्यक्ति को हल्का, निष्ठुर तथा अप्रिय वचन नहीं बोले।

Elaboration—*'Puvvam bhasa abhasa'....*—The commentator *(Vritti)* elaborates this phrase as—The speech-particles are not called speech before they are transmitted from the mouth with an intention to speak. They are in a random particle form. The speech-particles are called speech only when they are intentionally transmitted in an organized form. After the moment of uttering the sound or words fade or disintegrate. Therefore the uttered speech does not remain speech any more. This means that the speech that has not yet been uttered or that which has faded after the utterance cannot be called speech. Only that which is presently being uttered can be called speech. *(Vritti leaf 387)*

Speech having the said twelve faults is also proscribed. Aphorism 184 clarifies that if what is called truth also has the following faults it becomes untruth and is not to be uttered. The twelve faults are—(1) sinful, (2) inspiring sinful action, (3) rough (causing anguish), (4) harsh (cruel and reprimanding), (5) rude (blunt, impolite,

betraying), (6) bitter (sour, irritating), (7). causing inflow of *karmas*, (8) shrill (piercing), (9) splitting (causing dissension and discord among friends), (10) hurting, (11) disturbing (causing quarrel, riot or disturbance; frightening), (12) provocative (encouraging violence).

In aphorisms 186 to 189 the author has talked about prudence in addressing man and woman giving the censured and accepted terms. In the ancient times terms like 'hole' and 'gole' were considered impolite. It was disconcerting and irritating to hear such terms of address. There is a censure of such terms of address in *Dashavaikalika Sutra 7/14* and *Sutrakritanga Sutra 1/9/27* as well.

According to the ancient commentaries *(Churni)* such terms of address were impolite for men but for women they were considered as sweet and endearing, such as *'holay'*, *'golay'* and *'vasulay'*. In the area called 'Gole' these were quite popular According to Acharya Jinadas Mahattar *'halay'* was popular on the banks of Varada river, and *'hala'* in the Laat country (central and southern Gujarat today). The term *'bhatte'* was used for husband's sister in the Laat country. ***(Dashavaikalika Churni, p 250)***

It is probable that, as these terms of address were used to convey invitation to love among the lower castes, there use was censured for ascetics All including, the basic message is that derogatory, rude and impolite words should not be told to any one.

१९०. से भिक्खू वा २ णो एवं वदेज्जा–"णभोदेवे ति वा, गज्जदेवे ति वा, विज्जुदेवे ति वा, पवुट्ठदेवे ति वा, निवुट्ठदेवे ति वा, पडउ वा वासं मा वा पडउ, णिप्पज्जउ वा सस्सं मा वा णिप्पज्जउ, विभाउ वा रयणी मा वा विभाउ, उदेउ वा सूरिए मा वा उदेउ, सो वा राया जयउ वा मा जयउ।" णो एयप्पगारं भासं भासेज्जा पन्नवं।

१९०. संयमी साधु या साध्वी इस प्रकार की भाषा न बोले, जैसे कि "नभोदेव है, गर्ज (मेघ) देव है, विद्युतदेव है, प्रवृष्ट–बरसता रहने वाला देव है या निवृष्ट–निरन्तर बरसने वाला देव है, वर्षा बरसे या न बरसे, धान्य उत्पन्न हों या न हो, रात्रि (व्यतिक्रान्त) हो या न हो, सूर्य उदय हो या न हो, वह राजा जीते या न जीते।" प्रज्ञावान साधु इस प्रकार की भाषा न बोले।

190. A disciplined *bhikshu* or *bhikshuni* should avoid such language as—"This is *Nabhodeva* (Sky god) ! *Garjadeva*

(Thunder god) ! *Vidyutadeva* (Lightening god) ! *Pravrishtadeva* (Rain god) ! *Nivrishtadeva* (god that causes downpour) ! May it rain or may it not rain ! May the crops grow or may the crops not grow ! May the night wane or may the night not wane ! May the sun rise or may the sun not rise ! May the king conquer or may the king not conquer !" A wise ascetic should avoid such speech.

१९१. से भिक्खू वा २ अंतलिक्खे ति वा, गुज्झाणुचरिए ति वा, सम्मुच्छिए वा, णिवइए वा पओए वएज्ज वा वुट्ठबलाहगे त्ति वा।

एयं खलु भिक्खुस्स वा भिक्खुणीए वा सामग्गियं जं सव्वट्ठेहिं समिएहिं सहिए सया जएज्जासि

–त्ति बेमि।

॥ पढमो उद्देसओ सम्मत्तो ॥

१९१. कहने का प्रसंग उपस्थित होने पर प्रज्ञावान साधु या साध्वी आकाश को अन्तरिक्ष (आकाश) कहे या देवताओ के गमनागमन करने का मार्ग गुह्यानुचरित कहे। यह पयोधर (मेघ) झुक रहा है, जल देने वाला है, संमूर्च्छिम जल बरसाता है या यह मेघ बरसता है या बादल बरस चुका है, इस प्रकार की निर्दोष भाषा बोले।

उस साधु और साध्वी की साधुता की यही समग्रता है कि वह ज्ञान-दर्शन-चारित्ररूप तथा पॉच समितियों से युक्त होकर सदा भाषासमिति में प्रयत्नशील रहे।

–ऐसा मैं कहता है।

॥ प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

191. When an occasion arises a wise *bhikshu* or *bhikshuni* should call sky as space (sky) or the esoteric path of commuting used by gods. He should use faultless language such as—the clouds are gathering, it is going to rain, it causes rain spontaneously or this cloud causes rain, or this cloud has caused rain.

This is the totality (of conduct including that related to knowledge) for the *bhikshu* or *bhikshuni*. Equipped with the five self-regulations he endeavours to follow the code of speech.

—So I say.

|| END OF LESSON ONE ||

बीओ उद्देसओ | **द्वितीय उद्देशक** | **LESSON TWO**

सावद्य-निरवद्य भाषा-विवेक

१९२. से भिक्खू वा २ जहा वेगइयाइं रूवाइं पासेज्जा तहा वि ताइं णो एवं वइज्जा–गंडी गंडी ति वा, कुट्ठी कुट्ठी ति वा, जाव महुमेहुणी ति वा, हत्थच्छिण्णं हत्थच्छिण्णे ति वा, एवं पायच्छिण्णे ति वा, कण्णच्छिण्णे ति वा, नक्कच्छिण्णे ति वा, उट्ठच्छिण्णे ति वा। जे यावऽन्ने तहप्पगारा एयप्पगाराहिं भासाहिं बुइया २ कुप्पंति माणवा ते यावि तहप्पगाराहिं भासाहिं अभिकंख णो भासेज्जा।

१९२. संयमशील साधु-साध्वी यद्यपि अनेक रूपों को देखते हैं तथापि उन्हें देखकर वे इस प्रकार की भाषा न बोलें। जैसे कि गण्डी। (कण्ठमाला) गण्डमाला रोग से ग्रस्त या जिसका पैर सूज गया हो, उसको गण्डी, कुष्ठ रोग से पीड़ित को कोढ़ी, यावत् मधुमेह से पीड़ित रोगी को मधुमेही कहकर नहीं पुकारे। जिसका हाथ कटा हुआ हो उसे हाथकटा, पैर कटे को लँगड़ा, नाक कटे हुए को नकटा, कान कटे को कनकटा और ओठ कटे हुए को ओठकटा नहीं कहना चाहिए। ये तथा अन्य जितने भी इस प्रकार के (विकलांग) हों, उन्हें इस प्रकार आघातजनक शब्द बोलने पर उनके मन को आघात पहुँचता है, कुपित भी हो सकते हैं। अतः विवेकशील मुनि इस प्रकार की भाषा का प्रयोग न करे।

PRUDENCE OF SINFUL AND BENIGN SPEECH

192. Disciplined *bhikshu* or *bhikshuni* when sees a variety of forms he should avoid the use of such language—He should not address a man with swollen leg as plump-legged, a man suffering from leprosy as leper, or one suffering from diabetes as diabetic. He should not call a person with amputated hand as cripple, one with amputated leg as lame, a person with cut nose, ears, lips as nose-less, ear-less, lip-less, respectively. These or any other type of disabled may get hurt or angry if such impolite words are used. Therefore a prudent ascetic should avoid use of such language.

१९३. से भिक्खू वा २ जहा वेगइयाइं रूवाइं पासेज्जा तहा वि ताइं एवं वइज्जा, तं जहा–ओयंसी ओयंसी ति वा, तेयंसी तेयंसी ति वा, जसंसी जसंसी ति वा, वच्चंसी

वच्चंसी ति वा, अभिरूवं अभिरूवे ति वा, पडिरूवं पडिरूवे ति वा, पासाइयं पासाइए ति वा, दरिसणिज्जं दरिसणीए ति वा। जे यावऽन्ने तहप्पगारा एयप्पगाराहिं भासाहिं बुइया २ णो कुप्पंति माणवा ते यावि तहप्पगारा एयप्पगाराहिं भासाहिं अभिकंख भासेज्जा।

१९३. साधु-साध्वी विभिन्न रूपों को देखते हैं उनमें यदि कोई गुण हो तो उस गुण से उनको सम्बोधित करना चाहिए। जैसे कि–ओजस्वी को ओजस्वी, तेजसूयुक्त को तेजस्वी, वर्चस्वी–दीप्तिमान को वर्चस्वी। जिसकी यशःकीर्ति फैली हुई हो उसे यशस्वी, जो रूपवान हो उसे अभिरूप, प्रतिरूप को प्रतिरूप, प्रासाद–(प्रसन्नता) गुण से युक्त को प्रासादीय, देखने योग्य को दर्शनीय कहकर सम्बोधित किया जा सकता है। इस प्रकार की निरवद्य, निर्दोष भाषाओं से सम्बोधित करने पर वे कुपित नहीं होते। अतः साधु-साध्वी इस प्रकार की निरवद्य-सौम्य भाषाओं का विचार करके निर्दोष भाषा बोले।

193. When a disciplined *bhikshu* or *bhikshuni* sees a variety of forms he should address according to the existing attributes or virtues. For example—A person who is strong should be called strong, one having valour should be called valorous and one who has influence should be called influential. One who has fame all around should be called famous, one who has charming personality should be called handsome, one who is a likeness of someone should be called so, one who is filled with joy should be called joyous, one who is attractive to look at should be called attractive. The use of such benign and correct terms of address does not make them angry. Therefore a prudent ascetic should thoughtfully use such benign and correct language.

१९४. भिक्खू वा २ जहा वेगइयाइं रूवाइं पासेज्जा, तं जहा–वप्पाणि वा जाव गिहाणि वा तहावि ताइं णो एवं वइज्जा, तं जहा–सुकडे ति वा, सुट्ठुकडे ति वा, साहुकडे ति वा, कल्लाणं ति वा, करणिज्जे ति वा। एयप्पगारं भासं सावज्जं जाव णो भासेज्जा।

१९४. साधु-साध्वी यद्यपि अनेक प्रकार के दृश्य देखते हैं, जैसे कि उन्नत स्थान या खेतों की क्यारियाँ, खाइयाँ या नगर के चारों ओर बनी नहरें यावत् भवन आदि; इनके विषय में ऐसा नहीं कहें; जैसे कि यह अच्छा बना है, खूब अच्छा तैयार किया गया है,

सुन्दर बना है, यह कल्याणकारी है, यह करने योग्य है; इस प्रकार की सावद्य (सावद्य कार्य का अनुमोदन करने वाली) यावत् जीवोपघातकारी भाषा नहीं बोले।

194. When a disciplined *bhikshu* or *bhikshuni* sees a variety of forms (scenes) such as raised places, furrows, trenches, moats around a town, buildings etc., he should not say about these that it is well made, it is very well made, it is made beautiful, it is beneficial, it is worth making. He should not utter such sinful and violent (approving sinful activities that involve violence to beings) language.

१९५. से भिक्खू वा २ वेगइयाइं रूवाइं पासेज्जा, तं जहा–वप्पाणि वा जाव गिहाणि वा तहा वि ताइं एवं वइज्जा, तं जहा–आरंभकडे ति वा, सावज्जकडे ति वा, पयत्तकडे ति वा। पासाइयं पासाइए ति वा, दरिसणीयं दरिसणीए ति वा, अभिरूवं अभिरूवे ति वा, पडिरूवं पडिरूवे ति वा। एयप्पगारं भासं असावज्जं जाव भासेज्जा।

१९५. साधु-साध्वी खेतों की क्यारियाँ यावत् भवनगृह; आदि को देखने पर (कहने का प्रयोजन हो तो) इस प्रकार कहें जैसे–कि यह आरम्भ करके बनाया है। सावद्यकृत है या यह प्रयत्न-साध्य है। प्रसादगुण से युक्त को प्रासादीय, देखने योग्य को, दर्शनीय, अभिरूप (रूप सम्पन्न) को अभिरूप, प्रतिरूप को कहें। इस प्रकार विचारपूर्वक असावद्य यावत् जीवोपघात से रहित भाषा का प्रयोग करना चाहिए।

195. On seeing (if an occasion to speak about them arises) aforesaid things, from furrows to buildings, a *bhikshu* or *bhikshuni* should say—This has been made intentionally, sinfully and with an effort If it is palatial building it should be called so, if it is worth looking at it should be called attractive, if it is beautiful it should be called so, and if it resembles something it should be called so. He should thoughtfully utter such sinless and benign language.

१९६. से भिक्खु वा २ असणं वा ४ उवक्खडियं पेहाए तहा वि तं णो एवं वइज्जा, तं जहा–सुकडे ति वा, सुट्ठुकडे ति वा, साहुकडे ति वा, कल्लाणे ति वा, करणिज्जे ति वा। एयप्पगारं भासं सावज्जं जाव णो भासेज्जा।

१९६. साधु-साध्वी उपस्कृत–तैयार हुए अशनादि चतुर्विध आहार को देखकर भी इस प्रकार न कहे कि यह आहारादि पदार्थ अच्छा बना है या सुन्दर बना है, अच्छी तरह तैयार किया गया है या कल्याणकारी है और अवश्य करने योग्य है। इस प्रकार की सावद्य यावत् जीवोपघातकारी भाषा नहीं बोले।

196. When a disciplined *bhikshu* or *bhikshuni* sees a variety of eatables including the four types of food (staple food, liquids, general food and savoury food) should not say—It is well made, it is very well made, it is made beautiful, it is beneficial, it is worth making. He should not utter such sinful and violent (approving sinful activities that involve violence to beings) language.

१९७. से भिक्खू वा २ असणं वा ४ उवक्खडियं पेहाए एवं वइज्जा, तं जहा– आरम्भकडे ति वा, सावज्जकडे ति वा, पयत्तकडे ति वा, भद्दयं भद्देति वा, ऊसढं ऊसढे ति वा, रसियं रसिए ति वा, मणुण्णं मणुण्णे ति वा, एयप्पगारं भासं असावज्जं जाव भासेज्जा।

१९७. संयमी साधु-साध्वी मसालों आदि से तैयार किये हुए सुसंस्कृत आहार को देखकर (आवश्यकता होने पर) इस प्रकार कह सकते हैं कि यह आहारादि पदार्थ बहुत आरम्भ से बनाया है, सावद्यकृत है, अतीव प्रयत्नपूर्वक बना है, भद्र अर्थात् वर्ण, गंध, रस आदि से युक्त है, उत्कृष्ट है सरस है, मनोज्ञ है; इस प्रकार की निरवद्य यावत् हिंसारहित भाषा का प्रयोग करना चाहिए।

197. On seeing (if an occasion to speak about them arises) aforesaid well prepared food, a *bhikshu* or *bhikshuni* should say—this has been made intentionally, sinfully and with an effort. If it looks good it should be called so, if it has good aroma it should be called excellent, if it has good flavour it should be called savoury, and if it appears desirable it should be called so. He should thoughtfully utter such sinless and benign language.

१९८. से भिक्खू वा २ मणुस्सं वा गोणं वा महिसं वा मिगं वा पसुं वा पक्खिं वा सरीसिवं वा जलचरं वा से त्तं परिवूढकायं पेहाए णो एवं वइज्जा–थुल्ले ति वा, पमेइले ति वा, वट्टे ति वा, वज्झे ति वा, पाइमे ति वा। एयप्पगारं भासं सावज्जं जाव णो भासेज्जा।

१९८. साधु-साध्वी किसी मनुष्य, वृषभ-सांड, भैंसे, मृग या पशु-पक्षी, सर्प या जलचर आदि किसी परिपुष्ट शरीर वाले प्राणी को देखकर ऐसा नहीं कहे कि यह स्थूल है, इसके शरीर में बहुत मेद-चर्बी है। यह गोलमटोल है, यह वध करने या वहन करने योग्य है, यह पकाने योग्य है। इस प्रकार की पापकारिणी हिंसाजनक भाषा का प्रयोग नहीं करे।

198. When a disciplined *bhikshu* or *bhikshuni* sees a healthy man, bull, buffalo, deer, or animals and birds or reptiles or aquatic animals should not say—it is fat, it has plenty of flesh or fat, it is plump, it is fit to be killed, used as burden carrier or cooked. He should not utter such sinful and violent language.

१९९. से भिक्खू वा २ मणुस्सं वा जाव जलयरं वा से त्तं परिवूढकायं पेहाए एवं वइज्जा-परिवूढकाए ति वा, उवचियकाए ति वा, थिरसंघयणे ति वा, चित्तमंससोणिए ति वा, बहुपडिपुण्णइंदिए ति वा। एयप्पगारं भासं असावज्जं जाव भासेज्जा।

१९९. संयमशील साधु-साध्वी मनुष्य, बैल यावत् किसी भी विशालकाय परिपुष्ट शरीर वाले प्राणी को देखकर ऐसे कह सकता है कि यह पुष्ट शरीर वाला है, उपचितकाय है, इसके संहनन दृढ़ है, इसके शरीर में रक्त-माँस संचित है, इसकी सभी इन्द्रियाँ परिपूर्ण हैं। इस प्रकार की निरवद्य यावत् हिंसादि दोषों से रहित भाषा बोले।

199. On seeing (if an occasion to speak about them arises) aforesaid healthy man, bull etc., a *bhikshu* or *bhikshuni* should say—it has a healthy body, it has a perfect body, it has a strong constitution, its body is made of flesh and blood, it is complete in all respects. He should thoughtfully utter such sinless and benign language.

२००. से भिक्खू वा २ विरूवरूवाओ गाओ पेहाए णो एवं वइज्जा, तं जहा-गाओ दोज्झा ति वा दम्मा ति वा गोरहत्ति वा, वाहिमा ति वा, रहजोग्गा ति वा। एयप्पगारं भासं सावज्जं जाव णो भासेज्जा।

२००. संयमी साधु-साध्वी विविध जाति की गायों तथा गो जाति के पशुओं को देखकर ऐसा नहीं कहे कि ये गायें दोहने योग्य हैं अथवा इनको दोहने का समय हो रहा है तथा यह बैल दमन करने योग्य है, यह वृषभ छोटा (तीन वर्ष का युवक) है या यह

चित्र परिचय ९

Illustration No. 9
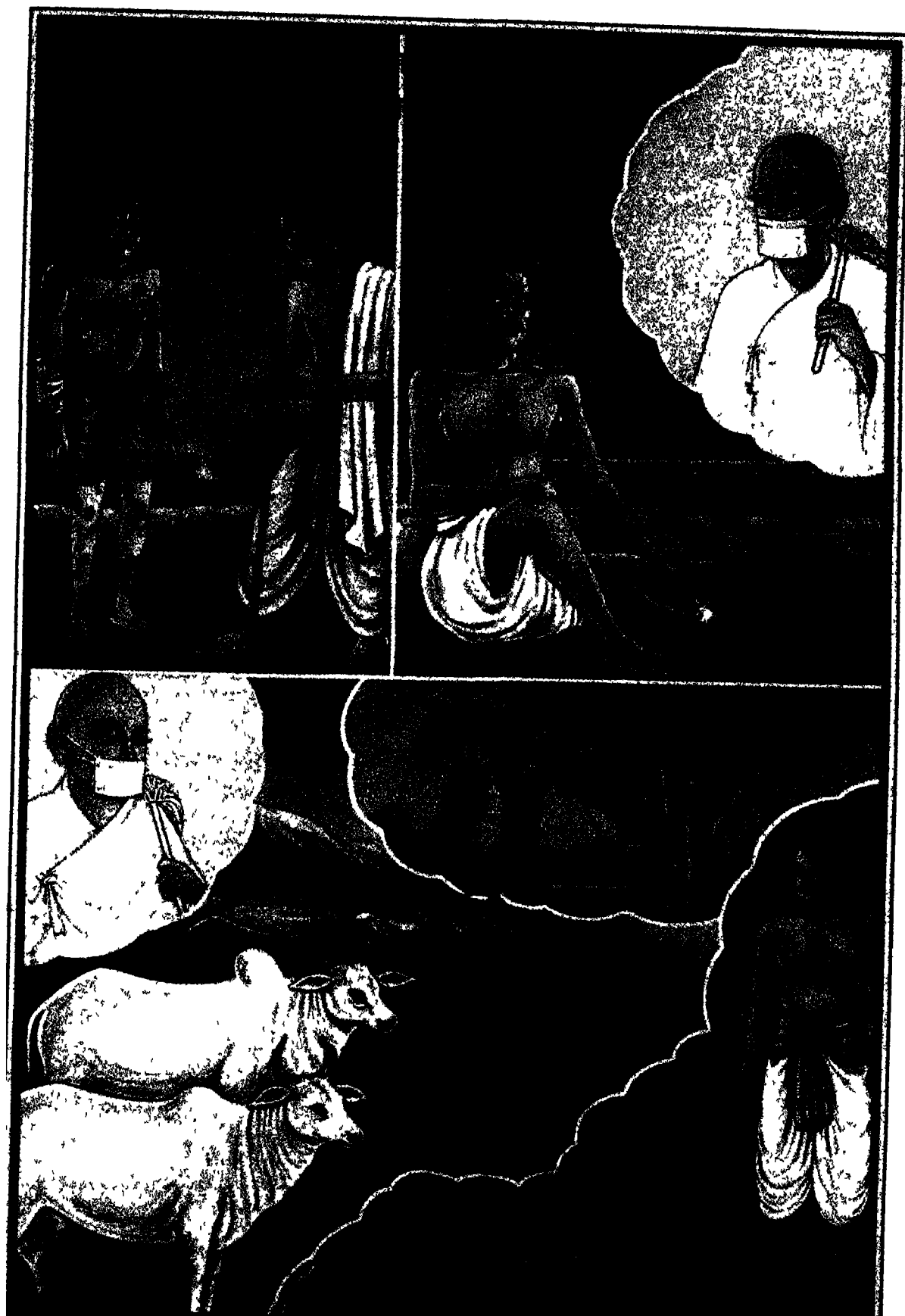
भाषा समिति

(१) **पीड़ाकारी भाषा निषेध**–भिक्षु कही किसी कुष्टी, अध, अपाहिज, रोगी, विकलाग आदि पुरुष को देखकर उनकी विकलागता का उल्लेख करके नही पुकारे क्योकि उससे उनके हृदय को पीडा पहुँचती है। (*सूत्र १९२*)

(२) **हिंसानुमोदिनी भाषा न बोले**–किसी मनुष्य को सुन्दर हृष्ट पुष्ट देखकर उसे मोटा है, ऐसा न बोले। दुधारू गायो आदि को देखकर दुहने योग्य है। भैसे को हृष्ट-पुष्ट देखकर वहन करने योग्य, कछुआ, शूकर आदि को मॉसल देखकर वध करने योग्य, मोर आदि को नाचते देखकर कला सिखाने योग्य, सुन्दर वृक्षो को काटने योग्य, मोटी लकडी को फर्नीचर बनाने योग्य है। इस प्रकार किसी भी प्राणी या वस्तु के लिए हिंसा का अनुमोदन करने वाली सावद्य भाषा का प्रयोग नही करना चाहिए।

–अध्ययन ४, सूत्र १९४, १९९

SELF-REGULATION OF SPEECH

(1) **Censure of hurtful language**—When an ascetic sees a leper, blind, disabled, sick or other such person he should not address him mentioning his disability because this hurts him (*aphorism 192*)

(2) **Avoid speech that condones violence**—Seeing a healthy person an ascetic should not call him fat Seeing milk bearing cows he should not say that they are ready for milking In the same way a healthy buffalo should not be called as good for carrying burden, large pig or tortoise should not be called as good for slaying, dancing peacocks should not be called as models to teach dancing, beautiful trees should not be called as good for cutting, thick log of wood should not be called as good for making furniture Thus an ascetic should avoid using such sinful language inspiring violence directed at some living being or an object.

—Chapter 4, aphorism 194, 199

वाहन का बोझा ढोने योग्य है, यह हल रथ आदि में जोतने योग्य है, इस प्रकार की सावद्य यावत् जीव-हिंसाकारिणी भाषा नहीं बोले।

200. When a disciplined *bhikshu* or *bhikshuni* sees a variety of domestic cattle he should not say—these are ready to be milked, it is time to milk them or that bull is fit to be punished, this bull is young and is fit to be made a beast of burden or yoked to a plough or cart. He should not utter such sinful and violent language.

२०१. से भिक्खू वा २ विरूवरूवाओ गाओ पेहाए एवं वइज्जा, तं जहा–जुवंगवे ति वा, धेणु ति वा, रसवती ति वा, महव्वए ति वा, संवहणे ति वा। एयप्पगारं भासं असावज्जं जाव अभिकंख भासेज्जा।

२०१. किन्तु आवश्यकता होने पर वह साधु या साध्वी गायों तथा गो जाति के पशुओं को देखकर इस प्रकार कह सकता है कि यह वृषभ जवान है, यह गाय प्रौढ़ है, दुधारू है, यह बैल बडा हो गया है, यह भार ढोने योग्य है। इस प्रकार की निरवद्य यावत् जीव-हिंसारहित भाषा का प्रयोग किया जा सकता है।

201. On seeing (if an occasion to speak about them arises) aforesaid healthy man, bull etc., a *bhikshu* or *bhikshuni* should say—this bull is young, this cow is mature and bears milk, this ox has matured and can carry burden. He should thoughtfully utter such sinless and benign language.

२०२. से भिक्खू वा २ तहेव गंतुमुज्जाणाइं पव्वयाइं वणाणि वा रुक्खा महल्ले पेहाए णो एवं वइज्जा, तं जहा–पासायजोग्गा ति वा, तोरणजोग्गा ति वा, गिहजोग्गा ति वा, फलिहजोग्गा ति वा, अग्गलजोग्गा ति वा, नावाजोग्गा ति वा, उदगदोणिजोग्गा ति वा, पीढ-चंगबेर-णंगल-कुलिय-जंतलट्ठी-णाभि-गंडी-आसणजोग्गा ति वा, सयण-जाण-उवस्सयजोग्गा ति वा। एयप्पगारं सावज्जं जाव णो भासेज्जा।

२०२. संयमी साधु-साध्वी कभी बगीचों में, पर्वतों पर या वनों में जाये तो वहाँ बड़े–मोटे वृक्षों को देखकर उनके सम्बन्ध में ऐसा नहीं कहे कि यह वृक्ष काटकर मकान आदि में लगाने योग्य है, यह तोरण (नगर का मुख्य द्वार) बनाने योग्य है, यह घर बनाने योग्य है, इसका फलक (तख्त) बन सकता है, इसकी अर्गला बन सकती है या नाव बन सकती

है, इसकी पानी की बड़ी कुण्डी अथवा छोटी नौका अच्छी बन सकती है अथवा यह वृक्ष चौकी (पीठ), काष्टमयी पात्री (बर्तन), हल, कुलिक (कुल्हाड़ी), यंत्रयष्टी (कोल्हू) चक्र की नाभि, काष्ठमय अहरन (सुनार का उपकरण) काष्ठ का आसन आदि बनाया जा सकता है अथवा काष्ठ शय्या (पलँग) रथ आदि यान, उपाश्रय आदि के निर्माण में काम आने योग्य है। इस प्रकार की पाप सहित यावत् जीव-हिंसा अनुमोदनी भाषा का प्रयोग नहीं करे।

202. When a disciplined *bhikshu* or *bhikshuni* sometimes goes into gardens, mountains or jungles, and sees large trees he should not say—this tree is good for falling and using in a building, this is good for making city gate, this is good for making a house or this can be used to make a plank, bolt, boat, a large tub or a small boat or this is good for stool, pot, plough, axe, axis of oil press, chisel handle, platform etc. or its wood can be used in making a bed, chariot, ascetic-hostel etc. He should not utter such sinful and violent language.

२०३. से भिक्खू वा २ तहेव गंतुमुज्जाणाइं पव्वयाणि वणाणि य रुक्खा महल्ल पेहाए एवं वइज्जा, तं जहा–जातिमंता ति वा, दीहवट्टा ति वा, महालया ति वा, पयायसाला ति वा, विडिमसाला ति वा, पासादिया ति वा जाव पडिरूवात्ति वा एयप्पगारं भासं असावज्जं जाव अभिकंख भासेज्जा।

२०३. संयमी साधु-साध्वी उद्यानों, पर्वतों या वनों में जाने पर, यदि प्रयोजन हो तो वहाँ विशाल वृक्षों को देखकर इस प्रकार की भाषा बोल सकता है कि ये वृक्ष उत्तम जाति के हैं, दीर्घ (लम्बे) हैं, वृत्त (गोल) हैं, ये महालय विस्तार वाले हैं, इनकी शाखाएँ फट गई हैं, इनकी प्रशाखाएँ दूर तक (ऊँची) फैली हुई हैं, ये वृक्ष मन को प्रसन्नता देने वाले हैं, दर्शनीय हैं, अभिरूप हैं, प्रतिरूप–सुन्दर हैं। इस प्रकार की निरवद्य यावत् जीवोपघातरहित भाषा का प्रयोग किया जा सकता है।

203. On seeing (if an occasion to speak about them arises) aforesaid large trees, *bhikshu* or *bhikshuni* should say—these are good species of trees, they are tall, round, large and thick, they have split branches, they have well developed and high branches, these trees are pleasing, enchanting, beautiful and

attractive. He should thoughtfully utter such sinless and benign language.

२०४. से भिक्खू वा २ बहुसंभूया वणफला पेहाए तहा वि ते णो एवं वएज्जा, तं जहा–पक्काइ वा, पायखज्जाइ वा, वेलोतियाइ वा, टालाइ वा, वेहियाइ वा। एयप्पगारं भासं सावज्जं जाव णो भासेज्जा।

२०४. साधु-साध्वी बहुत परिमाण में उत्पन्न हुए वन-फलों को देखकर इस प्रकार की भाषा नहीं बोले कि ये फल पक गये हैं, ये फल घास आदि में पकाकर खाने योग्य हैं, ये पक जाने से तोड़ने योग्य हैं, ये फल अभी बहुत कोमल हैं, क्योंकि इनमें अभी गुठली नहीं पड़ी है, ये फल खाने के लिए टुकड़े करने योग्य हैं। इस प्रकार की सावद्य यावत् जीव-हिंसा अनुमोदिनी भाषा नहीं बोलनी चाहिए।

204. When a disciplined *bhikshu* or *bhikshuni* sees a plentiful crop of wild fruits he should not say—these fruits are ripe, these are to be ripened in hay for eating, as they are ripe they are to be plucked, or these fruits are soft and without kernel, these are ready to be cut for eating. He should not utter such sinful and violent language.

२०५. से भिक्खू वा २ बहुसंभूया वणफला पेहाए एवं वएज्जा, तं जहा–असंथडा ति वा, बहुणिव्वट्टिमफला ति वा, बहुसंभूया ति वा, भूयरूवा ति वा। एयप्पगारं भासं असावज्जं जाव भासेज्जा।

२०५. आवश्यकता पड़ने पर साधु-साध्वी प्रचुर मात्रा में लगे वन-फलों को देखकर इस प्रकार की भाषा बोल सकते हैं कि ये फल वाले वृक्ष फलों के भार से नम्र हो रहे हैं। इनके फल प्रायः पक चुके हैं, ये वृक्ष एक साथ बहुत से फल देने वाले हैं अथवा ये भूतरूप–कोमल कच्चे फल हैं। इस प्रकार की दोषरहित यावत् जीवोपघातरहित भाषा का प्रयोग करना चाहिए।

205. On seeing (if an occasion to speak about them arises) aforesaid wild fruits, *bhikshu* or *bhikshuni* should say—these fruit bearing trees are loaded with fruits. The fruits on these trees are almost ripe, these trees produce plenty of fruits or the fruits are soft and not ripe. He should thoughtfully utter such sinless and benign language.

२०६. से भिक्खू वा २ बहुसंभूयाओ ओसहिओ पेहाए तहा वि ताओ णो एवं वएज्जा, तं जहा–पक्का ति वा, णीलिया ति वा, छवीया ति वा, लाइमा ति वा, भज्जिमा ति वा, बहुखज्जा ति वा। एयप्पगारं भासं सावज्जं जाव णो भासेज्जा।

२०६. साधु-साध्वी प्रचुर परिमाण में पैदा हुई औषधियों–गेहूँ, चावल आदि के लहलहाते पौधों को देखकर यों न कहे कि ये पक गई हैं या ये अभी नीली-कच्ची या हरी हैं, ये छवि–शोभा वाली हैं, ये अब काटने योग्य हैं, ये भूनने या सेंकने योग्य हैं, ये भलीभाँति खाने योग्य हैं या चिवड़ा बनाकर खाने योग्य हैं। इस प्रकार की सावद्य यावत् जीवहिंसानुमोदिनी भाषा का प्रयोग नहीं करे।

206. When a disciplined *bhikshu* or *bhikshuni* sees a plentiful crop of herbs, wheat, rice etc. he should not say—these crops are ripe, these are still greenish and not ripe, these crops have a fresh glow, they are ready to be harvested and roasted, they are ready to be eaten raw or after cooking. He should not utter such sinful and violent language.

२०७. से भिक्खू वा २ बहुसंभूयाओ ओसहीओ पेहाए तहा वि एवं वएज्जा, तं जहा–रूढा ति वा बहुसंभूयाइ वा, थिरा ति वा, ऊसढा ति वा, गब्भिया ति वा, पसूया ति वा, ससारा ति वा। एयप्पगारं असावज्जं जाव भासेज्जा।

२०७. साधु या साध्वी को यदि बोलना आवश्यक हो तो औषधियों आदि को देखकर इस प्रकार बोल सकते हैं कि इनमें बीज अंकुरित हो चुके हैं, ये अब जम गई हैं, सुविकसित या रस निष्पन्न हो चुकी हैं या ये ऊपर उठ गई हैं, ये (गर्भ में) भुट्टों; सिरों या बालियों से रहित हैं, अब ये भुट्टों आदि से युक्त हैं या धान्य में दाने पड़ गये हैं। इस प्रकार की निरवद्य यावत् जीव-हिंसारहित भाषा विचारपूर्वक बोल सकते हैं।

207. On seeing (if an occasion to speak about them arises) aforesaid crops, bhikshu or bhikshuni should say—these crops bear seeds now, they are firm, mature and grown; these are without ears and pods, now they have ears and pods or even seeds. He should thoughtfully utter such sinless and benign language.

विवेचन–साधु संयमी एवं अहिंसाव्रती होता है उन्हें सांसारिक लोगों की तरह ऐसी भाषा नहीं बोलनी चाहिए, जिससे दूसरे व्यक्ति हिंसादि पाप में प्रवृत्त हों या किन्हीं जीवों को पीड़ा, भय एवं

मृत्यु का दुःख प्राप्त हो। किसी जीव की हिंसा का अनुमोदन या प्रेरणा देने वाली हो। किसी भी विषय में बोलने से पहले उसके परिणाम को तौलना चाहिए। किसी जीव की विराधना उसके बोलने से होती है तो वैसी भाषा साधु को नहीं बोलनी चाहिए। इन सोलह सूत्रों (१९२-२०७) में सावद्य तथा जीव-हिंसानुमोदिनी भाषा बोलने का निषेध और निरवद्य तथा किसी को अप्रिय नहीं लगे ऐसी भाषा बोलने का विधान है।

Elaboration—An ascetic is a disciplined person and observes the vow of *ahımsa.* Unlike common man he is supposed to avoid use of a language that may inspire others to indulge in violence and sin or cause pain, terror or death to beings. It is not proper for him to use language that inspires or supports violence Before uttering about anything the consequences should be considered. If there is a chance of a beıng gettıng harmed due to his speech then the ascetic should never use such language. In these sixteen aphorisms (192-207) there is censure of language that supports violence and advice to use language that is benign and not offending to anyone.

विशेष शब्दों के अर्थ–'गंडी' के दो अर्थ बताये गये हैं–गण्ड (कण्ठ) माला के रोग से ग्रस्त अथवा जिसके पैर और पिण्डलियों में शून्यता आ गई हो। **तेयंसी**–शौर्यवान। **वच्चंसी**–दीप्तिमान। **पासादियं**–प्रसन्नता उत्पन्न करने वाला। **उवक्खडियं**–मसाले आदि देकर संस्कारयुक्त पकाया हुआ भोजन। **भद्दं**–प्रधान–मुख्य। **ऊसढं**–उत्कृष्ट या वर्ण, गन्धादि से युक्त। **पमेइले**–गाढ़ी चर्बी (मेद) वाला। **वज्झ**–वध्य या बहने योग्य। **गोरहगा**–हल में जोतने योग्य। **वाहिमा**–हल, धुरा आदि वहन करने मे समर्थ। **उदगदोणिजोग्गा**–जल का कुण्ड बनाने योग्य। **चंगबेर**–काष्ठमयी पात्री या बर्तन। **णंगल**–हल। **कुलियं**–खेत में घास काटने का छोटा काष्ठ का उपकरण। **जंतलट्ठी**–कोल्हू या कोल्हू का लट्ठ। **णाभि**–गाड़ी के पहिए का मध्य भाग। **गंडी**–गंडिक अहरन या काष्ठफलक। **विडिमसाला**–जिनमें प्रशाखाएँ फूट गई हैं। **पायखज्जाइं**–पराल आदि में कृत्रिम ढंग से पकाकर खाने योग्य। **वेलोइयाइं**–अत्यन्त पकने से तोड़ लेने योग्य। **टालाइं**–कोमल फल, जिनमें गुठली न आई हो। **वेहियाइं**–दो टुकड़े करने योग्य, वेध्य। **नीलियाओ**–हरी, कच्ची या अपक्व। **छवीया**–फलियाँ, छीमियाँ। **लाइमा**–लाई या मुडी आदि बनाने योग्य अथवा काटने योग्य। **भज्जिमा**–भूँजने–सेंकने योग्य। **बहुखज्जा** (पहुखज्जा)–चिवडा बनाकर खाने योग्य। *(वृत्ति पत्रांक ३९० तथा पाइय-सद्द-महण्णवो)*

Technical Terms : *Gandi*—tumors in neck; also numbness in legs. *Teyansi*—valorous. *Vachchansi*—radiant. *Pasadıyam*—that which invokes joy. *Uvakkhadiyam*—food that is properly cooked with condiments and other things. *Bhaddam*—chief; main. *Usadham*—

excellent; having good taste and flavour *Pameile*—fat or tallow *Vajjha*—fit to be slaughtered or bear load. *Gorahaga*—fit to be yoked to a plough. *Vahima*—fit to draw plough or oil press. *Udagadoniyogga*—good for making a water tub. *Changaber*—wooden pot. *Nangal*—plough *Kuliyam*—a small wooden tool to cut or mow grass. *Jantalatthi*—oil press or its log *Nabhi*—hub of a wheel *Gandi*—wooden plank *Vidimsala*—having branches *Payakhajjaim*—to ripen a plucked fruit by placing in hay or other such process. *Veloiyaim*—being over ripe fit to be plucked. *Talaim*—soft fruit in which kernel have not yet formed. *Vehiyaim*—fit to be broken or cut to pieces *Niliyao*—green, raw or unripe *Chhaviya*—pods of seeds. *Laima*—good to be cut or sliced. *Bhajjima*—good to be roasted *Bahukhajja*—grains fit to be eaten after flattening or making wafers. *(Vritti leaf 390 and Paia-Sadda-Mahannavo)*

शब्दादि विषयक भाषा-विवेक

२०८. से भिक्खू वा २ जहा वेगाइयाइं सद्दाइं सुणेज्जा तहा वि ताइं णो एवं वएज्जा, तं जहा–सुसद्दे ति वा, दुसद्दे ति वा। एयप्पगारं भासं सावज्जं जाव णो भासेज्जा।

२०८. साधु या साध्वी विभिन्न प्रकार के शब्दों को सुने और सुनकर उनके विषय में इस प्रकार न कहे–सुशब्द अच्छे मांगलिक शब्द को दुःशब्द तथा दुःशब्द को सुशब्द न कहे।

PRUDENCE RELATED TO WORDS AND SOUNDS

208. A *bhikshu* or *bhikshuni* on hearing various types of words and sounds should ensure that—good words or sounds are not called bad and bad words or sounds are not called good. He should not utter such sinful and violent language.

२०९. तहा वि ताइं एवं वएज्जा, तं जहा–सुसद्दं सुसद्दे ति वा, दुसद्दं दुसद्दे ति वा। एयप्पगारं असावज्जं जाव भासेज्जा।

एवं रूवाइं किण्हे ति वा ५, गंधाइं सुब्भिगंधे ति वा २, रसाइं तित्ताणि वा ५, फासाइं कक्खडाणि वा ८।

२०९. साधु-साध्वी कई शब्दों को सुनते हैं, उनके सम्बन्ध में आवश्यकता होने पर बोलना हो तो सुशब्द को 'यह सुशब्द है' और दुःशब्द को 'यह दुःशब्द है' इस प्रकार की निरवद्य यावत् जीव-हिंसारहित भाषा बोले।

इसी प्रकार रूपादि के विषय में–कृष्ण को कृष्ण यावत् श्वेत को श्वेत कहे। गन्धादि के विषय में सुगन्ध को सुगन्ध और दुर्गन्ध को दुर्गन्ध, रसादि के विषय में भी (तटस्थ भावपूर्वक) तिक्त को तिक्त यावत् मधुर को मधुर कहे, स्पर्शादि के विषय में कर्कश यावत् उष्ण को उष्ण कहना चाहिए।

209. On hearing (if an occasion to speak about them arises) aforesaid words and sounds—good words or sounds should be called good and bad words or sounds should be called bad. They should thoughtfully utter such sinless and benign language.

The same rule applies to form—black should be called black and white should be called white; smell—fragrance should be called fragrance and stench should be called stench; taste—bitter should be called bitter and sweet should be called sweet; and touch—rough should be called rough and smooth should be called smooth.

विवेचन–शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श, इन पंचेन्द्रिय विषयों के सम्बन्ध में क्या और कैसी भाषा बोलनी चाहिए यह विवेक इन दो सूत्रों में बताया गया है।

स्थानांगसूत्र में पाँचों इन्द्रियों के २३ विषय और २४० विकार बताए गये हैं, वे इस प्रकार हैं–

१ श्रोत्रेन्द्रिय के ३ विषय–(१) जीव शब्द, (२) अजीव शब्द, (३) मिश्र शब्द तथा १२ विकार–तीन प्रकार के शब्द, शुभ और अशुभ (३×२=६), इन पर राग और द्वेष (६×२=१२)।

२ चक्षुरिन्द्रिय के ५ विषय–(१) काला, (२) नीला, (३) लाल, (४) पीला, (५) सफेद वर्ण तथा ६० विकार–काला आदि ५ विषयों के सचित्त, अचित्त, मिश्र ये तीन-तीन प्रकार। इन १५ के शुभ और अशुभ दो-दो प्रकार, और इन ३० पर राग और द्वेष, यों कुल मिलाकर साठ हुए।

३. घ्राणेन्द्रिय के दो विषय–(१) सुगन्ध, और (२) दुर्गन्ध तथा १२ विकार–दो विषयों के सचित्त, अचित्त, मिश्र ये तीन-तीन प्रकार, फिर ६ पर राग-द्वेष होने से १२ हुए।

४. रसनेन्द्रिय के ५ विषय–(१) तिक्त, (२) कटु, (३) कषैला, (४) खट्टा, और (५) मधुर रस तथा ६० विकार–चक्षुरिन्द्रिय की तरह उसके पाँचों विषयों को समझें।

५. स्पर्शेन्द्रिय के आठ विषय–(१) कर्कश (खुर्दरा), (२) मृदु, (३) लघु, (४) (५) स्निग्ध, (६) रूक्ष, (७) शीत, और (८) उष्ण स्पर्श, तथा ९६ विकार–८ विषय अचित्त, मिश्र तीन-तीन प्रकार के होने से २४। इनके शुभ-अशुभ दो-दो भेद होने से ४८

और द्वेष होने से ९६ हुए। कुल सब मिलाकर–१२ + ६० + १२ + ६० + ९६ = २४०–इस प्रकार समझना चाहिए।

चूर्णिकार तथा वृत्तिकार का कथन है–साधु को पंचेन्द्रिय के विषयों में जो जैसा है, वैसा तटस्थ भावपूर्वक कहना चाहिए, बोलते समय राग या द्वेष से मन एवं वाणी को दूषित नहीं होने देना चाहिए।

Elaboration—These two aphorisms give codes about language to be used about the experiences of the five sense organs, namely sound, form, taste, smell and touch.

In *Sthananga Sutra* are listed 23 subjects and 240 variations related to five sense organs—

1 Three subjects of the organ of hearing—(1) living sound, (2) non-living sound, and (3) mixed sound. These three have a total of twelve variations. First, good and bad in each of the three making them six, and then attachment and aversion of these six making them twelve.

2 Five subjects of the organ of seeing—(1) black, (2) blue, (3) red, (4) yellow, and (5) white colours. These five have a total of sixty variations. First, with life, without life and mixed in each of the five making them fifteen, then good and bad in each of these fifteen making them thirty, and finally attachment and aversion of these thirty making them sixty.

3. Two subjects of the organ of smell—(1) fragrance, and (2) stench. These two have a total of twelve variations. First, with life, without life and mixed in each of the two making them six, and then attachment and aversion of these six making them twelve.

4. Five subjects of the organ of taste—(1) pungent, (2) bitter, (3) astringent, (4) sour, and (5) sweet. These five have a total of sixty variations exactly as in the case of the organ of seeing.

5. Eight subjects of organ of touch—(1) rough, (2) soft, (3) minute, (4) gross, (5) smooth, (6) dry, (7) cold, and (8) hot. These eight have a total of ninety six variations. First, with life, without life and mixed in each of the eight making them twenty four, then good and bad in each of these twenty four making them forty eight, and finally attachment and aversion of these forty eight making them ninety six. The total variations being 12 + 60 + 12 + 60 + 96 = 240.

The commentators, *Churni* and *Vritti,* say that with regard to the subjects of five sense organs an ascetic should say impartially what really is. While speaking he should not allow his mind and speech to be prejudiced by attachment and aversion.

भाषण-विवेक

२१०. से भिक्खू वा २ वंता कोहं च माणं च मायं च लोभं च अणुवीयि णिट्ठाभासी निसम्मभासी अतुरियभासी विवेगभासी समियाए संजए भासं भासेज्जा।

एयं खलु तस्स भिक्खुस्स वा भिक्खुणीए वा सामग्गियं जं सव्वट्ठेहिं सहिएहिं सदा जएज्जासि

–त्ति बेमि।

॥ बीओ उद्देसओ सम्मत्तो ॥

॥ चउत्थं अज्झयणं सम्मत्तं ॥

२१०. साधु या साध्वी क्रोध, मान, माया और लोभ का परित्याग करने वाले समग्र विचारपूर्वक निर्णय होने पर बोलने वाले और सुन-समझकर धीरे-धीरे तथा विवेकपूर्वक बोलने वाले हो, और भाषासमिति से युक्त संयत भाषा का व्यवहार करे।

यही वास्तव में साधु-साध्वी के आचार की समग्रता जिसमें वह सभी ज्ञानादि अर्थों से युक्त होकर सदा प्रयत्नशील रहे।

–ऐसा मैं कहता हूँ।

PRUDENCE IN SPEAKING

210. A *bhikshu* or *bhikshuni* should be free of anger, conceit, deceit and greed. He should speak only on arriving at a conclusion after due deliberation. He should speak slowly and sagaciously after listening and understanding. And his speech and language should be self-regulated and disciplined.

This is the totality (of conduct including that related to knowledge) for that *bhikshu* or *bhikshuni* which he should pursue with all sincerity.

—So I say.

विवेचन–इस सूत्र में समग्र भाषा अध्ययन का निष्कर्ष देते हुए शास्त्रकार ने भाषा प्रयोग के विषय में आठ विवेक सूत्र बताये हैं–

(१) क्रोध, मान, माया और लोभ का परित्याग करके बोले।

(२) प्रासंगिक विषय और व्यक्ति के अनुरूप विचार व चिन्तन करके बोले।

(३) पहले उस विषय का पूरा निश्चयात्मक ज्ञान कर ले, संशयात्मक बात नहीं कहे।

(४) किसी भी जीव को अप्रिय, अपमानजनक शब्द न बोले।

(५) जल्दी-जल्दी या अस्पष्ट शब्दों में न बोले।

(६) विवेकपूर्वक बोले।

(७) भाषासमिति का ध्यान रखकर बोले।

(८) संयत-परिमित शब्दों में बोले। *(वृत्ति पत्रांक ३९१)*

Elaboration—This aphorism gives the essence of this chapter on speech and includes eight points of prudence while speaking—

1. Be free of anger, conceit, deceit and greed.
2. Premeditate and deliberate in context of the subject and person.
3. Acquire complete and authentic knowledge of the subject and avoid ambiguity.
4. Avoid speaking words that are offending, insulting and harmful to any being.
5. Avoid speaking fast and incoherently.
6. Speak with prudence.
7. Observe code of self-regulating related to speech.
8. Speak with discipline or in a few words. *(Vritti leaf 391)*

विशेष शब्दों के अर्थ–'विवेगभासी' का अर्थ चूर्णिकार करते हैं–विविच्यते येन कर्म तं भाषेत–जिस भाषा-प्रयोग से कर्म आत्मा से पृथक् हो, वैसी दोषरहित भाषा बोले।

॥ द्वितीय उद्देसक समाप्त ॥

॥ चतुर्थ अध्ययन समाप्त ॥

Technical Terms : *Vivegabhasi*—according to the commentary *(Churni)* this means one who uses a faultless language that causes separation of *karmas* from soul.

|| END OF LESSON TWO ||

|| END OF FOURTH CHAPTER ||

वस्त्रैषणा : पंचम अध्ययन

आमुख

✦ आहार-पानी जीवन-निर्वाह का मुख्य आधार है। प्रथम अध्ययन में उक्त विषय का वर्णन किया है। द्वितीय अध्ययन में शय्या-स्थान, तृतीय अध्ययन में ईर्या-गमनागमन-विवेक तथा चतुर्थ अध्ययन में भाषा-विवेक का कथन करने के पश्चात् इस पंचम अध्ययन मे वस्त्र-एषणा के सम्बन्ध में चिन्तन है। अतः इस पंचम अध्ययन का नाम 'वस्त्रैषणा' है।

✦ साधक जब तक वस्त्ररहित (अचेलक) साधना की भूमिका पर नहीं पहुँच जाता, तब तक वह लज्जा-निवारण तथा संयम के निर्वाह के लिए वस्त्र ग्रहण करता है। किन्तु वह जो भी वस्त्र ग्रहण या धारण करता है, उस पर ममता-मूर्च्छा नहीं करे।

✦ चूर्णिकार के मतानुसार गुप्तांग के आच्छादन हेतु शीत, दंश, मशक आदि से परित्राण के लिए वस्त्र रखने का प्रतिपादन किया गया है। अतः जिस साधु को वस्त्र-धारण की इच्छा हो, उसे विविध-एषणा (गवेषणा, ग्रहणैषणा, परिभोगैषणा) का ध्यान रखना आवश्यक है। अन्यथा वस्त्र का ग्रहण एवं धारण भी अनेक दोषों से लिप्त हो सकता है।

✦ वस्त्र दो प्रकार के होते हैं–भाव-वस्त्र और द्रव्य-वस्त्र। भाव-वस्त्र ब्रह्मचर्य के अठारह हजार गुणों को धारण करना अथवा दिशाएँ या आकाश भाव-वस्त्र हैं। भाव-वस्त्र की याचना नहीं होती।

✦ द्रव्य-वस्त्र तीन प्रकार के होते हैं–(१) एकेन्द्रिय निष्पन्न (कपास, अर्कतूल, तिरीड़ वृक्ष की छाल, अलसी, सन (पटसन) आदि से निर्मित), (२) विकलेन्द्रिय निष्पन्न (चीनांशुक, रेशमी वस्त्र (सिल्क) आदि), और (३) पंचेन्द्रिय निष्पन्न (ऊनी वस्त्र, कम्बल आदि।

✦ इस अध्ययन में द्रव्य वस्त्रों के विषय में बताया है–वस्त्र किस प्रकार के, कैसे, कितने-कितने प्रमाण में, कितने मूल्य तक के, किस विधि से निष्पन्न; ग्रहण एवं धारण किये जायें। इसकी त्रिविध एषणा विधि 'वस्त्रैषणा अध्ययन' में वर्णित है।

✦ इस अध्ययन के दो उद्देशक हैं। प्रथम उद्देशक में वस्त्र-ग्रहण विधि का प्रतिपादन है, जबकि द्वितीय उद्देशक में वस्त्र-धारण विधि का प्रतिपादन है।

● ●

VASTRAISHANA : FIFTH CHAPTER

INTRODUCTION

- Food and water are the basic necessities to sustain life. The first chapter discusses that subject. The second chapter contains details about place of stay, the third about movement and the fourth about language. After this the subject discussed in this fifth chapter is exploration for dress. Therefore this chapter is titled *'Vastraishana'* or 'Search for Clothes'.
- A seeker uses clothes to protect his modesty and practice discipline as long he does not reach the spiritual level of unclad practices However, no matter what dress he wears he should avoid attachment and fondness for it.
- In the opinion of the commentator *(Churni)* keeping clothes is allowed for covering private parts and protecting the body from afflictions like cold and stings of insects. Therefore the ascetic who is desirous of wearing dress has to be aware of the codes of acquisition (exploration, acquisition and consumption). If that is not done the acquisition and wearing of dress may cause him to commit numerous faults.
- Clothes are of two types—*bhava vastra* (mental clothes) and *dravya vastra* (physical clothes). *Bhava vastra* includes acquiring the eighteen thousand attributes of *brahmacharya* (celibacy). In other words the sky and the cardinal directions are the *bhava vastra. Bhava vastra* is not sought as alms.
- *Dravya vastra* are of three types—(1) *Ekendriya nishpanna* (produced from one sensed beings such as cotton, *arktool* or fibres of swallow-wort, bark of *tirid* tree, *alsi* or linseed fibres, jute etc.),

Vikalendriya nishpanna (produced from more than one sensed beings such as silk etc.), and (3) *Panchendriya nishpanna* (produced from five sensed beings such as wool etc.).

- This chapter informs about physical clothes—what type of clothes in what quantity and of what price and origin should be taken and worn. Various procedures of exploring and acquiring are mentioned in the chapter *Vastraishana*.
- This chapter has two lessons. First lesson gives the procedure of accepting clothes and the second gives that of wearing.

● ●

वत्थेसणा : पंचमं अज्झयणं
वस्त्रैषणा : पंचम अध्ययन
VASTRAISHANA : FIFTH CHAPTER
SEARCH FOR CLOTHES

पढमो उद्देसओ | **प्रथम उद्देशक** | **LESSON ONE**

ग्राह्य-वस्त्रों का प्रकार व परिमाण

२११. से भिक्खू वा २ अभिकंखेज्जा वत्थं एसित्तए। से जं पुण वत्थं जाणेज्जा, तं जहा–जंगियं वा भंगियं वा साणियं वा पोत्तगं वा खोमियं वा तूलकडं वा। तहप्पगारं वत्थं जे णिग्गंथे तरुणे जुगवं बलवं अप्पायंके थिरसंघयणे से एगं वत्थं धारेज्जा, णो बिइयं।

जा णिग्गंथी सा चत्तारि संघाडीओ धारेज्जा एगं दुहत्थवित्थारं, दो तिहत्थवित्थाराओ, एगं चउहत्थवित्थारं। तहप्पगारेहिं वत्थेहिं असंधिज्जमाणेहिं अह पच्छा एगमेगं संसीवेज्जा।

२११. संयमी साधु-साध्वी वस्त्र की गवेषणा करना चाहते हों, तो वस्त्रों के सम्बन्ध में जानना चाहिए, जैसे–(१) जांगमिक, (२) भांगिक, (३) सानिक, (४) पोत्रक, (५) क्षौमिक, और (६) तूलकृत। ये छह प्रकार के तथा इसी प्रकार के अन्य वस्त्र को भी मुनि ग्रहण कर सकता है। जो साधु तरुण है; तीसरे या चौथे आरे का जन्म हुआ है, बलवान, रोगरहित और स्थिर (दृढ़ शरीर) वाला है, वह एक ही वस्त्र धारण करे, दूसरा नहीं।

परन्तु साध्वी चार संघाटिका–चादर धारण कर सकती है–उसमें एक दो हाथ प्रमाण चौड़ी, दो तीन हाथ प्रमाण और एक चार हाथ प्रमाण लम्बी-चौड़ी होनी चाहिए। इस प्रकार के वस्त्र न मिलने पर वह वस्त्र को दूसरे के साथ सी ले।

THE TYPE AND QUANTITY OF ACCEPTABLE CLOTHES

211. When a disciplined *bhikshu* or *bhikshuni* wants to explore for clothes he should first know this about clothes—(1) *Jangamik*, (2) *Bhangik*, (3) *Sanik*, (4) *Potrak*, (5) *Kshaumik*, and (6) *Toolkrit*.

An ascetic can accept these six types and other such types of clothes. A male ascetic who is young, born in the third or fourth phase of the time cycle, strong, free of ailments and of sturdy constitution, should wear only one cloth, not any more.

But a female ascetic can wear four pieces of cloth out of which one should be two cubits long, two three cubits long and one four cubits long. If exact lengths are not available she could stitch two pieces together.

विवेचन--प्रस्तुत सूत्र के अलावा स्थानांग, बृहत्कल्प आदि सूत्रों में भी साधु द्वारा ग्रहणीय वस्त्र के प्रकारों का वर्णन मिलता है। स्थानांगसूत्र में जिन पाँच प्रकार के वस्त्रों का उल्लेख है, उनमें क्षौमिक और तूलकृत का नामोल्लेख नहीं है, इनके बदले 'तिरीडुपट्ट' का उल्लेख है। इन छह प्रकार के वस्त्रों की व्याख्या इस प्रकार है--

१. **जांगमिक**-(जांगिक) जंगम (त्रस) जीवों से निष्पन्न। वह दो प्रकार का है-विकलेन्द्रियजन्य (लट कीट आदि) और पंचेन्द्रियजन्य।

विकलेन्द्रियजन्य वस्त्र पाँच प्रकार का है-(१) पट्टज, (२) सुवर्णज (मटका), (३) मलयज, (४) अंशक, और (५) चीनांशुक। ये सब कीटों (शहतूत के कीड़े वगैरह) के मुँह से निकले तार (लार) से बनते हैं।

पंचेन्द्रिय प्राणी से निष्पन्न वस्त्र अनेक प्रकार के होते हैं, जैसे-(१) **और्णिक**-(भेड, बकरी आदि की ऊन से बना हुआ), (२) **औष्ट्रिक**-(ऊँट के बालों से बना हुआ), (३) **मृगरोमज**-शशक या मूषक के रोम या बालमृग के रोएँ से बना हुआ, (४) **किट्ट**-(अश्व आदि के रोएँ से बना हुआ), और (५) **कुतप**-(चर्म-निष्पन्न या बाल-मृग, चूहे आदि के रोएँ से बना हुआ)। *(विशेषावश्यक भाष्य, गाथा ८७८ वृत्ति मूषिकलोमनिष्पन्नं-कौतवम्)*

२. **भांगिक**-भांगिक उसे कहते हैं जो अलसी से निष्पन्न है अथवा वंशकरील के मध्य भाग को कूटकर बनाया जाता है। मूल सर्वास्तिवाद के विनयवस्तु, पृ. ९२ में भी 'भांगेय' वस्त्र का उल्लेख है। यह वस्त्र भांग वृक्ष के तन्तुओं से बनाया जाता था। अभी भी कुमाऊँ (उ. प्र.) में इसका प्रचार है, वहाँ 'भागेला' नाम से जानते हैं। *(डॉ. मोतीचन्द; भारतीय विद्या १/१/४१)*

३. **सानिक (सानज)**-पटसन (पाट), लोध की छाल, तिरीड़ वृक्ष की छाल के तन्तु से बना हुआ वस्त्र सानज होता है।

४. **पोत्रक**-ताड़ आदि के पत्रों के समूह से निष्पन्न वस्त्र पोत्रक कहलाता है।

५. **खोमियं (क्षौमिक)**-कपास (रुई) से बना हुआ वस्त्र खोमिय कहलाता है।

६. **तूलकड (तूलकृत)**-आक आदि की रुई से बना हुआ वस्त्र तूलकड कहा जाता है।

वर्तमान समय में साधु-साध्वी प्रायः सूती और ऊनी वस्त्र ही धारण करते हैं। किन्तु तरुण साधु के लिए एक ही वस्त्र धारण करने की प्राचीन परम्परा आज तो समाप्त जैसी ही दीखती है।

श्रमणियों के लिए जो चार चादर धारण करने का विधान है, उनमें से दो हाथ वाली चादर उपाश्रय में ओढ़े, तीन हाथ वाली भिक्षा काल में तथा स्थंडिल भूमि के लिए जाते समय ओढ़े तथा चार हाथ वाली चादर धर्मसभा आदि में बैठते समय ओढ़े। *(बृहत्कल्प भाष्य, गा. ३६६१, ३६६३ वृत्ति निशीथ ६/१०, १२ की चूर्णि में)*

प्राकृत कोष के अनुसार 'जुगवं' का अर्थ है–समय के उपद्रव से रहित। आचार्य श्री आत्माराम जी म. के अनुसार तीसरे-चौथे आरे में जन्मे हुए पुरुष।

बौद्ध श्रमणों के लिए छह प्रकार के वस्त्र विहित है–कौशेय, कंबल, कार्पासिक, क्षौम (अलसी की छाल से बना), शाणज (सन से बना) तथा भंगज (भंग की छाल से बना) वस्त्र। ब्राह्मणों (द्विजों) के लिए निम्नोक्त छह प्रकार के वस्त्र अनुमत हैं–कृष्ण मृग-चर्म, रुरु (मृग विशेष) चर्म, छाग-चर्म, सन का वस्त्र, क्षुपा (अलसी) एवं मेष (भेड) के लोम से बना वस्त्र।

भंगिय शब्द का अर्थ रेशमी वस्त्र भी होता है। एक रेशमी वस्त्र ऐसा भी आता है जिसके लिए कीडों को मारना नहीं पडता उसे टसर रेशम कहते हैं। आजकल रेशमी वस्त्र के सम्बन्ध में जो विस्तृत जानकारी मिल रही है उससे पता चलता है कि उस रेशम को तैयार करने में कीडों आदि की भयकर हिंसा होती है, अत. ऐसा घोर हिंसाजन्य वस्त्र अहिंसक साधु के लिए धारणीय है या नहीं यह चिन्तन का विषय है।

आगम में वस्त्र के छह प्रकार बताये हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि मुनि ये छह प्रकार के वस्त्र धारण करे। यहाँ केवल वस्त्र की जानकारी मात्र देना ही अपेक्षित लगता है। वस्त्र सम्बन्धी चर्चा से प्राचीन काल की उन्नत शिल्पकला का भी पता चलता है कि आजकल के विकसित यंत्रों के अभाव में भी उस समय में कितने कलापूर्ण, बारीक वस्त्रों का निर्माण किया जाता था।

Elaboration—Besides this *Sutra,* the details about the types of clothes acceptable to an ascetic are also available in *Sthananga, Vrihatkalpa* and other *Sutras.* The five types mentioned in *Sthananga Sutra* does not include *Kshaumik* and *Toolakrit.* In place of these is mentioned *Tiridupatta.* The details about the six mentioned here are as follows—

(1) *Jangamik*—That which is of the *jangam* (mobile beings) origin. It is of two kinds—of *vikalendriya* (two to four sensed beings) origin and of *panchendriya* (five sensed beings) origin.

चित्र परिचय १०

Illustration No. 10
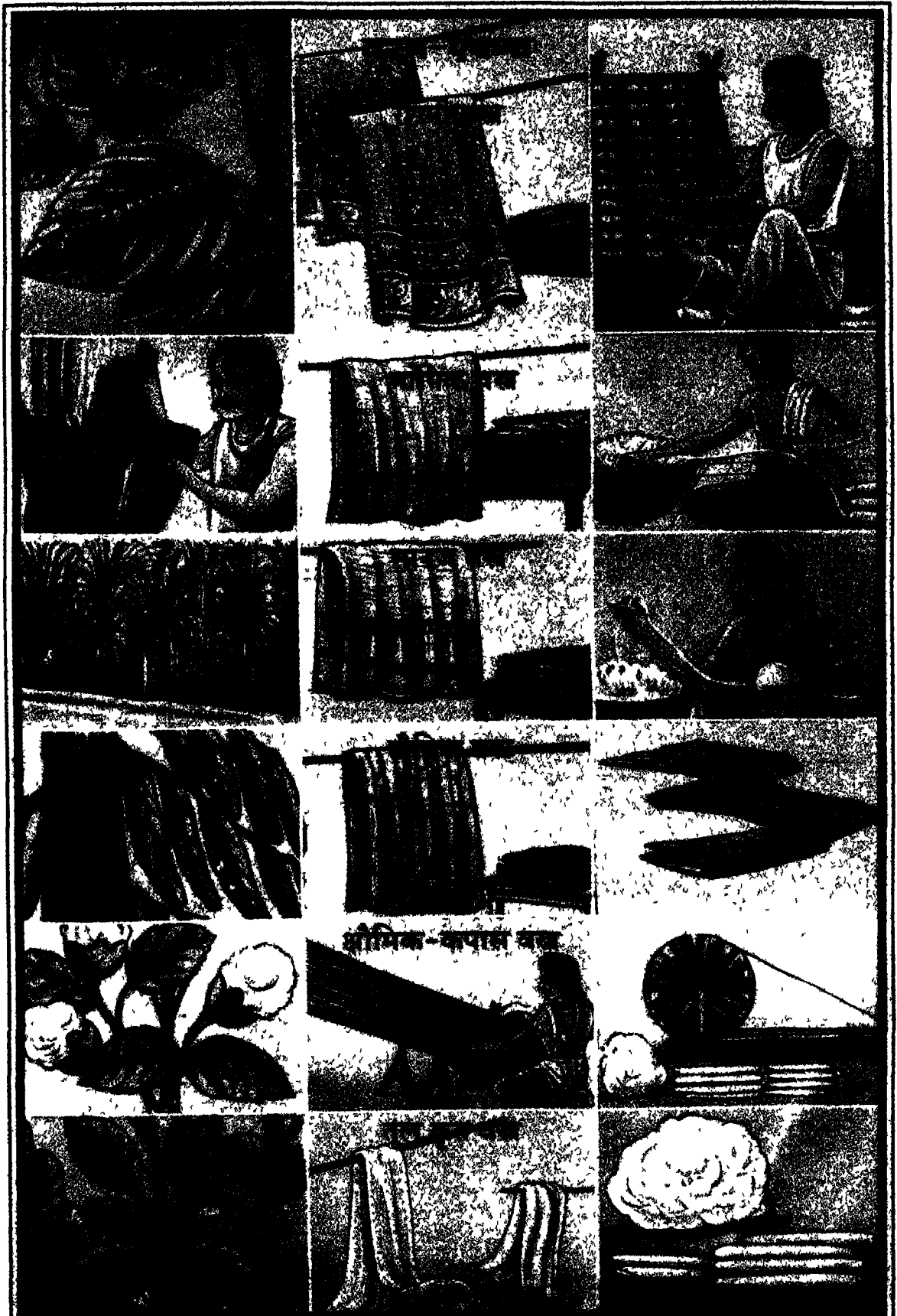
वस्त्र-एषणा : वस्त्रों के प्रकार

जो साधु-साध्वी अपने लिए वस्त्र ग्रहण करना चाहे वह जाने कि वस्त्र छह प्रकार के होते है-

(१) **जांगिक (जांगमिक)**–त्रस जीवो से निष्पन्न। (अ) विकलेन्द्रिय त्रस जीव निष्पन्न वस्त्र-शहतूत के कीडो आदि की लार से बने विविध प्रकार के रेशमी वस्त्र, अथवा (ब) पचेन्द्रिय जीवो के बाल, रोम आदि से बने वस्त्र।

(२) **भांगिक वस्त्र**–अलसी से निष्पन्न तथा वशकरील के मध्य भाग को कूटकर बनाये हुए वस्त्र।

(३) **सानज**–पटसन, वृक्ष की छाल आदि से बने वस्त्र।

(४) **पौत्रक**–ताड आदि के पत्तो से बने वस्त्र।

(५) **क्षौमिक**–कपास आदि से बने वस्त्र।

(६) **तूलकृत**–आक आदि की रुई से बने वस्त्र।

साधु अल्प मूल्य वाले सूती और ऊनी वस्त्र मर्यादा अनुसार धारण कर सकता है।

-अध्ययन ५, सूत्र २११

SEEKING CLOTH : TYPES OF CLOTH

An ascetic who wants to get clothes for himself should know that clothes are of six kinds—

(1) **Jangik (jangamik)**—of animal origin (a) *Vikalendriya* (two to four sensed beings) origin—different types of silk from silkworms, or (b) *Panchendriya* origin—made of fur or skin of animals and birds

(2) **Bhangik**—of linseed origin or made by pounding the pith of *vanshakareel* plant (the shoot of a bamboo plant)

(3) **Sanaj**—made of fibres produced from the bark of plants like jute.

(4) **Potrak**—made of a bunch of large leaves like those of palm

(5) **Kshaumik**—made of cotton.

(6) **Toolkrit**—made of fibres of swallow-wort and other such fibres

An ascetic can use low cost cotton or woollen clothes within his prescribed limit

—Chapter 5, aphorism 211

The *vikalendriya* origin clothes are of five types—(1) *pattaj,* (2) *suvarnaj (mataka),* (3) *malayaja,* (4) *anshak,* and (5) *chinanshuk.* All these are produced by saliva of worms (mulberry-worms or other such worms), in other words they are types of silk produced by different species of silk-worms.

The *panchendriya* origin clothes are of many varieties, such as—(1) *aurnik* (made of sheep or goat wool), (2) *aushtrik* (made of camel wool), (3) *mrigaromaj* (made of fur of rabbit, rat like animals or young deer), (4) *kitt* (made of horse hair), (5) *kutap* (made of leather or fur of young deer or rat like animals). *(Visheshavashyak Bhashya, verse 878 mentions that kutap means made of fur of rat like animals)*

2. *Bhangik*—That which is of linseed origin or is made by pounding the pith of *vanshakareel* plant (the shoot of a bamboo plant). In the *Vinayavastu* chapter of *Mool Sarvastivad,* p. 92 also there is a mention of *bhangeya* cloth which was made of fibres of *bhang* plant (hemp) Even today this cloth is in use in the Kumaon region of Uttar Pradesh. It is called *bhagela* there. *(Dr Motichand, Bharatiya Vidya 1/1/41)*

3. *Sanik* or *sanaj*—That which is made of fibres produced from the bark of jute, *lodh* (Symplocos Racemosa) and *tirid* plants.

4. *Potrak*—That which is made of a bunch of large leaves like those of palm.

5. *Kshaumik*—That which is made of cotton.

6. *Toolkrit*—That which is made of fibres of swallow-wort and other such fibres.

In modern times ascetics use only cotton and woolen clothes. The ancient tradition of a young ascetic wearing only one cloth is almost extinct now.

The code of using four clothes for a female ascetic includes that she should use the two cubits cloth in the place of stay, the three cubits cloth when she goes to collect alms or to relieve herself, and the four cubits cloth when she sits in a religious assembly or other such occasion. *(Vrihatkalpa Bhashya Vritti, verses 3661, 3663; Nishith Churni 6/10, 12)*

According to the Prakrit dictionary *'jugavam'* means free of the disturbances of time. Acharya Shri Atmaramji M. has interpreted it as people born in the third and fourth phase of the time cycle.

Six kinds of clothes have been prescribed for Buddhist monks—*kausheya, kambal, karpasik, kshauma* (made of linseed bark), *shanaj* (made of jute) and *bhangaj* (made of bark of hemp). The six kinds of clothes allowed for Brahmins are—black deer skin, *ruru* deer skin, goat skin, jute cloth, *kshupa* (linseed cloth) and sheep wool cloth.

Bhangiya cloth also means silk. There is a type of silk for which silk-worms are not killed, it is called tusser silk. The detailed information gathered recently about silk reveals that the process of making silk involves cruelly destroying a large number of worms. Thus it is a matter worth investigating and contemplating if cloth produced by such extremely violent process should be used by non-violent ascetics or not.

In *Agam* six types of clothes have been mentioned. This does not mean that ascetics should use only these six types of clothes. It appears that the purpose of this mention is just to give information about clothes. This discussion about clothes also informs about the ancient but advanced craft of making cloth. Even in absence of the modern advanced machines and technology how fine and artistic cloth was made in that period.

वस्त्र-ग्रहण की क्षेत्र-सीमा

२१२. से भिक्खू वा २ परं अद्धजोयणमेराए वत्थपडियाए नो अभिसंधारेज्जा गमणाए।

२१२. वस्त्र की याचना करने के लिए साधु-साध्वी आधे योजन से आगे जाने का विचार नहीं करे।

AREA RANGE FOR ACCEPTING CLOTHES

212. To beg for cloth, a *bhikshu* or *bhikshuni* should not go beyond half a *yojan*.

औद्देशिक आदि दोषयुक्त वस्त्रैषणा का निषेध

२१३. से भिक्खू वा २ से जं पुण वत्थं जाणेज्जा अस्सिंपडियाए एगं साहम्मियं समुद्दिस्स पाणाइं। जहा पिंडेसणाए भाणियव्वं। एवं बहवे साहम्मिया, एगं साहम्मिणिं, बहवे साहम्मिणीओ, बहवे समण-माहण तहेव पुरिसंतरकडं जहा पिंडेसणाए।

२१३. साधु-साध्वी को वस्त्र के विषय में यह जानना चाहिए कि त्यागी निर्ग्रन्थ साधु को देने की प्रतिज्ञा (संकल्प) से कोई भावुक गृहस्थ किसी एक साधर्मिक साधु या साध्वी का उद्देश्य कर, या अनेक साधु-साध्वियों के लिए प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों का समारम्भ करके (तैयार कराया हुआ) वस्त्र पुरुषान्तरकृत हो या न हो, उस वस्त्र को अप्रासुक और अनेषणीय समझकर मिलने पर भी ग्रहण न करे।

जैसे पिण्डैषणा अध्ययन में एक साधर्मिकगत आहार-विषयक वर्णन किया गया है उसी प्रकार यहाँ वस्त्र-विषयक वर्णन कहना चाहिए।

CENSURE OF FAULTY CLOTHES

213. A *bhikshu* or *bhikshuni* should find about clothes if some devout householder has brought clothes prepared by a process involving violence to *prani* (beings), *bhoot* (organisms), *jiva* (souls), and *sattva* (entities), specifically with the purpose of giving it to some co-religionist ascetic or ascetics. If it is so, considering it to be faulty and unacceptable, he should not take it, when offered, irrespective of its being *purushantarakrit* or not.

The details about food prepared for co-religionist mentioned in the chapter *Pindaishana* should be repeated here adapting it for clothes.

विवेचन—इस सूत्र में साधु-साध्वी के उद्देश्य से बनाया गया आधाकर्म दोषयुक्त वस्त्र ग्रहण का सर्वथा निषेध है चाहे वह पुरुषान्तरकृत हो या न हो। यदि वह वस्त्र शाक्य आदि श्रमण-ब्राह्मणों के लिए बनाया गया हो, तो पुरुषान्तरकृत होने पर दाता द्वारा काम में लेने के बाद साधु-साध्वी उस वस्त्र को ग्रहण कर सकते हैं।

वस्त्र ग्रहण करने या न करने की सम्पूर्ण विधि पिंडैषणा अध्ययन के अनुसार ही समझना चाहिए।

Elaboration—In this aphorism there is a complete censure of clothes prepared specifically for ascetics or involving *aadhakarma* fault whether it is *purushantarkrit* or not. If such cloth is made for Buddhist, Brahmin and other such monks it can be taken by ascetics if it has been used by the donor or is *purushantarakrit*.

The complete procedure of accepting or rejecting clothes should be taken to be same as that mentioned in the chapter *Pindaishana* regarding food.

२१४. से भिक्खू वा २ से जं पुण वत्थं जाणेज्जा अस्संजए भिक्खूपडियाए कीयं वा धोयं वा रत्तं वा घट्टं वा मट्टं वा संमट्टं वा संपधूविये वा, तहप्पगारं वत्थं अपुरिसंतरकडं जाव णो पडिगाहेज्जा। अह पुणेवं जाणेज्जा पुरिसंतरकडं जाव पडिगाहेज्जा।

२१४. साधु-साध्वी को वस्त्र के विषय में यह जानना चाहिए कि किसी गृहस्थ ने साधु को देने के निमित्त उसे खरीदा है, धोया है, रँगा है, घिसकर साफ किया है, चिकना या मुलायम बनाया है, संस्कारित किया है, धूप, इत्र आदि से सुवासित किया है, यदि ऐसा वस्त्र अभी पुरुषान्तरकृत नहीं हुआ है, तो ऐसे अपुरुषान्तरकृत यावत् अनासेवित वस्त्र को ग्रहण नहीं करे। यदि जाने कि वह वस्त्र पुरुषान्तरकृत यावत् आसेवित हो गया है तो प्रासुक व एषणीय समझकर उसे ग्रहण कर सकता है।

214. A *bhikshu* or *bhikshuni* should find about clothes if some householder has bought it, washed it, dyed it, rubbed it to clean or make it smooth or soft, processed it, or made it fragrant with incense or perfume for the purpose of giving it to ascetics. If it is so and such cloth is not *purushantarakrit* he should not take such unused cloth. If he finds that it is *purushantarakrit* he may take it considering it to be faultless and acceptable.

विवेचन—इस सूत्र में उत्तरगुण में लगने वाले दोषों से बचने का आदेश है। साधु के लिए खरीदा हुआ, धोया हुआ, रँगा हुआ आदि सस्कारित वस्त्र ग्रहण करने का निषेध है। परन्तु यदि वह वस्त्र पुरुषान्तरकृत हो गया हो तो ग्रहण किया जा सकता है।

पिछले सूत्रानुसार साधु के उद्देश्य से निर्मित वस्त्र तो किसी भी स्थिति में ग्राह्य नहीं है। किन्तु यदि वस्त्र साधु के लिए खरीदकर अन्य क्रियाएँ की गई हों तो वह पुरुषान्तरकृत होने पर ग्राह्य माना गया है। *(विवेचन—आचार्य श्री आत्माराम जी म., पृ ११८४)*

'रत्तं' के विषय में समाधान–भगवान महावीर के शासन के साधु-साध्वी रंगीन वस्त्र ग्रहण नहीं करते, किन्तु भगवान अजितनाथ (द्वितीय तीर्थंकर) से भगवान पार्श्वनाथ (२३वें तीर्थंकर) तक के शासन के साधु-साध्वी पाँचों रंगों के वस्त्र धारण कर सकते थे। यह पाठ तीनों काल के साधुओं की दृष्टि से लगता है। 'रत्त' का एक अर्थ यह भी सम्भव है कि तुरन्त उड़ने वाले रंग, इत्र या चन्दन के चूर्ण या केसर आदि किसी पदार्थ से सुगन्धित करते समय जल्दी छूट जाने वाले रंग से स्वाभाविक रूप से रँगा हुआ वस्त्र। *(अर्थागम प्रथम खण्ड, आचा. द्वि. श्रुत., पृ. १३०)*

Elaboration—This aphorism advises to avoid the subsidiary faults. Taking cloth that is processed (bought, washed, dyed etc.) specifically for ascetics is proscribed. However, if that is already used it can be taken.

According to the preceding aphorism any cloth made specifically for ascetics is not to be taken under any condition. However, if it has been bought for ascetics and then other processes have been performed it is believed to be acceptable if it is *purushantarakrit*. *(Hindi Tika by Acharya Shri Atmaramji M, p 1184)*

Clarification about *'rattam'*—The ascetics of the religious order of *Bhagavan* Mahavir do not use coloured clothes but those of the religious orders of the second (*Bhagavan* Ajit Nath) to the twenty third (*Bhagavan* Parshva Nath) *Tirthankars* could wear clothes of five colours. This reading of the text appears to be for ascetics of all the three periods. Another meaning of *ratta* could be 'vanishing colour'. A cloth naturally coloured by vanishing colour of a perfume, sandalwood powder, saffron or other such material. *(Arthagama first part, Acharanga second part, p 130)*

२१५. से भिक्खू वा २ से जाइं पुण वत्थाइं जाणेज्जा विरूवरूवाइं महद्धणमुल्लाइं, तं जहा–आईणगाणि वा सहिणाणि वा सहिणकल्लाणाणि वा आयाणि वा कायाणि वा खोमियाणि वा दुगुल्लाणि वा पट्टाणि वा मलयाणि वा पन्नुण्णाणि वा अंसुयाणि वा चीणंसुयाणि वा देसरागाणि वा अमिलाणि वा गज्जलाणि वा फालियाणि वा कोयवाणि वा कंबलगाणि वा पावाराणि वा, अण्णयराणि वा तहप्पगाराइं वत्थाइं महद्धणमोल्लाइं लाभे संते णो पडिगाहेज्जा।

२१५. संयमशील साधु-साध्वी महाधन से प्राप्त होने वाले ऐसे मूल्यवान नाना प्रकार के वस्त्रों के सम्बन्ध में जाने, जैसे कि–आजिनक–(चूहे आदि के चर्म से बने हुए)।

श्लक्ष्ण-(सहिण) वर्ण और छवि आदि के कारण बहुत सूक्ष्म या मुलायम। श्लक्ष्णकल्याण-सूक्ष्म और मंगलमय चिन्हों से अंकित। आजक-किसी देश की सूक्ष्म रोएँ वाली बकरी के रोम से निष्पन्न। कायक-इन्द्रेनीलवर्ण कपास से निर्मित। क्षौमिक दुकूल-गौड़ देश में उत्पन्न विशिष्ट कपास से बने हुए वस्त्र। पट्टरेशम-के वस्त्र। मलयज-(चन्दन) के सूत से बने या मलय देश में बने वस्त्र। वल्कल-तन्तुओं से निर्मित वस्त्र। अंशक-बारीक वस्त्र। चीनांशुक-चीन देश के बने अत्यन्त सूक्ष्म एवं कोमल वस्त्र। देशराग-एक प्रदेश से रँगे हुए। अमिल-रोम देश में निर्मित। गर्जल-पहनते समय बिजली के समान कड़कड़ शब्द करने वाले वस्त्र। स्फटिक-स्फटिक के समान स्वच्छ पारसी कंबल या मोटा कंबल। अन्य इसी प्रकार के बहुमूल्य वस्त्र भी प्राप्त होने पर विचारशील साधु उन्हें ग्रहण नहीं करे।

215. A disciplined *bhikshu* or *bhikshuni* should know about various highly expensive clothes such as—*Ajinak* (made of fur of rat like animals). *Shlakshna (sahin)*—fine and soft in terms of texture and design. *Shlakshnakalyan*—with fine print of auspicious signs. *Ajak*—made of fine fibres of animals of some goat species. *Kayak*—made from cotton of deep blue colour. *Kshaumik dukul*—made of special cotton found in the Gaud country. *Pattaresham*—a type of silk. *Malayaj*—made of sandalwood fibre or silk from Malaya country (modern Mysore and adjoining area). *Valkal*—made of fibres from bark of a plant. *Anshak*—fine cloth. *Chinanshuk*—very fine fabric from China. *Desharaag*—partially coloured cloth. *Amil*—fabrics from Rome. *Garjal*—clothes that produce chattering sound while wearing. *Sfatik*—snow white Persian blankets or heavy blankets. An ascetic should not accept these and other such expensive clothes even when offered.

२१६. से भिक्खू वा २ से जं पुण आईणपाउरणाणि वत्थाणि जाणेज्जा, तं जहा-उद्दाणि वा पेसाणि वा पेसलाणि वा किण्हमिगाईणगाणि वा णीलमिगाईणगाणि वा गोरमिगाईणगाणि वा कणगाणि वा कणगकंताणि वा कणगपट्टाणि वा कणगखइयाणि वा कणगफुसियाणि वा वग्घाणि वा विवग्घाणि वा आभरणाणि वा आभरणविचित्ताणि वा अण्णयराणि वा तहप्पगाराइं आईणपाउरणाणि वत्थाणि लाभे संते णो पडिगाहेज्जा।

२१६. साधु-साध्वी चर्म या रोम से निष्पन्न वस्त्र के सम्बन्ध में जाने, जैसे कि–औद्र–सिन्धु देशज मत्स्य के चर्म और सूक्ष्म रोमों से बने वस्त्र। पेष–सिन्धु देश के सूक्ष्म चर्म वाले जानवरों से बने। पेषलेश–उसी के चर्म पर स्थित सूक्ष्म रोमों से बने हुए, कृष्ण, नील और गौरवर्ण के मृगों के चमड़ों से निर्मित वस्त्र, स्वर्णरस में लिपटे वस्त्र, सोने की कान्ति वाले वस्त्र, सोने के रस पट्टियाँ दिये हुए वस्त्र, सोने के पुष्प-गुच्छों से अंकित, सोने के तारों से जटित, और स्वर्ण चन्द्रिकाओं से स्पर्शित, व्याघ्र चर्म, चीते का चर्म, आभरणों से मण्डित, आभरणों से चित्रित ये तथा अन्य इसी प्रकार के चर्म-निष्पन्न प्रावरण–वस्त्र प्राप्त होने पर भी ग्रहण नहीं करे।

216. A disciplined *bhikshu* or *bhikshuni* should know about various clothes produced from skin or fur such as—*Audra*—clothes made of skin and fine fur of a fish found in the Sindhu country. *Pesh*—clothes made of fine skin of animals found in Sindhu country. *Peshlesh*—clothes made of leather of black, blue and white deer, clothes made of gold covered fabric, clothes with golden glow, clothes with golden strips, clothes decorated with bunches of golden flowers, clothes made of golden brocade, clothes adorned with golden stars, tiger skin, leopard skin, gem studded clothes, clothes with ornamental designs and other such clothes made of skins. An ascetic should not accept such clothes even when offered.

विवेचन–इन सूत्रों में उस युग में प्रचलित अनेक प्रकार के बहुमूल्य एवं चर्म-निर्मित वस्त्रों के ग्रहण का निषेध किया गया है। इसके निम्नलिखित कारण हो सकते हैं–

(१) ये अनेक प्रकार के प्राणियों के आरम्भ-समारम्भ से तैयार होते थे।

(२) बहुमूल्य होने से चोरों या धन-लोभी व्यक्तियों द्वारा इनके चुराये जाने या लूटे–छीने जाने का भय बना रहता है।

(३) साधुओं के द्वारा ऐसे वस्त्रों की अधिक माँग होने पर ऐसे वस्त्रों के लिए उन-उन पशुओं की हिंसा की जायेगी, पंचेन्द्रिय वध किया जायेगा।

(४) साधुओं को इन बहुमूल्य वस्त्रों पर मोह, मूर्च्छा पैदा हो सकती है। संचित करके रखने की वृत्ति बढ़ सकती है।

(५) साधुओं का जीवन सुकुमार विभूषा-प्रधान बन जायेगा।

(६) इतने बहुमूल्य वस्त्र साधारण गृहस्थ के यहाँ मिल नहीं सकते। अतः साधु विशिष्ट धनाढ्य गृहस्थ से मांगेगा। वह यदि भक्तिभाव वाला नहीं होगा, तो साधुओं को ऐसे कीमती वस्त्र नहीं देगा और साधु उन्हें परेशान भी करेंगे।

(७) भक्तिमान धनाढ्य गृहस्थ मोल लाकर या विशेष रूप से बुनकरों से बनवाकर देगा।

(८) चमड़े के वस्त्र घृणाजनक, अपवित्र और अमंगल होने से इनका उपयोग साधुओं के लिए उचित एवं शोभास्पद नहीं।

श्री अभयदेवसूरि ने महामूल्य की परिभाषा इस प्रकार की है–'पाटलिपुत्र के सिक्के से जिसका मूल्य अठारह मुद्रा (सिक्का–रुपया) से लेकर एक लाख मुद्रा (रुपया) तक हो वह महामूल्य वस्त्र होता है। *(स्थानांगसूत्र वृत्ति, पत्र ३२)*

विनयपिटक (महावग्ग) ८/८/१२, पृ. २९८ में शिवि देश में बने 'सिवेय्यक वस्त्र' का उल्लेख है, जो एक लाख मुद्रा में मिलता था।

Elaboration—In these aphorisms taking clothes that are very expensive and made of skin has been censured Following may be the reasons for this—

(1) These were produced by harming and killing various types of animal.

(2) Being expensive there always was a fear of theft or snatching by thieves and greedy people.

(3) If there was a demand of such clothes by ascetics more animals and five sensed beings would be killed.

(4) Ascetics could develop fondness and craving for such expensive clothes as also the tendency to hoard these.

(5) The life-style of ascetics would become adornment oriented and permissive.

(6) Such expensive clothes are not available with ordinary citizens. Therefore ascetics will have to approach affluent people. If they are not devoted they will not offer expensive clothes and consequently the ascetics will pester them.

(7) Devout and affluent people will specially purchase or get such clothes made for ascetics.

(8) As leather clothes are abhorrent, impure and inauspicious it is not proper and becoming of ascetics to use them.

Shri Abhayadev Suri has defined very expensive as—a cloth with a price range between eighteen to a hundred thousand gold coins of Patliputra is called very expensive. *(Sthananga Vritti, leaf 32)*

In *Vinayapitik (Mahavagga) 8/8/12, p. 298* is a mention of *siveyyak* cloth made in Shivi country that was available for one hundred thousand gold coins.

विशेष शब्दों के अर्थ–'आइणगाणि' आदि शब्दों के अर्थ–आचारांगचूर्णि, निशीथचूर्णि आदि में इन पदों के भिन्न-भिन्न अर्थ दिये गये हैं। **आइणगाणि**–अजिन–चर्म से निर्मित। **आयाणि**–तोसलि देश में अत्यन्त सर्दी पड़ने पर बकरियों के खुरों में सेवाल जैसी वस्तु लग जाती है, उसे उखाडकर उससे बनाये जाने वाले वस्त्र। **कायाणि**–कौए की जाँघ की मणि जिस तालाब में पड़ जाती है, उसकी मणि जैसी प्रभा होती है, उन काकमणि रंजित वस्त्रों को काकवस्त्र कहते हैं। **खोमियाणि**–क्षोम कहते हैं पौंड–पुष्पमय वस्त्र को, अथवा जैसे वट-वृक्ष से शाखाएँ निकलती हैं, वैसे ही पौंड-वृक्षों से लम्बे-लम्बे रेशे निकलते हैं, उनसे बने हुए वस्त्र। **'पोंडमया खोम्मा, अण्णे भण्णंति रुक्खेहितों निग्गोच्छंति, जहा वडेहिंतो पादगा सहा।'**–पुष्पों के रेशे से बना या वृक्षों से निकलने वाले रस से बना हुआ वस्त्र। **'क्षौमिक'** का अर्थ वृत्तिकार ने सामान्य कपास से बना हुआ वस्त्र किया है, लेकिन यहाँ महँगे वस्त्रों की सूची में उसे दिया है, इसका रहस्य यह है कि जो सूती वस्त्र हो, लेकिन बहुत ही बारीक हो, उस पर सोने-चाँदी आदि के किनारी गोटे लगे हुए हों तो वह बहुमूल्य हो जायेगा। *(निशीथचूर्णि, उ ७)*

दुगुल्लाणि–दुकूल एक वृक्ष का नाम है, उसकी छाल लेकर ऊखल में कूटी जाती है, जब वह भुस्से जैसी हो जाती है तब उसे पानी में भिगोकर रेशे बनाकर वस्त्र निर्माण किया जाता है। **पट्टाणि**–तिरीड़ वृक्ष की छाल के तन्तु पट्टसदृश होते हैं, उनसे निर्मित वस्त्र तिरीड़पट्ट वस्त्र अथवा रेशम के कीड़ों के मुँह से निकलने वाले तारों से बने वस्त्र। अनुयोगद्वार सूत्र ३७ की टीका के अनुसार–किसी जंगल में संचित किये हुए माँस के चारों ओर एकत्रित कीड़ों से 'पट्ट' वस्त्र बनाये जाते थे। **मलयाणि**–मलय देश (मैसूर आदि) में चन्दन के पत्तों को सड़ाया जाता है, फिर उनके रेशों से बनाये वस्त्र। **पत्तुण्णाणि**–वल्कल से बने हुए बारीक वस्त्र **'पत्रोर्ण'** का उल्लेख महाभारत २/७८/५४ में भी है। **देसरागा**–जिस देश में रँगने की जो विधि है, उस देश में रँगे हुए वस्त्र। **गज्जलाणि**–जिनके पहनने पर विद्युत्‌गर्जन-सा कड़कड़ शब्द होता है, वे गर्जल वस्त्र। **कणगो**–सोने को पिघलाकर उससे सूत रँगा जाता है और वस्त्र बनाये जाते हैं। **कणगकंताणि**–जिनके सोने की किनारी हो, ऐसे वस्त्र। **विवग्घाणि**–चीते का चमड़ा। *(पाइअ-सद्द महण्णवो)*

कौतप आदि के ग्रहण का निषेध है। कौतप, कंबल (फारस देश के बने गलीचे) तथा प्रावारक महँगे होने के अतिरिक्त ये बीच-बीच में छूँछे, छिद्र वाले या पोले होते हैं, जिनमें जीव घुस जाते हैं, जिनके मरने की आशंका रहती है तथा प्रतिलेखन भी ठीक से नहीं हो सकता, इन सब दोषों के कारण ये वस्त्र अग्राह्य माने गये हैं। सुसि दोसाय ण गृण्हीयात्। कोयव-कंबलपावारादीणि *(आचारांग चूर्णि मू. पा. टि., पृ. २०२)*

Technical Terms : In *Acharanga Churni, Nishith Churni* and many other texts terms like *ainagani* have been interpreted differently. *Ainagani (ajin)*—made from leather or skin. *Ayani*—In Tosil country during extreme winter a special type of weed sticks to the hoofs of goats. Clothes made by picking and processing these weeds. *Kayani*—when the bead from the thigh of a raven drops into a pond the water takes the hue of its colour. Cloth coloured with this water. *Khomiyani*—clothes made of *Paund* flowers; *Paund* tree produces fibrous roots hanging from its branches, cloth made of these fibres; cloth made of fibres from flowers or gum oozing out of trees. The commentator *(Vritti)* has interpreted *Kshaumik* as ordinary cotton cloth but here it is listed with expensive clothes. The reason for this is that even the cotton that is very fine and has gold work becomes expensive. *(Nishith Churni, Ch. 7)*

Duggalani—Dukool is a tree. Its bark is pounded and when it becomes powdery it is submerged in water. Cloth is made with fibres drawn from it. *Pattani*—The fibres of bark of *tirid* plant are flat like strips. Cloth made of these fibres. Silk from mulberry worms is also called *pattani.* According to the *Tika* of *Anuyogadvar Sutra patta*—cloth was made from worms collected around flesh heaped in jungle. *Malayani*—In Malaya country (modern Mysore and adjoining area) sandal wood leaves were fermented and fibres produced from it. Cloth made of these fibres. *Pattunnani (patrorna)*—mention of fine cloth made of *valkal* (bark) is also found in *Mahabharat 2/78/54. Desaraga*—clothes dyed by process popular in a particular area. *Gajjalani*—clothes that produce chattering sound like that of static electricity. *Kango*—cloth made of cotton yarn coloured with suspension of gold particles. *Kanagakantani*—clothes with golden borders. *Vivagghani*—leopard skin. *(Paia Sadda Mahannavo)*

Use of *kautap* (etc.) is prohibited. Besides being expensive *Kautap, kambal* (Persian carpet) and *pravarak* are loosely woven and are easily infested with insects. These things are prohibited because they are difficult to clean and insects ćan get killed. *(Acharanga Churni, p 202)*

वस्त्रैषणा की चार प्रतिमाएँ

२१७. इच्चेयाइं आयतणाइं उवाइकम्म अह भिक्खू जाणेज्जा चउहिं पडिमाहिं वत्थं एसित्तए–

[१] तत्थ खलु इमा पढमा पडिमा–से भिक्खू वा २ उद्दिसिय २ वत्थं जाएज्जा, तं जहा–जंगियं वा जाव तूलकडं वा। तहप्पगारं वत्थं सयं वा णं जाएज्जा परो वा से देज्जा, फासुयं एसणिज्जं लाभे संते जाव पडिगाहेज्जा।

[२] अहावरा दोच्चा पडिमा–से भिक्खू वा २ पेहाए २ वत्थं जाएज्जा, तं जहा–गाहावइ वा जाव कम्मकरी वा, से पुव्वामेव आलोएज्जा–आउसो ति वा भइणी ति वा दाहिसि मे एत्तो अण्णयरं वत्थं ? तहप्पगारं वत्थं सयं वा णं जाएज्जा, परो वा से देज्जा, फासुयं एसणिज्जं लाभे संते जाव पडिगाहेज्जा। दोच्चा पडिमा।

[३] अहावरा तच्चा पडिमा–से भिक्खू वा २ सेजं पुण वत्थं जाणेज्जा, तं जहा–अंतरिज्जगं वा उत्तरिज्जगं वा, तहप्पगारं वत्थं सयं वा णं जाएज्जा जाव पडिगाहेज्जा। तच्चा पडिमा।

[४] अहावरा चउत्था पडिमा–से भिक्खू वा २ उज्झियधम्मियं वत्थं जाएज्जा जं चऽन्ने बहवे समण-माहण-अतिहि-किवण-वणीमगा णावकंखंति, तहप्पगारं उज्झियधम्मियं वत्थं सयं वा णं जाएज्जा परो वा से देज्जा, फासुयं जाव पडिगाहेज्जा। चउत्था पडिमा।

इच्चेयाणं चउण्हं पडिमाणं जहा पिंडेसणाए।

२१७. संयमी साधु-साध्वी वस्त्रैषणा सम्बन्धी इन (पूर्वोक्त) दोषों को छोड़कर चार प्रतिमाओं–अभिग्रह-विशेषों से वस्त्रैषणा करे–

[१] पहली प्रतिमा–साधु या साध्वी मन में पहले संकल्प किये हुए वस्त्र की याचना करे, जैसे कि–जांगमिक यावत् तूल-निर्मित वस्त्रों में से एक प्रकार के वस्त्र ग्रहण का मन में निश्चय करे, उस प्रकार के वस्त्र की स्वयं याचना करे अथवा गृहस्थ स्वयं दे तो प्रासुक और एषणीय होने पर ग्रहण करे।

[२] दूसरी प्रतिमा–वह साधु या साध्वी वस्त्र को पहले गृहस्थ के पास देखकर फिर गृह-स्वामी यावत् नौकरानी आदि से उसकी याचना करे–"आयुष्मन् गृहस्थ भाई अथवा बहन ! क्या तुम इन वस्त्रों में से किसी एक वस्त्र को मुझे दोगे/दोगी?" यह दूसरी प्रतिमा हुई।

[३] तीसरी प्रतिमा–साधु या साध्वी (गृहस्थ के द्वारा उपयोग में लिया हुआ) पुराने वस्त्र के सम्बन्ध में जाने, जैसे कि–अन्दर पहनने के योग्य या ऊपर पहनने के योग्य चादर आदि अन्तरीय वस्त्र। उस प्रकार के वस्त्र की स्वयं याचना करे या गृहस्थ उसे स्वयं दे तो ग्रहण करे। यह तीसरी प्रतिमा हुई।

[४] चौथी प्रतिमा–जिस वस्त्र को बहुत से अन्य शाक्यादि भिक्षु यावत् भिखारी लोग भी लेना न चाहें ऐसे उज्झित-धार्मिक (फेंकने योग्य) वस्त्र की साधु या साध्वी स्वयं याचना करे अथवा वह गृहस्थ स्वयं ही साधु को दे तो उस वस्तु को प्रासुक और एषणीय जानकर ग्रहण कर ले।

जैसे पिण्डैषणा अध्ययन में वर्णन किया गया है, वैसे ही इन चारों प्रतिमाओं के विषय में यहाँ समझ लेना चाहिए।

FOUR *PRATIMAS* FOR ACQUIRING CLOTHES

217. Besides avoiding the said faults related to acquisition of clothes, an ascetic should also observe four *pratimas* (regulations or special resolves) while exploring for clothes—

[1] First *Pratima*—A *bhikshu* or *bhikshuni* should first seek the cloth he has resolved for. For instance he should resolve in advance to seek one of the said types of cloth, such as *jangamik* (etc. up to *toolkrit*). He should then specifically ask for that type of cloth or take it, if offered by a householder on his own, considering it to be faultless and acceptable.

[2] Second *Pratima*—A *bhikshu* or *bhikshuni* should first find if the householder has that cloth and then beg for it from the host (etc. up to maid)—"Long lived householder (brother or sister ! Would you please give one of these clothes to me ?" This is the second *pratima*.

[3] Third *Pratima*—A *bhikshu* or *bhikshuni* should find about the old clothes (used clothes) such as under or upper or other garments the householder has. He should then specifically seek for that type of cloth or take it, if offered by a householder on his own, considering it to be faultless and acceptable. This is the third *pratima*.

[4] Fourth *Pratima*—A *bhikshu* or *bhikshuni* should seek a cloth worth discarding or which is rejected by many other Buddhist monks (etc. up to destitute) or take it, if offered by a householder on his own, considering it to be faultless and acceptable.

The details about these four *pratimas* should be taken as those mentioned in the chapter *Pindaishana*.

विवेचन–पिण्डैषणा अध्ययन में जैसे पिण्डैषणा की चार प्रतिज्ञाएँ बताई गई हैं, वैसे ही यहाँ वस्त्रैषणा से सम्बन्धित चार प्रतिज्ञाएँ बताई गई हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं–

(१) **उद्दिष्टा**–अपने मन में पहले ही संकल्प किये हुए वस्त्र की याचना करना।

(२) **प्रेक्षिता**–किसी गृहस्थ के यहाँ वस्त्र देखकर उस वस्त्र की याचना करना।

(३) **परिभुक्ता**–गृहस्थ द्वारा पहने हुए अन्तरीय (भीतर पहने हुए) उत्तरीय (ऊपर पहने हुए, ओढ़े हुए) वस्त्र की याचना करना।

(४) **उज्झितधर्मिका**–जो वस्त्र गृहस्थ के काम आने योग्य नहीं रहा हो, ऐसे फेंकने योग्य वस्त्र की याचना करना।

बृहत्कल्पसूत्र वृत्ति, पृ. १८० तथा निशीथचूर्णि, उ. ५, पृ. ५६८ में भी इन चार प्रतिमाओं का वर्णन है।

Elaboration—In the *Pindaishana* chapter are mentioned four resolutions regarding exploration of food. In the same way are given four resolutions regarding exploration for clothes here. Their names are as follows—

(1) *Uddishta*—To seek a cloth about which a resolve has been made in advance.

(2) *Prekshita*—To beg for a cloth already seen with a householder.

(3) *Paribhukta*—To seek old clothes (used clothes) such as under or upper or other garments the householder has.

(4) *Ujjhitadharmika*—To beg for a cloth worth discarding being of no use to the householder.

These four *pratimas* are also mentioned in *Vrihatkalpasutra Vritti, p. 180* and *Nishith Churni, Ch. 5, p. 568.*

पश्चात्कर्म आदि अनैषणीय वस्त्र-ग्रहण का निषेध

२१८. सिया णं एयाए एसणाए एसमाणं परो वइज्जा–आउसंतो समणा ! एज्जाहि तुमं मासेण वा दसराएण वा पंचराएण वा सुते वा सुततरे वा, तो ते वयं अण्णयरं वत्थं दाहामो। एयप्पगारं णिग्घोसं सोच्चा निसम्म से पुव्वामेव आलोएज्जा–आउसो ! ति वा, भगिणी ! ति वा, णो खलु मे कप्पइ एयप्पगार संगारं पडिसुणेत्तए, अभिकंखसि मे दाउं इदाणिमेव दलयाहि।

२१८. वस्त्र की गवेषणा करने वाले साधु को यदि कोई गृहस्थ कहे कि "आयुष्मन् श्रमण ! इस समय तो तुम चले जाओ, एक मास या दस या पाँच दिन के बाद अथवा कल या परसों आना, तब हम तुम्हें एक वस्त्र देंगे।" इस प्रकार का कथन सुनकर वह साधु विचार कर पहले ही कह दे–"आयुष्मन् गृहस्थ अथवा बहन ! मुझे इस प्रकार का प्रतिज्ञापूर्वक वचन स्वीकारना नहीं कल्पता, यदि तुम मुझे वस्त्र देना चाहते हो तो अभी दे दो।"

CENSURE OF CLOTHES INVOLVING VARIOUS FAULTS

218. If some householder tells to an ascetic exploring for clothes—"Long lived *Shraman* ! Please go now and come after a month, ten or five days, tomorrow or the day after when I will give you a cloth." On hearing these words the ascetic should thoughtfully reply—"Long lived householder or sister ! It is not proper for me to accept such promise. If you want to give please give the cloth now."

२१९. से णेवं वयंतं परो वइज्जा–आउसंतो समणा ! अणुगच्छाहि, तो ते वयं अण्णयरं वत्थं दाहामो। से पुव्वामेव आलोएज्जा–आउसो ! ति वा, भइणी ! ति वा, णो खलु मे कप्पति एयप्पगारे संगारवयणे पडिसुणेत्तए, अभिकंखसि मे दाउं इयाणिमेव दलयाहि।

२१९. साधु के इस प्रकार कहने पर भी यदि वह गृहस्थ यों कहे कि–"आयुष्मन् श्रमण ! अभी तो तुम जाओ। थोड़ी देर बाद आना, हम तुम्हें एक वस्त्र दे देंगे।" इस पर वह मुनि उस गृहस्थ से कहे–"आयुष्मन् गृहस्थ अथवा बहन ! मेरे लिए इस प्रकार का संकेतपूर्वक वचन (संगार वचन–वायदा) स्वीकार करना नहीं कल्पता है। यदि मुझे देना चाहते हो तो इसी समय दे दो।"

219. Even after this if the householder tells—"Long lived *Shraman* ! Please go now and come after sometime when I will give you a cloth." On hearing these words the ascetic should thoughtfully reply—"Long lived householder or sister ! It is not proper for me to accept such promise. If you want to give please give the cloth now."

२२०. से सेवं वयंतं परो णेया वएज्जा–आउसो ! ति वा, भगिणी ! ति वा, आहरेयं वत्थं समणस्स दाहामो, अवियाइं वयं पच्छा वि अप्पणो सयट्ठाए पाणाइं ४ समारंभ समुद्दिस्स जाव चेइस्सामो। एयप्पगारं निग्घोसं सोच्चा निसम्म तहप्पगारं वत्थं अफासुयं जाव णो पडिगाहेज्जा।

२२०. साधु के इस प्रकार कहने पर यदि वह गृह-स्वामी (नेता) गृहस्थ घर के किसी सदस्य (बहन आदि) को बुलाकर यों कहे कि "आयुष्मन् या बहन ! वह वस्त्र लाओ, हम उसे श्रमण को देंगे। हम तो अपने लिए बाद में भी प्राणियों आदि का समारम्भ करके बनवा लेंगे।" गृहस्थ के इस प्रकार के शब्द सुनकर पश्चात्कर्म लगने का अनुमान करके वस्त्र को अप्रासुक एवं अनेषणीय जानकर भिक्षु ग्रहण नहीं करे।

220. At these words from the ascetic if the householder tells to some member of the family (sister etc.)—"Long lived brother or sister ! Please fetch that cloth, I will give it to the ascetic. For my use I will once again get another cloth made by causing harm to beings." On hearing these words the ascetic should think of the involved faults like *pashchatkarma* (consequent faults) and refuse to take it considering it to be faulty and unacceptable.

२२१. सिया णं परो णेया वएज्जा–आउसो ! ति वा, भइणी ! ति वा, आहर एयं वत्थं सिणाणेण वा जाव आघंसित्ता वा पघंसित्ता वा समणस्स णं दाहामो। एयप्पगारं

णिग्घोसं सोच्चा णिसम्म से पुव्वामेव आलोएज्जा–आउसो ! ति वा, भइणी ! ति वा, मा एयं तुमं वत्थं सिणाणेण वा जाव पघंसाहि वा, अभिकंखसि मे दाउं एमेव दलयाहि। से सेवं वदंतस्स परो सिणाणेण वा जाव पघंसित्ता दलएज्जा। तहप्पगारं वत्थं अफासुयं जाव णो पडिगाहेज्जा।

२२१. कदाचित् गृह-स्वामी घर के किसी व्यक्ति से इस प्रकार कहे कि "आयुष्मन् ! वह वस्त्र लाओ, तो हम उसे जल से धोकर, चन्दन आदि द्रव्य से, चूर्ण से या पद्म आदि सुगन्धित पदार्थों से घिसकर श्रमण को देवें।" उनका ऐसा वार्तालाप सुनकर साधु पहले से ही कह दे–"आयुष्मन् गृहस्थ ! इस वस्त्र को मत धोओ तथा द्रव्यों से आघर्षण या प्रघर्षण मत करो। यदि मुझे वह वस्त्र देना चाहते हो तो ऐसे ही दे दो।" साधु के द्वारा निषेध करने पर भी वह गृहस्थ धोने आदि की क्रिया करके उस वस्त्र को देने लगे तो साधु अप्रासुक एवं अनेषणीय जानकर उस वस्त्र को ग्रहण न करे।

221. If the householder tells to some member of the family (sister etc.)—"Long lived brother or sister ! Please fetch that cloth, I will wash it with water, rub sandal-wood or other fragrant powder on it or apply lotus or other perfumes on it and give it to the ascetic." On hearing these words the ascetic should at once tell—"Long lived householder ! Please do not wash the cloth or rub and apply perfumes on it. If you want to give please give the cloth as it is." Even after this warning by the ascetic if the householder proceeds to wash (etc.) before offering it the ascetic should refuse to take it considering it to be faulty and unacceptable.

२२२. से णं परो णेया वएज्जा–आउसो ! ति वा, भइणी ! ति वा, आहर एयं वत्थं सीओदगवियडेण वा उसिणोदगवियडेण वा उच्छोलेत्ता वा पहोलेत्ता वा समणस्स णं दाहामो। एयप्पगारं णिग्घोसं, तहेव, नवरं मा एयं तुमं वत्थं सीओदगवियडेण वा उसिणोदगवियडेण वा उच्छोलेहि वा पहोलेहि वा। अभिकंखसि मे दाउं सेसं तहेव जाव णो पडिगाहेज्जा।

२२२. यदि गृहपति घर के किसी सदस्य से कहे कि "आयुष्मन् ! उस वस्त्र को लाओ, हम उसे प्रासुक शीतल जल से या उष्ण जल से एक बार या कई बार धोकर श्रमण को दें।" इस प्रकार की बात सुनकर वह श्रमण पहले ही दाता से कहे–"आयुष्मन्

गृहस्थ ! इस वस्त्र को तुम प्रासुक शीतल जल या उष्ण जल से मत धोओ। यदि मुझे देना चाहते हो तो ऐसे ही दे दो।" साधु के मना करने पर भी यदि वह जल से धोकर देने लगे तो अप्रासुक एवं अनेषणीय जानकर ग्रहण न करे।

222. If the householder tells to some member of the family (sister etc.)—"Long lived brother or sister ! Please fetch that cloth, I will wash it with uncontaminated cold or hot water once or many times and give it to the ascetic." On hearing these words the ascetic should at once tell—"Long lived householder ! Please do not wash the cloth with uncontaminated cold or hot water. If you want to give please give the cloth as it is." Even after this warning by the ascetic if the householder proceeds to wash before offering it, the ascetic should refuse to take it considering it to be faulty and unacceptable.

२२३. से णं परो णेया वएज्जा–आउसो ! ति वा, भइणी ! ति वा, आहर एयं वत्थं कंदाणि वा जाव हरियाणि वा विसोधेत्ता समणस्स णं दाहामो। एयप्पगारं णिग्घोसं सोच्चा निसम्म जाव भइणी ! ति वा, मा एयाणि तुमं कंदाणि वा जाव विसोहेहि, णो खलु मे कप्पइ एयप्पगारे वत्थे पडिगाहित्तए।

से सेवं वदंतस्स परो कंदाणि वा जाव विसोहेत्ता दलएज्जा। तहप्पगारं वत्थं अफासुयं जाव णो पडिगाहेज्जा।

२२३. यदि वह गृह-स्वामी घर के किसी सदस्य से कहे कि "आयुष्मन् ! उस वस्त्र को लाओ, हम उस वस्त्र में कन्द यावत् हरी (वनस्पति) (बँधी हुई हो तो) निकालकर साधु को देंगे।" ऐसा सुनकर पहले ही दाता से कह दे–"आयुष्मन् गृहस्थ ! ऐसा मत करो। इस प्रकार का वस्त्र ग्रहण करना मुझे नहीं कल्पता है।"

साधु के द्वारा निषेध करने पर भी वह गृहस्थ कंद यावत् हरी वस्तु को निकालकर देने लगे तो उस वस्त्र को अप्रासुक एवं अनेषणीय समझकर ग्रहण न करे।

223. If the householder tells to some member of the family (sister etc.)—"Long lived brother or sister ! Please fetch that cloth, I will take out the bulbous roots (etc. up to green or vegetables bundled in it) and give it to the ascetic." On hearing these words the ascetic should at once tell—"Long lived

householder ! Please do not do that. I am not allowed to accept such cloth.

Even after this warning by the ascetic if the householder proceeds to remove vegetables from that cloth before offering it, the ascetic should refuse to take it considering it to be faulty and unacceptable.

वस्त्र-ग्रहण-पूर्व प्रतिलेखना विधान

२२४. सिया से परो णेत्ता वत्थं निसिरेज्जा, से पुव्वामेव आलोएज्जा–आउसो ! ति वा, भइणी ! ति वा, तुमं चेव णं संतयं वत्थं अंतोअंतेण पडिलेहिज्जिस्सामि। केवली बूया–आयाणमेयं। वत्थंतेण बद्धे सिया कुंडले वा गुणे वा हिरण्णे वा सुवण्णे वा मणी वा जाव रयणावली वा पाणे वा बीए वा हरिए वा। अह भिक्खूणं पुव्वोवदिट्ठा ४ जं पुव्वामेव वत्थं अंतोअंतेण पडिलेहेज्जा।

२२४. यदि गृह-स्वामी (घर से वस्त्र लाकर) साधु को दे, तो वह पहले ही उससे कह दे–"आयुष्मन् गृहस्थ या बहन ! तुम्हारे इस वस्त्र को मैं अन्दर-बाहर चारों ओर से खोलकर देखूँगा, क्योंकि केवली भगवान ने कहा है–'वस्त्र को प्रतिलेखना किये बिना लेना कर्मबन्धन का कारण है।' कदाचित् उस वस्त्र के किनारे पर कुछ बँधा हो, कोई कुण्डल बँधा हो या धागा, चाँदी, सोना, मणिरत्न यावत् रत्नों की माला बँधी हो या कोई प्राणी, बीज या हरी वनस्पति बँधी हो। इसीलिए भिक्षुओं के लिए तीर्थंकर आदि आप्त-पुरुषों ने उपदेश/निर्देश किया है कि वस्त्र-ग्रहण से पहले ही उस वस्त्र की अन्दर-बाहर चारों ओर से प्रतिलेखना करके ग्रहण करना चाहिए।"

PROCEDURE OF INSPECTING CLOTHES BEFORE TAKING

224. If the donor (brings the cloth from his house) and offers it, the ascetic should at once tell—"Long lived brother or sister ! I will unfold this cloth and inspect it properly from all sides because the Omniscient has said that 'to take a cloth without inspection is a cause of bondage of *karmas*.' There is a chance that something is tied at the end of the cloth, may be an earring, thread, silver, gold, gems or gem-string or even some living being, seeds or green vegetable. Therefore *Tirthankars* and other

sages have given instructions that ascetics should properly inspect clothes from all sides before accepting it."

विवेचन–वस्त्र ग्रहण करने से पूर्व वस्त्र को पहले अन्दर-बाहर सभी कोनों से अच्छी तरह देखभाल करने के पीछे बड़ी दीर्घदृष्टि छिपी है। वृत्तिकार उन सभी बातों की ओर संकेत करते हैं–(१) वस्त्र के पल्ले में कोई कीमती चीज बँधी हो, साधु को उसे रखने से परिग्रह दोष लगेगा। (२) गृहस्थ की वह वस्तु गुम हो जाने से साधु पर शंका हो सकती है। (३) वस्त्र बीच में से फटा हो तो साधु को वस्त्र ग्रहण करने का कोई लाभ नहीं होगा। (४) गृहस्थ ने साधु के लिए वस्त्र को विविध द्रव्यों से सुवासित कर रखा हो या उसमें बीच में फूल-पत्ती आदि या चाँदी-सोने के बेलबूटे किये हों। (५) उस वस्त्र में दीमक, खटमल, जूँ, चींटी आदि कोई जीव लगा हो, बीज बँधे हों या हरी वनस्पति बँधी हो। (६) किसी ने द्वेषवश उस वस्त्र पर विष लगा दिया हो, जिसे पहनते ही प्राण वियोग की सम्भावना हो। (७) उस वस्त्र की अपेक्षित लम्बाई-चौडाई न हो। इत्यादि कारणों से साधु अपनी निश्राय में वस्त्र लेने से पूर्व गृहस्थ से कहता है–"तुमं चेव णं संतियं वत्थं अंतोअंतेण पडिलेहिस्सामि।"–अर्थात् मैं प्रतिलेखन करता हूँ तब तक यह वस्त्र तुम्हारा ही है। *(वृत्ति पत्रांक ३९५)*

Elaboration—There is a far reaching purpose behind inspecting a cloth from all sides and every corner before taking it. The commentator *(Vritti)* explains all those points—(1) A valuable thing may have been tied with the end of the cloth. The ascetic will commit the fault of *parigraha* or having possessions. (2) When the householder loses that thing he may put blame on the ascetic. (3) If the cloth is torn in the middle it would be of no use to the ascetic. (4) The householder could have applied perfumes or embellished it with floral prints or gold-silver work specially for the ascetic. (5) The cloth could be infested with insects like termites, bedbug, louse, ant etc. or seeds and green vegetables could have been packed in it. (6) Someone could have applied poison due to animosity and there is chance of getting killed if worn. (7) The cloth may not be of desired dimension. For such reasons an ascetic tells to a householder before taking a cloth—This cloth still belongs to you as long as I am inspecting it. *(Vritti leaf 395)*

ग्राह्य-अग्राह्य वस्त्र-विवेक

२२५. से भिक्खू वा २ से जं पुण वत्थं जाणेज्जा–सअंडं जाव ससंताणं तहप्पगारं वत्थं अफासुयं जाव णो पडिगाहेज्जा।

२२५. साधु-साध्वी जाने यदि कोई वस्त्र अण्डों से यावत् मकड़ी के जालों से युक्त है तो उस वस्त्र को अप्रासुक एवं अनेषणीय मानकर ग्रहण न करे।

ACCEPTABLE AND UNACCEPTABLE CLOTHES

225. A *bhikshu* or *bhikshuni* should find if a cloth is infested with insect-eggs (etc. up to cobwebs). If it is so the ascetic should refuse to take it considering it to be faulty and unacceptable.

२२६. से भिक्खू वा २ से जं पुण वत्थं जाणेज्जा–अप्पंडं जाव अप्प संताणगं अणलं अथिरं अधुवं अधारणिज्जं रोइज्जंतं ण रुच्चइ, तहप्पगारं वत्थं अफासुयं जाव णो पडिगाहेज्जा।

२२६. साधु-साध्वी यदि जाने कि यह वस्त्र अण्डों से यावत् मकड़ी के जालों से तो रहित है, किन्तु उपयोगलायक नहीं है। अस्थिर–(टिकाऊ नहीं) है या जीर्ण है, अध्रुव–(दाता थोड़े समय के लिए दे रहा है) धारण करने के योग्य नहीं है, सुन्दर वस्त्र होने पर भी दाता अथवा साधु की उसमें रुचि न हो, तो उस प्रकार के वस्त्र को भी ग्रहण न करे।

226. If a *bhikshu* or *bhikshuni* finds that a cloth is not infested with insect-eggs (etc. up to cobwebs) but is useless because of being not lasting, worn-out, given for a short period, not suitable to wear and good but not to the liking of the donor or the ascetic. In such case the ascetic should refuse to take it considering it to be faulty and unacceptable.

२२७. से भिक्खू वा २ से जं पुण वत्थं जाणेज्जा–अप्पंडं जाव अप्प संताणयं अलं थिरं धुवं धारणिज्जं। रोइज्जंतं रुच्चइ, तहप्पगारं वत्थं फासुयं जाव पडिगाहेज्जा।

२२७. साधु-साध्वी जाने, जो वस्त्र अण्डों से यावत् मकड़ी के जालों से रहित है, साथ ही अभीष्ट कार्य करने में समर्थ, स्थिर, ध्रुव, धारण करने योग्य है दाता की देने में रुचि है, साधु के लिए भी कल्पनीय हो तो उस प्रकार के वस्त्र को प्रासुक और एषणीय समझकर ग्रहण कर सकता है।

227. If a *bhikshu* or *bhikshuni* finds that a cloth is not infested with insect-eggs (etc. up to cobwebs) and is also useful, lasting, not worn-out, being given for good, suitable to wear, good and to the liking of both the donor and the ascetic. In such case

the ascetic should take it considering it to be faultless and acceptable.

विशेष शब्दों के अर्थ–'अणलं'–जो वस्त्र अभीष्ट (पहनने, ओढ़ने आदि) कार्य के लिए अपर्याप्त–असमर्थ हो, यानी जिसकी लम्बाई-चौड़ाई कम हो। अथिरं–जो मजबूत और टिकाऊ न हो, जीर्ण हो, जल्दी ही फट जाने वाला हो। अधुवं–जो प्रातिहारिक (पाडिहारिय)–थोड़े समय के उपयोग के लिए दिया जा रहा हो। अधारणिज्जं–जो अप्रशस्त हो, खंजन आदि के (धब्बे) जिस पर लगे हों, अतः जो वस्त्र लक्षणहीन हो। *(वृत्ति पत्रांक ३९६)*

Technical Terms : *Analam*—cloth which is not sufficient for the desired use (covering the body). In other words, which is short in dimensions. *Athiram*—that which is not strong and lasting, worn-out and about to get torn. *Adhuvam*—given for limited use or short period. *Adharanijja*—unsuitable to wear; not good; having spots; of bad quality. *(Vritti leaf 396)*

वस्त्र-प्रक्षालन निषेध

२२८. से भिक्खू वा २ 'णो णवए मे वत्थे' त्ति कट्टु णो बहुदेसिएण सिणाणेण वा जाव पघंसेज्ज वा।

२२८. 'मेरे पास नया वस्त्र नहीं है' ऐसा सोचकर साधु या साध्वी पुराने वस्त्र को थोड़े या बहुत सुगन्धित द्रव्य से आघर्षित-प्रघर्षित न करे, सुन्दर बनाने का प्रयास न करे।

CENSURE OF WASHING CLOTHES

228. 'I do not have new clothe' thinking thus a *bhikshu* or *bhikshuni* should not rub or apply perfumes or aromatic substances in small or large quantity to an old cloth; he should not try to make it beautiful.

२२९. से भिक्खू वा २ 'णो णवए मे वत्थे' त्ति कट्टु णो बहुदेसिएण सीओदगवियडेण वा उसीणोदगवियडेण वा जाव पधोएज्ज वा।

२२९. 'मेरे पास नूतन वस्त्र नहीं है' इस विचार से साधु या साध्वी उस पुराने मलिन वस्त्र को बहुत बार थोड़े-बहुत शीतल या उष्ण प्रासुक जल से एक बार या बार-बार न धोए।

229. 'I do not have new cloth' thinking thus a *bhikshu* or *bhikshuni* should not wash his old and dirty cloth with cold or hot, little or much uncontaminated water once or many times.

२३०. से भिक्खू वा २ 'दुब्भिगंधे मे वत्थे' त्ति कट्टु णो बहुदेसिएण सिणाणेण वा तहेव सीओदगवियडेण वा उसिणोदगवियडेण वा आलावओ।

२३०. 'मेरा वस्त्र दुर्गन्धमय है' यों सोचकर विभूषा की दृष्टि से उसे सुगन्धित द्रव्य आदि से आघर्षित-प्रघर्षित न करे, न ही शीतल या उष्ण प्रासुक जल से उसे धोए। यह आलापक भी पूर्ववत् समझना चाहिए।

230. 'My cloth has bad smell' thinking thus and to make it attractive a *bhikshu* or *bhikshuni* should neither rub or apply perfumes or fragrant substances nor wash his cloth with cold or hot water as mentioned above.

वस्त्र सुखाने का विधि-निषेध

२३१. से भिक्खू वा २ अभिकंखिज्जा वत्थं आयावित्तए वा पयावित्तए वा, तहप्पगारं वत्थं णो अणंतरहियाए पुढवीए णो ससणिद्धाए जाव संताणए आयावेज्ज वा पयावेज्ज वा।

२३१. साधु-साध्वी वस्त्र को धूप में सुखाना चाहे तो वह सचित्त पृथ्वी पर, गीली पृथ्वी पर, जिसमें घुन या दीमक लगी हो ऐसी लकड़ी पर, प्राणी, अण्डे, बीज मकड़ी के जाले आदि जीव वाले स्थान में न सुखाए।

PROCEDURE OF DRYING CLOTHES

231. If a *bhikshu* or *bhikshuni* wants to dry clothes in sun he should avoid spreading them on *sachit* (infested with living organisms) ground, wet ground, wood infested with worms or termites, a place filled with insects, their eggs, seeds, cobwebs or other such infested places.

२३२. से भिक्खू वा २ अभिकंखेज्जा वत्थं आयावेत्तए वा पयावेत्तए वा, तहप्पगारं वत्थं थूणंसि वा गिहेलुगंसि वा उसुयालंसि वा कामजलंसि वा अण्णयरे वा तहप्पगारे अंतलिक्खजाते दुब्बद्धे दुण्णिक्खित्ते अणिकंपे चलाचले णो आयावेज्ज णो पयावेज्ज वा।

२३२. साधु-साध्वी अपने वस्त्रों को धूप में सुखाना चाहे तो वह ठूँठ पर, दरवाजे की देहली पर, ऊखल पर, स्नान करने की चौकी पर, इस प्रकार के अन्य अन्तरिक्ष–भूमि से ऊँचे स्थान पर जोकि भलीभाँति बँधा हुआ नहीं है, ठीक तरह से भूमि पर गाड़ा हुआ या रखा हुआ नहीं है, निश्चल नहीं है, हवा से इधर-उधर चल-विचल हो रहा है, वहाँ अपने वस्त्र को नहीं सुखाए।

232. If a *bhikshu* or *bhikshuni* wants to dry clothes in sun he should avoid spreading them on tree-stump, door-sill, *ookhal* (wooden pot used for pounding grains), bathing stool or other such raised place that is not properly tied, fixed in or placed on ground, is unstable and swaying due to wind.

२३३. से भिक्खू वा २ अभिकंखेज्जा वत्थं आयावेत्तए वा पयावेत्तए वा, तहप्पगारं वत्थं कुलियंसि वा भित्तिंसि वा सिलंसि वा लेलुंसि वा अण्णयरे वा तहप्पगारे अंतलिक्खजाए जाव णो आयावेज्ज वा पयावेज्ज वा।

२३३. इसी प्रकार साधु-साध्वी यदि वस्त्र को धूप में सुखाना चाहे तो घर की पतली दीवार पर, नदी के तट पर, शिला पर, रोड़े-पत्थर पर या उसी प्रकार के किसी अन्य अन्तरिक्ष स्थान पर जोकि चंचल आदि है, उस पर वस्त्र न सुखाए।

233. If a *bhikshu* or *bhikshuni* wants to dry clothes in sun he should avoid spreading them on a thin wall in the house, river-bank, rock, heap of pebbles or other such high but unsecured place.

२३४. से भिक्खू वा २ अभिकंखेज्जा वत्थं आयावेत्तए वा पयावेत्तए वा, तहप्पगारं वत्थं खंधंसि वा मंचंसि वा मालंसि वा पासायंसि वा हम्मियतलंसि वा अण्णयरे वा तहप्पगारे अंतलिक्खजाए जाव णो आयावेज्ज वा पयावेज्ज वा।

२३४. साधु-साध्वी वस्त्र को स्तम्भ पर, मंच पर, ऊपर की मंजिल पर महल पर भवन के भूमिगृह में अथवा इसी प्रकार के ऊँचे स्थानों पर जोकि ठीक से बँधे न हों, हिलते हों वहाँ वस्त्र न सुखाए।

234. If a *bhikshu* or *bhikshuni* wants to dry clothes in sun he should avoid spreading them on a pillar, platform or scaffold, upper story of a house, roof of a palace, cellar or other such high but unsecured place.

२३५. से त्तमादाए एगंतमवक्कमेज्जा, २ (त्ता) अहे झामथंडिल्लं वा जाव अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि थंडिल्लंसि पडिलेहिय २ पमज्जिय २ ततो संजयामेव वत्थं आयावेज्ज वा पयावेज्ज वा।

एयं खलु तस्स भिक्खुस्स वा २ सामग्गियं सदा जएज्जासि।

—त्ति बेमि।

॥ पढमो उद्देसओ सम्मत्तो ॥

२३५. साधु उस वस्त्र को लेकर एकान्त में जाए; वहाँ देखे कि जो भूमि अग्नि से जली हो यावत् वहाँ अन्य कोई उस प्रकार की निरवद्य अचित्त भूमि हो, उस निर्दोष स्थंडिल भूमि की भलीभाँति प्रतिलेखना एवं प्रमार्जन करके यतनापूर्वक उस वस्त्र को थोड़ा या अधिक धूप में सुखाए।

यही उस साधु या साध्वी का सम्पूर्ण आचार है, जिसमें सभी अर्थों एवं ज्ञानादि आचार से सहित होकर वह सदा प्रयत्नशील रहे।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

॥ प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

235. The ascetic should take that cloth to an isolated place and find a burnt (where the ground is uncontaminated with ash) or otherwise faultless and uncontaminated spot. There he should first inspect and clean that suitable spot properly and spread the cloth carefully to dry a little or much.

This is the totality (of conduct including that related to knowledge) for that *bhikshu* or *bhikshuni* and so he should pursue.

—So I say.

|| END OF LESSON ONE ||

बीओ उद्देसओ	द्वितीय उद्देशक	LESSON TWO

वस्त्र-धारण की सामान्य विधि

२३६. से भिक्खू वा २ अहेसणिज्जाइं वत्थाइं जाएज्जा, अहापरिग्गहियाइं वत्थाइं धारेज्जा, णो धोएज्जा, णो रएज्जा, णो धोत-रत्ताइं वत्थाइं धारेज्जा, अपलिउंचमाणे गामंतरेसु, ओमचेलिए। एयं खलु वत्थधारिस्स सामग्गियं।

२३६. साधु-साध्वी एषणीय और निर्दोष वस्त्रों की याचना करे, मिलने पर वस्त्रों को धारण करे, परन्तु विभूषा के लिए उन्हें न तो धोए, न ही रँगे तथा न धोए हुए व रँगे हुए वस्त्रों को पहने। उन साधारण-से वस्त्रों को धारण करके ग्रामान्तर में समतापूर्वक विचरण करे। वस्त्रधारी श्रमण का यह समग्र आचार सर्वस्व है।

NORMAL PROCEDURE OF WEARING CLOTHES

236. A *bhikshu* or *bhikshuni* should beg for acceptable and faultless clothes and wear them when he gets. But in order to beautify he should neither wash or dye these clothes nor wear washed and dyed clothes. Wearing those simple clothes he should equanimously move about in villages. This is the whole duty of a clad ascetic.

विवेचन—वस्त्र धारण करने के विषय में इस सूत्र में तीन बातें कही हैं–

(१) सादे एवं साधारण अल्प मूल्य वाले एषणीय वस्त्र की याचना करे।

(२) उन्हें रँग-धोकर या उज्ज्वल एवं चमकीले-भड़कीले बनाकर न पहने।

(३) ग्राम, नगर आदि में विचरण करते समय भी उन्हीं साधारण-से वस्त्रों में रहे।

'णो धोएज्जा णो रएज्जा' पद पर विवेचन करते हुए आचार्य श्री आत्माराम जी म. ने लिखा है–"यह निषेध साज-सज्जा, विभूषा, शृंगार तथा छैल-छबीला बनने की दृष्टि से है। अच्छा दिखने की दृष्टि से वस्त्रों को विशेष उज्ज्वल करना निषिद्ध है। किन्तु यदि वस्त्र पर किसी प्रकार की गंदगी लगी हो या लोक में घृणा उत्पन्न होती हो तब तो साधु विवेकपूर्वक साफ करता है तो शास्त्र का निषेध नहीं है। किन्तु विभूषा या सजावट की भावना से वस्त्र धोने का निषेध है।" वृत्तिकार शीलांकाचार्य का मत है–यह सूत्र जिनकल्पिक के उद्देश्य से उल्लिखित समझना चाहिए, वस्त्रधारी विशेषण होने से स्थविरकल्पी के भी अनुरूप है।

Elaboration—Three points have been made in this aphorism regarding wearing dress—

(1) Beg for plane, simple and low priced acceptable clothes.

(2) Avoid making them attractive and eye-catching by washing or dyeing before wearing.

(3) Wear the same ordinary clothes while moving about in villages or cities.

Elaborating the phrase *'no dhoejja no rayejja'* Acharya Shri Atmaramji M. writes—"This censure is with the view to avoid decoration, embellishment, beautification and glamour seeking. To make the clothes extra white to make them attractive is also proscribed However, if the cloth is dirty or repulsive and the ascetic cleans it with prudence, the act is not censured in the scriptures. To wash a cloth for the purpose of becoming attractive and glamorous is censured." In the opinion of Shilankacharya, the commentator *(Vritti),* this statement is basically meant for *Jinakalpi* ascetics but as the adjective used is dressed, it also includes *Sthavir-kalpi* ascetics

समस्त वस्त्रों सहित विहारादि विधि-निषेध

२३७. से भिक्खू वा २ गाहावइकुलं पिण्डवायपडियाए पविसिउकामे सव्वं चीवरमायाए गाहावइकुलं निक्खमेज्ज वा पविसेज्ज वा। एवं बहिया वियारभूमिं वा विहारभूमिं वा गामाणुगामं वा दूइज्जेज्जा।

अह पुणेवं जाणेज्जा तिव्वदेसियं वा वासं वासमाणं पेहाए, जहा पिण्डेसणाए, णवरं सव्वं चीवरमायाए।

२३७. साधु-साध्वी जब आहार-पानी के लिए गृहस्थ के घर में जाना चाहे तो अपने समस्त वस्त्र साथ में लेकर उपाश्रय से निकले और गृहस्थ के घर में भिक्षा के लिए प्रवेश करे। इसी प्रकार बस्ती से बाहर स्वाध्याय भूमि या शौचार्थ स्थंडिल भूमि में जाते समय एवं ग्रामानुग्राम विहार करते समय अपने सभी वस्त्रों को साथ लेकर विचरण करे।

यदि वह जाने कि दूर-दूर तक वर्षा हो रही है यावत् उड़ने वाले त्रस प्राणी एकत्रित होकर गिर रहे हैं, तो यह सब देखकर साधु वैसा ही आचरण करे जैसा कि पिण्डैषणा

अध्ययन में बताया गया है। अन्तर इतना ही है कि यहाँ केवल सभी वस्त्रों को साथ लेकर जाने का विधि-निषेध है।

MOVING ABOUT WITH ALL CLOTHES

237. When a *bhikshu* or *bhikshuni* wants to go to the house of a householder he should come out of the *upashraya* with all his clothes and enter the householders place with all his clothes. In the same way while going away from the habitation to the place of study or to relieve himself and also when going from one village to another he should carry all his clothes.

If he finds that it is raining in a wide area or airborne insects are falling in clusters, he should follow the instructions mentioned in the *Pindaishana* chapter. The only difference being that here it is with regard to carrying clothes.

विवेचन—इस सूत्र के प्रथम अश मे-(१) भिक्षा, (२) स्वाध्याय, (३) शौच, एवं (४) ग्रामानुग्राम विहार के लिए जाते-आते सभी वस्त्र साथ में लेकर जाने का विधान है, जबकि द्वितीय अंश में अत्यन्त वर्षा हो रही हो, कोहरा तेजी से पड़ रहा हो, आँधी या तूफान के कारण तेज हवा चल रही हो, तिरछे उडने वाले त्रस प्राणी गिर रहे हों तो उस समय वस्त्र साथ में लेकर जाने का ही नहीं, उपाश्रय से बाहर निकलने या भिक्षा आदि स्थलों में प्रवेश करने का भी निषेध है। 'तिव्वदेसियं' से सम्बन्धित अपवाद के सम्बन्ध में चूर्णिकार का मत-'तिव्वदेसितगादिसु ण कप्पति' तीव्र वर्षा, आँधी, कोहरा, तूफान आदि में साधु को सब कपडे लेकर विहारादि करना तो दूर रहा, स्थान से बाहर निकलना भी नहीं कल्पता तथा वस्त्र साथ लेकर जाने के विधान के पीछे दृष्टि यह है कि कोई पीछे से वस्त्र चुरा ले; द्वेषवश फेंक दे या उनमें शस्त्रादि छुपाकर श्रमण पर दोषारोपण कर दे। अधिक उपधि का निषेध तथा स्वल्प मूल्य वाले वस्त्र रखने का कथन भी इसी में ध्वनित होता है। सम्पूर्ण वस्त्र साथ में लेकर जाने के संदर्भ में तत्कालीन बौद्ध साहित्य का एक उल्लेख यहाँ पठनीय है। एक भिक्षु अन्धवन में चीवर छोड़कर गाँव में भिक्षा के लिए गया। चोर पीछे से चीवर को चुराकर ले गया। भिक्षु मैले चीवर वाला हो गया। तब तथागत के समक्ष यह प्रसंग आया तो तथागत ने कहा-एक ही बचे चीवर से गाँव में नहीं जाना चाहिए। *(विनयपिटक महावग्ग ८।६।१, पृ. २८७-२८८)*

Elaboration—The first part of this aphorism contains the rule of carrying all clothes while going for (1) alms, (2) studies, (3) relieving oneself, and (4) from one village to another. The second part contains censure of not only carrying clothes but also of going out of the

upashraya or entering other places while it is raining heavily, there is dense fog, there is storm or flying insects are falling. The opinion of the commentator *(Churni)* regarding heavy rains etc. is—it is not allowed even to go out what to say of carrying clothes while there is heavy rain or storm etc. However, the provision of carrying clothes is with the view that if left unguarded someone may steal or throw away the clothes or conceal weapons or other things in order to put blame on the ascetic. The censure of keeping more possessions and expensive clothes is also for these reasons only. In the Buddhist literature there is an incident related to carrying along all clothes. A monk left one of his clothes in the forest while he went into the village to seek alms. Some thieves stole the cloth. Now the monk just had the dress he was wearing and it became sloppy. When this matter was referred to the Buddha he said—one should not go to the village if he is left with just one dress. *(Vinaypitak Mahavagga 8/6/1, p 287-288)*

प्रातिहारिक वस्त्र-ग्रहण प्रत्यर्पण विधि

२३८. से एगइओ मुहुत्तगं २ पाडिहारियं वत्थं जाएज्जा जाव एगाहेण वा दुयाहेण वा तियाहेण वा चउयाहेण वा पंचाहेण वा विप्पवसिय २ उवागच्छेज्जा, तहप्पगारं वत्थं णो अप्पणा गेण्हेज्जा, णो अण्णमण्णस्स देज्जा, णो पामिच्चं कुज्जा, णो वत्थेण वत्थं परिणामं करेज्जा, णो परं उवसंकमित्ता एवं वएज्जा–आउसंतो समणा ! अभिकंखसि वत्थं धारित्तए वा परिहरित्तए वा ? थिरं वा णं संतं णो पलिछिंदिय २ परिट्ठवेज्जा, तहप्पगारं वत्थं ससंधियं तस्स चेव निसिरेज्जा, णो णं साइज्जेज्जा।

से एगइओ एयप्पगारं निग्घोसं सोच्चा निसम्म 'जे भयंतारो तहप्पगाराणि वत्थाणि ससंधियाणि मुहुत्तगं २ जाव एगाहेण वा ५ विप्पवसिय २ उवागच्छंति, तहप्पगाराणि वत्थाणि णो अप्पणा गिण्हंति, णो अण्णमण्णस्स दलयंति, तं चेव जाव णो साइज्जंति, बहुवयणेण भाणियव्वं। से हंता अहमवि मुहुत्तं पाडिहारियं वत्थं जाइत्ता जाव एगाहेण वा ५ विप्पवसिय २ उवागच्छिस्सामि, अवियाइं एयं ममेव सिया, माइट्ठाणं संफासे, णो एवं करेज्जा।

२३८. कोई एक साधु मुहूर्त्तभर अथवा कुछ काल के लिए किसी दूसरे साधु से प्रातिहारिक वस्त्र की याचना करके ले जाये। किसी दूसरे ग्राम आदि में एक दिन, दो दिन, तीन दिन, चार दिन अथवा पाँच दिन तक निवास करके वापस आता है। इस बीच वह

वस्त्र उपहत–(खराब या विनष्ट) हो गया हो, तब लौटाने पर वस्त्र का स्वामी उसे वापस ग्रहण नहीं करे, लेकर दूसरे साधु को नहीं देवे; किसी को उधार भी नहीं देवे और न ही अदला-बदली करे तथा अन्य किसी के पास जाकर ऐसा भी नहीं कहे कि "आयुष्मन् श्रमण ! आप इस वस्त्र को ले लो।" उस दृढ़ वस्त्र के टुकड़े-टुकड़े करके परिष्ठापन भी नहीं करे–फेंके भी नहीं। किन्तु उस उपहत वस्त्र को वस्त्र का स्वामी उसी उपहत करने वाले साधु को दे; परन्तु स्वयं उसका उपभोग नहीं करे।

कोई साधु इस प्रकार का समाचार जानकर कि अमुक साधु अमुक साधु से कुछ समय के लिए वस्त्र माँगकर ले गया था, परन्तु वह वस्त्र खराब हो जाने पर उसने लिया नहीं, अपितु उसी को वापस दे दिया–ऐसा सुनकर कोई विचार करे कि मैं भी मुहुर्त्त आदि का उद्देश्य कर प्रातिहारिक वस्त्र की याचना करके एक दिन यावत् पाँच दिन तक किसी ग्रामादि में निवास कर फिर वहाँ जाऊँगा तो वह वस्त्र उपयोग हो जाने से मेरा ही हो जायेगा। इस प्रकार के विचार से यदि साधु किसी से प्रातिहारिक वस्त्र ग्रहण करे तो उसे मायास्थान का स्पर्श होता है। अतः साधु ऐसा न करे। बहुत से साधुओं के सम्बन्ध में भी इसी तरह समझना चाहिए।

BORROWING AND RETURNING DRESS

238. An ascetic borrows a cloth from some other ascetic for a short or long period but returns only after spending one, two, three, four or five days. During this period the cloth turns sloppy or damaged. In such case, when returned, the owner should not take it back, and not take and give it to another ascetic, loan it or exchange it. He should also not go to another ascetic and say—"Long lived *Shraman* ! Please take this cloth." Neither should he cut it to pieces and throw. Instead, he should give it to the ascetic who borrowed it. In no case he should use it himself.

Some ascetic gave a cloth to some other ascetic for sometime and when returned did not take it back finding it to be damaged; instead, he gave it to the borrower for good. On getting this information if some ascetic thinks that he should also borrow a cloth for sometime and go to some village for one, two or five

days. When he returns the cloth, it will become his because of having been used. If some ascetic borrows a cloth with this intent he is committing deceit. Therefore an ascetic should not do so. This holds true for many ascetics as well.

२३९. से भिक्खू वा २ णो वण्णमंताइं वत्थाइं विवण्णाइं करेज्जा, विवण्णाइं णो वण्णमंताइं करेज्जा, अण्णं वा वत्थं लभिस्सामि त्ति कट्टु णो अण्णमण्णस्स देज्जा, णो पामिच्चं कुज्जा, णो वत्थेण वत्थपरिणामं करेज्जा, णो परं उवसंकमित्तु एवं वएज्जा– आउसंतो समणा ! अभिकंखसि वत्थं धारित्तए वा परिहरित्तए वा ? थिरं वा णं संतं णो पलिछिंदिय २ परिट्ठवेज्जा, जहा मेयं वत्थं पावगं परो मण्णइ।

परं च णं अदत्तहारी पडिपहे पेहाए तस्स वत्थस्स णियाणाय णो तेसिं भीओ, उम्मग्गेणं गच्छेज्जा जाव अप्पुस्सुए जाव ततो संजयामेव गामाणुगामं दूइज्जेज्जा।

२३९. संयमशील साधु-साध्वी वर्ण वाले सुन्दर वस्त्रों को विवर्ण (असुन्दर) न करे, तथा विवर्ण (असुन्दर) वस्त्रों को सुन्दर वर्णयुक्त न करे। तथा मुझे दूसरा नया (सुन्दर) वस्त्र मिल जायेगा, यह विचार कर अपना पुराना वस्त्र किसी दूसरे साधु को न दे और न किसी से उधार वस्त्र ले, और न ही वस्त्र की परस्पर अदला-बदली करे। तथा अन्य दूसरे साधु के पास जाकर ऐसा न कहे–"आयुष्मन् श्रमण ! तुम मेरे वस्त्र को ग्रहण कर लो मेरे इस वस्त्र को दूसरे गृहस्थ अच्छा (मनोज्ञ) नही समझते।" उस सुदृढ़ वस्त्र को टुकड़े-टुकड़े करके फेंके भी नहीं।

मार्ग में यदि चोर मिल जाये तो उन्हें देखकर उस वस्त्र की रक्षा के लिए भयभीत होकर साधु उन्मार्ग से न जाये किन्तु हर्ष–शोकरहित होकर देह और वस्त्रादि का व्युत्सर्ग करके समाधिभाव में स्थिर रहे। इस प्रकार संयमपूर्वक ग्रामानुग्राम विचरण करे।

239. A disciplined *bhikshu* or *bhikshuni* should not discolour coloured and good looking clothes, neither should he colour and beautify discoloured clothes. He should also not give his used clothes to other ascetic in hope of getting new one. He should neither borrow nor exchange clothes from other ascetics. He should also not go to another ascetic and say—"Long lived *Shraman* ! Please take this cloth as householders do not like it." He should also not cut it to pieces and throw.

If he comes across bandits on the way he should not escape taking another path in order to save his clothes. Instead he should stand still in meditation getting free of any feelings of joy and remorse and dissociating himself from his body, clothes etc. This way he should move about from one village to another with discipline.

२४०. से भिक्खू वा २ गामाणुगामं दूइज्जमाणे अंतरा से विहं सिया, से जं पुण विहं जाणेज्जा–इमंसि खलु विहंसि बहवे आमोसगा वत्थपडियाए संपडिया गच्छेज्जा, णो तेसिं भीओ उम्मग्गेण गच्छेज्जा जाव गामाणुगामं दूइज्जेज्जा।

२४०. ग्रामानुग्राम विहार करते हुए साधु-साध्वी को मार्ग में अटवी वाला लम्बा मार्ग आ जाये और अटवी पार करते समय मार्ग में बहुत-से चोर वस्त्र छीनने के लिए इकट्ठे होकर आ जायें तो साधु उनसे डरता हुआ उन्मार्ग से न जाए अपितु देह और वस्त्रादि के प्रति अनासक्त यावत् समाधिभाव में स्थिर होकर संयमपूर्वक ग्रामानुग्राम विचरण करे।

240. While wandering from village to village if he comes to a desolate area and while crossing that area he faces groups of bandits ready to snatch his clothes, out of fear he should not escape taking another path. Instead he should stand still in meditation getting free of any feelings of joy and remorse and dissociating himself from his body, clothes etc. This way he should move about from one village to another with discipline.

२४१. से भिक्खू वा २ गामाणुगामं दूइज्जमाणे अंतरा से आमोसगा संपडिया गच्छेज्जा, ते णं आमोसगा एवं वएज्जा–आउसंतो समणा ! आहरेयं वत्थं, देहि, णिक्खिवाहि, जहा रियाए, णाणत्तं वत्थपडियाए।

एयं खलु तस्स भिक्खुस्स वा २ सामग्गियं जं सया जएज्जासि।

–त्ति बेमि।

॥ बीओ उद्देसओ सम्मत्तो ॥

॥ पंचमं अज्झयणं सम्मत्तं ॥

२४१. ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए साधु-साध्वी के मार्ग में चोर इकट्ठे होकर वस्त्र-हरण करने के लिए आ जाएँ और कहें कि "आयुष्मन् श्रमण ! यह वस्त्र लाओ,

हमारे हाथ में दे दो या हमारे सामने रख दो।" तो साधु वस्त्रों को उतारकर भूमि पर रख दे। किन्तु उनके हाथ में न दे और न ही दीनतापूर्वक उनकी याचना करे। यदि वस्त्र लेना हो तो उन्हें धर्म उपदेश देकर ले। यह सब वर्णन ईर्या अध्ययन की तरह समझना चाहिए। इतना विशेष है कि यहाँ वस्त्र का अधिकार है।

यही साधु-साध्वी का सम्पूर्ण ज्ञानादि आचार है जिसमें सभी अर्थों में ज्ञानादि से सहित होकर सदा प्रयत्नशील रहे।

–ऐसा मैं कहता हूँ।

॥ द्वितीय उद्देशक समाप्त ॥

॥ पंचम अध्ययन समाप्त ॥

241. While wandering from village to village if a *bhikshu* or *bhikshuni* comes to a desolate area and while crossing that area he faces groups of bandits who ask—"Long lived *Shraman* ! Give or hand over these clothes to us or place them before us." The ascetic should remove and put the clothes on the ground. He should neither give them in their hands nor beg humbly for them. If at all he wants to get the clothes back he should resort to religious preaching. These details should be read as those in the *Irya* chapter, the only difference being that the subject here is clothes.

This is the totality (of conduct including that related to knowledge) for that *bhikshu* or *bhikshuni* and so he should pursue continuously.

—So I say.

॥ END OF LESSON TWO ॥

॥ END OF FIFTH CHAPTER ॥

पात्रैषणा : षष्ठ अध्ययन

आमुख

✦ छठे अध्ययन का नाम है 'पात्रैषणा'।

✦ स्थविरकल्पी साधु को निर्दोष आहार-पानी ग्रहण करने के लिए पात्र की आवश्यकता रहती है। किन्तु साधु को किस प्रकार के, कैसे, कितने मूल्य तक के पात्र रखने चाहिए? पात्र-ग्रहण में उद्गमादि एषणा दोष नहीं लगे और न ही पात्रों का उपयोग करने में रागादि के कारण अंगार, धूम आदि दोष लगे, इन सब विषयों का वर्णन प्रस्तुत पात्रैषणा अध्ययन में किया गया है।

✦ 'पात्र' के दो भेद हैं–द्रव्यपात्र और भावपात्र। भावपात्र तो साधु स्वयं हैं। संयम-परिपालन के लिए साधु द्रव्यपात्र की याचना करता है।

✦ इस अध्ययन के दो उद्देशक हैं–प्रथम उद्देशक में पात्र-ग्रहण विधि का तथा द्वितीय उद्देशक में पात्र-धारण विधि का विस्तृत कथन है।

● ●

PAATRAISHANA : SIXTH CHAPTER

INTRODUCTION

- The title of the sixth chapter is *Paatraishana*.
- A *Sthavir-kalpi* (an ascetic who still has mundane needs) requires pots to get faultless food and water. But what type, specification and price of pots may he have ? He should avoid faults related to exploring, like those of origin etc and those related to use, like those of fire and smoke, caused by attachment (etc). All these topics have been discussed in this chapter titled *Paatraishana*
- There are two types of pot—*dravya paatra* (physical container and *bhava paatra* (mental container). The *bhava paatra* is the ascetic himself. For pursuing life of ascetic discipline he begs for *dravya paatra*
- This chapter has two lessons—the first lesson deals with acquiring pots and the second deals with their use

●●

पाएसणा : छट्ठं अज्झयणं
पात्रैषणा : षष्ठ अध्ययन
PAATRAISHANA : SIXTH CHAPTER
SEARCH FOR POTS

पढमो उद्देसओ | **प्रथम उद्देशक** | **LESSON ONE**

पात्र के प्रकार एवं मर्यादा

२४३. से भिक्खू वा २ अभिकंखेज्जा पायं एसित्तए, से जं पुण पायं जाणेज्जा, तं जहा–लाउयपायं वा दारुपायं वा मट्टियापायं वा, तहप्पगारं पायं जे णिग्गंथे तरुणे जाव थिरसंघयणे से एगं पायं धारेज्जा, णो बिइयं।

२४३. संयमी साधु-साध्वी यदि पात्र की एषणा करना चाहें तो पात्रों के सम्बन्ध में जानें, जैसे कि–तुम्बे का पात्र, लकड़ी का पात्र और मिट्टी का पात्र। इन तीनों प्रकार के पात्रों को वह ग्रहण कर सकता है। उक्त पात्र ग्रहण करने वाला निर्ग्रन्थ यदि तरुण, बलिष्ठ, स्वस्थ और स्थिरसंहनन वाला है, तो वह तीनो में से कोई एक ही पात्र रखे, दूसरा नहीं।

TYPES AND LIMITATIONS OF POTS

243. When a disciplined *bhikshu* or *bhikshuni* wants to explore for pots he should first know this about pots—gourd-pot, wooden pot and earthen pot. He can accept these three types of pots. An ascetic who is young, strong, healthy and of sturdy constitution, should have only one pot, not more.

विवेचन–उक्त सूत्रों में साधु को आहार के लिए तीन प्रकार के पात्र रखने का विधान किया है, किन्तु सूत्र के उत्तरार्ध में कहा है–यदि साधु तरुण व बलवान हो तो एक ही पात्र रखें, दूसरा नहीं। वृत्तिकार ने स्पष्ट किया है–"यह विधान जिनकल्पिक श्रमण या अभिग्रहधारी मुनि के लिए हो सकता है। स्थविरकल्पी साधु के लिए तीन पात्र का विधान है।" *(वृत्ति पत्रांक ३९९)*

निर्ग्रन्थ श्रमणों के लिए जहाँ भगवान महावीर ने लकडी के, तुम्बे के और मिट्टी के पात्र रखने का विधान किया है, वहाँ शाक्य-श्रमणों के लिए तथागत बुद्ध ने लकडी के पात्र का निषेध कर लोहे का और मिट्टी का पात्र रखने का विधान किया है।

विनयपिटक की घटना से ज्ञात होता है कि बौद्ध भिक्षु पहले मिट्टी का पात्र भी रखते थे, किन्तु एक घटना के पश्चात् बुद्ध ने लकड़ी के पात्र का निषेध कर दिया; वह घटना संक्षेप में इस प्रकार है–

एक बार राजगृह के किसी श्रेष्ठी ने चन्दन का एक सुन्दर, मूल्यवान पात्र बनवाकर बाँस के सिरे पर ऊँचा टाँगकर यह घोषणा करवा दी कि "जो श्रमण, ब्राह्मण, अर्हत् ऋद्धिमान हो, वह इस पात्र को उतार ले।"

उस समय मौद्गल्यायन और पिंडोल भारद्वाज पात्र-चीवर लेकर राजगृह में भिक्षार्थ आये। पिण्डोल भारद्वाज ने आकाश में उडकर वह पात्र उतार लिया और राजगृह के तीन चक्कर लगाये। इस प्रकार चमत्कार से प्रभावित बहुत-से लोग हल्ला करते हुए तथागत के पास पहुँचे। तथागत बुद्ध ने पूरी घटना सुनी तो उन्हें बहुत खेद हुआ। भारद्वाज को बुलाकर भिक्षु-संघ के सामने फटकारते हुए कहा–"भारद्वाज ! यह अनुचित है, श्रमण के अयोग्य है। एक तुच्छ लकड़ी के बर्तन के लिए कैसे तू गृहस्थों को अपना ऋद्धि-प्रातिहार्य दिखायेगा? फिर बुद्ध ने भिक्षु-संघ को आज्ञा दी, उस पात्र को तोडकर टुकडे-टुकड़े कर भिक्षुओं को अंजन पीसने के लिए दे दो।"

इसी संदर्भ में भिक्षु-संघ को सम्बोधित करते हुए कहा–"भिक्षु को सुवर्णमय, रोप्य, मणि, कांस्य, स्फटिक, काँच, ताँबा, सीसा आदि का पात्र नहीं रखना चाहिए। भिक्षुओ ! लोहे के और मिट्टी के दो पात्रों की अनुज्ञा देता हूँ। *(विनयपिटक, चुल्लवग्ग, खुद्दक वत्थुखंध ५/१/१०, पृ ४२२-४२३)*

Elaboration—This aphorism prescribes three type of pots for ascetics but in the last portion it says—if the ascetic is young and strong he should have only one pot, not more The commentator *(Vritti)* has clarified that "this rule could be for a *Jinakalpi Shraman* or one with special resolves. For a *Sthavir-kalpi* there is a provision of three pots." *(Vritti leaf 399)*

Whereas *Bhagavan* Mahavir has made provision of wooden, earthen and gourd pot for *Shramans* in the codes, the Buddha has made provision of iron and earthen pots denying wooden pot.

From an incident mentioned in *Vinayapitak* it is revealed that earlier Buddhist monks used earthen pots also but after a particular incident it was proscribed. The incident in brief is as follows—

Once a merchant in Rajagriha got a beautiful and expensive pot made of sandal-wood. He hung that pot high to one end of a long and standing bamboo and made an announcement—"The *Shraman,*

Brahmin or other sage who has some special powers may get it down and take it."

At that time two Buddhist monks, Maudgalyayan and Pindol Bharadvaj came to seek alms in Rajagriha. Pindol Bharadvaj flew in the sky, took the pot and went around Rajagriha three times. Impressed by this performance many people hailed the act and came to the Buddha. When the Buddha heard the story he was deeply hurt. He called Bharadvaj and reprimanded him before the assembly of monks—"Bharadvaj, this is wrong, this is not appropriate for a monk. How could you demonstrate your special powers to householders for a mere wooden pot ?" The Buddha then ordered the religious organization to break the pot into pieces and give the pieces to monks to grind into powder

Addressing the monks in this context he said—"A monk should not keep a golden, silver, gem studded, bronze, crystal, glass, copper and lead pot. Monks, I allow you to keep only two, iron and earthen pots. *(Vinayapitak, Chullavagga, Khuddak vatthukhandha 5/1/10, p 422-423)*

२४४. से भिक्खू वा २ परं अद्धजोयणमेराए पायपडियाए णो अभिसंधारेज्जा गमणाए।

२४४. वह साधु (जहाँ ठहरा हो, वहाँ से) पात्र लेने के लिए अर्द्ध-योजन पर्यन्त मर्यादा के उपरान्त जाने का संकल्प न करे।

244. A *bhikshu* or *bhikshuni* should not think of going beyond half a *yojan* (four miles from the place of stay).

एषणा दोषयुक्त पात्र-ग्रहण निषेध

२४५. से भिक्खू वा २ से जं पुण पायं जाणेज्जा अस्सिंपडियाए एगं साहम्मियं समुद्दिस्स पाणाइं ४ जहा पिंडेसणाए चत्तारि आलावगा। पंचमो; बहवे समण-माहण पगणिय २ तहेव।

२४५. साधु-साध्वी को पात्र के सम्बन्ध में यदि पता चले कि किसी गृहस्थ ने निर्ग्रन्थ साधु को देने के विचार से, किसी एक साधर्मिक साधु को उद्देश्य कर प्राणी, भूत आदि को समारम्भ करके पात्र बनवाया है, तो वह पात्र साधु ग्रहण नहीं करे।

जैसे यह सूत्र एक साधर्मिक साधु के विषय में है, वैसे ही अनेक साधर्मिक साधुओं, एक साधर्मिणी साध्वी एवं अनेक साधर्मिणी साध्वियों के सम्बन्ध में भी शेष तीन आलापक समझ लेने चाहिए। पिण्डैषणा अध्ययन (सूत्र ८) में जैसे चारों आलापकों का वर्णन है, वैसा ही यहाँ समझ लेना चाहिए। पाँचवाँ आलापक जैसे बहुत-से शाक्यादि श्रमण, ब्राह्मण आदि को गिन-गिनकर देने के सम्बन्ध में है, वैसे ही यहाँ भी समझ लेना चाहिए।

CENSURE OF POTS WITH FAULTS

245. A *bhikshu* or *bhikshuni* should find if some devout householder has got pots made by a process involving violence to *prani* (beings), *bhoot* (organisms), *jiva* (souls) and *sattva* (entities), specifically with the purpose of giving it to some co-religionist ascetic. If it is so, he should not take it.

As this aphorism is for one male ascetic so it should be taken, as three aphorisms, for many co-religionist male ascetics, one female ascetic and many female ascetics. The four codes mentioned in *Pindaishana* chapter should be repeated here. The fifth code regarding giving to many Buddhist monks, Brahmins etc. after counting, should also be repeated here as in the said chapter.

२४६. से भिक्खू वा २ अस्संजए भिक्खुपडियाए बहवे समण-माहण वत्थेसणाऽऽलावओ।

२४६. यदि साधु-साध्वी यह जाने कि गृहस्थ ने भिक्षुओं को देने की भावना से, बहुत-से शाक्यादि श्रमण, ब्राह्मण आदि के उद्देश्य से पात्र बनाया है और वह औद्देशिक आदि दोषयुक्त है तो .... उसका शेष वर्णन भी वस्त्रैषणा अध्ययन (सूत्र २१४) के समान समझ लेना चाहिए।

246. A *bhikshu* or *bhikshuni* should find if some devout householder has got pots made with an intention to give to many ascetics, Buddhist monks, Brahmins etc. and it involves faults like *auddeshik* (made specifically for ascetics) etc. .... the rest of the details should be read as in *'Vastraishana'* chapter (aphorism 214).

बहुमूल्य पात्र-ग्रहण निषेध

२४७. से भिक्खू वा २ से जाइं पुण पायाइं जाणेज्जा विरूवरूवाइं महद्धणमोल्लाइं, तं जहा—अयपायाणि वा तउपायाणि वा तंबपायाणि वा सीसगपायाणि वा हिरण्णपायाणि वा सुवण्णपायाणि वा रीरियपायाणि वा हारपुडपायाणि वा मणि-काय-कंसपायाणि वा संख-सिंगपायाणि वा दंतपायाणि वा चेलपायाणि वा सेलपायाणि वा चम्मपायाणि वा, अण्णयराणि वा तहप्पगाराइं विरूवरूवाइं महद्धणमोल्लाइं पायाइं अफासुयाइं जाव नो पडिगाहेज्जा।

२४७. साधु-साध्वी यह जाने कि गृहस्थ के पास नाना प्रकार के मूल्यवान पात्र हैं, जैसे कि लोहे के बने पात्र, राँगे कलई किया हुआ पात्र, ताँबे के पात्र, सीसे के पात्र, चाँदी के पात्र, सोने से बने पात्र, पीतल के पात्र, हारपुट (त्रिलोह) धातु के पात्र, मणि, काँच और काँसे के पात्र, शंख और सींग के पात्र, दाँत के पात्र, वस्त्र के पात्र, पत्थर के पात्र या चमड़े के पात्र, दूसरे भी इसी तरह के अनेक प्रकार के अधिक मूल्यवान पात्रों को अप्रासुक और अनेषणीय जानकर ग्रहण नहीं करे।

CENSURE OF EXPENSIVE POTS

247. A disciplined *bhikshu* or *bhikshuni* should know about various highly expensive pots, such as—iron pots, pewter or tin plated pots, copper pots, lead pots, silver pots, gold pots, brass pots, pots of an alloy of three metals, pots made of gems, glass or bronze, pots made of shell, horn and ivory, pots made of cloth and pots made of stone or leather. An ascetic should not accept these and other such highly expensive pots considering them to be faulty and unacceptable.

२४८. से भिक्खू वा २ से जाइं पुण पायाइं जाणेज्जा विरूवरूवाइं महद्धणबंधणाइं, तं जहा—अयबंधणाणि वा जाव चम्मबंधणाणि वा, अण्णयराइं वा तहप्पगाराइं महद्धणबंधणाइ अफासुयाइं जाव णो पडिगाहेज्जा।

२४८. साधु-साध्वी उन पात्रों को भी जाने, जो (लकड़ी आदि के कल्पनीय होते हुए भी) विविध प्रकार के मूल्यवान बन्धन लगे हुए हैं, जैसे कि वे लोह के, स्वर्ण के यावत् चर्म-बन्धन वाले हैं अथवा अन्य इसी प्रकार के बहुत मूल्यवान बन्धन वाले हैं, तो उन्हें अप्रासुक और अनेषणीय जानकर ग्रहण न करे।

248. A disciplined *bhikshu* or *bhikshuni* should also know about pots that are (acceptable like wooden etc. but—) adorned with various expensive straps or strings, such as those made of iron, gold, leather etc. An ascetic should not accept pots with these and other such highly expensive straps considering them to be faulty and unacceptable.

विवेचन—इन दो सूत्रों में बहुमूल्य धातु या मूल्यवान पदार्थ से बने, दीखने में सुन्दर अथवा जीवों की हिंसा से निष्पन्न पात्रों को लेने का तथा यदि काष्ठ आदि के पात्र पर भी सोने, चाँदी आदि के बन्धन लगे हों तो उन पात्रों को लेने का निषेध किया है। वृत्तिकार ने इस निषेध के पीछे निम्न कारणों की संभावना व्यक्त की है–

(१) अधिक मूल्यवान पात्र चुराये जाने या छीने जाने का भय।

(२) संग्रह करके रखने की संभावना।

(३) क्रय-विक्रय या अदला-बदली करने की संभावना।

(४) इन बहुमूल्य पात्रों को पाने के लिए धनिक जनों की प्रशंसा, चाटुकारी आदि भी करनी पड़ सकती है।

(५) इन पर आसक्ति या ममता–मूर्च्छा और सामान्य पात्रों पर घृणा आने की संभावना रहती है।

(६) इन पात्रों को बनाने तथा टूटने-फूटने पर जोड़ने में बहुत आरम्भ होता है।

(७) शंख, दाँत, चर्म आदि के पात्रों के लिए सम्बन्धित पंचेन्द्रिय जीव-हिंसा की भी संभावना रहती है।

(८) साधर्मिकों के साथ प्रतिस्पर्धा, ईर्ष्या एवं दूसरों को उपभोग के लिए न देने की भावना भी रहती है। *(वृत्ति पत्रांक ३९९)*

निशीथसूत्र में बताया है कि इस प्रकार के पात्र बनाने और बनाने का अनुमोदन करने वाले साधु-साध्वी को प्रायश्चित्त आता है। *(निशीथ चूर्णि ११/१)*

Elaboration—In these two aphorisms there is censure of accepting beautiful pots made of expensive material and involving harm to beings as also ordinary pots of acceptable material like wood but adorned with straps of gold or silver. According to the commentator *(Vritti)* the possible reasons for this censure are—
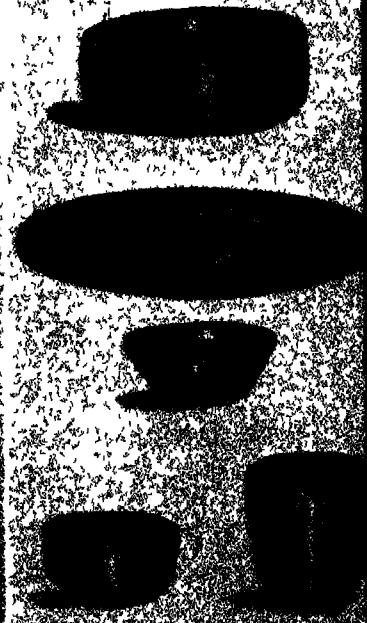
पात्र एषणा
तुम्बे के पात्र
मिट्टी के पात्र
निषिद्ध पात्र
स्वर्ण तार बँधे पात्र
काँच आदि के पात्र
धातु आदि के पात्र

चित्र परिचय ११

Illustration No. 11

पात्र-एषणा विधि

(१) **ग्राह्य पात्र**–भिक्षु आहार-पानी की याचना के लिए पात्र ग्रहण करता है। वे पात्र तीन प्रकार के हो सकते है-काष्ट पात्र, तुम्बे के पात्र तथा मिट्टी के पात्र। (ये पात्र साधारण अल्प मूल्य वाले तथा टिकाऊ होने चाहिए। (*सूत्र २४३*)

(२) **अग्राह्य बहुमूल्य पात्र**–जो पात्र (भाण्ड) बहुत मूल्यवान हो, जिन पर सोने-चाँदी के तार बँधे हो, चाहे लकडी के ही क्यो न हो अथवा कॉच, शख, सीग, हाथी दाँत आदि के पात्र जिन पर अनेक प्रकार की कारीगरी की गई हो या सादे ही हो तथा सोने, चॉदी, तॉबा, पीतल आदि धातुओ के पात्र इस प्रकार के पात्र भिक्षु के लिए अग्राह्य है।

–अध्ययन ६, सूत्र २४६, २४८

SEEKING POTS

(1) **Approved**—An ascetic takes pots to beg for food and water They can be of three kinds—made of wood, gourd or earthen pots (These pots should be ordinary and low cost.) (*aphorism 243*)

(2) **Censured**—An ascetic is not allowed to take pots that are very costly, such as wooden pots with gold and silver work, pots made of glass, conch shell, horn or ivory with or without artistic work, and pots made of metals like gold, silver, copper, brass etc

—Chapter 6, aphorism 246, 248

(1) Being expensive there always is a fear of theft or snatching.

(2) Ascetics could develop fondness and craving for such expensive pots as also the tendency to hoard these.

(3) Ascetics could develop a tendency to trade or exchange these.

(4) Ascetics will have to approach affluent people and praise or pester them to get such pots.

(5) There are chances that ascetics may develop fondness for such pots and aversion for simple or ordinary pots.

(6) The process of making and repairing such pots involves harm to many beings.

(7) In order to make pots of shell, ivory, leather etc. related animals could be killed.

(8) Keeping such pots entails jealousy and envy with co-religionists and also a feeling of refusing to allow others the use of such pots. *(Vritti leaf 399)*

In *Nishith Sutra* it is mentioned that the ascetics who make such pots or approve making of the same have to atone for the act. *(Nishith Churni 11/1)*

विशेष शब्दों के अर्थ–चम्मपायाणि–चमडे की कुप्पी आदि। चेलपायाणि–कपड़े का खलीता, डिब्बा या थैलीनुमा पात्र। हारपुट–मोतियों की बेल आदि से शोभित लौह-पात्र।

Technical Terms : *Chammapayani*—a pot or pouch made of leather. *Chelapayani*—a bag or bag-like pot made of cotton. *Haarput*—an iron pot with pearl studded floral patterns.

पात्रैषणा की चार प्रतिमाएँ

२४९. इच्चेयाइं आयतणाइं उवाइकम्म अह भिक्खू जाणेज्जा चउहिं पडिमाहिं पायं एसत्तिए–

(१) तत्थ खलु इमा पढमा पडिमा–से भिक्खू वा २ उद्दिसिय २ पायं जाएज्जा, तं जहा–लाउयपायं वा दारुपायं वा मट्टियापायं वा, तहप्पगारं पायं सयं वा णं जाएज्जा जाव पडिगाहेज्जा। पढमा पडिमा।

(२) अहावरा दोच्चा पडिमा–से भिक्खू वा २ पेहाए पायं जाएज्जा, तं जहा–गाहावई वा जाव कम्मकरी वा, से पुव्वामेव आलोएज्जा, आउसो ! ति वा, दाहिसि मे एत्तो अण्णयरं पायं, तं जहा–लाउयपायं वा ३, तहप्पगारं पायं सयं वा णं जाएज्जा जाव पडिगाहेज्जा। दोच्चा पडिमा।

(३) अहावरा तच्चा पडिमा–से भिक्खू वा २ से जं पुण पायं जाणेज्जा–संगइयं वा वेजयंतियं वा, तहप्पगारं पायं सयं वा णं जाव पडिगाहेज्जा। तच्चा पडिमा।

(४) अहावरा चउत्था पडिमा–से भिक्खू वा २ उज्झियधम्मियं पायं जाएज्जा जं चऽण्णे बहवे समण-माहण जाव वणीमगा णावकंखंति, तहप्पगारं पायं सयं वा णं जाएज्जा जाव पडिगाहेज्जा। चउत्था पडिमा।

इच्चेइयाणं चउण्हं पडिमाणं अण्णयरं पडिमं जहा पिण्डेसणाए।

२४९. साधु को दोषों के आयतनों (स्थानों) का परित्याग करके पात्र ग्रहण करना चाहिए। साधु को चार प्रतिमापूर्वक पात्रैषणा करनी चाहिए–

(१) पहली प्रतिमा–साधु-साध्वी पात्र का नाम लेकर के उसकी याचना करे, जैसे कि तुम्बे का पात्र, लकड़ी का पात्र या मिट्टी का पात्र; उस प्रकार के पात्र की स्वयं याचना करे या गृहस्थ स्वयं दे रहा हो तो प्रासुक और एषणीय होने पर उसे ग्रहण करे। यह पहली प्रतिमा है।

(२) दूसरी प्रतिमा–वह साधु-साध्वी पात्रों को देखकर याचना करे। जैसे कि गृहपति यावत् कर्मचारिणी से पात्र देखकर पहले ही कहे–"आयुष्मन् गृहस्थ ! क्या मुझे इन पात्रों में से एक पात्र दोगे? जैसे कि तुम्बा, काष्ठ या मिट्टी का पात्र।" इस प्रकार के पात्र की स्वयं याचना करे या गृहस्थ दे तो प्रासुक एवं एषणीय जानकर ग्रहण करे। यह दूसरी प्रतिमा है।

(३) तीसरी प्रतिमा–साधु-साध्वी ऐसे पात्रों की याचना करे, जिसमें गृहस्थ ने भोजन किया हो या ऐसे दो-तीन पात्र जिनमें गृहस्थ ने खाद्य पदार्थ रखे हों, वह पात्र मिलने पर ग्रहण करे। यह तीसरी प्रतिमा है।

(४) चौथी प्रतिमा–जो गृहस्थ के लिए फेकने योग्य हो अथवा जिस पात्र को शाक्य भिक्षु, ब्राह्मण यावत् भिखारी तक भी लेना नहीं चाहते हैं, उस प्रकार के पात्र की गृहस्थ से स्वयं याचना करे अथवा गृहस्थ दे तो ग्रहण करे। यह चौथी प्रतिमा है।

जैसे पिण्डैषणा अध्ययन में वर्णन है, उसी प्रकार शेष वर्णन जाने।

FOUR *PRATIMAS* FOR ACQUIRING POTS

249. Besides avoiding the said faults related to acquisition of pots, an ascetic should also observe four *pratimas* (regulations or special resolves) while exploring for pots—

(1) First *Pratima*—A *bhikshu* or *bhikshuni* should seek the pot he has resolved for. For instance he should resolve in advance to seek one of the said types of pots, such as gourd-pot, wooden pot or earthen pot. He should then specifically beg for that type of pot or take it, if offered by a householder on his own, considering it to be faultless and acceptable. This is the first *pratima*.

(2) Second *Pratima*—A *bhikshu* or *bhikshuni* should first find if the householder has the pot (he wants) and then beg for it from the host (etc. up to maid)—"Long lived householder (brother or sister) ! Would you please give one of these pots, such as gourd-pot, wooden pot or earthen pot to me ?" He should then specifically beg for that type of pot or take it, if offered by a householder on his own, considering it to be faultless and acceptable. This is the second *pratima*.

(3) Third *Pratima*—A *bhikshu* or *bhikshuni* should find about old pots (used pots, two or three) such as those in which the householder has eaten or kept some food. He should then specifically beg for that type of pot or take it, if offered by a householder on his own, considering it to be faultless and acceptable. This is the third *pratima*.

(4) Fourth *Pratima*—A *bhikshu* or *bhikshuni* should seek a pot worth discarding or which is rejected by many other Buddhist monks (etc. up to destitute) or take it, if offered by a householder on his own, considering it to be faultless and acceptable. This is the fourth *pratima*.

The details about these four *pratimas* should be taken as those mentioned in the *Pindaishana* chapter.

विवेचन–'संगइयं' तथा 'वेजयंतियं' की व्याख्या–

चूर्णिकार के मतानुसार–संगइयं का अर्थ है दो या तीन पात्रों का गृहस्थ बारी-बारी से उपयोग करता है, साधु के द्वारा याचना करने पर उनमें से एक देता है तो ऐसे (स्वांगिक) पात्र के लेने में प्रवचन दोष नहीं है। वेजयंतियं–जिस पात्र में भोजन करके राजा आदि के उत्सव या मृत्यु-कृत्य पर खाद्य को भूनकर या वैसे ही रखकर छोड़ दिया जाता है, वह पात्र। *(आचारांग चूर्णि मू. पा. टि, पृ. २१५)*

वृत्तिकार ने 'संगइयं' का अर्थ किया है–दाता द्वारा उस पात्र में प्रायः स्वयं भोजन किया गया हो, वह स्वांगिक पात्र। 'वेजयंतियं' का अर्थ है–दो-तीन पात्रों में बारी-बारी से भोजन किया जा रहा हो, वह पात्र। *(आचारांग वृत्ति, पत्रांक ३९९)*

Elaboration—Meanings of *sangaiyam* and *vejayantiyam*—

According to the commentator *(Churni)*—*Sangaiyam*—a householder generally uses two or three pots one after another When an ascetic begs for a pot he gives one of these. There is no fault involved in taking such used pot. *Vejayantiyam*—the pot in which food is placed after roasting on the occasion of some royal festival or ceremony. *(Acharanga Churni, p 215)*

According to the commentator *(Vritti)*—*Sangaiyam*—a pot in which the donor often eats. *Vejayantiyam*—a pot out of two-three pots in which food is eaten one after another. *(Acharanga Vritti, leaf 399)*

अनेषणीय पात्र-ग्रहण निषेध

२५०. से णं एयाए एसणाए एसमाणं पासित्ता परो वएज्जा–आउसंतो समणा ! एज्जासि तुमं मासेण वा जहा वत्थेसणाए।

२५०. साधु को इस पात्रैषणा के साथ पात्र-गवेषणा करते देखकर यदि कोई गृहस्थ कहे कि "आयुष्मन् श्रमण ! तुम अभी तो जाओ, एक मास पश्चात् यावत् कल या परसों तक लौटकर आना ··· " शेष सारा वर्णन वस्त्रैषणा अध्ययन (सूत्र २१८) में जिस प्रकार है, उसी प्रकार जानना।

CENSURE OF POTS INVOLVING VARIOUS FAULTS

250. If some householder tells to an ascetic exploring for pots—"Long lived *Shraman* ! Please go now and come after a month, ten or five days, tomorrow or the day after ...." the rest of the details should be read as in *Vastraishana* chapter (aphorism 218).

२५१. से णं परो णेया वएज्जा–आउसो भइणी ! आहरेयं पायं, तेल्लेण वा घएण वा णवणीएण वा वसाए वा अब्भंगेत्ता वा तहेव सिणाणादि तहेव सीतोदगादि कंदादि तहेव।

२५१. कोई गृहस्वामी पात्रैषणा करने वाले साधु को देखकर अपने परिवार के किसी पुरुष या स्त्री को बुलाकर कहे–"आयुष्मन् या बहन ! वह पात्र लाओ, हम उस पर तेल, घी, नवनीत या वसा चुपड़कर साधु को देंगे .... इसी प्रकार स्नानीय पदार्थ आदि से एक बार, बार-बार घिसकर .... कंदादि उसमें से निकालकर साफ करके .... इत्यादि सारा वर्णन वस्त्रैषणा अध्ययन (सूत्र २१८-२२४) के अनुसार समझ लेना चाहिए।

विशेष–'वस्त्र' के बदले यहाँ 'पात्र' शब्द कहना चाहिए।

251. On seeing an ascetic searching for pots if a householder tells to some member of the family (sister etc.)—"Long lived brother or sister ! Please fetch that pot, I will apply oil, butter-oil, butter or fat on it and give it to the ascetic.—I will wash it with uncontaminated cold or hot water once—I will take out the bulbous roots .... the rest of the details should be read as in *Vastraishana* chapter (aphorism 218-224).

The only change being pot for clothes.

२५२. से णं परो णेया वएज्जा–आउसंतो समणा ! मुहुत्तगं २ जाव अच्छाहि अम्हे असणं वा ४ उवकरेंसु व उवक्खडेंसु वा, तो ते वयं आउसो ! सपाणं सभोयणं पडिग्गहगं दासामो, तुच्छए पडिग्गहए दिण्णे समणस्स णो सुट्ठु णो साहु भवति। से पुव्वामेव अलोएज्जा–आउसो ! ति वा, भइणी ! ति वा, णो खलु मे कप्पइ आहाकम्मिए असणे वा ४ भोत्तए वा पायए वा, मा उवकरेहि, मा उवक्खडेहि अभिकंखसि मे दाउं एमेव दलयाहि।

से सेवं वदंतस्स परो असणं वा ४ उवकरित्ता उवक्खडित्ता सपाणं सभोयणं पडिग्गहगं दलएज्जा, तहप्पगारं पडिग्गहगं अफासुयं जाव णो पडिगाहेज्जा।

२५२. कोई गृहस्वामी साधु से इस प्रकार कहे–"आयुष्मन् श्रमण ! आप मुहूर्त्तपर्यन्त ठहरिए। जब तक हम अशन आदि चतुर्विध आहार जुटा लेंगे या तैयार कर लेंगे, तब हम आपको पानी और भोजन से भरकर पात्र देंगे, क्योंकि साधु को खाली पात्र देना अच्छा और उचित नहीं लगता।" ऐसा सुनकर साधु उस गृहस्थ से कह दे–"आयुष्मन् गृहस्थ या आयुष्मती बहन ! मुझे आधाकर्मी चतुर्विध आहार खाना या पीना नहीं कल्पता है। इसलिए तुम आहार की सामग्री मत जुटाओ, आहार तैयार मत करो। यदि मुझे पात्र देना चाहते हो तो ऐसे ही दे दो।"

इस प्रकार मना करने पर भी यदि गृहस्थ चतुर्विध आहार की सामग्री जुटाकर अथवा आहार तैयार करके पानी और भोजन भरकर साधु को वह पात्र देने लगे, तो पात्र को अप्रासुक और अनेषणीय समझकर ग्रहण नहीं करे।

252. When some householder says to the ascetic—"Long lived *Shraman* ! Please wait for sometime while I arrange for or prepare four types of food. After that I will give the pot filled with food and water because it is not good or proper to give an empty pot to an ascetic." On hearing these words the ascetic should at once tell—"Long lived householder or sister ! I am not allowed to eat or drink *aadhakarmi* (specifically prepared for an ascetic) food. Please do not arrange for prepare food. If you want to give please give the pot as it is."

Even after this warning by the ascetic if the householder proceeds to arrange for or prepare four types of food and offers a pot filled with food and water, the ascetic should refuse to take it considering it to be faulty and unacceptable.

विवेचन–वस्त्रैषणा की भाँति यहाँ पात्रैषणा में भी निम्न छह विकल्पों की ओर संकेत किया गया है–(१) गृहस्थ साधु को थोड़ी देर बाद आकर पात्र ले जाने का कहे। (२) पात्र को तेल, घी आदि स्निग्ध पदार्थ लगाकर। (३) पात्र पर स्नानीय सुगन्धित पदार्थ रगड़कर या मलकर दे। (४) ठण्डे या गर्म प्रासुक जल से धोकर देवे। (५) पात्र में रखे कंद आदि निकालकर उसे साफ कर देवे। (६) आहार-पानी तैयार करवाकर पात्र में उनसे भरकर साधु को देना चाहे।" इन सब स्थितियों में पात्र अनेषणीय एवं अग्राह्य माना गया है।

Elaboration—Like exploration for clothes six types of censure have also been mentioned regarding exploration for pots—(1) The householder tells the ascetic to come after sometime to take a pot. (2) He gives a pot after applying oil, butter or other such oily substance. (3) He gives after rubbing some fragrant substance. (4) He gives after washing it with cold or hot uncontaminated water. (5) He gives after taking out vegetables etc. from the pot. (6) Gets food cooked and wants to fill the pot before giving. In all these conditions the pot is considered to be faulty and unacceptable.

पात्र-प्रतिलेखन

२५३. सिया परो णेया पडिग्गहगं णिसिरेज्जा, से पुव्वामेव आलोएज्जा–आउसो ! ति वा, भइणी ! ति वा, तुमं चेव णं संतियं पडिग्गहगं अंतोअंतेणं पडिलेहिस्सामि। केवली बूया–आयाणमेयं, अंतो पडिग्गहगंसि पाणाणि वा बीयाणि वा हरियाणि वा, अह भिक्खूणं पुव्वोवदिट्ठा ४ जं पुव्वामेव पडिग्गहगं अंतोअंतेण पडिलेहेज्जा।

२५३. कोई गृहस्वामी पात्र को पूर्वोक्त क्रियाएँ किये बिना ही लाकर साधु को दे तो साधु पहले ही उससे कह दे–"आयुष्मन् गृहस्थ या आयुष्मती बहन ! मैं तुम्हारे इस पात्र की भलीभाँति प्रतिलेखना करूँगा, क्योंकि प्रतिलेखना किये बिना पात्र ग्रहण करना केवली भगवान ने कर्मबन्ध का कारण बताया है। हो सकता है उस पात्र में जीव-जन्तु हों, बीज हों या हरी (वनस्पति) आदि हो। जिससे भिक्षुओं के लिए तीर्थंकर आदि पुरुषों ने पहले से ही ऐसा उपदेश दिया है कि साधु को पात्र ग्रहण करने से पूर्व ही भलीभाँति प्रतिलेखन कर लेना चाहिए।

INSPECTING THE POTS

253. If the donor, avoiding the said acts, brings the pot and offers to the ascetic, he should at once tell—"Long lived brother or sister ! I will inspect this pot properly because the Omniscient has said that to take a pot without inspection is a cause of bondage of *karmas*." There is a chance that some living being, seeds or green vegetables are in the pot. Therefore *Tirthankars* and other sages have given instructions that ascetics should carefully inspect pots before accepting.

२५४. सअंडाइं सव्वे आलावगा जहा वत्थेसणाए। णाणत्तं तेल्लेण वा घएण वा णवणीएण वा वसाए वा सिणाणादि जाव अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि थंडिल्लंसि पडिलेहिय २ पमज्जिय २ तओ संजयामेव आमज्जेज्ज वा।

एयं खलु तस्स भिक्खुस्स २ वा सामग्गियं जं सव्वट्ठेहिं सहिएहिं सदा जएज्जासि।

–त्ति बेमि।

॥ पढमो उद्देसओ सम्मत्तो ॥

२५४. प्राणियों के अण्डों यावत् मकड़ी के जालों से युक्त पात्र ग्रहण नहीं करे.... इत्यादि सब आलापक वस्त्रैषणा (सूत्र २२६-२३६) के समान जानना चाहिए। इतनी ही विशेष बात है कि यदि वह पात्र तेल, घी, नवनीत आदि स्निग्ध पदार्थ लगाकर या स्नानीय पदार्थों से रगड़कर नया व सुन्दर बनाया हुआ है तो साधु स्थण्डिल भूमि का प्रतिलेखन-प्रमार्जन करके फिर यतनापूर्वक उस पात्र को साफ करे यावत् धूप में सुखाए यहाँ तक का सब वर्णन वस्त्रैषणा अध्ययन की तरह ही समझ लेना चाहिए।

उस साधु या साध्वी का यह समग्र आचार है। इसमें सदा प्रयत्नशील रहे।

–ऐसा मैं कहता हूँ।

॥ प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

254. A *bhikshu* or *bhikshuni* should not accept if a pot is infested with insect-eggs (etc. up to cobwebs) .... the rest of the details should be read as in *Vastraishana* chapter (aphorism 226-236). The only change being that if oily substance or fragrant things have been applied to the pot the ascetic should find and clean an uncontaminated spot, clean the pot carefully and dry it in sun. The rest of the details should be read as in *Vastraishana* chapter.

This is the totality of conduct (including that related to knowledge) for that *bhikshu* or *bhikshuni* and so should he pursue.

—So I say.

॥ END OF LESSON ONE ॥

बीओ उद्देसओ	द्वितीय उद्देशक	LESSON TWO

पात्र-प्रतिलेखन-प्रमार्जन

२५५. से भिक्खू वा २ गाहावइकुलं पिण्डवायपडियाए पविसमाणे पुव्वामेव पेहाए पडिग्गहगं, अवहट्टु पाणे, पमज्जिय रयं, ततो संजयामेव गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए णिक्खमेज्ज वा पविसेज्ज वा। केवली बूया-आयाणमेयं। अंतो पडिग्गहगंसि पाणे वा बीए वा रए वा परियावज्जेज्जा, अह भिक्खूणं पुव्वोवदिट्ठा ४ जं पुव्वामेव पेहाए पडिग्गहं, अवहट्टु पाणे, पमज्जिय रयं तओ संजयामेव गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए णिक्खमेज्ज वा पविसेज्ज वा।

२५५. साधु-साध्वी आहार-पानी के लिए गृहस्थ के घर में जाने से पहले ही अपने पात्र का भलीभाँति प्रतिलेखन करे। यदि उसमें कोई प्राणी हो तो से निकाल दे और रज को पोंछकर झाड़ दे। तत्पश्चात् साधु आहार-पानी के लिए उपाश्रय से बाहर निकले और गृहस्थ के घर में प्रवेश करे। केवली भगवान कहते हैं-प्रतिलेखना नहीं करना कर्मबन्ध का कारण है, क्योंकि पात्र के अन्दर द्वीन्द्रिय आदि प्राणी, बीज या रज आदि रह सकते हैं, पात्रों की प्रतिलेखना किये बिना उसमें रहे जीवों की विराधना हो सकती है। इसीलिए तीर्थंकर आदि पुरुषों ने पहले से ही इस प्रकार का उपदेश दिया है कि आहार-पानी के लिए जाने से पूर्व साधु पात्र की सम्यक् प्रतिलेखना करके कोई प्राणी हो तो उसे निकालकर एकान्त में छोड़ दे। रज आदि को पोंछकर झाड़ दे और तब आहार के लिए उपाश्रय से निकले और गृहस्थ के घर में प्रवेश करे।

INSPECTING AND CLEANING POTS

255. A *bhikshu* or *bhikshuni* should carefully inspect his pot before going to the house of a layman for alms. If there is some being within, it should be removed and any dirt should be wiped off. After this the ascetic should come out of the *upashraya* and enter the house. The Omniscient has said that not to inspect a pot is a cause of bondage of *karmas*. There is a chance that some two sensed living beings, seeds or green vegetables are in the pot and in absence of careful inspection they may come to harm. Therefore *Tirthankars* and other sages have given instructions

that ascetics should properly inspect pots before going out to collect alms. If he finds some being within, he should take it out and leave it at some safe place. He should wipe the pot clean of any dirt etc. and then only come out of the *upashraya* and enter the house of a layman.

विवेचन—इस सूत्र में भिक्षा के लिए जाने से पूर्व पात्र की अच्छी तरह देखभाल करना और झाड़-पोंछ लेना आवश्यक बताया है। ऐसा नहीं करने से आत्म-विराधना और जीव-विराधना दोनों ही होने की संभावना रहती है। वृत्तिकार ने बताया है इन दोषों के अतिरिक्त अन्य अनेक दोषों की संभावना भी रहती है। जैसे–

(१) यदि पात्र फूटा हो, तो वह आहार-पानी लाने लायक नहीं रहेगा। लिया हुआ आहार निकल जायेगा।

(२) किसी धर्मद्वेषी व्यक्ति ने द्वेषवश पात्र में कोई शस्त्र, विष या अन्य अकल्प्य, अग्राह्य वस्तु चुपके से रख दी हो।

(३) कोई बिच्छू या साँप आदि जहरीला जीव पात्र में घुसकर बैठ गया हो तो आहार लेते समय अकस्मात् काट लेगा अथवा उसे देखे-भाले बिना गर्म आहार या पानी लेने से वह आहार-पानी भी विषाक्त हो जायेगा, जीव की विराधना तो होगी ही।

(४) पात्र में कोई खट्टी चीज लगी रह गई तो दूध आदि पदार्थ लेते ही फट जायेगा। अतः गृहस्थ के यहाँ प्रवेश करते समय और भोजन करना प्रारम्भ करने से पूर्व पात्र-प्रतिलेखना-प्रमार्जना करना सभी दृष्टियों से लाभप्रद है। *(वृत्ति पत्रांक ४००)*

Elaboration—This aphorism informs that it is essential to carefully inspect and clean a pot before setting out to collect alms. Not doing so is harmful to the self as well as other beings. The commentator *(Vritti)* informs that there are chances of many other faults besides these. For example—

(1) If the pot is broken it is of no use for carrying food or water. The collected food would trickle or fall out.

(2) Some antagonist could have furtively placed some weapon, poison or other unwanted unacceptable thing out of animosity.

(3) Some poisonous creature like snake or scorpion may have crept in and be hiding in the pot. While taking alms it might bite all of a

sudden. Also when hot food or water is poured in such pot, such creature would be killed besides the eatable becoming toxic.

(4) If some sour thing is sticking inside the pot it would spoil things like milk. Therefore it is good from every angle to inspect and clean a pot before entering the house of a layman for collecting alms as well as eating. *(Vritti leaf 400)*

सचित्त संसृष्ट पात्र को सुखाने की विधि

२५६. से भिक्खू वा २ गाहावइ जाव समाणे सिया से परो आहट्टु अंतो पडिग्गहगंसि सीओदगं परिभाएत्ता णीहट्टु, दलएज्जा, तहप्पगारं पडिग्गहगं परहत्थंसि वा परपायंसि वा अफासुयं जाव णो पडिगाहेज्जा।

से य आहच्च पडिग्गाहिए सिया, खिप्पामेव उदगंसि साहरेज्जा, सपडिग्गहमायाए व णं परिट्ठवेज्जा, ससणिद्धाए व णं भूमीए नियमेज्जा।

२५६. साधु-साध्वी गृहस्थ के घर पर पानी लाने के लिए गये हों और गृहस्थ घर के भीतर सचित्त जल को किसी अन्य बर्तन में निकालकर साधु को देने लगे, तो साधु उस प्रकार के हस्तगत एवं पर-पात्रगत शीतल जल को अप्रासुक और अनेषणीय जानकर ग्रहण न करे।

कदाचित् असावधानी से वह जल साधु ने अपने पात्र में ले लिया हो तो शीघ्र ही उस जल को दाता के पात्र में वापस कर दे। यदि गृहस्थ उस पानी को वापस लेना नहीं चाहे तो फिर उस जलयुक्त पात्र को लेकर किसी स्निग्ध (गीली) भूमि में या अन्य किसी योग्य स्थान में विधिपूर्वक जल का परिष्ठापन कर दे। उस जल से भीगे पात्र को एकान्त स्थान में रख दे।

PROCEDURE OF DRYING A POT

256. When a *bhikshu* or *bhikshuni* goes to the house of a layman to seek water and inside the room, the householder fills another pot with *sachit* water before coming out and offering to the ascetic, he should not accept such water carried by hand in other pot considering it to be faulty and unacceptable.

In case the ascetic has inadvertently taken that water in his pot he should at once pour it back in the donor's pot. If the donor

refuses to take the water back, the ascetic should carry the pot containing water to a place with wet ground or other suitable place and discard the water following the prescribed procedure. He should place the wet pot at a secluded place.

२५७. से भिक्खू वा ३ उदउल्लं वा ससणिद्धं वा पडिग्गहं णो आमज्जेज्जा वा जाव पयावेज्ज वा। अह पुणेवं जाणेज्जा विगदोदए मे पडिग्गहए छिण्ण-सिणेहे, तहप्पगारं पडिग्गहं ततो संजयामेव आमज्जेज्ज वा जाव पयावेज्ज वा।

२५७. साधु-साध्वी पात्र को तब तक न तो पोंछे और न ही धूप में सुखाए जब तक वह जल से आर्द्र (पानी की बूँदें टपकते हुए) व स्निग्ध (–भीगा–गीला हो)। जब वह यह जान ले कि मेरा पात्र अब विगत जल (जलरहित) और स्नेहरहित–सूख गया है तब वह उस प्रकार के पात्र को यतनापूर्वक पोंछ सकता है और धूप में सुखा सकता है।

257. A *bhikshu* or *bhikshuni* should neither wipe nor dry in sun the pot as long as it is damp or dripping wet. When he knows that it is neither dripping nor wet, he may carefully wipe it or dry it in sun.

विवेचन–इन सूत्रों में सचित्त जल का प्रसंग आया है, जबकि इस पात्रैषणा में पात्र-ग्रहण का विषय चल रहा है। चूर्णिकार का कथन है–"जिस पात्र में सचित्त जल रखा हो गृहस्थ वह सचित्त जल निकालकर, सचित्त जल से भीगा पात्र साधु को देवे तो वह पात्र ग्रहण न करे।" किन्तु वृत्तिकार के आशय को ध्यान में रखकर आचार्य श्री आत्माराम जी म. इस सूत्र को सचित्त जल से सम्बन्धित ही मानते हैं। गृहस्थ साधु द्वारा जल की याचना करने पर उसे चार कारण से सचित्त जल दे सकता है–(१) अज्ञान या असावधानी के कारण, (२) साधु से द्वेषभाव रखता हुआ उसे बदनाम करने की नीयत से, (३) साधु पर अनुकम्पा लाकर, अथवा (४) विमर्शता–किसी अन्य विचार के कारण वह साधु को सचित्त जल देता हो तो .... साधु सभी परिस्थिति में सावधान रहकर सचित्त जल ग्रहण नहीं करे। *(हिन्दी टीका, पृ. १२३-१४०)*

Elaboration—These aphorisms discuss *sachit* (contaminated with living organisms) water whereas the topic of the chapter *Paatraishana* is seeking pots. The commentator *(Churni)* says—"If a householder gives a pot after taking out *sachit* water stored in it, the ascetic should not take such pot that is wet with *sachit* water." But keeping the view of the commentator *(Vritti)* in mind, Acharya Shri Atmaramji M. believes these aphorisms to be related to *sachit* water. When an

ascetic wants water a householder may give *sachit* water for four possible reasons—(1) Unknowingly or inadvertently, (2) Due to antagonism and with an intention to put the ascetic to infamy, (3) With a feeling of compassion for the ascetic, or (4) With some other idea. In all such cases the ascetic should be careful not to accept *sachit* water. *(Hindi Tika, p. 123-140)*

विहार-समय पात्र विषयक विधि-निषेध

२५८. से भिक्खू वा २ गाहावइकुलं पविसित्तुकामे सपडिग्गहमायाए गाहावइकुलं पिण्डवायपडियाए पविसेज्ज वा णिक्खमेज्ज वा, एवं बहिया वियारभूमिं वा विहारभूमिं वा गामाणुगामं दूइज्जेज्जा, तिव्वदेसियादि जहा बिइयाए वत्थेसणाए णवरं एत्थ पडिग्गहो।

एयं खलु तस्स भिक्खुस्स वा भिक्खुणीए वा सामग्गियं जं सव्वट्ठेहिं सहिएहिं सदा जएज्जासि।

—त्ति बेमि।

॥ बीओ उद्देसओ सम्मत्तो ॥

॥ छट्ठं अज्झयणं सम्मत्तं ॥

२५८. साधु या साध्वी जब गृहस्थ के घर आहारादि लेने के लिए जाये तो अपने पात्र साथ लेकर वहाँ प्रवेश करे। इसी प्रकार बस्ती से बाहर स्वाध्याय भूमि या शौचार्थ स्थण्डिल भूमि को जाए अथवा ग्रामानुग्राम विहार करते समय भी पात्र अपने साथ में रखे।

यदि दूर-दूर तक तीव्र वर्षा हो रही हो इत्यादि परिस्थितियों में जैसे वस्त्रैषणा के द्वितीय उद्देशक के अनुसार समझना चाहिए। विशेष इतना ही है कि वहाँ सभी वस्त्रों को साथ में लेकर जाने का निषेध है, जबकि यहाँ अपने सब पात्र लेकर जाने का निषेध है।

यही साधु-साध्वी का समग्र आचार है जिसके परिपालन के लिए प्रत्येक साधु-साध्वी को ज्ञानादि सभी अर्थों से प्रयत्नशील रहना चाहिए।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

॥ द्वितीय उद्देशक समाप्त ॥

॥ षष्ठम अध्ययन समाप्त ॥

WHILE MOVING ABOUT....

258. When a *bhikshu* or *bhıkshuni* goes to the house of a laymen he should enter the house with his pots. In the same way he should always carry his pots with him while going away from habitation for studies or nature's call or going from one village to another.

If there is a wide spread rain and other such conditions the rules mentioned in the *Vastriashana* chapter should be followed. The only difference being that there carrying all his clothes is censured and here carrying all his pots is censured.

This is the totality of conduct (including that related to knowledge) for that *bhikshu* or *bhikshuni*. And so should he pursue.

—So I say.

|| END OF LESSON TWO ||

|| END OF SIXTH CHAPTER ||

अवग्रह प्रतिमा : सप्तम अध्ययन

आमुख

✦ सप्तम अध्ययन का नाम 'अवग्रह प्रतिमा' है।

✦ 'अवग्रह' का अर्थ है ग्रहण करना।

✦ अवग्रह (उग्गह) शब्द के प्रसंगानुसार अनेक अर्थ होते हैं। जैसे–इन्द्रियों द्वारा होने वाला सामान्य ज्ञान, अवधारणा–निश्चय, पात्र, साध्वियों का उपकरण विशेष, ग्रहण करने योग्य वस्तु तथा आश्रय, आवास आदि। स्थान विशेष में ठहरने की आज्ञा, अनुज्ञा प्राप्त करना।

✦ छठे अध्ययन में पात्रैषणा का वर्णन है। साधु पात्र आदि सभी उपकरण गृहस्थ की आज्ञा से ही ग्रहण करता है, क्योंकि उसने सम्पूर्ण अदत्तादान–चोरी का त्याग किया है। इस अध्ययन में स्थान आदि के अवग्रह का विषय मुख्य है। वृत्तिकार ने बताया है–अवग्रह द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के भेद से चार प्रकार का है तथा देवेन्द्र अवग्रह आदि पाँच प्रकार का अभिग्रह है, जिसका कथन इसी अध्ययन के अन्तिम सूत्र में है।

✦ इस अध्ययन में 'अवग्रह' शब्द मुख्यतया चार अर्थों में प्रयुक्त हुआ है–

(१) अनुज्ञापूर्वक ग्रहण करना,

(२) ग्रहण करने योग्य वस्तु,

(३) जिसके अधीन जो-जो वस्तु है, आवश्यकता होने पर उस वस्तु को उपयोग करने की आज्ञा माँगना; तथा

(४) स्थान या आवासगृह अथवा मर्यादित भूभाग। *(वृत्ति पत्रांक ४०२)*

● इस अध्ययन के दो उद्देशक हैं। प्रथम अध्ययन में स्थान के विषय में तथा दूसरे उद्देशक में जिस स्थान पर श्रमण ठहरता है, वहाँ किस प्रकार का विवेक रखना–इस विषय का वर्णन है।

● ●

AVAGRAHA PRATIMA : SEVENTH CHAPTER

INTRODUCTION

- The name of the seventh chapter is *Avagraha Pratima.*
- *Avagraha* mean to take or accept.
- The term *avagraha* or *uggaha* has many different meanings in different context. Some are—general information received through sense organs; concept or decision; pot, a specific equipment meant for female ascetics; acceptable thing, house, place of stay etc.; to get permission to stay at a particular place.
- Exploring for pots is discussed in the sixth chapter. An ascetic takes pots and all other equipment with the permission of a householder because he has taken the vow of not stealing or not taking anything without being given. The main topic discussed in this chapter is accepting a place etc. The commentator *(Vritti)* informs that *avagraha* is of four types based on matter, area, time and attitude. Also there are five types of resolution including *Devendra Avagraha* mentioned in the last aphorism of this chapter
- In this chapter the term *avagraha* has been used mainly to convey four meanings—
  1. To take with permission,
  2. An acceptable thing,
  3. To seek permission from the owners or guardians of various things to use those things when needed, and
  4. A place, a place of stay or a limited area of land. *(Vritti leaf 402)*
- This chapter has two lessons. The first is about place and the second about the discipline to be observed by an ascetic while living at a place.

● ●

ओग्गहपडिमा : सत्तमं अज्झयणं
अवग्रह प्रतिमा : सप्तम अध्ययन
AVAGRAHA PRATIMA : SEVENTH CHAPTER
REGULATION OF POSSESSIONS

पढमो उद्देसओ | प्रथम उद्देशक | LESSON ONE

अवग्रह-ग्रहण की अनिवार्यता

२५९. समणे भविस्सामि अणगारे अकिंचणे अपुत्ते अपसू परदत्तभोई पावं कम्मं णो करिस्सामि त्ति समुट्ठाए सव्वं भंते ! अदिण्णादाणं पच्चक्खामि।

से अणुपविसित्ता गामं वा जाव रायहाणिं वा णेव सयं अदिण्णं गेण्हेज्जा, णेवऽण्णेणं अदिण्णं गेण्हावेज्जा, णेवऽण्णं अदिण्णं गेण्हंतं पि समणुजाणेज्जा।

जेहिं वि सद्धिं संपव्वइए तेसिंऽपियाइं छत्तयं वा डंडगं वा मत्तयं वा जाव चम्मच्छेयणगं वा तेसिं पुव्वामेव उग्गहं अणणुण्णविय अपडिलेहिय अपमज्जिय णो गिण्हेज्ज वा, पगिण्हेज्ज वा। तेसिं पुव्वामेव उग्गहं अणुण्णविय पडिलेहिय पमज्जिय तओ संजयामेव ओगिण्हेज्ज वा पगिण्हेज्ज वा।

२५९. श्रमण-दीक्षा लेते समय दीक्षार्थी प्रतिज्ञा करता है—"अब मैं श्रमण बन जाऊँगा। अनगार (घररहित), अकिंचन (परिग्रहरहित), अपुत्र (पुत्रादि परिवार-सम्बन्धों से मुक्त), अपशु (द्विपद-चतुष्पद आदि पशुओं के स्वामित्व से मुक्त) तथा परदत्तभोजी (दूसरे के द्वारा दिये हुए आहारादि का सेवन करने वाला) होकर मैं हिंसा आदि सभी पापकर्मों का आचरण नहीं करूँगा। इस प्रकार संयम-पालन के लिए समुद्यत होकर हे भंते ! मैं आज समस्त प्रकार के अदत्तादान का प्रत्याख्यान करता हूँ।"

इस प्रकार की (अदत्तादान की) प्रतिज्ञा ग्रहण करके वह साधु ग्राम नगर यावत् राजधानी में प्रवेश करके स्वयं अदत्त—बिना दिये हुए पदार्थ को ग्रहण नहीं करे, न ही दूसरों से ग्रहण कराए और न ही अदत्त ग्रहण करने वाले की अनुमोदना करे।

वह मुनि जिन साधुओं के साथ या जिनके पास दीक्षित हुआ है या जिनके साथ विचरण कर रहा है, उनके भी छत्र, दण्ड, मात्रक (भाजन) यावत् चर्मच्छेदनक आदि जो

उपकरण हैं उनको उनसे अवग्रह–अनुज्ञा लिए बिना तथा प्रतिलेखन-प्रमार्जन किये बिना ग्रहण न करे। अपितु पहले उनसे अवग्रह लेकर, तत्पश्चात् उसका प्रतिलेखन-प्रमार्जन करके फिर उस वस्तु को ग्रहण करे।

ESSENTIALITY OF ACCEPTING THINGS

259. When a person gets initiated as a *Shraman* he takes a vow—"Now I will become a *Shraman.* I will become an *anagar* (own no house), *akinchan* (own no possessions), *aputra* (own no son and family and relations), *apashu* (own no cattle and other bipeds or quadrupeds) and *paradattabhoji* (eat what others give) and will not indulge in any sinful activity including violence. Prepared thus to observe ascetic discipline, O *Bhante* ! I renounce *(adattadaan)* to accept anything which is not given to me."

Taking this vow (of *adattadaan*) that ascetic, on entering a village or city, should not accept anything not given to him; neither should he cause others to do so nor approve others doing so.

That ascetic should also not take umbrella, stick, pots, nail-cutters and other such equipment belonging to other ascetics with whom he got initiated or moves about without seeking their permission, inspecting and cleaning. Before taking he should first take permission from them and then inspect and clean that thing.

विवेचन–इस सूत्र में साधु की तीन विशेषताएँ बताई हैं–(१) वह अपरिग्रही होता है। (२) परदत्तभोजी–भिक्षा माँगकर भोजन लाता है, तथा (३) बिना दिये कोई वस्तु ग्रहण नहीं करता। इसलिए वह कहीं भी जाए, कहीं भी किसी भी साधु के साथ रहे, जब किसी आहार, पानी, औषध, मकान, वस्त्र पात्रादि उपकरण अन्य वस्तु की आवश्यकता हो, सर्वप्रथम उस वस्तु के स्वामी या अधिकारी से अवग्रह–अनुज्ञा लेना आवश्यक है। यदि किसी साधर्मिक साधु के पास से कोई वस्तु लेनी हो तो पहले उसकी आज्ञा लेवें, फिर उस वस्तु को ग्रहण करें।

यहाँ छत्र का सामान्य अर्थ है–वर्षा के समय सिर पर लिया जाने वाला ऊन का कम्बल। तथा स्थविरकल्पी मुनि विशेष कारण उपस्थित होने पर छत्र भी रख सकता है। जैसे–किसी प्रदेश

में अधिक वर्षा होती है तो वहाँ अप्‌काय की हिंसा से बचने के लिए छत्र-छाता भी रख सकता है। *(वृत्ति. पत्रांक ४०२; चूर्णि., पृ. २१९)* आचार्य श्री आत्माराम जी म. के अनुसार छत्र का अर्थ-छाता या ऊनी कम्बल दोनों ही होते हैं। *(हिन्दी टीका, पृष्ठ १२४४)* चर्म छेदनी नाखून काटने के लिए काम आती है। यह पाडिहारिक-वापस लौटाने की शर्त के साथ ग्रहण की जाती है। श्रमण को धातु की वस्तु तथा चर्म छेदनी आदि को रात में अपनी निश्राय में नहीं रखना चाहिए। कीचड़ आदि में चलते समय या वृद्ध अवस्था के कारण दण्ड रखने की भी अनुमति है। *(चूर्णि.)*

'ओगिण्हेज्ज पगिण्हेज्ज' दोनों शब्दों के अर्थ में चूर्णिकार अन्तर करते हैं-एक बार ग्रहण करना अवग्रहण है, बार-बार ग्रहण करना प्रग्रहण है।

Elaboration—This aphorism informs about three attributes of ascetics—(1) He is without any possessions. (2) He begs alms to eat. (3) He does not take anything without being given. Therefore wherever he goes and with whichever ascetic he lives, whatever thing he requires including food, water, medicine, place of stay, cloth, pots and other equipment, first of all it is essential that he seeks permission from the owner or the guardian of that particular thing. Even if he wants to take a thing from a co-religionist ascetic he should first take permission.

Here *chhatra* generally means the woollen blanket used to cover head when it rains. However, a *sthavir-kalpi* ascetic may also use an umbrella under special circumstances. For example—if there are excessive rains in certain area he may keep an umbrella with him in order to avoid harm to water-bodied beings *(Vritti leaf 219)*. According to Acharya Shri Atmaramji M. *chhatra* means both an umbrella and a woollen blanket *(Hindi Tika, p 1244)*. *Charmachhedani* is used to cut nails and it is borrowed with a condition to return. An ascetic cannot keep a *charmachhedani* or other metal things overnight with him. Keeping a staff is also allowed while walking on slimy ground or in old age. *(Churni)*

The commentator *(Churni)* specifies the difference between the meanings of *oginhejj* and *paginhejja*. To take once is *oginhejj* and to take again and again is *paginhejja*.

अवग्रह-याचना के अनेक रूप

२६०. से आगंतारेसु वा ४ अणुवीइ उग्गहं जाएज्जा, जे तत्थ ईसरे ? जे तत्थ समाहिट्ठाए ते उग्गहं अणुण्णविज्जा–कामं खलु आउसो ! अहालंदं अहापरिण्णायं वसामो, जाव आउसो; जाव आउसंतस्स उग्गहे, जाव साहम्मिया, एत्ताव तावं उग्गहं ओगिण्हिस्सामो, तेण परं विहरिस्सामो।

२६०. संयमशील साधु धर्मशाला तथा गृहस्थ के घर आदि में जाकर पहले साधुओं के आवास-योग्य स्थान को भलीभाँति देखकर फिर अवग्रह–वहाँ ठहरने की आज्ञा माँगे। उस स्थान का जो स्वामी हो या जो वहाँ का अधिष्ठाता–नियुक्त अधिकारी हो, उससे अवग्रह की अनुज्ञा माँगते हुए कहे–"आयुष्मन् ! आपकी इच्छानुसार जितने काल तक रहने की तथा जितने क्षेत्र में निवास करने की तुम आज्ञा दोगे, उतने काल तक, उतने क्षेत्र में हम निवास करेंगे। यहाँ जितने भी अन्य साधर्मिक साधु आयेंगे, उनके लिए भी जितने क्षेत्र-काल की तुम्हारी आज्ञा होगी वे भी उतने ही काल तक उतने ही क्षेत्र में ठहरेंगे, उसके पश्चात् वे और हम विहार कर जायेंगे।"

VARIOUS FORMS OF BEGGING

260. Going into an *upashraya,* house etc. a *bhikshu* or *bhikshuni* should carefully inspect a place suitable for ascetics and then seek permission to stay there. Seeking permission to stay from the owner or manager of that place he should say—"Long lived one ! We will only stay for the specific period in the specific area permitted by you. Other co-religionist ascetics coming here will also stay only for the specific period in the specific area permitted by you. After that period we all will leave this place."

संभोगी साधु के साथ व्यवहार विधि

२६१. से किं पुण तत्थोग्गहंसि एवोग्गहियंसि ? जे तत्थ साहम्मिया संभोइया समणुण्णा उवागच्छेज्जा जे तेण सयमेसित्तए असणे वा ४ तेण ते साहम्मिया संभोइया समणुण्णा उवणिमंतेज्जा, णो चेव णं परपडियाए ओगिज्झिय २ उवणिमंतेज्जा।

२६१. इस प्रकार अवग्रहपूर्वक ग्रहण कर लेने के पश्चात् वहाँ (पूर्व स्थित साधु के पास) कोई साधर्मिक, सांभोगिक एवं समनोज्ञ (देखें–सचित्र आचारांग सूत्र, भाग १, सूत्र

२००) साधु अतिथि के रूप में आ जाए तो वह साधु स्वयं अपने द्वारा गवेषणा करके लाये हुए अशनादि चतुर्विध आहार आदि के लिए उन साधर्मिक, सांभोगिक एवं समनोज्ञ साधुओं को निमंत्रित करें, किन्तु अन्य साधु द्वारा लाये हुए या अन्य रुग्णादि साधु के निमित्त लाये हुए आहारादि को लेकर उन्हें निमंत्रित नहीं करे।

DEALING WITH CONFORMIST ASCETIC

261. After occupying the place with due permission if some other co-religionist, *sambhogik* (conformist in indulgences) and *samanojna* (conformist in conduct; refer to *Illustrated Acharanga Sutra,* part I, aphorism 200) ascetics come there as guests, the ascetic already staying there should invite those guest ascetics to share the food etc. brought after due exploration by his ownself. But he should not invite them to share food etc. brought by some other ascetic or that brought specifically for other sick (or disabled) ascetic.

असंभोगी साधु के साथ व्यवहार विधि

२६२. से आगंतारेसु वा जाव से किं पुण तत्थोग्गहंसि एवोग्गहियंसि ? जे तत्थ साहम्मिया अन्नसंभोइया समणुण्णा उवागच्छेज्जा जे तेण सयमेसित्तए पीढे वा फलए वा सिज्जा-संथारए वा तेण ते साहम्मिए अन्नसंभोइए समणुण्णे उवणिमंतेज्जा, णो चेव णं परपडियाए ओगिण्हिय २ उवणिमंतेज्जा।

२६२. धर्मशाला आदि के लिए अनुज्ञा प्राप्त करके ठहरे भिक्षु के पास यदि वहाँ कुछ उत्तम आचार वाले असांभोगिक, साधर्मिक एवं समनोज्ञ साधु अतिथि रूप में आ जायें तो वहाँ ठहरा हुआ साधु जो स्वयं गवेषणा करके अपने लिए लाए हुए पीठ (चौकी), फलक, शय्या-संस्तारक आदि हो, उन्हें अतिथि साधुओं को उन वस्तुओं के लिए आमंत्रित करे, किन्तु जो दूसरे के द्वारा अथवा रुग्णादि अन्य साधु के लिए लाये हुए पीठ, फलक या शय्या-संस्तारक हों, उनको लेने के लिए आमंत्रित नहीं करे।

DEALING WITH NON-CONFORMIST ASCETIC

262. After occupying the place with due permission if some other co-religionist, *asambhogik* and *samanojna* ascetics come there as guests, the ascetic already staying there should invite

those guest ascetics to share the stool, plank, bed etc. brought after due exploration by his ownself. But he should not invite them to share the stool, plank, bed etc. brought by some other ascetic or that brought specifically for other sick (or disabled) ascetic.

२६३. से आगंतारेसु वा जाव से किं पुण तत्थोग्गहंसि एवोग्गहियंसि ? जे तत्थ गाहावईण वा गाहावइपुत्ताण वा सूई वा पिप्पलए वा कण्णसोहणए वा णहच्छेदणए वा तं अप्पणो एगस्स अट्ठाए पाडिहारियं जाइत्ता णो अण्णमण्णस्स दिज्ज वा अणुपदिज्ज वा, सयं करणिज्जं ति कट्टु से त्तमायाए तत्थ गच्छेज्जा, २ पुव्वामेव उत्ताणए हत्थे कट्टु भूमीए वा ठवेत्ता इमं खलु त्ति आलोएज्जा, णो चेव णं सयं पाणिणा परपाणिंसि पच्चप्पिणेज्जा।

२६३. उस धर्मशाला आदि में ठहरा हुआ साधु गृहस्थ या गृहस्थ पुत्र आदि के पास से सुई, कैंची, कान कुरेदनी, नहरनी आदि वस्तुओं की आवश्यकता होने पर अपने स्वयं के लिए प्रातिहारिक रूप से माँगकर के लाया हो तो वह दूसरे साधु को न दे। अथवा वह दूसरे साधु को वे चीजें न सौंपे किन्तु उन वस्तुओं का उपयोग करके उन प्रातिहारिक उपकरणों को लेकर गृहस्थ के यहाँ जाये और लम्बा हाथ करके उन चीजों को भूमि पर रखकर गृहस्थ से कहे—यह तुम्हारा अमुक पदार्थ है, यह अमुक है, इसे सँभाल लो, देख लो। परन्तु उन सुई आदि वस्तुओं को साधु अपने हाथ से गृहस्थ के हाथ पर रखकर नहीं देवे।

263. When an ascetic staying at a *dharmashala* (etc.) borrows for his specific needs a needle, scissors, ear-cleaner, nail-cutter etc. he should not give it to another ascetic. Instead, he should go to the householder and extending his hand place those things on the ground and tell to the householder—here is this thing and that thing; please check it and take it back. But an ascetic should not place these things with his own hands in the hands of the householder.

विवेचन—साधर्मिक, सांभोगिक और समनोज्ञ में अन्तर—एक धर्म, एक देव को मानने वाले और प्रायः एक समान वेश वाले साधर्मिक साधु कहलाते हैं; सांभोगिक का अर्थ है, जिनके आचार, विचार और समाचारी एक समान हों; और समनोज्ञ का अर्थ है जो आचार-विचार में शिथिल न हो।

शास्त्रीय विधान के अनुसार जो साधर्मिक होते हैं तथा सांभोगिक और समनोज्ञ भी होते हैं, उनके साथ आहारादि या वन्दन, व्यवहारादि का लेन-देन होता है, किन्तु असांभोगिक के साथ केवल शयनीय उपकरणों आदि का लेन-देन खुला होता है।

उत्तम आचार वाले अन्य असांभोगिक को भी अपने लाये हुए पाट-चौकी, शय्या-संस्तारक निमंत्रित करना चाहिए। इस विषय पर आचार्य श्री आत्माराम जी म. ने भगवान पार्श्वनाथ के शिष्य केशीकुमार श्रमण तथा भगवान महावीर के शिष्य गौतम स्वामी का उदाहरण देते हुए लिखा है, यद्यपि उनमें परस्पर आहार आदि का सांभोगिक व्यवहार नहीं था और समाचारी भी समान नहीं थी फिर भी गौतम स्वामी जब केशी स्वामी के स्थान पर पहुँचे तो दीक्षा-पर्याय में ज्येष्ठ होते हुए भी केशी स्वामी ने गौतम स्वामी का स्वागत किया और निर्दोष शय्या संस्तारक पलाल आदि आसन लेने की प्रार्थना की। इससे यह स्पष्ट होता है कि उत्तम चरित्र वाले असांभोगी साधु का भी शय्या आदि से सम्मान करना चाहिए। *(हिन्दी टीका, पृ. १२५)*

Elaboration—*Difference between sadharmik, sambhogik and samanojna*—The ascetics who believe in same religion, same deity and with almost similar garb are called *sadharmik; sambhogik* means having same belief, conduct and indulgences; and *samanojna* means conformists who are not lax in conduct and belief.

According to the codes prescribed in scriptures the exchange of food and formal greetings etc. with *sadharmik, sambhogik* and *samanojna* ascetics is allowed. However with *asambhogik* (not having same indulgences) ascetics exchange of only bed and other such equipment is allowed.

If there is some *asambhogik* ascetic adhering to different but good conduct, he should also be offered bed and other equipment brought by the host ascetic himself. In this context Acharya Shri Atmaramji M. has given the example of Keshikumar Shraman, the disciple of Bhagavan Parshvanath and Gautam Swami, the disciple of Bhagavan Mahavir. He adds that although these two were not following the same code of indulgence and praxis still when Gautam Swami came to the place of stay of Keshi Swami, the latter, in spite of being senior, greeted Gautam Swami and requested him to accept faultless bed, seat etc. This confirms that an *asambhogik* ascetic with good conduct should also be offered bed etc. with due respect. *(Hindi Tika, p. 1250)*

२६४. से भिक्खू वा २ से जं पुण उग्गहं जाणेज्जा अणंतरहियाए पुढवीए ससणिद्धाए पुढवीए जाव संताणए, तहप्पगारं उग्गहं णो ओगिण्हेज्जा वा २।

२६४. संयमी साधु-साध्वी यदि ठहरने का ऐसा स्थान जाने, जो सचित्त, स्निग्ध पृथ्वी यावत् जीव-जन्तु आदि से युक्त हो, तो इस प्रकार के स्थान की आज्ञा लेकर उसमें नहीं ठहरना चाहिए।

PROHIBITED PLACES

264. A disciplined *bhikshu* or *bhikshuni* should find if a place is *sachit,* damp (etc. up to infested with animals and creatures), if it is so he should not seek permission and stay there.

२६५. से भिक्खू वा २ से जं पुण उग्गहं जाणेज्जा थूणंसि वा ४ जाव तहप्पगारे अंतलिक्खजाये दुब्बद्धे जाव णो उग्गहं ओगिण्हेज्ज वा।

२६५. साधु-साध्वी यदि ऐसे स्थान को जाने, जो भूमि से बहुत ऊँचा हो, स्तंभ आदि पर टिकाया हुआ एवं ठीक तरह से बँधा हुआ या विषम हो, अस्थिर और चल-विचल हो, तो ऐसे स्थान में भी ठहरने की आज्ञा नहीं लेनी चाहिए।

265. A disciplined *bhikshu* or *bhikshuni* should find if a place is very high from the ground level, resting on some pillar or some other such thing, not properly secured or difficult to approach, or unstable and swaying. If it is so he should not seek permission and stay there.

२६६. से भिक्खू वा २ से जं पुण उग्गहं जाणेज्जा कुलियंसि वा ४ जाव णो ओगिण्हेज्ज वा २।

२६६. जो उपाश्रय कच्ची पतली दीवार पर स्थित हो या नदी के तट पर किसी ऊँचे व विषम स्थान पर निर्मित हो, ऐसे स्थान को भी ठहरने के लिए ग्रहण नहीं करना चाहिए।

266. A disciplined *bhikshu* or *bhikshuni* should find if a place is located on a slim and weak wall or at a high and unapproachable spot on river-bank. If it is so he should not seek permission and stay there.

२६७. से भिक्खू वा २ खंधंसि वा ६, अण्णयरे वा तहप्पगारे जाव णो उग्गहं ओगिण्हेज्ज वा २।

२६७. साधु-साध्वी ऐसे उपाश्रय को जाने जो स्तम्भ, मचान, ऊपर की मंजिल, प्रासाद पर या तलघर में स्थित हो या उस प्रकार के किसी उच्च स्थान पर हो तो ऐसे चल-विचल स्थान की अनुज्ञा ग्रहण न करे।

267. A disciplined *bhikshu* or *bhikshuni* should find if a place is located on a pillar, scaffold, upper storey, palace or cellar. If it is so he should not seek permission and stay at such unstable and unsecured place.

२६८. से भिक्खू वा २ से जं पुण उग्गहं जाणेज्जा सागारियं सागणियं सउदयं सइत्थिं सखुड्ड सपसुभत्तपाणं णो पण्णस्स णिक्खम-पवेस जाव धम्माणुओगचिंताए, सेवं णच्चा तहप्पगारे उवस्सए सागारिए जाव सखुड्ड-पसु-भत्तपाणे नो उग्गहं ओगिण्हेज्ज वा २।

२६८. साधु-साध्वी ऐसे अवग्रह को जाने, जो गृहस्थों से संसक्त हो, अग्नि और जल से युक्त हो, जिसमें स्त्रियाँ, छोटे बालक अथवा क्षुद्र–(नपुंसक) रहते हों, जो पशुओं से युक्त हो, उनके योग्य खाद्य-सामग्री से भरा हो, बुद्धिमान साधु को ऐसे आवास स्थान पर नहीं ठहरना चाहिए तथा जिस उपाश्रय में जाने-आने का मार्ग वाचना यावत् धर्मानुयोग-चिन्तन के योग्य नहीं वहाँ भी नहीं ठहरना चाहिए।

268. A disciplined *bhikshu* or *bhikshuni* should find if a place is crowded with householders, has water and fire in it, where women, children or eunuches live, which has animals and also filled with food for them. A wise ascetic should not stay at such place. He should also avoid a place with an approach that is not suitable for discourse, meditation and other such ascetic activities.

२६९. से भिक्खू वा २ से जं पुण उग्गहं जाणेज्जा गाहावइकुलस्स मज्झंमज्झेणं गंतुं पंथे पडिबद्धं वा, णो पण्णस्स जाव, से एवं णच्चा तहप्पगारे उवस्सए णो उग्गहं ओगिण्हिज्जा वा २।

२६९. साधु-साध्वी ऐसे आवास स्थान को जाने कि उसमें जाने का मार्ग गृहस्थ के घर के बीचोंबीच से है या गृहस्थ के घर से बिल्कुल सटा हुआ है तो प्रज्ञावान् साधु को ऐसे स्थान में निकलना और प्रवेश करना तथा वाचना यावत् धर्मानुयोग-चिन्तन करना उचित नहीं है। ऐसे उपाश्रय का ग्रहण नहीं करना चाहिए।

269. A disciplined *bhikshu* or *bhikshuni* should find if a place has access through a householder's residence or adjacent to it. For a wise ascetic it is not proper to enter or come out or meditate or do other ascetic activities at such place. He should avoid accepting such place

२७०. से भिक्खू वा २ से जं पुण उग्गहं जाणेज्जा इह खलु गाहावई वा जाव कम्मकरीओ वा अन्नमन्नं अक्कोसंति वा तहेव तेल्लादि सिणाणादि सीओदगवियडादि णिगिणा ठिता जहा सेज्जाए आलावगा, णवरं उग्गहवत्तव्वया।

२७०. साधु-साध्वी ऐसे आवास स्थान को जाने, जिसमें गृहस्थ–गृह-स्वामी यावत् उसकी नौकरानियाँ परस्पर एक-दूसरे पर आक्रोश करती हों, लड़ती-झगड़ती हों तथा परस्पर एक-दूसरे के शरीर पर तेल, घी आदि लगाती हों, इसी प्रकार स्नानादि, शीतल सचित्त या उष्ण जल से गात्रसिंचन आदि करती हों या नग्न दशा मे बैठती हों इत्यादि वर्णन शय्याऽध्ययन के (सूत्र ११३-११७) आलापकों की तरह यहाँ समझ लेना चाहिए। वहाँ वह वर्णन शय्या के विषय में है, यहाँ आवास के विषय में है। अर्थात् इस प्रकार के किसी भी स्थान का अवग्रह ग्रहण नहीं करना चाहिए।

270. A *bhikshu* or *bhikshuni* should find if the owner, his wife, servants etc. of the available *upashraya* (habitually) abuse or beat each other or create disturbance; rub or apply oil, butter etc. on each other's body; sprinkle or pour cold or hot water on each other's body and wash or bathe each other's body with cold or hot water and stand or sit naked. Detailed description of these should be taken from aphorisms 113-117 of *Shaiyyaishana* chapter. There the description is about bed and here it is about place of stay. If it is so, a wise ascetic should not stay at any such place.

२७१. से भिक्खू वा २ से जं पुण उग्गहं जाणेज्जा आइण्णं सलेक्खं णो पण्णस्स णिक्खम-पवेसाउ(ए) जाव चिंताए, तहप्पगारे उवस्सए णो उग्गहं ओगिण्हेज्ज वा २।

एयं खलु तस्स भिक्खुस्स वा भिक्खुणीए वा सामग्गियं जं सवट्ठेहिं सदा जएज्जासि।

–त्ति बेमि।

॥ पढमो उद्देसओ सम्मत्तो ॥

२७१. साधु-साध्वी ऐसे आवास-स्थान को जाने जिसमें अश्लील चित्र आदि अंकित या उत्कीर्ण हों, ऐसा उपाश्रय भी प्रज्ञावान् साधु के योग्य नहीं है। ऐसे उपाश्रय का अवग्रह एक या अधिक बार ग्रहण नहीं करना चाहिए। यह सब वर्णन वस्त्रैषणा–शय्यैषणा (सूत्र ११८) अध्ययन की तरह जानना चाहिए।

यही वास्तव में साधु-साध्वी का समग्र आचार है, जिसे ज्ञानादि से युक्त एवं समितियों से समित होकर पालन करने के लिए सदा प्रयत्नशील रहना चाहिए।

–ऐसा मैं कहता हूँ।

॥ प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

271. A *bhikshu* or *bhikshuni* should find if the available *upashraya* is decorated with painted or engraved erotic paintings etc. If it is so, a wise ascetic should not stay once or repeatedly at such place. Such a place is not considered suitable for his stay. Detailed description of these should be taken from aphorism 118 of *Shaiyyaishana* chapter.

This is the totality of conduct (including that related to knowledge) for that *bhikshu* or *bhikshuni*. And so should he pursue.

—So I say.

॥ END OF LESSON ONE ॥

बीओ उद्देसओ	द्वितीय उद्देशक	LESSON TWO

अवग्रहीत स्थान के सम्बन्ध में विवेक

२७२. से आगंतारेसु वा ४ अणुवीई उग्गहं जाएज्जा। जे तत्थ ईसरे जे समाधिट्ठाए ते उग्गहं अणुण्णवित्ता(ज्जा)–कामं खलु आउसो ! अहालंदं अहापरिन्नायं वसामो, जाव आउसो, जाव आउसंतस्स उग्गहे, जाव साहम्मिया एताव उग्गहं ओगिण्हिस्सामो तेण परं विहरिस्सामो।

२७२. साधु-साध्वी धर्मशाला आदि स्थानों में जाकर, स्थान को देखभालकर अवग्रह की याचना करे। स्थान की अनुज्ञा माँगने के लिए उस स्थान के स्वामी या अधिष्ठाता (नियुक्त अधिकारी) से कहे कि "आयुष्मन् गृहस्थ ! हम यहाँ ठहरने की आज्ञा चाहते हैं। आप जितने समय तक और जितने क्षेत्र में निवास करने की हमें अनुज्ञा देंगे, उतने समय तक और उतने ही क्षेत्र में हम ठहरेंगे। हमारे जितने भी साधर्मिक साधु यहाँ आयेंगे, वे भी इसी नियम का अनुसरण करेंगे। आपके द्वारा नियत अवधि के पश्चात् वे और हम यहाँ से विहार कर जायेंगे।"

PRUDENCE ABOUT AN ACCEPTED PLACE

272. Going into an *upashraya,* house etc. a *bhikshu* or *bhikshuni* should carefully inspect a place suitable for ascetics and then seek permission to stay there. Seeking permission to stay from the owner or manager of that place he should say—"Long lived one ! We will only stay for the specific period in the specific area permitted by you. Other co-religionist ascetics coming here will also stay only for the specific period in the specific area permitted by you. After that period we all will leave this place."

२७३. से किं पुण तत्थ उग्गहंसि एवोग्गहियंसि ? जे तत्थ समणाण वा माहणाण वा दंडए वा छत्तए वा जाव चम्मछेदणए वा तं णो अंतोहिंतो बाहिं नीणेज्जा, बहियाओ वा णो अंतो पवेसिज्जा, सुत्तं वा ण पडिबोहेज्जा, णो तेसिं किंचि वि अप्पत्तियं पडिणीयं करेज्जा।

२७३. उक्त स्थान के अवग्रह की अनुज्ञा प्राप्त हो जाने पर साधु यह ध्यान रखे कि वहाँ (ठहरे हुए) शाक्यादि श्रमण ब्राह्मणों के दण्ड, छत्र यावत् चर्मच्छेदनक आदि उपकरण पड़े हों तो उन्हें वह भीतर से बाहर न निकाले और न ही बाहर से अन्दर रखे तथा किसी सोए हुए श्रमण या ब्राह्मण को न जगाए। उनके साथ किंचित् मात्र भी अप्रीतिजनक या प्रतिकूल व्यवहार न करे, जिससे उनके हृदय को आघात पहुँचे।

273. After getting permission to stay at the place the ascetic should take care not to put out or bring in staff, umbrella, nail-cutter and other equipment belonging to Buddhist monks, Brahmins etc. (staying there) if lying there. He should also not awake any *Shraman* or Brahmin sleeping there. He should not in any way behave unpleasantly with them so as to hurt their feelings.

आम्र आदि ग्रहण विधि

२७४. से भिक्खू वा २ अभिकंखेज्जा अंबवणं उवागच्छित्तए। जे तत्थ ईसरे जे तत्थ समाहिट्ठाए ते उग्गहं अणुजाणावेज्जा-कामं खलु जाव विहरिस्सामो।

से किं पुण तत्थ उग्गहंसि एवोग्गहियंसि ? अह भिक्खू इच्छेज्जा अंबं भोत्तए वा से जं पुण अंबं जाणेज्जा सअंडं जाव स संताणगं तहप्पगारं अंबं अफासुयं जाव णो पडिगाहेज्जा।

२७४. कोई साधु-साध्वी आम के वन (बगीचे) में ठहरना चाहे तो उस आम्रवन का जो स्वामी या अधिष्ठाता (नियुक्त अधिकारी) हो, उनसे अवग्रह की अनुज्ञा प्राप्त करते हुए कहे कि "आयुष्मन् ! मैं यहाँ ठहरना चाहता हूँ। आपकी इच्छा हो उतने समय व उतने नियत क्षेत्र में हम इस आम्रवन में ठहरेंगे, इसी बीच हमारे समागत साधर्मिक भी आयेंगे तो इसी नियम का अनुसरण करेंगे। अवधि पूर्ण होने के पश्चात् हम लोग यहाँ से विहार कर जायेंगे।"

उस आम्रवन में अवग्रहानुज्ञा ग्रहण करके ठहरने पर यदि साधु आम खाना या उसका रस पीना चाहता है, तो वहाँ के आम यदि अंडों यावत् मकड़ी के जालों से युक्त हों तो उस प्रकार के आम्रफलों को अप्रासुक एवं अनेषणीय जानकर ग्रहण न करे।

TAKING THINGS LIKE MANGO

274. If a *bhikshu* or *bhikshuni* wants to stay in a mango orchard he should seek permission to stay there from the owner or manager of that place saying—"Long lived one ! We will only stay for the specific period in the specific area in the orchard permitted by you. Other co-religionist ascetics coming here will also stay only for the specific period in the specific area permitted by you. After that period we all will leave this place."

After seeking permission and staying there if the ascetic wants to eat mangoes or drink mango-juice he should find if the mangoes there are infested with eggs (etc. up to cobwebs). If so he should not eat considering them to be faulty and unacceptable.

२७५. से भिक्खू वा २ से जं पुण अंबं जाणेज्जा अप्पंडं जाव अप्प संताणगं अतिरिच्छछिण्णं अव्वोच्छिण्णं अफासुयं जाव णो पडिगाहेज्जा।

२७५. साधु-साध्वी उस आम्रवन के आमों को अण्डों आदि से रहित जाने किन्तु वे तिरछे कटे हुए नहीं हैं, न ही खण्डित हैं तो उन्हें अप्रासुक एवं अनेषणीय मानकर ग्रहण न करे।

275. If the ascetic finds that the mangoes are not infested with eggs (etc. up to cobwebs) but are neither sliced nor cut into pieces, he should not take considering them to be faulty and unacceptable.

२७६. से भिक्खू वा २ से जं पुण अंबं जाणेज्जा अप्पंडं जाव संताणगं तिरिच्छछिण्णं वोच्छिण्णं फासुयं जाव पडिगाहेज्जा।

२७६. साधु-साध्वी यदि जाने कि आम अण्डों आदि से रहित हैं और तिरछे कटे हुए हैं और अनेक खण्ड किये हुए हैं, तो उन्हें प्राप्त होने पर प्रासुक और एषणीय जानकर ग्रहण करे।

276. If the ascetic finds that the mangoes are not infested with eggs (etc. up to cobwebs) and are also sliced and cut into pieces, he may take them considering them to be faultless and acceptable.

२७७. से भिक्खू वा २ अभिकंखेज्जा अंबभित्तगं वा अंबपेसियं वा अंबचोयगं वा अंबसालगं वा अंबदालगं वा भोत्तए वा पायए वा, से जं पुण जाणेज्जा अंबभित्तगं वा जाव अंबदालगं वा सअंडं जाव स संताणगं अफासुयं जाव णो पडिगाहेज्जा।

२७७. साधु-साध्वी आम का आधा भाग, आम की पेशी (फाड़ी–चौथाई भाग), आम की छाल या आम की गिरी, आम का रस या आम के बारीक टुकड़े खाना-पीना चाहे, किन्तु वह अण्डों यावत् मकड़ी के जालों से युक्त हो तो उन्हें अप्रासुक एवं अनेषणीय मानकर ग्रहण न करे।

277. If the ascetic wants to eat one half, a quarter, skin, kernel or small pieces of a mango or suck the mango he should find if these are infested with eggs (etc. up to cobwebs). If so he should not eat considering them to be faulty and unacceptable.

२७८. से भिक्खू वा २ से जं पुण जाणेज्जा अंबभित्तगं वा (जाव) अप्पंडं जाव अतिरिच्छच्छिण्णं अफासुयं जाव नो पडिगाहेज्जा।

२७८. यदि आम का आधा भाग (फाँक) यावत् आम के छोटे बारीक टुकड़े अण्डों यावत् मकडी के जालों से तो रहित हैं, किन्तु वे तिरछे कटे हुए नहीं हैं और न ही खण्ड-खण्ड किये हुए हैं तो उन्हें भी अप्रासुक एवं अनेषणीय जानकर ग्रहण न करे।

278. If the ascetic finds that the said parts of a mango are not infested with eggs (etc. up to cobwebs) but are neither sliced nor cut into pieces, he should not take considering them to be faulty and unacceptable.

२७९. से जं पुण जाणेज्जा अंबभित्तगं वा (जाव अंबदालगं वा) अप्पंडं जाव संताणगं तिरिच्छच्छिण्णं वोच्छिण्णं फासुयं जाव पडिगाहेज्जा।

२७९. यदि साधु-साध्वी यह जाने कि आम की आधी फाँक आदि छोटे बारीक टुकड़े अण्डों यावत् मकडी के जालों से रहित हैं, तिरछे कटे हुए भी हैं और खण्ड-खण्ड किये हुए हैं तो उसे प्रासुक एवं एषणीय मानकर प्राप्त होने पर ग्रहण कर सकता है।

279. If the ascetic finds that the said parts of a mango are not infested with eggs (etc. up to cobwebs) and are also sliced and cut into pieces, he may take them considering them to be faultless and acceptable.

इक्षुवन में अवग्रह याचना

२८०. से भिक्खू वा २ अभिकंखेज्जा उच्छुवणं उवागच्छित्तए। जे तत्थ ईसरे जाव उग्गहियंसि अह भिक्खू इच्छेज्जा उच्छुं भोत्तए वा पायए वा से जं उच्छुं जाणेज्जा सअंडं जाव णो पडिगाहेज्जा अतिरिच्छच्छिण्णं तहेव तिरिच्छच्छिण्णे वि तहेव।

२८०. वह साधु-साध्वी यदि इक्षुवन में ठहरना चाहें तो जो वन के स्वामी या उसके द्वारा नियुक्त अधिकारी हो, उनसे पूर्वोक्त विधिपूर्वक क्षेत्र-काल की सीमा खोलकर अवग्रह की आज्ञा प्राप्त करके वहाँ निवास करे। यदि वहाँ रहते हुए साधु ईख खाना या उसका रस पीना चाहे तो पहले यह जाने कि वे ईख अण्डों यावत् मकड़ी के जालों से युक्त तो नहीं है? यदि हों तो साधु उन्हें अप्रासुक अनेषणीय जानकर ग्रहण नहीं करे। यदि वे अण्डों यावत् मकड़ी के जालों से युक्त नहीं हैं, किन्तु तिरछे कटे हुए या टुकड़े-टुकड़े किये हुए नहीं हैं, तब भी अप्रासुक जानकर ग्रहण न करे। यदि साधु यह जान जाय कि वे ईख अण्डों यावत् मकड़ी के जालों से रहित हैं, तिरछे कटे हुए तथा टुकड़े-टुकड़े किये हुए हैं तो उन्हें प्रासुक एवं एषणीय जानकर ले सकता है। यह समूचा वर्णन आम्रवन में ठहरने तथा आम्रफल ग्रहण करने की तरह समझना चाहिए।

STAYING IN A SUGAR-CANE FARM

280. If a *bhikshu* or *bhikshuni* wants to stay in a sugar-cane farm he should seek permission to stay there from the owner or manager of that place duly specifying the period and area. While staying there if the ascetic wants to sugar-cane or drink sugar-cane-juice he should find if the sugar-cane there are infested with eggs (etc. up to cobwebs). If so he should not take considering them to be faulty and unacceptable. If they are not infested with eggs (etc. up to cobwebs) but are neither sliced nor cut into pieces, he should not take considering them to be faulty and unacceptable. If the ascetic finds that the sugar-cane are not infested with eggs (etc. up to cobwebs) and are also sliced and cut into pieces, he may take them considering them to be faultless and acceptable. Details should be taken as mentioned with reference to mangoes.

२८१. से भिक्खू वा २ अभिकंखेज्जा अंतरुच्छुयं वा उच्छुगंडियं वा उच्छुचोयगं वा उच्छुसालगं वा भोत्तए वा पायए वा। से जं पुण जाणेज्जा अंतरुच्छुयं वा जाव डालगं वा सअंडं जाव णो पडिगाहेज्जा।

२८१. साधु-साध्वी ईख के पर्व का मध्य भाग, ईख की गँडेरी, ईख का छिलका या ईख का अन्दर का गर्भ, ईख की छाल या रस, ईख के छोटे-छोटे बारीक टुकड़े खाना या पीना चाहे तो पहले वह जान ले कि वह ईख के पर्व का मध्य भाग यावत् ईख के छोटे-छोटे बारीक टुकड़े अण्डों यावत् मकड़ी के जालों से युक्त हैं तो अप्रासुक एवं अनेषणीय जानकर ग्रहण न करे।

281. If the ascetic wants to eat the middle portion, slices, skin, pith or small pieces of sugar-cane or suck the sugar-cane he should find if these are infested with eggs (etc. up to cobwebs). If so he should not eat considering them to be faulty and unacceptable.

२८२. से भिक्खू वा २ से जं पुण जाणेज्जा अंतरुच्छुयं वा जाव डालगं वा अप्पंडं जाव नो पडिगाहेज्जा, अतिरिच्छच्छिण्णं तिरिच्छच्छिण्णं तहेव।

२८२. यदि यह जाने कि वह ईख के पर्व का मध्य भाग यावत् ईख के छोटे-छोटे कोमल टुकड़े अण्डों आदि से रहित हैं, किन्तु तिरछे कटे हुए नहीं हैं, तो उन्हें अनेषणीय जानकर ग्रहण न करे। यदि वह यह जाने कि वे इक्षु-अवयव अण्डों आदि से रहित हैं, तिरछे कटे हुए भी हैं, तो उन्हें प्रासुक एवं एषणीय जानकर ग्रहण कर सकता है।

282. If the ascetic finds that the said parts of a sugar-cane are not infested with eggs (etc. up to cobwebs) but are neither sliced nor cut into pieces, he should not take considering them to be faulty and unacceptable. If he finds that the said parts of a sugar-cane are not infested with eggs (etc. up to cobwebs) and are also sliced and cut into pieces, he may take them considering them to be faultless and acceptable.

लहसुन-अवग्रह विधि

२८३. से भिक्खू वा २ अभिकंखेज्जा ल्हसुणवणं उवागच्छित्तए, तहेव तिण्णि वि आलावगा, नवरं ल्हसुणं।

से भिक्खू वा २ अभिकंखेज्जा ल्हसुणं वा ल्हसुणकंदं वा ल्हसुणचोयणं वा ल्हसुणणालगं वा भोत्तए वा पायए वा। से जं पुण जाणेज्जा ल्हसुणं वा जाव ल्हसुणबीजं वा सअंडं जाव णो पडिगाहेज्जा। एवं अतिरिच्छच्छिण्णे वि तिरिच्छच्छिण्णे जाव पडिगाहेज्जा।

२८३ यदि साधु-साध्वी (किसी कारणवश) लहसुन के वन पर ठहरना चाहें तो पूर्वोक्त विधि से उसके स्वामी या नियुक्त अधिकारी से क्षेत्र-काल की सीमा खोलकर अवग्रहानुज्ञा ग्रहण करके रहे। किसी कारणवश लहसुन खाना चाहे तो पूर्व सूत्र के अनुसार अण्डों आदि से युक्त तथा तिरछे कटे हुए हों तो सूत्र में वर्णित विधिपूर्वक ग्रहण करे। इसके तीनों आलापक पूर्व सूत्रवत् समझ लेने चाहिए।

यदि साधु या साध्वी (किसी कारणवश) लहसुन, लहसुन का कंद, लहसुन की छाल या छिलका या रस अथवा लहसुन के गर्भ का आवरण (लहसुन का बीज) खाना-पीना चाहे यह सम्पूर्ण वर्णन आम्र व इक्षु के आलापक की तरह समझना। पूर्ववत् प्रासुक एवं एषणीय मिलने पर ग्रहण कर सकता है।

PROCEDURE ACCEPTING GARLIC

283. If a *bhikshu* or *bhikshuni* (for some reason) wants to stay in a garlic farm he should seek permission to stay there from the owner or manager of that place duly specifying the period and area. If he wants to eat (for some reason) garlic he should follow the procedure mentioned above and eat if they are not infested with eggs (etc. up to cobwebs) and are also sliced and cut into pieces. The three rules should be taken as mentioned earlier.

If the ascetic wants to eat (for some reason) garlic or its pulp, peel, stalk or seed or suck its juice he should follow the procedure mentioned in context of mango. If he finds it to be faultless and acceptable as mentioned earlier he may take.

विवेचन—सूत्र २७४-२८३ में गृहस्थ के आम्रवन, इक्षुवन तथा लहसुनवन में ठहरने पर वहाँ स्थित आम, ईख या लहसुन के ग्रहण व त्याग के सम्बन्ध में जो वर्णन है वह सापेक्ष दृष्टि से किया गया है। इस सम्बन्ध में चूर्णिकार लिखते हैं—

आम्र आदि वस्तु खाने की इच्छा होने पर साधु को ग्राह्य-अग्राह्य का विवेक रखना जरूरी है। यदि वे फल साधु की मर्यादा के अनुसार अण्डों आदि से युक्त न हों, तिरछे और खण्ड-खण्ड किये हुए हों, तो ग्रहण कर सकता है इसके विपरीत नहीं। निशीथसूत्र, उद्देशक १५ में सचित्त

आम व सचित्त इक्षु ग्रहण करने पर चातुर्मासिक प्रायश्चित्त का विधान है। लहसुन के प्रकरण में चूर्णिकार तथा वृत्तिकार रोगादि की स्थिति में ग्राह्य तथा वैसे अग्राह्य बताते हैं। *(चूर्णि मूल पाठ, मुनि जम्बूविजय जी, पृ २२३-२२४)*

Elaboration—The details mentioned in aphorisms 274-283 regarding staying in mango orchard, sugar-cane or garlic farm and eating these things or not are from a relative viewpoint. The commentator *(Churni)* writes in this context—

It is necessary for an ascetic to discern between acceptable and not acceptable when he wants to eat things like mango. If according to the ascetic code they are not contaminated and are sliced he can eat otherwise not In chapter 15 of *Nishith Sutra* there is a procedure of doing the *Chaturmasik* atonement if one eats *sachit* mango or sugar-cane As regards garlic the commentators (*Churni* and *Vritti*) say that it is allowed only in ailing condition otherwise not. *(Churni Text, Muni Jambuvijayaji, p 223-224)*

अवग्रह-ग्रहण में सप्त-प्रतिमा

२८४. से भिक्खू वा २ आगंतारेसु वा ४ जावोग्गहियंसि जे तत्थ गाहावईण वा गाहावइपुत्ताण वा इच्चेयाइं आयतणाइं उवाइकम्म अह भिक्खू जाणेज्जा इमाहिं सत्तहिं पडिमाहिं उग्गहं ओगिण्हित्तए-

(१) तत्थ खलु इमा पढमा पढिमा-से आगंतारेसु वा ४ अणुवीयि उग्गहं जाएज्जा जाव विहरिस्सामो। पढमा पडिमा।

(२) अहावरा दोच्चा पडिमा-जस्स णं भिक्खुस्स एवं भवइ 'अहं च खलु अण्णेसिं भिक्खूणं अट्ठाए उग्गहं ओगिण्हिस्सामि, अण्णेसिं भिक्खूणं उग्गहे उग्गहिए उवल्लिस्सामि।' दोच्चा पडिमा।

(३) अहावरा तच्चा पडिमा-जस्स णं भिक्खुस्स एवं भवइ-'अहं च खलु अण्णेसिं भिक्खूणं अट्ठाए उग्गहं ओगिण्हिस्सामि, अण्णेसिं च उग्गहे उग्गहिए णो उवल्लिस्सामि।' तच्चा पडिमा।

(४) अहावरा चउत्था पडिमा-जस्स णं भिक्खुस्स एवं भवइ-'अहं च खलु अण्णेसिं भिक्खूणं अट्ठाए उग्गहं णो ओगिण्हिस्सामि, अण्णेसिं च उग्गहे उग्गहिए उवल्लिस्सामि।' चउत्था पडिमा।

(५) अहावरा पंचमा पडिमा-जस्स णं भिक्खुस्स एवं भवइ-'अहं च खलु अप्पणो अट्ठाए उग्गहं ओगिण्हिस्सामि, णो दोण्हं, णो तिण्हं, णो चउण्हं, णो पंचण्हं।' पंचमा पडिमा।

(६) अहावरा छट्ठा पडिमा-से भिक्खू वा २ जस्सेव उग्गहे उवल्लिएज्जा, जे तत्थ अहासमण्णागए तं जहा-इक्कडे वा जाव पलाले वा, तस्स लाभे संवसेज्जा, तस्स अलाभे उक्कुडुए वा णेसज्जिओ वा विहरेज्जा। छट्ठा पडिमा।

(७) अहावरा सत्तमा पडिमा-से भिक्खू वा २ अहासंथडमेव, उग्गहं जाएज्जा, तं जहा-पुढविसिलं वा कट्ठसिलं वा अहासंथडमेव, तस्स लाभे संवसेज्जा, तस्स अलाभे उक्कुडुओ वा णेसज्जिओ वा विहरेज्जा। सत्तमा पडिमा।

इच्चेतासिं सत्तण्हं पडिमाणं अण्णतरिं जहा पिंडेसणाए।

२८४. साधु-साध्वी धर्मशाला आदि स्थानों में पहले बताई गई विधिपूर्वक अवग्रह की अनुज्ञा ग्रहण करके रहे। वहाँ कोई अप्रीतिजनक प्रतिकूल कार्य न करे तथा अवगृहीत स्थानों में गृहस्थ तथा गृहस्थ-पुत्र आदि के संसर्ग से सम्बन्धित पहले कहे गये स्थान-सम्बन्धी दोषों का परित्याग करके निवास करे।

आगे कही जाने वाली इन सात प्रतिमाओं के माध्यम से भिक्षु अवग्रह ग्रहण करे-

(१) पहली प्रतिमा-धर्मशाला आदि स्थानों की परिस्थिति का सम्यक् विचार करके जितने क्षेत्र व जितने काल के लिए वहाँ के स्वामी की आज्ञा हो, उतने काल तक वहाँ ठहरूँगा। यह पहली प्रतिमा है।

(२) दूसरी प्रतिमा-जिस भिक्षु को इस प्रकार का अभिग्रह होता है कि मैं अन्य भिक्षुओं के लिए अवग्रह की याचना करूँगा और उन्ही भिक्षुओं के द्वारा याचित उपाश्रय में निवास करूँगा। यह दूसरी प्रतिमा है।

(३) तीसरी प्रतिमा-दूसरे भिक्षुओं के लिए अवग्रह की याचना करूँगा, परन्तु दूसरे भिक्षुओ के द्वारा याचना किये हुए स्थानों में नहीं ठहरूँगा। यह तीसरी प्रतिमा है।

(४) चौथी प्रतिमा-किसी भिक्षु को ऐसी प्रतिज्ञा होती है कि मैं दूसरे भिक्षुओं के लिए अवग्रह की याचना नहीं करूँगा, किन्तु दूसरे साधुओं द्वारा याचना किये हुए स्थान में निवास करूँगा। यह चौथी प्रतिमा है।

(५) पाँचवीं प्रतिमा-कोई भिक्षु ऐसी प्रतिज्ञा धारण करता है कि मैं केवल अपने लिए ही अवग्रह की याचना करूँगा, किन्तु अन्य दो, तीन, चार और पाँच साधुओं के लिए याचना नहीं करूँगा। यह पाँचवीं प्रतिमा है।

(६) छठी प्रतिमा–कोई साधु यह प्रतिज्ञा धारण करता है मैं जिस स्थान की याचना करूँगा उस अवगृहीत स्थान में पहले से ही रखा हुआ शय्या-संस्तारक आदि मिल जाये, जैसे कि इक्कड नामक तृण विशेष यावत् पराल आदि; तो उन पर आसन-स्थान करूँगा। वैसा सहज प्राप्त शय्या-संस्तारक न मिले तो उत्कटुक अथवा निषद्या-आसन द्वारा रात्रि व्यतीत करूँगा। यह छठी प्रतिमा है।

(७) सातवीं प्रतिमा–जिस स्थान की अवग्रह-अनुज्ञा ली हो, यदि उसी स्थान पर पृथ्वीशिला, काष्ठशिला तथा पराल आदि बिछा हुआ प्राप्त हो तो वहाँ रहूँगा, वैसी सहज संस्तृत पृथ्वीशिला आदि न मिले तो उत्कटुक या निषद्या-आसनपूर्वक बैठकर रात्रि व्यतीत करूँगा। यह सातवीं प्रतिमा है।

इन सात प्रतिमाओं में से जो साधु किसी एक प्रतिमा को स्वीकार करता है, वह इस प्रकार न कहे–मैं उग्राचारी हूँ, दूसरे शिथिलाचारी हैं। अभिमान एवं गर्व छोड़कर समभावपूर्वक रहे। इत्यादि समस्त वर्णन पिण्डैषणा अध्ययन *(सूत्र ७७)* के अनुसार जान लेना चाहिए।

SEVEN REGULATIONS REGARDING PLACE OF STAY

284. A *bhikshu* or *bhikshuni* should live at places like *dharmashala* after taking permission according to the said procedure. He should not indulge in any unpleasant or objectionable activity. Also he should avoid earlier mentioned place related faults with regard to interaction with householders and their sons at the place of stay.

The ascetic should accept a place of stay observing the following *pratimas* (regulations)—

(1) First *Pratima*—Properly considering the conditions of *dharmashala* and other places of stay I shall stay there in the particular area for the particular period allowed by the owner. This is the first *pratima.*

(2) Second *Pratima*—I will stay in the *upashraya* begged by the ascetics who have resolved to beg for place of stay for other ascetics. This is the second *pratima.*

(3) Third *Pratima*—I will beg for a place of stay for other ascetics, but not stay at places begged by other ascetics. This is the third *pratima.*

(4) Fourth *Pratima*—Some ascetic resolves that he will not beg for place of stay for other ascetics but will stay at places begged by other ascetics. This is the fourth *pratima.*

(5) Fifth *Pratima*—Some ascetic resolves that he will beg for a place of stay only for himself but not for other two, three, four or five ascetics. This is the fifth *pratima.*

(6) Sixth *Pratima*—Some ascetic resolves that he will accept for sitting a bed or mattress etc., for example *ikkad* or *paral* or other such hay, if there is some already available at the place of stay he has begged for. If that is not available he will spend the night sitting in ***utkatuk*** or *nishadya* posture. This is the sixth *pratima.*

(7) Seventh *Pratima*—Some ascetic resolves that he will accept for use a rock, block of wood, or a bed made of *paral* or other such hay already spread at the place of stay he has taken permission to stay. If that is not available he will spend the night sitting in ***utkatuk*** (cow milking) or *nishadya* (sitting) posture. This is the seventh *pratima.*

An ascetic who takes any one of these seven *pratimas* should not say—I am a resolute observer of conduct, others are lax. Renouncing pride and conceit he should live with equanimity. Other details should be taken as those in *Pindaishana* chapter *(aphorism 77).*

विवेचन-चूर्णिकार एवं वृत्तिकार के अनुसार इन सातो प्रतिमाओं का स्वरूप क्रमशः इस प्रकार है-

(१) प्रथम प्रतिमा सभी सांभोगिक साधुओं की सामान्य है।

(२) दूसरी प्रतिमा गच्छ में रहने वाले सांभोगिक साधुओं की तथा उत्कृष्ट विहारी असांभोगिक साधुओं की होती है।

(३) तीसरी प्रतिमा आचार्य के पास रहकर अध्ययन करना चाहने वाले आहालंदिक साधुओ और आचार्यों की होती है।

(४) चौथी प्रतिमा गच्छ में रहकर अभ्युद्यतविहारी तथा जिनकल्पी बनने के लिए अभ्यास या पूर्व तैयारी करने वालों की होती है।

(५) पाँचवीं, छठी तथा सातवीं प्रतिमा केवल जिनकल्पिक मुनियों की या प्रतिमाधारक साधुओं की होती है।

आचार्य श्री आत्माराम जी म. ने लिखा है–ये भेद वृत्तिकार ने बताये हैं। मूल आगम पाठ में किसी कल्प का उल्लेख नहीं है। सामान्य रूप में प्रत्येक साधु अपनी शक्ति के अनुसार अभिग्रह ग्रहण कर सकता है। *(हिन्दी टीका, पृष्ठ १२७०)*

Elaboration—According to the commentators (*Churni* and *Vritti*) these seven *pratimas* are related to—

(1) First *pratima* is common to all *sambhogik* ascetics

(2) Second *pratima* is observed by *sambhogik* ascetic within the particular group *(gachha)* or higher level of *asambhogik* ascetics

(3) Third *pratima* is observed by *acharyas* and ascetics living with them for study.

(4) Fourth *pratima* is observed by ascetics living within the group but preparing to be *Jinakalpi*

(5) Fifth, sixth and seventh *pratimas* are exclusively observed by *Jinakalpi* ascetics or those who are strictly adhering to all *pratimas*

Acharya Shri Atmaramji M. writes that these classifications have been mentioned by the commentator *(Vritti)* The original text of the *Agam* has no mention of these Generally speaking every ascetic can accept resolutions according to his capability or strength. *(Hindi Tika, p 1270)*

पंचविध अवग्रह

२८५. सुयं मे आउसंतेणं भगवया एवमक्खायं–इह खलु थेरेहिं भगवंतेहिं पंचविहे उग्गहे पण्णत्ते, तं जहा–देविंदोग्गहे १, राओग्गहे २, गाहावइउग्गहे ३, सागारियउग्गहे ४, साधम्मियउग्गहे ५।

एयं खलु तस्स भिक्खुस्स वा भिक्खुणीए वा सामग्गियं।

–त्ति बेमि।

॥ बीओ उद्देसओ सम्मत्तो ॥

॥ सत्तमं अज्झयणं सम्मत्तं ॥

॥ पढमं चूला सम्मत्तं ॥

२८५. "हे आयुष्मन् शिष्य ! मैंने सुना है, भगवान से इस प्रकार कहा है कि इस जिन प्रवचन में स्थविर भगवन्तों के पाँच प्रकार का अवग्रह होता है–(१) देवेन्द्र-अवग्रह, (२) राजावग्रह, (३) गृहपति-अवग्रह, (४) सागारिक-अवग्रह, और (५) साधर्मिक-अवग्रह।"

यही उस भिक्षु या भिक्षुणी का समग्र आचार है। जिसके लिए सदा प्रयत्नशील रहना चाहिए।

–ऐसा मैं कहता हूँ।

FIVE TYPES OF PLACES OF STAY

285. "O long lived disciple ! I have heard that *Bhagavan* has said—In this discourse of the *Jina* the *sthavır bhagavants* (a term of reverential address) have five types of places of stay (with reference to donors)—(1) *Devendra avagraha,* (2) *Raja avagraha,* (3) *Grıhapatı avagraha,* (4) *Sagarık avagraha,* and (5) *Sadharmik avagraha.*

This is the totality of conduct (including that related to knowledge) for that *bhıkshu* or *bhikshunı.* And so should he pursue carefully.

—So I say.

विवेचन–प्रस्तुत सूत्र में पाँच प्रकार के अवग्रह अवग्रहदाताओं की दृष्टि से बताये गये हैं।

देवेन्द्र अवग्रह का अर्थ है–दक्षिण भरत क्षेत्र में विचरने वाले मुनियों को जहाँ जंगल आदि स्थान पर अन्य कोई व्यक्ति अवग्रह-अनुज्ञा देने वाला न हो, वहाँ प्रथम देवलोक के अधिपति सौधर्मेन्द्र की आज्ञा ग्रहण करनी चाहिए। कहीं तृण आदि लेते समय या कहीं बैठते समय

सौधर्मेन्द्र की आज्ञा लेने की परिपाटी आज भी है। राजा का अर्थ किसी समय चक्रवर्ती सम्राट् से था। जिस क्षेत्र का जो अधिकारी हो उसकी आज्ञा लेना गृहपति अवग्रह। गृह-स्वामी की आज्ञा लेना सागारिक अवग्रह। तथा साधर्मिक अवग्रह का अर्थ है जिस स्थान पर पहले से साधु ठहरे हों तो वहाँ उनकी आज्ञा लेकर ठहरना या कोई भी वस्तु लेते समय उनकी आज्ञा लेना। इस प्रकार साधु कहीं भी कोई भी वस्तु बिना आज्ञा के ग्रहण नहीं करे–यही महाज्ञानी स्थविरों ने साधु का कल्प बताया है। *(भगवतीसूत्र, श १६, उ २ की वृत्ति आचार्य अभयदेव सूरि)*

॥ द्वितीय उद्देशक समाप्त ॥

॥ सातवाँ अध्ययन समाप्त ॥

॥ प्रथम चूला समाप्त ॥

Elaboration—This aphorism states five types of places of stay with reference to donors

Devendra avagraha—the ascetics moving around in southern India where there was no one to give permission to stay in jungles or other such places, an ascetic would seek permission from *Saudharmendra,* the king of the first abode of gods. This tradition continues even today when taking hay or sitting somewhere. *Raja* (king) at one time meant a *Chakravarti* or an emperor. To seek permission from the manager or guardian of a place is *Grihapati avagraha*. To seek permission from the owner of a house is *Sagarik avagraha*. And *Sadharmik avagraha* means to seek permission for stay or taking a thing from ascetics who are already staying at a place. Thus an ascetic should not take anything anywhere without permission. This is the code for ascetics as told by great sages *(Vritti of Bhagavati Sutra by Acharya Abhaya Dev Suri 16/2)*

॥ END OF LESSON TWO ॥

॥ END OF SEVENTH CHAPTER ॥

॥ END OF FIRST CHULA ॥

सप्त सप्तिका : द्वितीय चूला

स्थान-सप्तिका : अष्टम अध्ययन

आमुख

✦ आठवें अध्ययन का नाम 'स्थान-सप्तिका' है।

✦ जहाँ ठहरा जाए, उसे स्थान कहते हैं। द्रव्यस्थान है–ग्राम, नगर यावत् राजधानी आदि में ठहरने योग्य स्थान। औपशमिक भाव आदि या स्वभाव में स्थिर होना भावस्थान है। इस अध्ययन में द्रव्यस्थान का विषय है।

✦ साधु जीवन में रहने तथा धार्मिक क्रियाएँ करने के लिए स्थान की आवश्यकता होती है। सातवे अध्ययन मे अवग्रह याचना की विधि बताई है। अवग्रहपूर्वक याचित स्थान में ही कायोत्सर्ग, स्वाध्याय, आहार, उच्चार-प्रस्रवणादि विसर्जन के लिए किस प्रकार का स्थान, कितनी कैसी भूमि हो ? इन सबका विवेक अनिवार्य है।

✦ द्वितीय शय्या अध्ययन मे स्थान इस शब्द का प्रयोग–कायोत्सर्ग अर्थ मे हुआ है। इसी कारण स्थान (कायोत्सर्ग) सम्बन्धी चार प्रतिमाएँ इस अध्ययन के उत्तरार्द्ध में दी गई हैं। अत· द्रव्यस्थान एवं कायोत्सर्ग रूप भावस्थान के सात विवेक सूत्रों का वर्णन इस अध्ययन में है।

✦ इन सात अध्ययनों मे सातों ही सप्तिकाएँ क्रमश· एक से एक बढ़कर हैं, सातो ही उद्देशकरहित हैं। प्रथम सप्तिका स्थान-सम्बन्धी है।

● ●

STHANA SAPTIKA : EIGHTH CHAPTER

INTRODUCTION

- The name of the eighth chapter is *Sthana Saptika*.
- A place of stay or dwelling is called *sthana*. Physical dwellings or *dravya sthan* are places suitable for stay of ascetics in a village, city, capital city etc To be steadfast in the *Aupashamik* attitude (feelings that help suppression of *karmas*) and other such spiritual practices including dwelling in the self are mental dwellings or *bhaava sthan* This chapter deals with the physical dwellings.
- A place to live in and pursue religious activities is required for ascetic life. The procedure of seeking a place of stay has been discussed in the seventh chapter It is essential to have prudence about what dimension and type of area and surface is required for meditation, studies, eating and discarding various type of excretion at the acquired place
- In the second chapter, *Shayya,* the term *sthana* has been used to convey *kayotsarg* (dissociation from the body). That is why the four *pratimas* (regulations) related to *sthan* (kayotsarga) have been mentioned in the later part of this chapter. Thus seven points of prudence about *dravya sthan* or place of stay and *bhaava sthan* (attitude) or *kayotsarga* have been detailed in this chapter.
- In this group of seven chapters there are no lessons. The seven septets excel each other in their respective order. The first septet is about dwellings.

●●

ठाण सत्तिक्कयं : अट्ठमं अज्झयणं
स्थान-सप्तिका : अष्टम अध्ययन : प्रथम सप्तिका
STHANA SAPTIKA : EIGHTH CHAPTER : SEPTET ONE
PLACE SEPTET

उपयुक्त युक्त-स्थान ग्रहण-निषेध की विधि

२८६. से भिक्खू वा २ अभिकंखेज्जा ठाणं ठाइत्तए। से अणुपविसेज्जा गामं वा नगरं वा जाव रायहाणिं वा। से जं पुण ठाणं जाणेज्जा सअंडं जाव मक्कडासंताणयं तं तहप्पगारं ठाणं अफासुयं अणेसणिज्जं लाभे संते णो पडिगाहेज्जा। एवं सिज्जागमेण नेयव्वं जाव उदयपसूयाइं ति।

२८६. साधु-साध्वी यदि किसी स्थान में ठहरना चाहें तो वह पहले ग्राम, नगर यावत् राजधानी में पहुँचे। वहाँ पहुँचकर स्थान को जाने कि यह स्थान अण्डों यावत् मकड़ी के जालों से युक्त है? तो उस प्रकार के स्थान को अप्रासुक एवं अनेषणीय जानकर मिलने पर भी ग्रहण न करे।

इसी प्रकार इससे आगे का यहॉ से उदकप्रसूत कंदादि तक का स्थानैषणा सम्बन्धी वर्णन शय्यैषणा अध्ययन *(११ आलापक सूत्र ७८-८३)* में निरूपित वर्णन के समान जान लेना चाहिए।

PROCEDURE OF ACCEPTING AND REJECTING

286. When a *bhikshu* or *bhikshuni* wants to stay at a place he should first go to a village, city, capital city etc Arriving there he should find if the place is infested with eggs, cobwebs etc. If it is so he should not take that dwelling, even if offered, considering it to be faulty and unacceptable.

Further details about exploring of dwellings up to aquatic bulbous roots should be taken as mentioned in *Shaiyyaishana* chapter *(aphorisms 78-83).*

२८७. इच्चेयाइं आयतणाइं उवाइकम्म अह भिक्खू इच्छेज्जा चउहिं पडिमाहिं ठाणं ठाइत्तए–

(१) तत्थिमा पढमा पडिमा–अचित्तं खलु उवसज्जिज्जा, अवलंबिज्जा, काएण विप्परि कम्माइ, सवियारं ठाणं ठाइस्सामि। पढमा पडिमा।

(२) अहावरा दोच्चा पडिमा–अचित्तं खलु उवसज्जिज्जा, अवलंबिज्जा, णो काएण विप्परिकम्माइ, णो सवियारं ठाणं ठाइस्सामि त्ति। दोच्चा पडिमा।

(३) अहावरा तच्चा पडिमा–अचित्तं खलु उवसज्जिज्जा, अवलंबिज्जा, णो काएण विप्परिकम्माइ, णो सवियारं ठाणं ठाइस्सामि त्ति। तच्चा पडिमा।

(४) अहावरा चउत्था पडिमा–अचित्तं खलु उवसज्जिज्जा, णो अवलंबिज्जा, णो काएण विप्परिकम्माइ, णो सवियारं ठाणं ठाइस्सामि, वोसट्ठकाए वोसट्ठकेस-मंसु-लोम-णहे संणिरुद्धं वा ठाणं ठाइस्सामि त्ति। चउत्था पडिमा।

इच्चेयासिं चउण्हं पडिमाणं जाव पग्गहियतरायं विहरिज्जा, णेव किंचि वि वइज्जा।

एयं खलु तस्स भिक्खुस्स वा भिक्खुणीए वा जाव जइज्जासि।

–त्ति बेमि।

॥ पढमं सत्तिक्कयं सम्मत्तं ॥

॥ अट्ठमं अज्झयणं सम्मत्तं ॥

२८७. इन पहले बताये गये तथा आगे कहे जाने वाले कर्मोपादानरूप दोष स्थानों को छोड़कर साधु इन चार प्रतिमाओं का आश्रय लेकर किसी स्थान में ठहरने की इच्छा करे–

(१) **प्रथम प्रतिमा**–मैं अपने कायोत्सर्ग के समय अचित्त स्थान में निवास करूँगा, अचित्त दीवार आदि का शरीर से सहारा लूँगा तथा हाथ-पैर आदि सिकोड़ने-फैलाने के लिए परिस्पन्दन आदि करूँगा तथा वहीं (मर्यादित भूमि में ही) थोड़ा-सा सविचार–पैर आदि से विचरण करूँगा। यह पहली प्रतिमा हुई।

(२) **दूसरी प्रतिमा**–मैं कायोत्सर्ग के समय अचित्त स्थान में रहूँगा और अचित्त दीवार आदि का शरीर से सहारा लूँगा तथा हाथ-पैर आदि सिकोड़ने-फैलाने के लिए परिस्पन्दन आदि करूँगा; किन्तु मर्यादित भूमि में पैर आदि से थोड़ा-सा भी भ्रमण नहीं करूँगा।

(३) तृतीय प्रतिमा–मैं कायोत्सर्ग के समय अचित्त स्थान में रहूँगा, अचित्त दीवार आदि का शरीर से सहारा लूँगा, किन्तु हाथ-पैर आदि का संकोचन-प्रसारण एवं पैरों से मर्यादित भूमि में जरा-सा भी भ्रमण नहीं करूँगा।

(४) चौथी प्रतिमा–मैं कायोत्सर्ग के समय अचित्त स्थान में स्थित रहूँगा। उस समय न तो शरीर से दीवार आदि का सहारा लूँगा, न हाथ-पैर आदि का संकोचन-प्रसारण करूँगा और न ही पैरों से मर्यादित भूमि में जरा-सा भी भ्रमण करूँगा। मैं कायोत्सर्ग पूर्ण होने तक अपने शरीर के प्रति ममत्व का व्युत्सर्ग करता हूँ। केश, दाढ़ी, मूँछ, रोम और नख आदि के प्रति भी ममत्व-विसर्जन करता हूँ और कायोत्सर्ग द्वारा सम्यक् प्रकार से काया का निरोध करके इस स्थान में स्थित रहूँगा।

साधु इन चार प्रतिमाओं में से किसी एक प्रतिमा को ग्रहण करके विचरण करे। परन्तु प्रतिमा धारण न करने वाले अन्य मुनि की निन्दा या अवहेलना न करे।

यही उस भिक्षु या भिक्षुणी का आचार–सर्वस्व है; जिसमें सभी ज्ञानादि आचारों से युक्त एवं समित होकर सदा प्रयत्नशील रहना चाहिए।

–ऐसा मैं कहता हूँ।

FOUR *STHANA PRATIMAS*

287. Avoiding the aforesaid occasions to commit faults engendering bondage of *karmas* and those mentioned hereafter, an ascetic should think of staying at a place observing these four *pratimas* (self-regulations).

(1) First *Pratima*—During my *kayotsarga* (dissociation of mind from the body; a type of meditation) I will live at an *achit* (free of living organisms) place and lean my body only on an *achit* wall (etc.). There alone I will do the activities of stretching or folding my limbs as well as a little careful walking (in limited area). This is the first *pratima.*

(2) Second *Pratima*—During my *kayotsarga* I will live at an *achit* place and lean my body only on an *achit* wall (etc.) There alone I will do the activities of stretching or folding my limbs but will not walk even a little in the limited area. This is the second *pratima.*

(3) Third *Pratima*—During my *kayotsarga* I will live at an *achit* place and lean my body only on an *achit* wall (etc.) But I will completely avoid the activities of stretching or folding my limbs and careful walking in the limited area. This is the third *pratima.*

(4) Fourth *Pratima*—During my *kayotsarga* I will live at an *achit* place. But I will avoid leaning my body on a wall (etc.) or stretching or folding my limbs or even a little careful walking in the limited area. I completely renounce any attachment for my body as long as my meditation is not concluded. I also renounce my fondness for hair, beard, moustache, body-hair, nails etc. I will remain motionless at this place absolutely disciplining my body through *kayotsarga.* This is the fourth *pratima.*

An ascetic may move about accepting any one of these self-regulations. But he should neither ignore nor criticize other ascetics who do not observe these *pratimas.*

This is the totality (of conduct including that related to knowledge) for that *bhikshu* or *bhikshuni.* And so should he pursue.

—So I say.

विवेचन–स्थान सम्बन्धी चार प्रतिज्ञाएँ–साधु के लिए स्थान में स्थित होने पर स्वेच्छा से ग्रहण करने वाली चार प्रतिज्ञाएँ संक्षेप में इस प्रकार हैं–

(१) अचित्त स्थानोपाश्रया, (२) अचित्तावलम्बना, (३) हस्तपादादि परिक्रमणा, तथा (४) स्तोक पादविहरणा।

प्रथम प्रतिमा में उक्त चारों ही क्रियाएँ होती हैं, फिर उत्तरोत्तर एक-एक अन्तिम क्रिया कम होती जाती है।

चूर्णिकार एवं वृत्तिकार के अनुसार इन चारों की व्याख्या इस प्रकार है–

(१) प्रथम प्रतिमा–प्रथम अभिग्रह में साधक अचित्त भूमि पर खड़ा होकर कायोत्सर्ग करता है। आवश्यकता होने पर अचित्त (स्थान) का आश्रय लेता है, दीवार, खम्भे आदि अचित्त वस्तुओं का पीठ एवं छाती से सहारा लेता है। हाथ लम्बा रखने से थक जाने पर आगल आदि का सहारा लेता

है। अपने स्थान की मर्यादित भूमि में ही काय-परिक्रमण—परिस्पन्दन करता है, यानी हाथ, पैर आदि का संकोचन-प्रसारणादि करता है और थोड़ा-सा पैरों से चंक्रमण भी करता है। सवियारं का अर्थ है—चंक्रमण, अर्थात् पैरों से थोड़ा-थोड़ा विचरण-विहरण करना। तात्पर्य यह है कि पैरों से उतना ही चंक्रमण करता है, जिससे मल-मूत्र विसर्जन सुखपूर्वक हो सके। *(आचारांग चूर्णि मू. पा टि., पृ. २२८ —"सवियारं चंक्रमणमित्यर्थ उच्चार पासवणादि सुहं भवति ते जाणेज्जा।")*

दूसरी प्रतिमा में कायोत्सर्ग में स्थित साधक सहारे के अतिरिक्त आलम्बन एवं परिस्पंदन—हाथ-पाँव के आकुञ्चन-प्रसारणादि क्रिया करता है, किन्तु पैरों आदि से चंक्रमण नहीं करता।

तीसरी प्रतिमा में कायोत्सर्ग में स्थित होकर आवश्यक होने पर केवल दीवार आदि का आलम्बन ही लेता है, हाथ-पैर आदि का परिस्पन्दन और परिक्रमण (चंक्रमण) नहीं करता।

चौथी प्रतिमा में तो इन तीनों का परित्याग कर देता है। चतुर्थ प्रतिमा का धारक इस प्रकार परिमित काल तक अपनी काया का व्युत्सर्ग कर देता है तथा शरीर व अपने केश, दाढ़ी-मूँछ, रोम-नख आदि पर से भी ममत्व विसर्जन कर देता है। शरीरादि के प्रति ममत्व एवं आसक्तिरहित होकर वह कायोत्सर्ग करता है, इस प्रकार की प्रतिज्ञा करके सुमेरु की तरह निष्कम्प रहता है। यदि कोई मच्छर आदि काटता है अथवा कोई उसके केश आदि को उखाड ले तब भी वह अपने कायोत्सर्ग से विचलित नहीं होता।

चूर्णिकार 'संणिरुद्धगामट्ठाणं ठाइस्सामि' पाठ मानकर व्याख्या करते हैं—सन्निरुद्ध कैसे होता है? समस्त प्रवृत्तियों का त्याग करके, इधर-उधर तिरछा निरीक्षण छोड़कर एक ही पुद्‌गल पर दृष्टि टिकाए हुए अनिमिष (अपलक) नेत्र होकर रहना सन्निरुद्ध होना कहलाता है। इसमें साधक को अपने केश, रोम, नख, मूँछ आदि उखाडने पर भी चंचलता नहीं होती। वह आत्म-चिन्तन में लीन रहता है।

॥ प्रथम सप्तिका समाप्त ॥

॥ आठवाँ अध्ययन समाप्त ॥

Elaboration—The four resolutions related to stay—In brief the four resolutions to be taken voluntarily by an ascetic while staying at a place are as follows—

(1) *Achit Sthanopaashraya,* (2) *Achittavalamban,* (3) *Hastapadadi Parikramana,* and (4) *Stok Padaviharana.*

All the four actions exist in the first *pratima.* After that one action stops progressively in reverse order. According to the commentators (*Churni* and *Vritti*) these four are defined as follows—

(1) First *Pratima*—In the first resolution the seeker performs *kayotsarga* standing on the ground. If needed he leans on an *achit* thing like wall, pillar etc. using his back or chest. If he stands with raised hands he holds some fixed chain (etc.) when he gets tired. He does other bodily activities like stretching or folding his limbs as well as a little careful movement with legs or walking only within the predetermined limited area. *Saviyaram* means moving about or walking a little. The allusion is that he walks only just to facilitate bowl movement. *(Acharanga Churni, p. 228)*

(2) Second *Pratima*—In the second resolution the seeker, besides leaning, performs activities of stretching or folding his limbs but does not walk.

(3) Third *Pratima*—In the third resolution the seeker only leans his body on a wall (etc.) when necessary but avoids even the activities of stretching or folding his limbs.

(4) Fourth *Pratima*—In the fourth resolution the seeker stops all these three activities. This way the seeker who accepts the fourth *pratima* completely dissociates his mind from his body and abandons any fondness for hair, beard, moustache, body-hair, nails etc. He performs *kayotsarga* by getting absolutely free of any fondness and attachment for his body (etc.). Resolving thus he stands motionless like a mountain. He is not disturbed from his *kayotsarga* even if some insect stings or someone plucks his hair.

The commentator *(Churni)* accepts the reading *'Sanniruddhagamatthanam thaissami'* and elaborates—How one becomes *sanniruddha* (absolutely blocked or still) ? To stare without blinking and abandoning all indulgences, stopping all movements of the eye and focussing on just one molecule, is called becoming *sanniruddha*. In this state the seeker is not disturbed even if his hair or nails are plucked. He remains absorbed in his contemplation of the self.

|| END OF SEPTET ONE ||

|| END OF EIGHTH CHAPTER ||

निषीधिका : नवम अध्ययन

आमुख

✦ नौवें अध्ययन का नाम 'निषीधिका' है।

✦ 'निषीधिका' शब्द भी शास्त्रीय पारिभाषिक शब्द है। यों तो निषीधिका का सामान्य रूप से अर्थ होता है–बैठने की जगह। प्राकृत शब्द कोष में निषीधिका के निशीथिका, नैषेधिकी आदि रूपान्तर तथा श्मशान भूमि, शव-परिष्ठापन भूमि, बैठने की जगह, पापक्रिया के त्याग की प्रवृत्ति, स्वाध्याय भूमि, अध्ययन स्थान आदि अर्थ मिलते हैं। *(पाइअ-सद्द-महण्णवो, पृ. ४१४)*

✦ प्रस्तुत प्रसंग में निषीधिका या निशीथिका दोनों का प्रयोग स्वाध्याय भूमि अर्थ में ही अभीष्ट है। स्वाध्याय के लिए ऐसा ही स्थान अभीष्ट होता है, जहाँ जनता की भीड, कलह, कोलाहल, कर्कश स्वर, रुदन आदि अशान्तिकारक बातों व गन्दगी, मल-मूत्र, कूड़ा डालने आदि निषिद्ध व्यापारों का निषेध हो। जहाँ चिन्ता, शोक, आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान, मोहोत्पादक रागरंग आदि कुविचारों का प्रभाव न हो। दिगम्बर आम्नाय में प्रचलित 'नसीया' नाम इसी 'निसीहिया' शब्द का अपभ्रष्ट रूप है।

✦ वह निषीधिका ('स्वाध्याय भूमि') कैसी हो? वहाँ स्वाध्याय करने हेतु कैसे बैठा जाए? कहाँ बैठा जाए? कौन-सी क्रियाएँ वहाँ न की जाएँ? कौन-सी की जाएँ? इत्यादि स्वाध्याय भूमि से सम्बन्धित क्रियाओं का निरूपण होने के कारण इस अध्ययन का नाम 'निषीधिका' या 'निशीथिका' रखा गया है।

● ●

NISHIDHIKA : NINTH CHAPTER

INTRODUCTION

- The name of the ninth chapter is *Nishidhika (Nisihiya).*
- *Nishidhika* is also a technical term. The general meaning of *nishidhika* is 'sitting place'. The *Prakrit* dictionary mentions *nishithika* and *naishedhiki* as alternative readings of *nishidhika.* The meanings include—cremation ground; ground where dead body is placed; sitting place; the attitude of abandoning sinful activities; place for study and self-study etc. *(Paia Sadda Mahannavo, p 414)*
- Here *nishidhika* and *nishithika* both have been used to convey place of self-study For self-study only such place is required where crowd, squabble, noise, harsh sounds, wailing and other such disturbances are prohibited as also acts of throwing dirt, excreta, and rubbish. A place which is free of any bad influences of activities producing or stimulating worry, sorrow, gloom, anger, fondness. The term *'nasiyan',* popularly used in Digambar sect is a colloquial form of *nisihiya* only.
- Of what type should that *nishidhika* be ? How should one sit there to study ? Where to sit ? What should not be done there ? What should be done there ? As answers to all these points have been discussed in this chapter it is titled *Nishidhika* or *Nishithika.*

●●

णिसीहिया सत्तिक्कयं : नवमं अज्झयणं

निषीधिका : नवम अध्ययन : द्वितीय सप्तिका

NISHIDHIKA : NINTH CHAPTER : SEPTET TWO

STUDY-PLACE SEPTET

निषीधिका-विवेक

२८८. से भिक्खू वा २ अभिकंखेज्जा णिसीहियं फासुयं गमणाए। से पुण णिसीहियं जाणेज्जा सअंडं सपाणं जाव मक्कडासंताणयं। तहप्पगारं णिसीहियं अफासुयं अणेसणिज्जं लाभे संते णो चेइस्सामि।

२८९. से भिक्खू वा २ अभिकंखेज्जा णिसीहियं गमणाए, से पुण निसीहियं जाणेज्जा अप्पपाणं अप्पबीयं जाव मक्कडासंताणयं। तहप्पगारं णिसीहियं फासुयं एसणिज्जं लाभे संते चेइस्सामि।

एवं सेज्जागमेण णेयव्वं जाव उदयपसूयाणि त्ति।

२८८. जो साधु-साध्वी प्रासुक-निर्दोष स्वाध्याय भूमि में जाना चाहे, वह यदि ऐसी स्वाध्याय भूमि को जाने, जो अण्डों, जीव-जन्तुओं यावत् मकड़ी के जालों से युक्त हो तो उस प्रकार की निषीधिका को अप्रासुक एवं अनेषणीय समझकर मिलने पर कहे कि "मैं यहाँ नहीं ठहरूँगा।"

२८९. साधु-साध्वी यदि ऐसी स्वाध्याय भूमि को जाने, जो अण्डों, प्राणियों, बीजों यावत् मकड़ी के जालों से युक्त नहीं हो, तो उस प्रकार की निषीधिका को प्रासुक एवं एषणीय समझकर प्राप्त होने पर कहे कि "मैं यहाँ ठहरूँगा।"

निषीधिका के सम्बन्ध में यहाँ से लेकर उदक-प्रसूत कंदादि तक का समग्र वर्णन शय्या (द्वितीय) अध्ययन *(सूत्र ७८-८३)* के अनुसार जान लेना चाहिए।

PRUDENCE OF *NISHIDHIKA*

288. When a *bhikshu* or *bhikshuni* wants to go to a faultless place for study he should find if that place is infested with eggs, living beings, cobwebs etc. If he is offered such place he should

consider it to be faulty and unacceptable and tell—"I will not stay here."

289. When a *bhikshu* or *bhikshuni* wants to go to a faultless place for study he should find if that place is not infested with eggs, living beings, cobwebs etc. If he is offered such place or *nishidhika* he should consider it to be faultless and acceptable and tell—"I will stay here."

All further details about *nishidhika* up to aquatic bulbous routs should be taken as mentioned in aphorisms 78-83 of the second chapter, *Shayyaishana.*

विवेचन—इन दोनों सूत्रों में निषीधिका से सम्बन्धित निषेध एवं विधान किया गया है। शय्या अध्ययन (द्वितीय) के सूत्र ७८-८३ के समस्त सूत्रों का वर्णन समुच्चय रूप में कर दिया गया। इसीलिए यहाँ कहा है-"एवं सेज्जागमेण णेयव्वं जाव उदयपसूयाणि।" इस विषय के सभी विधि-निषेध शय्या अध्ययन के अनुसार समझना चाहिए, विशेष इतना ही है कि यहाँ शय्या के स्थान पर निषीधिका समझ लेना चाहिए।

Elaboration—These two aphorisms contain procedures of accepting and rejecting *nishidhika* (place for study). Mention of aphorisms 78-83 of the second chapter, *Shayyaishana,* has been made for brevity. That is why it is mentioned here that all rules about accepting and rejecting *nishidhika* should be taken as mentioned in *Shayyaishana* chapter, the only difference being that read *nishidhika* instead of *shayya*

निषीधिका में अकरणीय कार्य

२९०. जे तत्थ दुवग्गा वा तिवग्गा वा चउवग्गा वा पंचवग्गा वा अभिसंधारिंति णिसीहियं गमणाए। ते णो अण्णमण्णस्स कायं आलिंगिज्ज वा, विलिंगिज्ज वा चुंबिज्ज वा, दंतेहिं वा नहेहिं वा अच्छिंदिज्ज वा।

एयं खलु तस्स भिक्खुस्स वा भिक्खुणीए वा जाव जएज्जा।

—त्ति बेमि।

॥ बीअं सत्तिक्कयं सम्मत्तं ॥

॥ नवमं अज्झयणं सम्मत्तं ॥

२९०. यदि स्वाध्याय भूमि में दो-दो, तीन-तीन, चार-चार या पाँच-पाँच के समूह में एकत्रित होकर साधु जाना चाहते हों तो वे वहाँ जाकर एक-दूसरे के शरीर का परस्पर आलिंगन (स्पर्श) न करें, न ही विविध प्रकार से एक-दूसरे से चिपटें, न वे परस्पर चुम्बन करें, न ही दाँतों और नखों से एक-दूसरे का छेदन करें।

यही (निषीधिका के उपयोग का विवेक ही) उस भिक्षु या भिक्षुणी के जीवन का आचार सर्वस्व है। इसी को अपने लिए श्रेयस्कर माने।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

॥ द्वितीय सप्तिका समाप्त ॥

॥ नौवाँ अध्ययन समाप्त ॥

PROHIBITIONS AT *NISHIDHIKA*

290. If the ascetics want to go to a *nishidhika* in groups of two, three, four or five then after arriving there they should not indulge in embracing (touching), hugging various ways, kissing or use teeth or nails to wound each other.

This (prudence in use of *nishidhika*) is the totality (of conduct including that related to knowledge) for that *bhikshu* or *bhikshuni*. And so should he pursue.

—So I say.

|| END OF SEPTET TWO ||

|| END OF NINTH CHAPTER ||

उच्चार-प्रस्रवण-सप्तिका : दशम अध्ययन

आमुख

- दसवें अध्ययन का नाम 'उच्चार-प्रस्रवण-सप्तिका' है।
- 'उच्चार' का शाब्दिक अर्थ है–शरीर से जो प्रबल वेग के साथ च्युत होता–निकलता है। मल या विष्ठा का नाम उच्चार है। प्रस्रवण का शब्दार्थ है–प्रकर्ष रूप से जो शरीर से बहता है, झरता है। प्रस्रवण–(पेशाब) मूत्र या लघु-शंका को कहते हैं।
- उच्चार और प्रस्रवण ये दोनों शारीरिक क्रियाएँ हैं, इनका विसर्जन करना अनिवार्य है। अगर हाजत होने पर इनका विसर्जन न किया जाये तो अनेक प्रकार की भयंकर व्याधियाँ उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है।
- मल और मूत्र दोनों दुर्गन्धयुक्त वस्तुएँ हैं, इन्हें जहाँ-तहाँ डालने से जनता के स्वास्थ्य को हानि पहुँचेगी, जीव-जन्तुओं की विराधना होगी, लोगों को साधुओं के प्रति घृणा होगी। इसलिए मल-मूत्र विसर्जन या परिष्ठापन कहाँ, कैसे और किस विधि से किया जाए, कैसे न किया जाए? इन सब बातों का सम्यक् विवेक साधु को होना चाहिए। इसीलिए ज्ञानी एवं अनुभवी अध्यात्म पुरुषों ने इस अध्ययन की योजना की है।
- उच्चार-प्रस्रवण का कहाँ और कैसे विसर्जन या परिष्ठानपन करना चाहिए। जिससे महाव्रतों एवं समितियों में अतिचार-दोष नहीं लगे, उसका विधि निषेध–सात मुख्य सूत्रों द्वारा बताने के कारण इस अध्ययन का नाम उच्चार-प्रस्रवण-सप्तिका रखा गया है। *(आचारांग निर्युक्ति, गा. ३२१-३२२)*

● ●

UCHCHAR-PRASRAVAN SAPTIKA : TENTH CHAPTER

INTRODUCTION

- The name of the tenth chapter is *'Uchchar-Prasravan Saptika'*.
- The dictionary meaning of *uchchar* is that 'which is forced out of the body forcefully'. Thus defecation is called *uchchar*. *Prasravan* means that 'which flows out of the body in volume'. Thus urination is called *prasravan*.
- Defecation and urination are normal activities of the body, excretion of these is essential. If not excreted on nature's call it may cause numerous grave ailments.
- Stool and urine both stink. Throwing them carelessly anywhere may cause health problems for the population, living beings may come to harm and people may start despising ascetics. Therefore an ascetic should be prudent about where and how to and how not to discard defecation and urine. Keeping this in view the wise and experienced sages have composed this chapter.
- How to discard defecation and urine so as to avoid faults of transgressing the vows and self-regulations has been mentioned in seven points here Therefore this chapter is titled Defecation-urination Septet *(Acharanga Niryukti, verse 321-322)*

उच्चार-पसावण सत्तिक्कयं : दसमं अज्झयणं
उच्चार-प्रस्रवण सप्तिका : दशम अध्ययन : तृतीय सप्तिका
UCHCHAR-PRASRAVAN SAPTIKA : TENTH CHAPTER : SEPTET THREE
DEFECATION-URINATION SEPTET

उच्चार-प्रस्रवण-विवेक

२९१. से भिक्खू वा २ उच्चार-पासवणकिरियाए उब्बाहिज्जमाणे सयस्स-पादपुंछणस्स असइए तओ पच्छा साहम्मियं जाइज्जा।

२९१. साधु-साध्वी को मल-मूत्र की प्रबल बाधा होने पर अपने मात्रक पात्र में उससे निवृत्ति करें। यदि अपना पादपुञ्छनक (मात्रक) उपलब्ध न हो तो साधर्मिक साधु से उसकी याचना करे (और मल-मूत्र विसर्जन क्रिया से निवृत्त हो)।

PRUDENCE OF DEFECATION-URINATION

291. When a *bhikshu* or *bhikshuni* has great bodily urge to defecate or urinate he should relieve himself in his stool-pot. If his own duster (or pot) is not available he should beg for it from another co-religionist ascetic (and relieve himself).

विवेचन–प्रस्तुत सूत्र में मल-मूत्र की हाजत हो जाने पर उसे रोकने के निषेध का संकेत किया है। हाजत होते ही वह तुरन्त अपना मात्रक–पात्र लेकर क्रिया से निवृत्त हो जाए, यदि वह समय पर नहीं मिले तो यथाशीघ्र साधर्मिक साधु से माँगे और उक्त क्रिया से शीघ्र निवृत्त हो जाए। वृत्तिकार इस सूत्र का आशय स्पष्ट करते हैं–मल-मूत्र के आवेग को रोकना नहीं चाहिए। मल के आवेग को रोकने से व्यक्ति जीवन से भी हाथ धो बैठता है और मूत्र बाधा रोकने से चक्षु पीड़ा हो जाती है। जैसा कि *दशवै., अ. ५, उ. १, गा. ११ की जिनदासचूर्णि, पृ. १७५* पर कहा है–'…मुत्तनिरोधे चक्खुबाधाओ भवति, वच्चनिरोहे य जीवियमवि रुंधेज्जा। तम्हा वच्चमुत्तनिरोधो न कायव्वो।' *आचारांग चूर्णि मू. पा. टि., पृ. २३१* में बताया है–'खुड्डागसन्निरुद्धे पवडणादि दोसा–शंकाओं को रोकने से प्रपतनादि दोष–गिर जाने आदि का खतरा होता है।

Elaboration—This aphorism censures avoiding or stopping the urge to defecate or urinate. When an ascetic has the urge he should at once relieve himself using his pot. If his own pot is not at hand he should

immediately beg a pot from other ascetic and relieve himself as soon as possible. The commentator *(Vritti)* further clarifies this aphorism—The urge to defecate or urinate should never be curbed If one curbs the urge to defecate he may even die and curbing the urge to urinate may cause ailments of the eye (as mentioned in the *Churni* of *Dashavaikalika Sutra* by *Jinadas 5/1/11, p. 175*). *Acharanga Churni* also mentions that by curbing nature's call there are chances of one's toppling down *(p 231)*

स्थण्डिल-विवेक

२९२. से भिक्खू वा २ से जं पुण थंडिलं जाणेज्जा सअंडं सपाणं जाव मक्कडासंताणयं तहप्पगारंसि थंडिलंसि नो उच्चार-पासवणं वोसिरेज्जा।

२९२. साधु-साध्वी ऐसी स्थण्डिल भूमि को जाने, जोकि अण्डों यावत् मकड़ी के जालों से युक्त है, तो उस प्रकार की स्थण्डिल भूमि पर मल-मूत्र आदि का विसर्जन नहीं करे।

PRUDENCE OF *STHANDIL*

292. A *bhikshu* or *bhikshuni* should find if a *sthandil* ground (place for discarding excreta) is infested with eggs, cobwebs etc. If it is so he should not discard excreta at such *sthandil* ground.

२९३. से भिक्खू वा २ से जं पुण थंडिलं जाणेज्जा अप्पपाणं अप्पबीयं जाव मक्कडासंताणयं तहप्पगारंसि थंडिलंसि उच्चार-पासवणं वोसिरेज्जा।

२९३. ऐसी स्थण्डिल भूमि जो प्राणी, बीज यावत् मकड़ी के जालों से रहित है, तो उस प्रकार की स्थण्डिल भूमि पर मल-मूत्र आदि का विसर्जन करे।

293. A *bhikshu* or *bhikshuni* should find if a *sthandil* ground (place for discarding excreta) is not infested with eggs, cobwebs etc. If it is so he should discard excreta at such *sthandil* ground.

२९४. से भिक्खू वा २ से जं पुण थंडिलं जाणेज्जा अस्सिंपडियाए एगं साहम्मियं समुद्दिस्स, वा अस्सिंपडियाए बहवे साहम्मिया समुद्दिस्स, अस्सिंपडियाए एगं साहम्मिणिं समुद्दिस्स, वा अस्सिंपडियाए बहवे साहम्मिणीओ समुद्दिस्स, अस्सिंपडियाए बहवे

समण-माहण जाव वणीमगे पगणिय २ समुद्दिस्स, पाणाइं ४ जाव उद्देसियं चेएइ। तहप्पगारं थंडिलं पुरिसंतरगडं वा अपुरिसंतरगडं वा जाव वा बहिया णीहडं वा अणीहडं वा अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि थंडिलंसि णो उच्चार-पासवणं वोसिरेज्जा।

२९४. साधु-साध्वी यह जाने कि किसी भावुक गृहस्थ ने निष्परिग्रही निर्ग्रन्थ साधुओं को देने की भावना से एक साधर्मिक साधु के उद्देश्य से या बहुत-से साधर्मिक साधुओं के उद्देश्य से स्थण्डिल बनाया है अथवा एक साधर्मिणी साध्वी के उद्देश्य से या बहुत-सी साधर्मिणी साध्वियों के उद्देश्य से आरम्भ-समारम्भ करके स्थण्डिल बनाया है अथवा बहुत-से श्रमण, ब्राह्मण, अतिथि, दरिद्र या भिखारियों को गिन-गिनकर उनके उद्देश्य से प्राणी, भूत, जीव और सत्वों का समारम्भ करके स्थण्डिल बनाया है तो इस प्रकार का स्थण्डिल पुरुषान्तरकृत हो या अपुरुषान्तरकृत अथवा अन्य किसी प्रकार के दोष से युक्त स्थण्डिल हो तो वहाँ पर मल-मूत्र का विसर्जन नहीं करे।

294. A *bhikshu* or *bhikshuni* should find if some devout layman has prepared a *sthandil* ground for offering to some detached *Nirgranth* ascetics, one co-religionist *bhikshu,* many co-religionist *bhikshus,* one co-religionist *bhikshuni,* many co-religionist *bhikshunis,* or many *Shramans,* Brahmins, guests, destitute and beggars after counting their numbers and the process involves violence of things that breathe, exist, live or have any essence or potential of life. He should not use a *sthandil* having these or other faults for discarding excreta irrespective of its being already used or not.

२९५. से भिक्खू वा २ से जं पुण थंडिलं जाणेज्जा बहवे समण-माहण-किवण-वणीमग-अतिही समुद्दिस्स पाणाइं भूय-जीव-सत्ताइं जाव उद्देसियं चेएइ, तहप्पगारं थंडिलं पुरिसंतरकडं जाव बहिया अणीहडं, अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि थंडिलंसि नो उच्चार-पासवणं वोसिरेज्जा।

अह पुणेवं जाणेज्जा पुरिसंतरकडं जाव बहिया णीहडं। अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि थंडिलंसि उच्चार-पासवणं वोसिरेज्जा।

२९५. साधु-साध्वी यदि ऐसे स्थण्डिल को जाने, जो किसी भावुक गृहस्थ ने बहुत-से शाक्यादि श्रमण, ब्राह्मण, दरिद्र, भिखारी या अतिथियों के उद्देश्य से प्राणी, भूत, जीव

और सत्त्व का समारम्भ करके औद्देशिक दोषयुक्त बनाया है, तो उस प्रकार का अपुरुषान्तरकृत यावत् काम में नहीं लिया गया हो तो उस अपरिभुक्त स्थण्डिल में या अन्य उस प्रकार के किसी एषणादि दोष से युक्त स्थण्डिल में मल-मूत्र का विसर्जन नहीं करे।

यदि वह यह जान ले कि पूर्वोक्त स्थण्डिल पुरुषान्तरकृत यावत् अन्य लोगों द्वारा उपभुक्त है और उस प्रकार के अन्य दोषों से रहित है तो साधु-साध्वी उस पर मल-मूत्र विसर्जन कर सकते हैं।

295. A *bhikshu* or *bhikshuni* should find if some devout layman has prepared a *sthandil* ground for offering to many *Shramans,* Brahmins, guests, destitute and beggars after counting their numbers and the process involves violence of things that breathe, exist, live or have any essence or potential of life. He should not use a *sthandil* having these or other faults for discarding excreta if it has not already been used.

If he comes to know that the said *sthandil* has already been used by others and is free of any other related faults he may use it for discarding excreta.

उच्चार-प्रस्रवण विसर्जन के निषिद्ध स्थान

२९६. से भिक्खू वा २ से जं पुण थंडिलं जाणेज्जा अस्सिंपडियाए कयं वा कारियं वा पामिच्चियं वा छन्नं वा घट्ठं वा मट्ठं वा लित्तं वा समट्ठं वा संपधूवितं वा, अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि थंडिलंसि णो उच्चार-पासवणं वोसिरेज्जा।

२९६. साधु-साध्वी यदि इस प्रकार का स्थण्डिल जाने, जोकि निर्ग्रन्थ-निष्परिग्रही साधुओं को देने की भावना से किसी गृहस्थ ने बनाया है अथवा बनवाया है या उधार लिया है, उस पर छप्पर छाया है या छत डाली है, उसे घिसकर सम किया है, कोमल या चिकना बना दिया है, उसे लीपा-पोता है, सँवारा है, धूप आदि से सुगन्धित किया है अथवा अन्य भी इस प्रकार के आरम्भ-समारम्भ करके उसे तैयार किया है तो उस प्रकार के स्थण्डिल पर वह मल-मूत्र विसर्जन नहीं करे।

PROHIBITED PLACES FOR DISPOSAL

296. A *bhikshu* or *bhikshuni* should find if a *sthandil* has been made or got made or borrowed by a householder specifically

for *Nirgranth* and detached ascetics; it has been thatched with hay or other such things; it has been cleaned, ground, polished and leveled; it has been plastered; it has been decorated and fumed with incense; or other such sinful activities were involved in preparing it. If it is so, such *sthandil* should not be used by an ascetic for excreta disposal.

२९७. से भिक्खू वा २ से जं पुण थंडिलं जाणेज्जा इह खलु गाहावइ वा गाहावइपुत्ता वा कंदाणि वा मूलाणि वा जाव हरियाणि वा अंताओ वा बाहिं णीहरंति, बहिआओ वा अंतो साहरंति, अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि थंडिलंसि णो उच्चार-पासवणं वोसिरेज्जा।

२९७. साधु-साध्वी यदि ऐसे स्थण्डिल को जाने कि गृहपति या उसके पुत्र आदि कन्द, मूल यावत् हरी अन्दर से बाहर ले जा रहे हैं या बाहर से भीतर ले जा रहे हैं अथवा उस प्रकार की किन्हीं सचित्त वस्तुओं को इधर-उधर कर रहे हैं, तो उस प्रकार के स्थण्डिल में साधु-साध्वी मल-मूत्र आदि विसर्जन न करे।

297. A *bhikshu* or *bhikshuni* should find if aquatic bulbous roots, green vegetables (etc.) are being brought out from or taken in the *sthandil;* being shifted from one place to another within the *sthandil* by a householder, his son (etc.). If it is so, such *sthandil* should not be used by an ascetic for excreta disposal.

२९८. से भिक्खू वा २ से जं पुण थंडिलं जाणेज्जा खंधंसि वा पीढंसि वा मंचंसि वा मालंसि वा अट्टंसि वा पासायंसि वा, अण्णयरंसि वा थंडिलंसि णो उच्चारपासवणं वोसिरेज्जा।

२९८. साधु-साध्वी ऐसे स्थण्डिल को जाने, जोकि स्कन्ध (दीवार या पेड़ के स्कन्ध) पर चौकी (पीठ) पर, मचान पर, ऊपर की मंजिल पर, अटारी पर या महल पर या अन्य किसी विषम या ऊँचे स्थान पर बना हुआ है, तो उस प्रकार के स्थण्डिल पर वह मल-मूत्र विसर्जन नहीं करे।

298. A *bhikshu* or *bhikshuni* should find if a *sthandil* is located on a pillar, platform, scaffold, second storey, top of a palace, roof of a building or other such higher place. If it is so,

such *sthandil* should not be used by an ascetic for excreta disposal.

२९९. से भिक्खू वा २ से जं पुण थंडिलं जाणेज्जा अणंतरहियाए पुढवीए, ससणिद्धाए पुढवीए, ससरक्खाए पुढवीए, मट्टियामक्कडाए, चित्तमंताए सिलाए, चित्तमंताए लेलुयाए, कोलावासंसि वा, दारुयंसि वा जीवपइट्ठियंसि जाव मक्कडासंताणयंसि, अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि थंडिलंसि णो उच्चार-पासवणं वोसिरेज्जा।

२९९. साधु-साध्वी ऐसे स्थण्डिल को जाने, जोकि सचित्त पृथ्वी पर, स्निग्ध (गीली) पृथ्वी पर; सचित्त रज से लिप्त या संसृष्ट पृथ्वी पर, सचित्त मिट्टी से बनाई हुई जगह पर, सचित्त शिला पर, सचित्त पत्थर के टुकड़ों पर, घुन लगे हुए काष्ठ पर या दीमक आदि द्वीन्द्रियादि जीवों से अधिष्ठित काष्ठ पर या मकड़ी के जालों से युक्त स्थान पर हो। ऐसे स्थण्डिल पर मल-मूत्र का विसर्जन नहीं करे।

299. A *bhikshu* or *bhikshuni* should find if a *sthandil* is located on a *sachit* (contaminated with living organism) land; damp ground; land covered with *sachit* sand; a place constructed with *sachit* sand; *sachit* rock; *sachit* stones or pebbles; wood infested with termite or other such insects or cobwebs. If it is so, such *sthandil* should not be used by an ascetic for excreta disposal.

३००. से भिक्खू वा २ से जं पुण थंडिलं जाणेज्जा इह खलु गाहावई वा गाहावई पुत्ता वा कंदाणि वा जाव बीयाणि वा परिसाडेंसु वा परिसाडेंति वा परिसाडिस्संति वा, अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि (थंडिलंसि) णो उच्चार-पासवणं वोसिरेज्जा।

३००. साधु-साध्वी यदि ऐसे स्थण्डिल के सम्बन्ध में जाने कि यहाँ पर गृहस्थ या गृहस्थ के पुत्रों ने कंद, मूल यावत् बीज आदि इधर-उधर फेंके हैं या फेंक रहे हैं अथवा फेंकेंगे, तो ऐसे अथवा इसी प्रकार के अन्य किसी दोषयुक्त स्थण्डिल में मल-मूत्रादि का विसर्जन नहीं करे।

300. A *bhikshu* or *bhikshuni* should find if a householder, his sons (etc.) have thrown, are throwing or will throw bulbous roots, stalks, seeds etc. at a *sthandil* or it has other such faults.

If it is so, such *sthandil* should not be used by an ascetic for excreta disposal.

३०१. से भिक्खू वा २ से जं पुण थंडिलं जाणेज्जा इह खलु गाहावइ वा गाहावइपुत्ता वा सालीणि वा बीहीणि वा मुग्गाणि वा मासाणि वा कुलत्थाणि वा जवाणि वा जवजवाणि वा पइरिंसु वा पइरंति वा पइरिस्संति वा, अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि थंडिलंसि णो उच्चार-पासवणं वोसिरेज्जा।

३०१. साधु-साध्वी यदि ऐसे स्थण्डिल के सम्बन्ध में जाने कि यहाँ पर गृहस्थ या गृहस्थ के पुत्रों ने शाली, व्रीहि (धान), मूँग, उड़द, तिल, कुलत्थ, जौ ज्वार आदि बोए हुए हैं, बो रहे हैं या बोएँगे, ऐसे अथवा अन्य इसी प्रकार के बीज बोए हुए स्थण्डिल में मल-मूत्रादि का विसर्जन नहीं करे।

301. A *bhikshu* or *bhikshuni* should find if a householder, his sons (etc.) have sown, are sowing or will sow rice, paddy, green gram, *udad* (a type of pulse), sesame, *kulattha,* barley, *jvar* (millet), or other such seeds. If it is so, such *sthandil* should not be used by an ascetic for excreta disposal.

३०२. से भिक्खू वा २ से जं पुण थंडिलं जाणेज्जा आमोयाणि वा घासाणि वा भिलुयाणि वा विज्जलयाणि वा खाणुयाणि वा कडयाणि वा पगडाणि वा दरीणि वा पदुग्गाणि वा समाणि वा विसमाणि वा, अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि (थंडिलंसि) णो उच्चार-पासवणं वोसिरेज्जा।

३०२. साधु-साध्वी यदि ऐसे किसी स्थण्डिल को जाने, जहाँ कचरे (कूड़े-कर्कट) के ढेर हों, भूमि फटी हुई या पोली हो, भूमि पर रेखाएँ (दरारें) पड़ी हुई हों, कीचड़ हो, ठूँठ अथवा खीले गाड़े हुए हों, किले की दीवार या प्राकार आदि हो, सम-विषम स्थान हो, ऐसे अथवा अन्य इसी-प्रकार के ऊबड़-खाबड़ स्थण्डिल पर मल-मूत्र आदि विसर्जन नहीं करे।

302. A *bhikshu* or *bhikshuni* should find if in a *sthandil* there are heaps of trash; the ground is parched or hollow; there are cracks in the ground; the ground is filled with slime; there are stumps or spikes jutting out of the ground; there are parapet walls of a fort; the ground is not level; or there are other such obstacles. If it is so, such *sthandil* should not be used by an ascetic for excreta disposal.

३०३. से भिक्खू वा २ से जं पुण थंडिलं जाणेज्जा माणुसरंधणाणि वा महिसकरणाणि वा वसभकरणाणि वा अस्सकरणाणि वा कुक्कुडकरणाणि वा मक्कडकरणाणि वा लावयकरणाणि वा वट्टयकरणाणि वा तित्तिरकरणाणि वा कवोयकरणाणि वा कपिंजलकरणाणि वा अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि (थंडिलंसि) णो उच्चार-पासवणं वोसिरेज्जा।

३०३. साधु-साध्वी यदि ऐसे स्थण्डिल को जाने, जहाँ मनुष्यों के भोजन पकाने के चूल्हे आदि सामान रखे हों तथा भैंस, बैल, घोड़ा, मुर्गा या कुत्ता, लावक पक्षी, बत्तख, तीतर, कबूतर, कपिंजल (पक्षी-विशेष) आदि के आश्रय स्थान हों, ऐसे तथा अन्य इसी प्रकार के किसी पशु-पक्षी के आश्रय स्थान हों, तो इस प्रकार के स्थण्डिल में मल-मूत्र का विसर्जन नहीं करे।

303. A *bhikshu* or *bhikshuni* should find if in a *sthandil* stoves for cooking food for humans are lying or other such things are lying, there are resting places for buffalo, ox, horse, cock, dog, *lavak* bird, duck, partridge, pigeon, *kapinjal* (a type of cuckoo) bird or other such bird and animal. If it is so, such *sthandil* should not be used by an ascetic for excreta disposal.

३०४. से भिक्खू वा २ से जं पुण थंडिलं जाणेज्जा वेहाणसट्ठाणेसु वा गिद्धपट्ठट्ठाणेसु वा तरुपवडणट्ठाणेसु वा मेरुपवडणट्ठाणेसु वा विसभक्खणट्ठाणेसु वा अगणिफंडय (पक्खंदण ?)ट्ठाणेसु वा, अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि (थंडिलंसि) णो उच्चार-पासवणं वोसिरेज्जा।

३०४. साधु-साध्वी यदि ऐसे स्थण्डिल को जाने, जहाँ फाँसी पर लटकाने के स्थान हों, गृद्धपृष्ठमरण के–गीध के सामने पडकर मरने के स्थान हों, वृक्ष पर से गिरकर मरने के स्थान हों, पर्वत से झंपापात करके मरने के स्थान हों, विष-भक्षण करने के स्थान हों या दौड़कर आग में गिरने के स्थान हों, ऐसे और अन्य इसी प्रकार के मृत्युदण्ड देने या आत्म-हत्या करने के वाले स्थण्डिल हों तो वैसे स्थण्डिलों में मल-मूत्र का त्याग नहीं करे।

304. A *bhikshu* or *bhikshuni* should find if a *sthandil* has spots for persons being hanged; spots for dying by falling like a vulture (from great heights); spots for dying by falling from a tree; spots from where one can fall due to vertigo and die; spots

convenient to take poison; spots where one can run and jump into a fire; or other such spots which could be used for execution or suicide. If it is so, such *sthandil* should not be used by an ascetic for excreta disposal.

३०५. से भिक्खू वा २ से जं पुण थंडिलं जाणेज्जा आरामाणि वा उज्जाणाणि वा वणाणि वा वणसंडाणि वा देवकुलाणि वा सभाणि वा पवाणि वा अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि (थंडिलंसि) णो उच्चार-पासवणं वोसिरेज्जा।

३०५. साधु-साध्वी यदि ऐसे स्थण्डिल को जाने, जैसे कि बगीचा (उपवन), उद्यान, वन, वनखण्ड, देवकुल, सभा या प्याऊ हो अथवा अन्य इसी प्रकार का कोई पवित्र या रमणीय स्थान हो, तो उस प्रकार के स्थण्डिल में वह मल-मूत्र का विसर्जन नहीं करे।

305. A *bhikshu* or *bhikshuni* should find if a *sthandil* is at places like large or small garden, woods, plantations, temple, assembly hall, water hut or other such pious or beautiful place. If it is so, such *sthandil* should not be used by an ascetic for excreta disposal.

३०६. से भिक्खू वा २ से जं पुण थंडिलं जाणेज्जा अट्टालयाणि वा चरियाणि वा दाराणि वा गोपुराणि वा, अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि थंडिलंसि णो उच्चार-पासवणं वोसिरेज्जा।

३०६. साधु-साध्वी ऐसे किसी स्थण्डिल को जाने, जैसे–कोट की अटारी हों, किले और नगर के बीच के मार्ग हों द्वार हों, नगर के मुख्य द्वार हों, ऐसे तथा अन्य इसी प्रकार के सार्वजनिक आवागमन के स्थल हों, तो ऐसे स्थण्डिल में मल-मूत्र का विसर्जन नहीं करे।

306. A *bhikshu* or *bhikshuni* should find if a *sthandil* is at places like a loft on a parapet wall, path between fort and city, gates, city gates or other such public places. If it is so, such *sthandil* should not be used by an ascetic for excreta disposal.

३०७. से भिक्खू वा २ से जं पुण थंडिलं जाणेज्जा तिगाणि वा चउक्काणि वा चच्चराणि वा चउमुहाणि वा, अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि (थंडिलंसि) णो उच्चार-पासवणं वोसिरेज्जा।

३०७. साधु-साध्वी यदि ऐसे स्थण्डिल को जाने, जहाँ तिराहे (तीन मार्ग मिलते) हों, चौक हों, चौहट्टे या चौराहे (चार मार्ग मिलते) हों, चतुर्मुख (चारों ओर द्वार वाले बंगला आदि) स्थान हों, ऐसे तथा अन्य इसी प्रकार के सार्वजनिक जनपथ हों, ऐसे स्थण्डिल में मल-मूत्र का विसर्जन नहीं करे।

307. A *bhikshu* or *bhikshuni* should find if a *sthandil* is at places like a junction of three roads, city-squares, crossings, *chaturmukh* (places having four gates or paths) or other such public roads. If it is so, such *sthandil* should not be used by an ascetic for excreta disposal.

३०८. से भिक्खू वा २ से जं पुण थंडिलं जाणेज्जा इंगालदाहेसु वा खारदाहेसु वा मडयदाहेसु वा मडयथूभियासु वा मडयचेइएसु वा, अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि थंडिलंसि णो उच्चार-पासवणं वोसिरेज्जा।

३०८. साधु-साध्वी ऐसे स्थण्डिल को जाने, जहॉ लकड़ियाँ जलाकर कोयले बनाये जाते हों; जहाँ काष्ठादि जलाकर राख बनाने के स्थान हों, मुर्दे जलाने के स्थान हों, मृतक के स्तूप हों, मृतक के चैत्य हों, ऐसा तथा इसी प्रकार का कोई स्थण्डिल हो, तो वहॉ पर मल-मूत्र का विसर्जन न करे।

308. A *bhikshu* or *bhikshuni* should find if a *sthandil* is at places where wood is burnt to produce charcoal, wood (etc.) are burnt to ash; dead bodies are cremated, memorials to the dead exist, temples in memory of the dead exist or other such places. If it is so, such *sthandil* should not be used by an ascetic for excreta disposal.

३०९. से भिक्खू वा २ से जं पुण थंडिलं जाणेज्जा, नइआयतणेसु वा पंकायतणेसु वा ओघायतणेसु वा सेयणपहंसि वा, अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि थंडिलंसि णो उच्चारपासवणं वोसिरेज्जा।

३०९. साधु-साध्वी यदि ऐसे स्थण्डिल को जाने, जोकि नदी तट पर बने तीर्थ-स्थान (घाट) हों, नदी के पास कीचड़ वाला स्थान हो, पवित्र जल-प्रवाह वाले स्थान हों, जल-सिंचन करने के मार्ग हों, ऐसे तथा इसी प्रकार के जो स्थण्डिल हों, उन पर मल-मूत्र का विसर्जन नहीं करे।

309. A *bhikshu* or *bhikshuni* should find if a *sthandil* is at places like pilgrimage on a river bank, swamps near a river, pious streams, irrigation canals or other such places. If it is so, such *sthandil* should not be used by an ascetic for excreta disposal.

३१०. से भिक्खू वा २ से जं पुण थंडिलं जाणेज्जा नवियासु वा मट्टियखाणियासु वा नवियासु गोप्पलेहियासु गवाणीसु वा खाणीसु वा, अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि वा थंडिलंसि णो उच्चार-पासवणं वोसिरेज्जा।

३१०. साधु-साध्वी ऐसे स्थण्डिल को जाने, जोकि मिट्टी की नई खानें हों, नई गोचर भूमि हो, सामान्य गायों के चारागाह हों, खानें हों अथवा अन्य उसी प्रकार का कोई स्थण्डिल हो तो उसमें उच्चार-प्रस्रवण का विसर्जन नहीं करे।

310. A *bhikshu* or *bhikshuni* should find if a *sthandil* is at places like a fresh excavation of sand, a new grazing land, ordinary grazing land for cows, mines or other such places. If it is so, such *sthandil* should not be used by an ascetic for excreta disposal.

३११. से भिक्खू वा २ से जं पुण थंडिलं जाणेज्जा डागवच्चंसि वा सागवच्चंसि वा मूलगवच्चंसि वा हत्थुंकरवच्चंसि वा, अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि थंडिलंसि णो उच्चार-पासवणं वोसिरेज्जा।

३११. साधु-साध्वी यदि ऐसे स्थण्डिल को जाने, जहाँ डाल-प्रधान-(जिस सब्जी के पौधो मे डालियाँ अधिक) हों, शाक के खेत हों, पत्र-प्रधान शाक के खेत हों, मूली, गाजर आदि के खेत हों, हस्तंकुरकपित्थ-(वनस्पति विशेष) के क्षेत्र हों उनमें तथा अन्य उसी प्रकार के स्थण्डिल में मल-मूत्र का विसर्जन नहीं करे।

311. A *bhikshu* or *bhikshuni* should find if a *sthandil* is at farms of plants having numerous branches, vegetables, leafy vegetables, radish, carrot, *hastankurakapittha* (a vegetable) or other such places. If it is so, such *sthandil* should not be used by an ascetic for excreta disposal.

३१२. से भिक्खू वा २ से जं पुण थंडिलं जाणेज्जा असणवणंसि वा सणवणंसि वा धायइवणंसि वा केयइवणंसि वा अंबवणंसि वा असोगवणंसि वा नागवणंसि वा

पुन्नागवणंसि वा अण्णयरेसु वा तहप्पगारेसु पत्तोवएसु वा पुप्फोवएसु वा फलोवएसु वा बीओवएसु वा हरिओवएसु वा णो उच्चार-पासणं वोसिरेज्जा।

३१२. साधु-साध्वी यदि ऐसे स्थण्डिल को जाने, जहाँ बीजक वृक्ष का वन है, पटसन का वन है, धातकी (आँवला) वृक्ष का वन है, केवड़े का उपवन है, आम्रवन है, अशोकवन है, नागवन है, या पुन्नागवृक्षो का वन है, ऐसे तथा अन्य उस प्रकार के स्थण्डिल, जो पत्रों, पुष्पों, फलों, बीजों या हरियाली से युक्त हैं, उनमें मल-मूत्र का विसर्जन न करे।

312. A *bhikshu* or *bhikshuni* should find if a *sthandil* is at places like woods or plantations of *Bijak* trees, jute plants, *amla* (Emblica officinalis) trees, *kevada* (screw pine) shrubs, mango trees, *Ashoka* trees, *naag* (rose chestnut) plants, *putrag* trees or other such places that abound in leaves, flowers, fruits, seeds or vegetation. If it is so, such *sthandil* should not be used by an ascetic for excreta disposal.

विहित स्थान

३१३. से भिक्खू वा २ सयपाययं वा परपाययं गहाय से त्तमायाए एगंतमवक्कमे, अणावायंसि असंलोयंसि अप्पपाणंसि जाव मक्कडासंताणयंसि अहारामंसि वा उवस्सयंसि तओ संजयामेव उच्चार-पासवणं वोसिरेज्जा। उच्चार-पासवणं वोसिरित्ता से त्तमायाए एगंतमवक्कमे, अणावाहंसि जाव मक्कडासंताणयंसि अहारामंसि वा झामथंडिल्लंसि वा अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि थंडिलंसि अचित्तंसि तओ संजयामेव उच्चार-पासवणं वोसिरेज्जा।

एयं खलु तस्स भिक्खुस्स वा भिक्खुणीए वा सामग्गियं जं सव्वट्ठेहिं जाव जएज्जासि।

—त्ति बेमि।

॥ तइयं सत्तिक्कयं सम्मत्तं ॥

॥ दसमं अज्झंयणं सम्मत्तं ॥

३१३. सयमशील साधु-साध्वी स्व-पात्रक (स्व-भाजन) अथवा पर-पात्रक लेकर एकान्त स्थान में चला जाये, जहाँ पर न कोई आता-जाता हो और न कोई देखता हो या जहाँ कोई रोक-टोक न हो तथा जहाँ द्वीन्द्रिय आदि जीव-जन्तु यावत् मकड़ी के जाले भी न हों, ऐसे बगीचे या उपाश्रय में अचित्त भूमि पर बैठकर यतनापूर्वक मल-मूत्र का विसर्जन करे।

उसके पश्चात् वह उस (भरे हुए मात्रक) को लेकर एकान्त स्थान में जाए, जहाँ कोई न देखता हो और न ही आता-जाता हो, जहाँ पर किसी जीव-जन्तु की विराधना की सम्भावना न हो, यावत् मकड़ी के जाले न हो, ऐसे बगीचे में या दग्ध भूमि वाले स्थण्डिल में या उस प्रकार के किसी अचित्त निर्दोष पूर्वोक्त निषिद्ध स्थण्डिलों के अतिरिक्त स्थण्डिल में साधु यतनापूर्वक मल-मूत्र का परिष्ठापन (विसर्जन) कर दे।

यही उस भिक्षु या भिक्षुणी का आचार सर्वस्व है, जिसके आचरण के लिए ज्ञानादि सहित एवं पाँच समितियों से समित होकर सदैव–सतत प्रयत्नशील रहना चाहिए।

–ऐसा मैं कहता हूँ।

PROPER PLACE

313. A disciplined *bhikshu* or *bhikshuni* should take his own or a borrowed pot and go to a solitary place where no one frequents or looks, where entering is not prohibited, which is not infested with two-sensed beings (insects etc.), cobwebs etc. Going to such garden or *upashraya,* he should squat at some *achit* spot and carefully relieve himself.

After that he should carry that filled pot to a solitary place where no one frequents or looks, which is not infested with beings (insects etc.), cobwebs etc. Going to such garden or burnt place (made uncontaminated with ash) or some other faultless place other than those prohibited earlier, he should carefully discard excreta.

This (prudence in use of *nishidhika*) is the totality (of conduct including that related to knowledge) for that *bhikshu* or *bhikshuni.* And so should he pursue.

—So I say.

विवेचन–मल-मूत्र-विसर्जन–सूत्र २९२-३१३ इन बाईस सूत्रों में मल-मूत्र विसर्जन के लिए निषिद्ध और विहित स्थण्डिल भूमि का निर्देश किया गया है। इनमें से तीन सूत्र २९३, २९५ तथा ३१३ विधानात्मक हैं, शेष सभी निषेधात्मक हैं। निषेधात्मक स्थण्डिल सूत्रों का सार संक्षेप में इस प्रकार है–

(१) जो अण्डों यावत् मकड़ी के जालों से युक्त हो।

(२) जो स्थण्डिल एक या अनेक साधर्मिक साधु या साधर्मिणी साध्वी आदि के उद्देश्य से निर्मित हो, साथ ही अपुरुषान्तरकृत यावत् अनीहृत हो।

(३) जो बहुत-से शाक्यादि श्रमण ब्राह्मण यावत् अतिथियों के उद्देश्य से निर्मित हो, साथ ही अपुरुषान्तरकृत यावत् अनीहृत हो।

(४) जो निष्परिग्रही साधुओं के निमित्त बनाया, बनवाया, उधार लिया या संस्कारित परिकर्मित किया गया हो।

(५) जहाँ गृहस्थ कंद, मूल आदि को बाहर-भीतर ले जाता हो।

(६) जो चौकी मचान आदि किसी विषम एवं उच्च स्थान पर बना हो।

(७) जो सचित्त पृथ्वी, जीवयुक्त काष्ठ आदि पर बना हो।

(८) जहाँ गृहस्थ द्वारा कद, मूल आदि अस्त-व्यस्त फेंके हुए हों।

(९) शाली, जौ, उडद आदि धान्य जहाँ बोया जाता हो।

(१०) जहाँ कूडे के ढेर हो, भूमि फटी हुई हो, कीचड हो, ईख के डण्डे, ठूँठ, खीले आदि पडे हों, गहरे या बडे-बड़े गड्ढे आदि विषम स्थान हो।

(११) जहाँ रसोई बनाने के चूल्हे आदि रखे हों तथा जहाँ भैस, बैल आदि पशु-पक्षीगण का आश्रय स्थान हो।

(१२) जहाँ मृत्यु-दण्ड देने के या मृतक के स्थान हो।

(१३) जहाँ उपवन, उद्यान, वन, देवालय, सभा, प्रपा आदि स्थान हो।

(१४) जहाँ सर्वसाधारण जनता के गमनागमन के मार्ग, द्वार आदि हो।

(१५) जहाँ तिराहा, चौराहा आदि हो।

(१६) जहाँ कोयले राख (क्षार) बनाने या मुर्दे जलाने आदि के स्थान हों, मृतक के स्तूप व चैत्य हों।

(१७) जहाँ नदी तट, तीर्थ-स्थान हो, जलाशय या सिंचाई की नहर आदि हो।

(१८) जहाँ नई मिट्टी की खान, चारागाह आदि हो।

(१९) जहाँ साग-भाजी, मूली आदि के खेत हों।

(२०) जहाँ विविध वृक्षों के वन हों।

तीन विधानात्मक स्थण्डिल सूत्र का सार इस प्रकार है–

(१) जो स्थण्डिल प्राणी, बीज यावत् मकडी के जालों आदि से रहित हों। (सूत्र २९३)

(२) जो श्रमणादि के उद्देश्य से बनाया गया न हो तथा पुरुषान्तरकृत यावत् आसेवित हो। (सूत्र २९५)

(३) एकान्त स्थान में, जहाँ लोगों का आवागमन एवं अवलोकन न हो, जहाँ कोई रोक-टोक न हो, द्वीन्द्रियादि जीव-जन्तु यावत् मकड़ी के जाले न हों, ऐसे बगीचे, उपाश्रय आदि में दग्ध भूमि आदि पर जीव-जन्तु की विराधना न हो, इस प्रकार से यतनापूर्वक मल-मूत्र का विसर्जन करे। (सूत्र ३१३)

निषिद्ध स्थण्डिलों में मल-मूत्र विसर्जन से निम्न हानियाँ हो सकती है–

(१) जीव-जन्तुओं की विराधना होती है, वे दब जाते हैं, कुचल जाते हैं, पीडा पाते हैं।

(२) साधु को एषणादि दोष लगता है, जैसे–औद्देशिक, क्रीत, पामित्य, स्थापित आदि।

(३) ऊँचे एवं विषम स्थानों से गिर जाने एवं चोट लगने तथा अयतना की सम्भावना रहती है।

(४) कूडे के ढेर पर मलोत्सर्ग करने से जीवोत्पत्ति होने की सम्भावना है।

(५) फटी हुई, ऊबड-खाबड या कीचड़ व गड्ढे वाली भूमि पर परठते समय पैर फिसलने से आत्म-विराधना की भी सम्भावना है।

(६) पशु-पक्षियों के आश्रय स्थानों में तथा उद्यान, देवालय आदि रमणीय एवं पवित्र स्थानो में मल-मूत्रोत्सर्ग करने से लोगों के मन में साधुओं के प्रति ग्लानि पैदा होती है।

(७) सार्वजनिक आवागमन के मार्ग, द्वार या स्थानों पर मल-मूत्र विसर्जन करने से लोगों को कष्ट होता है, स्वास्थ्य बिगड़ता है, साधुओं के प्रति घृणा उत्पन्न होती है।

(८) कोयले, राख आदि बनाने तथा मृतको को जलाने आदि स्थानों मे मल-मूत्र विसर्जन करने से अग्निकाय की विराधना होती है। कोयला, राख आदि वाली भूमि पर जीव-जन्तु न दिखाई देने से अन्य जीव-विराधना भी सम्भव है।

(९) मृतक स्तूप, मृतक चैत्य आदि पर वृक्षादि के नीचे तथा वनों में मल-मूत्र विसर्जन से देव-दोष की आशंका है।

(१०) जलाशयों, नदी तट या नहर के मार्ग में मलोत्सर्ग से अप्काय की विराधना होती है, लोक दृष्टि में पवित्र माने जाने वाले स्थानों में मल-मूत्र विसर्जन से घृणा व प्रवचन-निन्दा होती है।

(११) शाक-भाजी के खेतों में मल-मूत्र विसर्जन से वनस्पतिकाय-विराधना होती है। इन सब दोषों से बचकर निरवद्य, निर्दोष स्थण्डिल में पंच समिति से विधिपूर्वक मल-मूत्र विसर्जन करने का विवेक बताया है। *(आचारांग वृत्ति पत्रांक ४०८-४१० तथा आचारांग चूर्णि मू. पा. टि. २३१-२३९)*

Elaboration—Directions for prohibited and proper places for relieving oneself and discarding excreta have been given in twenty

two aphorisms 292-313. Of these three aphorisms, 293, 295 and 313 are for sanction and all the other for prohibition. The essence of these censures is as follows—

(1) which are infested with eggs, cobwebs etc.

(2) which are specifically made for one or many co-religionist ascetics and have not already been in use.

(3) which are specifically made for many Buddhist monks, Brahmins, guests etc. and have not already been in use.

(4) which have been made, got made, borrowed or repaired specifically for detached ascetics.

(5) where a householder brings in bulbous roots, vegetables etc. or removes from.

(6) which are constructed at scaffold, platform or other difficult and lofty place.

(7) which are made on *sachit* ground, wood infested with insects (etc.).

(8) where a householder has thrown vegetables (etc.).

(9) where rice, barley, pulses and other grains are sown

(10) which have heaps of trash; parched ground; slimy ground, sugar-canes, stumps or spikes lying; pits and hollows or otherwise difficult ground

(11) where stoves for cooking food for humans are lying or there are resting places of buffalo, ox or other such bird and animal.

(12) which are used for execution or for placing dead bodies.

(13) which have large or small garden, woods, temple, assembly hall, water hut etc.

(14) which are public places like roads and city gates frequented by common people.

(15) which are near a junction of three roads, crossings etc.

(16) where wood is burnt to produce ash or dead bodies are cremated, and temples and memorials to the dead are built.

(17) which are near pilgrimage, river bank, water bodies, irrigation canals or other such places.

(18) where a fresh excavation of sand, grazing land etc. exist.

(19) which are vegetable farms like those of radish (etc.).

(20) which are woods or plantations of various species of trees.

The essence of the three aphorisms of permission are—

(1) those which are free of beings, seeds, cobwebs etc. (aphorism 293)

(2) those which are not specifically made for ascetics (etc) and are already in use. (aphorism 295)

(3) a solitary place where no one frequents or looks, where entering is not prohibited, which is not infested with two-sensed beings (insects etc.), cobwebs etc Going to such garden or *upashraya* he should squat at some *achit* spot and carefully relieve himself. (aphorism 313)

Using prohibited areas for relieving oneself may cause following harms—

(1) Insects and other living beings come to harm. They get buried, crushed and suffer pain.

(2) An ascetic gets involved in faults of exploration and acquisition, such as *auddeshik, kreet, pamitya, sthapit* etc. (things made, bought, borrowed, established, specifically for ascetics).

(3) There are chances of being careless and getting hurt by falling from difficult or lofty places.

(4) Defecating on a heap of trash has chances of producing living organisms.

(5) There are chances of slipping and hurting oneself while using parched, uneven, slimy or pitted ground.

(6) People start despising ascetics if they use places meant for birds and animals gardens, temples and other public and pious places for disposing excreta.

(7) If the ascetics defecate at public places like roads and city gates they cause health hazards, people get distressed and start hating ascetics.

(8) There are chances of harming fire-bodied beings if one uses places like cremation grounds or where coal or ash is made from wood. There are also chances of harming other living organisms as it is difficult to see such beings in ground covered with ash or coal.

(9) There are chances of inviting displeasure of deities if one uses memorials and temples of the dead, under trees or in jungle.

(10) Use of water-bodies, river banks or canals involves harming water-bodied beings As such places are considered auspicious, such act invites wrath of masses and infamy.

(11) Using farms of vegetables (etc.) causes harm to plant-bodied beings. It has been advised to have prudence of avoiding all these faults and carefully observing five self-regulations while attending to nature's call. *(Acharanga Vritti leafs 408-410 and Acharanga Churni foot notes 231-239)*

विशेष शब्दों की व्याख्या–वृत्तिकार एवं चूर्णिकार की दृष्टि से **मट्टियाकडाए**–मिट्टी आदि के बर्तन पकाने का कर्म किया जाता हो, उस पर। **आमोयानि**–कचरे के पुँज। **घसाणि**–पोली भूमि, फटी हुई भूमि। **भिलुयाणि**–दरारयुक्त भूमि। **विज्जलाणि**–कीचड वाली जगह। **कडवाणि**–ईख के डण्डे। **पगत्ताणि**–बडे-बडे गहरे गड्ढे। **पदुग्गाणि**–कोट की दुर्गम्य दीवार। **माणुसरंधाणि**–चूल्हे आदि पर भोजन पकाया जाता हो आदि। **महिसकरणाणि आदि**–जहाँ भैंस आदि के उद्देश्य से कुछ बनाया जाता है या स्थापित किया जाता है अथवा करण का अर्थ है आश्रय। *(आचा. चूर्णि मू. पा टि , पृ २३३)*

आसकरण–अश्व-शिक्षा देने का स्थान–अश्वकरण है, आदि। **वेहाणसट्ठणेसु**–मनुष्यों को फाँसी आदि पर लटकाने के स्थानों मे। **गिद्धपइट्ठणेसु**–जहाँ आत्म-हत्या करने वाले गिद्ध आदि के भक्षणार्थ रुधिरादि से लिपटे हुए शरीर को उनके सामने डाल देते है। **तरुपगडणट्ठणेसु**–जहाँ मरणाभिलाषी लोग अनशन करके तरुवत् पडे रहते हैं। अथवा पीपल, बड आदि वृक्षों से जो मरने का निश्चय करके अपने आपको ऊपर से गिराता है उसे तरुप्रपतन स्थान कहते हैं। **मेरुपवडणट्ठणेसु**–मेरु का अर्थ है पर्वत। पर्वत से गिरने के स्थानों में। *(निशीथ चूर्णि उ. १२)*

उज्जाण का अर्थ है–'उद्यान'। निशीथ चूर्णि में 'उज्जाण' और 'निज्जाण' (जहाँ शस्त्र या शास्त्र रखे जाते हों) दोनों प्रकार के स्थलों में, बल्कि उद्यानगृह, उद्यानशाला, निर्याणगृह और निर्याणशाला

में भी उच्चार-प्रस्रवण-विसर्जन का दण्ड–प्रायश्चित्त बताया है। नगर के समीप ऋषियों के ठहरने के स्थान को उद्यान और नगर से निर्गमन का जो स्थान हो, उसे निर्याण कहते हैं। **चरियाणि**–प्राकार के अन्दर ८ हाथ चौड़ी जगह। *(निशीथ चूर्णि, उ. ८, पृ. ४३१, ४३४; आचा चू २३४)*

णदिआयतणेसु–नद्यायतन–तीर्थ-स्थान, जहाँ लोग पुण्यार्थ स्नानादि करते हैं। **पंकायतणेसु**–जहाँ पंकिल प्रदेश में लोग धर्म-पुण्य की इच्छा से लोटने आदि की क्रिया करते हैं। **ओघायतणेसु**–जो जल-प्रवाह या तालाब के जल में प्रवेश का स्थान पूज्य माना जाता है, उनमें। **वच्चं**–पत्ते, फूल, फल आदि वृक्ष से गिरने पर जहाँ सड़ाये या सुखाये जाते हैं, उस स्थान को 'वर्च' कहते हैं; इसलिए **डागवच्चंसि**, **सागवच्चंसि** आदि पदों का अर्थ होता है–डाल-प्रधान या पत्र-प्रधान साग को सुखाने या सडाने के स्थान में। निशीथ सूत्र में अनेक वृक्षों के वर्चस् वाले स्थान में मल-मूत्र परिष्ठापन का प्रायश्चित्त विहित है।

अणावाहंसि के दो अर्थ मिलते हैं–(१) अनापात, और (२) अनाबाध। अनापात का अर्थ है–जहाँ लोगों का आवागमन न हो। अनाबाध का अर्थ है–जहाँ किसी प्रकार की रोक-टोक न हो, सरकारी प्रतिबन्ध न हो। **इगालदाहेसु**–काष्ठ जलाकर जहाँ कोयले बनाये जाते हों, उन पर। **खारडाहेसु**–जहाँ जंगल और खेतों में घास, पत्ती आदि जलाकर राख बनाई जाती है। **मडयडाहेसु**–मृतक के शव की जहाँ दहन क्रिया की जाती है, वैसी श्मशान भूमि में। **मडगथूभियासु**–चिता स्थान के ऊपर जहाँ स्तूप बनाया जाता है, उन स्थानों में। **मडयचेतिएसु**–चिता स्थान पर जहाँ चैत्य–स्थान (स्मारक) बनाया जाता है, तात्पर्य यह है कि मृतक से सम्बन्धित गृह, राख, स्तूप, आश्रय, लयन (देवकुल), स्थण्डिल, वर्चस् इत्यादि पर मल-मूत्र विसर्जन निषिद्ध है।

॥ तृतीय सप्तिका समाप्त ॥

॥ दसवाँ अध्ययन समाप्त ॥

Technical Terms : *Mattiyakadaye*—place where earthen pots are fired. *Amoyani*—heaps of trash. *Ghasani*—hollow or parched land *Bhiluyani*—land with cracks. *Vijjalani*—slimy land. *Kadavani*—sugar-cane pieces. *Pagattani*—large and deep pits. *Paduggani*—difficult to cross parapet wall of a fort *Manusarandhani*—place used for cooking on a stove. *Mahiskarananı*—resting place of buffalo (etc.) or a place constructed for such use *(Acharanga Churni foot notes, p 233)*

Aasakaran—place where horses are trained *Vehanasatthanesu*—places of execution. *Giddhapaitthanesu*—where people smear blood on their body and throw themselves as food for vultures in order to commit suicide *Taru-pagadanatthanesu*—where persons lie like dead

wood without any food intake in order to commit suicide, or throw themselves from a large tree like banyan tree with that intention. *Merupavadanatthanesu*—where persons fall from top of a hill with intention to commit suicide *(Nishith Churni, ch 12)*

Ujjana—garden In *Nishith Churni* there is a provision of punishment or atonement for using *ujjana* and *nijjana* (where scriptures are kept) and even a *ujjanagriha, ujjanashala* (garden-hut or garden house), *nijjana griha* and *nijjanashala* (room or house where scriptures are placed). Other meanings of *ujjana* and *nijjana* are a place of stay for ascetics near a city and a place from where ascetics depart from the city respectively *Chariyani*—eight cubit wide area within a city-wall. *(Nishith Churni, ch 8, p 431, 434, Acharanga Churni 234)*

Nadiayatanesu (nadyayatan)—pilgrimage where people take holy bath. *Pankayatanesu*—where people take a holy roll in mud. *Oghayatanesu*—a pond or lake where people take a holy dip. *Vachcham*—where leaves, flowers, fruits etc fall from a tree and rot or dry Thus the meaning of *dagavachchamsi* and *sagavachchamsi* (etc.) mean places where stalks and leaves of plants rot or dry. In *Nishith Sutra* places where leaves (etc.) of numerous trees fall are prohibited for discarding excreta and there is a provision of atonement.

Two different meanings of *anavahansi* are found—(1) *anapat,* and (2) *anabadha Anapat*—where people do not frequent. *Anabadha*—unguarded; not prohibited by government or otherwise. *Ingaladahesu*—where wood is burnt to make coal. *Kharadahesu*—in jungle or farms where grass, leaves etc. are burnt to make ash. *Madayadahesu*—where dead bodies are burnt or cremated. *Madagathubhiyasu*—where memorials are constructed over cremation ground. *Madayachetiyesu*—where a temple or place of worship is constructed over cremation ground. All these indicate that any place connected with the dead, such as abode, ash, memorial, resting place, temple etc. are prohibited for disposal of excreta.

|| END OF SEPTET THREE ||

|| END OF TENTH CHAPTER ||

शब्द-सप्तिका : एकादश अध्ययन

आमुख

✦ ग्यारहवें अध्ययन का नाम 'शब्द-सप्तिका' है।

✦ कर्णेन्द्रिय का उपयोग शब्द-श्रवण के लिए है। निर्युक्ति गाथा ३२३ में बताया है कि भिक्षु अपनी संयम-साधना को, ज्ञान-दर्शन-चारित्र को तेजस्वी एवं उन्नत बनाने हेतु कानों से शास्त्र-श्रवण करे, गुरुदेव के प्रशस्त हित-शिक्षापूर्ण वचन सुने, दीन-दुःखी व्यक्तियों की पुकार सुने, किसी के द्वारा कर्त्तव्य-प्रेरणा से कहे हुए वचन सुने, वीतराग प्रभु के, मुनिवरों के प्रशस्त स्तुतिपरक शब्द, स्तोत्र एवं भक्तिकाव्य सुने, अहिंसादि लक्षण-प्रधान गुण वर्णन सुने, यह तो अभीष्ट शब्द-श्रवण है।

परन्तु अपनी प्रशंसा और कीर्ति के शब्द सुनकर हर्ष से उछल पडे और निन्दा, गाली आदि के शब्द सुन रोष से उबल पडे; इसी प्रकार वाद्य, संगीत आदि के कर्णप्रिय स्वर सुनकर आसक्ति या मोह पैदा हो और कर्कश, कर्णकटु और कठोर शब्द सुनकर द्वेष, घृणा या अरुचि पैदा हो, यह अभीष्ट नहीं है।

✦ इस अध्ययन में कर्ण-सुखकर मधुर शब्द सुनने की इच्छा से गमन करने, प्रेरणा या उत्कण्ठा का निषेध किया गया है।

✦ राग और द्वेष दोनों ही कर्मबन्ध के कारण हैं, किन्तु राग का त्याग करना बहुत कठिन है। शब्द-सप्तिका अध्ययन मे किसी भी मनोज्ञ दृष्ट, प्रिय, कर्ण सुखकर शब्द के प्रति मन में (१) इच्छा, (२) लालसा, (३) आसक्ति, (४) राग, (५) गृद्धि, (६) मोह, और (७) मूर्च्छा, इन सातों से दूर रहने का निर्देश होने से शब्द सप्तिका नाम है।

● ●

SHABDA SAPTIKA : ELEVENTH CHAPTER

INTRODUCTION

- The title of eleventh chapter is *Shabda Saptika.*
- The sense-organ of hearing or ear is meant for hearing word or sound Verse 323 of *Niryukti* mentions—In order to enhance his practice of discipline or the trio of knowledge, perception and conduct and make it refulgent, an ascetic, with the help of his ears, should listen the message of the scriptures, lofty words of beneficent teachings of his preceptor, call of the suffering and destitute; words inspiring him to pursue his duty; songs of obeisance of the Detached, panegyrics and devotional songs by learned sages; descriptions of virtues with attributes like *ahimsa* All this is desired or commendable listening

  But if he jumps with joy at words of his praise or fame and boils with anger at words of criticism or abuse, and if he gets fond of or attached to lilting sound of musical instruments or other such pleasant sound and is filled with hatred and dislike for piercing, unpleasant and harsh sound, it is neither desired nor commendable.
- In this chapter the inspiration, desire and craving to hear sweet and pleasant sounds has been proscribed
- Attachment and aversion both cause bondage of *karmas* but it is very difficult to renounce attachment. This chapter titled Sound Septet contains advise to be away from (1) wish, (2) longing, (3) infatuation, (4) attachment, (5) covetousness, (6) fondness, and (7) obsession for any attractive, beautiful, lovely or pleasant sound or word. That is why it is called Sound Septet.

●●

सद्द सत्तिक्कयं : एगारसमं अज्झयणं
शब्द-सप्तिका : एकादश अध्ययन : चतुर्थ सप्तिका
SHABDA SAPTIKA : ELEVENTH CHAPTER : SEPTET FOUR
SOUND SEPTET

वाद्यादि शब्द श्रवण-उत्कण्ठा का निषेध

३१४. से भिक्खू वा २ मुइंगसद्दाणि वा नंदीसद्दाणि वा झल्लरीसद्दाणि वा अण्णयराणि वा तहप्पगाराइं विरूवरूवाइं वितताइं सद्दाइं कण्णसोयपडियाए णो अभिसंधारिज्जा गमणाए।

३१४. साधु-साध्वी मृदग के शब्द, नंदी नामक वाद्य के शब्द या झलरी (झालर) के शब्द तथा इसी प्रकार के अन्य वितत शब्दों को कानों से सुनने के उद्देश्य से कहीं भी जाने का मन में सकल्प नहीं करे।

CENSURE OF MUSICAL INSTRUMENTS

314. A *bhikshu* or *bhikshuni* should never resolve to go to some place to hear sounds of *mridanga, nandi, jhalari* or other such *vitata* sounds (produced by percussion type musical instruments).

३१५. से भिक्खु वा २ अहावेगइयाइं सद्दाइं सुणेइ, तं जहा—वीणासद्दाणि वा विवंचिसद्दाणि वा बद्धीसगसद्दाणि वा तूणयसद्दाणि वा पणवसद्दाणि वा तुंबवीणियसद्दाणि वा ढकुणसद्दाणि वा अण्णयराइं वा तहप्पगाराइं विरूवरूवाणि सद्दाणि वितताइं कण्णसोयपडियाए णो अभिसंधारेज्जा गमणाए।

३१५. साधु-साध्वी कई प्रकार के शब्द सुनते हैं, जैसे कि वीणा के शब्द, विपंची के शब्द, बद्धीसक के शब्द, तूनक के शब्द, तुम्बवीणा के शब्द, ढंकुण (वाद्य-विशेष) के शब्द या इसी प्रकार के विविध तत-शब्द हैं, जिन्हें कानों से सुनने के लिए कहीं जाने का मन में विचार नहीं करे।

315. A *bhikshu* or *bhikshuni* hears various sounds such as those of *Veena, Vipanchi, Baddhisak, Tunak, Dhol, Dhankun* or

other such *tat* sounds (produced by stringed musical instruments). He should never resolve to go to some place to hear these sounds.

३१६. से भिक्खू वा २ अहावेगइयाइं सद्दाइं सुणेइ, तं जहा–तालसद्दाणि वा कंसतालसद्दाणि वा लत्तियसद्दाणि वा गोहियसद्दाणि वा किरिकिरिसद्दाणि वा अण्णयराणि वा तहप्पगाराइं विरूवरूवाइं तालसद्दाइं कण्णसोयपडियाए णो अभिसंधारेज्जा गमणाए।

३१६. साधु-साध्वी कई प्रकार के शब्द सुनते हैं, जैसे कि ताल के शब्द, कंसताल के शब्द, लत्तिका (कॉसी) के शब्द, गोधिका (भांड लोगों द्वारा कॉंख और हाथ में रखकर बजाए जाने वाले वाद्य) शब्द या बाँस की छड़ी से बजने वाले शब्द, इसी प्रकार के अन्य अनेक तरह के ताल शब्दों को सुनने की दृष्टि से कहीं जाने का मन में विचार न करे।

316. A *bhikshu* or *bhikshuni* hears various sounds such as those of clapping, *kansataal, lattika, godhika, kirikiri* or other such *taal* sounds (produced by action of clapping with various instruments). He should never resolve to go to some place to hear these sounds.

३१७. से भिक्खू वा २ अहावेगइयाइं सद्दाइं सुणेइ, तं जहा–संखसद्दाणि वा वेणुसद्दाणि वा वंससद्दाणि वा खरमुहिसद्दाणि वा पिरिपिरियसद्दाणि वा अण्णयराइं वा तहप्पगाराइं विरूवरूवाइं सद्दाइं झुसिराइं कण्णसोयपडियाए णो अभिसंधारेज्जा गमणाए।

३१७. साधु-साध्वी कई प्रकार के शब्द सुनते हैं, जैसे कि शंख के शब्द, वेणु के शब्द, बॉस के शब्द, खरमुही के शब्द, पिरपिरी के शब्द या इसी प्रकार के अन्य नाना शुषिर (छिद्रगत) शब्द, किन्तु उन्हे कानों से सुनने के लिए किसी स्थान में जाने का संकल्प न करे।

317. A *bhikshu* or *bhikshuni* hears various sounds such as those of conch shell, *venu, bamboo, kharmuhi, piripiri* or other such *shushir* sounds (produced by wind instruments). He should never resolve to go to some place to hear these sounds.

विवेचन–शब्दों के विविध भेद–इन चारों सूत्रों में मुख्यतया चार कोटि के वाद्य शब्द सुनने की उत्कण्ठा का निषेध है–(१) वितत शब्द, (२) तत शब्द, (३) ताल शब्द, और (४) शुषिर

शुषिर शब्द
वितत शब्द

चित्र परिचय १२

Illustration No. 12

शब्द-श्रवण संयम

श्रमण अनेक प्रकार के शब्द सुनता है। जैसे-

(१) वितत शब्द–मृदग आदि के। तत शब्द–वीणा आदि के। ताल शब्द–झाँझ, ताल आदि के, और शुषिर शब्द–बाँसुरी, बिगुल आदि के शब्द। अन्य भी अनेक प्रकार के शब्द सुने जाते है। *(सूत्र ३१७)*

(२) इसी प्रकार वर-वधू के विवाह-मण्डप मे होने वाले गीत, नृत्य, वाद्य आदि के शब्द, विविध हँसी-मजाक के वार्त्तालाप (*सूत्र ३२६*), तथा अलकृत छोटी बालिका को घोडे पर बिठाकर ले जाते हुए लोगो के गाने-बजाने, हँसने के विविध प्रकार के शब्द, इस प्रकार रागवर्धक शब्दो को सुनने की उत्सुकता से न तो कही जाये और न ही उनमे आसक्त होकर सुने।

-अध्ययन ११, सूत्र ३१७-३२९

DISCIPLINE OF HEARING

An ascetic hears many kinds of sound, such as—

(1) **Vitat**—produced by percussion type of musical instruments like *mridang* **Tat**—produced by stringed musical instruments like *veena*. **Taal**—produced by clapping action like playing cymbal **Shushir**—produced by wind instruments like flute, trumpet etc. He hears many other kinds of sound (*aphorism 317*)

(2) He may also hear numerous other sounds such as—sounds of songs, dances and music coming from a marriage pavilion, frivolous talks (*aphorism 326*), and sounds of laughter or singing coming from a procession where a well adorned little girl is being carried on a horse. An ascetic should neither fondly hear nor intentionally go to hear such enticing sounds.

—Chapter 11, aphorism 317-329

शब्द। वाद्य चार प्रकार के होने से उनसे निकलने वाले शब्दों के भी चार प्रकार हो जाते हैं। जैसे-(१) वितत-ताररहित बाजों से होने वाला शब्द, जैसे-मृदग, नंदी और झालर आदि के स्वर। (२) तत-तार वाले बाजे-वीणा, सारंगी, तुनतुना, तानपूरा, तम्बूरा आदि से होने वाले शब्द। (३) ताल-ताली बजने से होने वाला या काँसी, झाँझ, ताल आदि के शब्द। (४) शुषिर-पोल या छिद्र में से निकलने वाले बाँसुरी, तुरही, खरमुही, बिगुल आदि के शब्द।

स्थानांगसूत्र में शब्द के दो भेद बताये हैं-जीव के वाक् प्रयत्न से होने वाला-'भाषा शब्द' तथा वाक् प्रयत्न से भिन्न शब्द। इनके भी दो भेद हैं-अक्षर सम्बद्ध, नो-अक्षर सम्बद्ध। नो-अक्षर सम्बद्ध के दो भेद-आंतोद्य (बाजे आदि का) शब्द, नो-आतोद्य (बाँस आदि के फटने से होने वाला) शब्द। आतोद्य के दो भेद-तत और वितत। तत के दो भेद-तत-घन और तत-शुषिर, तथा वितत के दो भेद-वितत-घन, वितत-शुषिर। नो-आतोद्य के दो भेद-भूषण, नो-भूषण। नो-भूषण के दो भेद-ताल और लतिका (लात मारने से होने वाला या बाँस का शब्द)। प्रस्तुत में आतोद्य के सभी प्रकारों का समावेश-तत, वितत, ताल और शुषिर इन चारों में कर दिया गया है। *(स्थान २, उ. ३)*

Elaboration—Various types of sound—These four aphorisms primarily censure hearing of sounds produced by four kinds of musical instruments—(1) *Vitat* sounds, (2) *Tat* sounds, (3) *Taal* sounds, and (4) *Shushir* sounds As there are four classes of musical instruments the sounds produced by them are also of four kinds. (1) *Vitat*—produced by non-string or percussion type of musical instruments like *mridang, tabla* and other types of drums. (2) *Tat*—produced by *veena, sarangi, sitar* and other such stringed musical instruments. (3) *Taal*—produced by clapping action or clashing together a couple of instruments held in both hands, like a cymbal. (4) *Shushir*—produced by wind instruments, like flute, trumpet etc.

Sthananga Sutra mentions two classes of sound—sounds produced by vocal cords of living beings and sounds other than that. These are further divided into two kinds; that related to words or language and other than that. The other sounds are again divided into two; *atodya* or instrumental and *no-atodya* or other natural sounds. *Atodya* or instrumental sounds are further divided into two; *tat* and *vitat*. *Tat* and *vitat* both have two kinds each *ghan* and *sushir*. *No-atodya* also have two kinds; *bhushan* and *no-bhushan*. And finally *no-bhushan*

also has two kinds; *taal* and *latika* (all these types are based on the process of sound production involved). All these kinds of *atodya* have been included in the four; *tat, vitata, taal* and *shushir* mentioned here. (*Sthananga Sutra* 2/3)

विशेष शब्दों के अर्थ–तुणयसद्दाणि–तुनतुने के शब्द। पणवसद्दाणि–ढोल की आवाज। तुम्बवीवियसद्दाणि–तुम्बे के साथ संयुक्त वीणा के शब्द या तम्बूरे के शब्द। कंसतालसद्दाणि–काँसे का शब्द। लत्तियसद्दाणि–काँसा, कंसिका के शब्द। खरमुही का अर्थ निशीथ चूर्णि (उ. १७) में किया गया है–"खरमुखी काहला, तस्स मुहत्थाणे खरमुहाकारं कट्ठमयं मुहं कज्जति।" अर्थात् खरमुखी उसे कहते हैं, जिसके मुख के स्थान में गर्दभमुखाकार काष्ठमय मुख बनाया जाता है।

Technical Terms : *Tunayasaddani*—sound produced by a vibrating string. *Panavasaddani*—sound of a drum. *Tumbaviviyasaddani*—sound of string attached to a gourd (like *sitar*). *Kansataalsaddani* and *lattiyasaddani*—sound produced by various types of striking instruments made of bronze (like cymbal) *Kharamuhi*—the meaning given in *Nishith Churni* of this instrument is flute fixed with a wooden mouth piece or blowing end shaped like a donkey-head.

विविध स्थानों में शब्देन्द्रिय-संयम का उपदेश

३१८. से भिक्खू वा २ अहावेगइयाइं सद्दाइं सुणेइ, तं जहा–वप्पाणि वा फलिहाणि वा जाव सराणि वा सरपंतियाणि वा सरसरपंतियाणि वा अण्णयराइं वा तहप्पगाराइं विरूवरूवाइं सद्दाइं कण्णसोयपडियाए णो अभिसंधारेज्जा गमणाए।

३१८. साधु-साध्वी कई प्रकार के शब्द सुनते हैं, जैसे कि खेत की क्यारियों में तथा खाइयों में होने वाले शब्द यावत् सरोवरों में, समुद्रों में, सरोवर की पंक्तियों या सरोवर के बाद सरोवर की पंक्तियों के शब्द अन्य इसी प्रकार के विविध शब्द, किन्तु उन्हें श्रवण करने के लिए जाने का मन में संकल्प न करे।

DISCIPLINE AT VARIOUS PLACES

318. A *bhikshu* or *bhikshuni* hears various sounds such as those produced in rows in a farm, in trenches, in lakes, in seas, in rows of ponds or other such types of sounds. But he should never resolve to go to some place to hear these sounds.

३१९. से भिक्खू वा २ अहावेगइयाइं सद्दाइं सुणेइ, तं जहा—कच्छाणि वा नूमाणि वा गहणाणि वा वणाणि वा वणदुग्गाणि वा पव्वयाणि वा पव्वयदुग्गाणि वा अण्णयराइं वा तहप्पगाराइं विरूवरूवाइं सद्दाइं कण्णसोयपडियाए णो अभिसंधारेज्जा गमणाए।

३१९. साधु-साध्वी विभिन्न शब्दों को सुनते हैं, जैसे कि नदी तट के जल-बहुल प्रदेशों, (कच्छों) में, भूमिगृहों या प्रच्छन्न स्थानों में, वृक्षों से सघन एवं गहन प्रदेशों में, वनों में, वन के दुर्गम प्रदेशों में, पर्वतों पर या पर्वतीय दुर्गों में तथा इसी प्रकार के अन्य प्रदेशों में, किन्तु उन शब्दों को श्रवण करने के उद्देश्य से जाने का संकल्प न करे।

319. A *bhikshu* or *bhikshuni* hears various sounds such as those produced in areas in proximity of river banks with plenty of water, buildings or other covered places, thick growth of trees or other such dense vegetation, forests, impenetrable areas in forests, mountains, forts on mountains or other such places. He should never resolve to go to some place to hear these sounds.

३२०. से भिक्खू वा २ अहावेगइयाइं सद्दाइं सुणेइ, तं जहा—गामाणि वा नगराणि वा निगमाणि वा रायहाणि वा आसम-पट्टण-सण्णिवेसाणि वा अण्णयराइं वा तहप्पगाराइं सद्दाइं णो अभिसंधारेज्जा गमणाए।

३२०. इसी प्रकार गाँवों मे, नगरों में, निगमों में, राजधानी में, आश्रम, पत्तन और सन्निवेशों में या अन्य इसी प्रकार के नाना रूपों में होने वाले शब्दों को सुनने की लालसा से न जाए।

320. A *bhikshu* or *bhikshuni* hears various sounds such as those produced in villages, cities, markets, capitals, hermitages, ports, districts or other such places. But he should never resolve to go to some place to hear these sounds.

३२१. से भिक्खू वा २ अहावेगइयाइं सद्दाइं सुणेइ, तं जहा—आरामाणि वा उज्जाणाणि वा वणाणि वा वणसंडाणि वा देवकुलाणि वा सभाणि वा पवाणि वा अण्णयराइं वा तहप्पगाराइं सद्दाइं णो अभिसंधारेज्जा गमणाए।

३२१. तथा आरामागारों में, उद्यानों में, वनों में, वनखण्डों में, देवकुलों में, सभाओं में, प्याऊओं में या अन्य इसी प्रकार के विविध स्थानों में कर्णप्रिय शब्दों को सुनने की उत्सुकता से जाने का संकल्प न करे।

321. A *bhikshu* or *bhıkshunı* hears various sounds such as those produced in gardens, woodlands, portions of jungles, temples, assembly halls, water-huts or other such places. But he should never resolve to go to some place to hear these sounds.

३२२. से भिक्खू वा २ अहावेगइयाइं सद्दाइं सुणेइ, तं जहा–अट्टाणि वा अट्टालयाणि वा चरियाणि वा दाराणि वा गोपुराणि वा अण्णयराणि वा तहप्पगाराइं सद्दाइं णो अभिसंधारेज्जा गमणाए।

३२२. पुनश्च अटारियों में, प्राकार से सम्बद्ध अट्टालयों में, नगर के मध्य में स्थित राजमार्गों में द्वारो या नगर-द्वारों तथा इसी प्रकार के अन्य स्थानों में शब्दों को सुनने हेतु जाने का संकल्प न करे।

322. A *bhikshu* or *bhıkshunı* hears various sounds such as those produced in lofts, buildings adjoining a parapet, roads within the city, gates, city gates or other such places But he should never resolve to go to some place to hear these sounds.

३२३. से भिक्खू वा २ अहावेगइयाइं सद्दाइं सुणेइ, तं जहा–तियाणि वा चउक्काणि वा चच्चराणि वा चउमुहाणि वा अण्णयराइं वा तहप्पगाराइं सद्दाइं णो अभिसंधारेज्जा गमणाए।

३२३. जैसे कि तिराहों पर, चौकों में, चौराहों पर चतुर्मुख मार्गों मे तथा इसी प्रकार के अन्य स्थानो मे शब्दों को श्रवण करने के लिए जाने का संकल्प न करे।

323. A *bhıkshu* or *bhıkshunı* hears various sounds such as those produced at junctions of three roads, squares, crossings, junctions of four roads or other such places. But he should never resolve to go to some place to hear these sounds.

मनोरंजन-स्थलों में शब्द-श्रवणोत्सुकता का निषेध

३२४. से भिक्खू वा २ अहावेगइयाइं सद्दाइं सुणेइ, तं जहा–महिसकरणट्ठाणाणि वा वसभकरणट्ठाणाणि वा अस्सकरणट्ठाणाणि वा हत्थिकरणट्ठाणाणि वा जाव कविंजलकरणट्ठाणाणि वा अण्णयराइं वा तहप्पगाराइं सद्दाइं णो अभिसंधारेज्जा गमणाए।

३२४. साधु या साध्वी कई प्रकार के शब्द श्रवण करते हैं, जैसे कि भैंसों के स्थान, वृषभशाला, घुड़साल, हस्तिशाला यावत् कपिंजल पक्षी आदि के रहने के स्थानों में होने वाले शब्दों या इसी प्रकार के अन्य शब्दों को, किन्तु उन्हें श्रवण करने की इच्छा से कहीं जाने का विचार न करे।

CENSURE OF ENTERTAINMENT CENTRES

324. A *bhikshu* or *bhikshuni* hears various sounds such as those produced in yards or stables for buffalos, bulls, horses, elephants; nests of *kapinjal* (a type of cuckoo) birds; or other such places. But he should never resolve to go to some place to hear these sounds.

विवेचन—उक्त सात सूत्रों में विभिन्न स्थानों में उन स्थानों से सम्बन्धित आवाजों या उन स्थानों मे होने वाले श्रव्य, गेय आदि स्वरों को श्रवण करने की उत्सुकतावश जाने का निषेध किया गया है। कान खुले होते हैं तब अनायास शब्द कान में पड़ ही जाते हैं, किन्तु इन शब्दों को मात्र शब्द ही माने, इनमें मनोज्ञता या अमनोज्ञता का भाव नहीं करे। उनके प्रति राग-द्वेष का भाव उत्पन्न न होने दे।

Elaboration—In above said seven aphorisms it has been prohibited to hear sounds at various places concerning those places. Going to such places with an intention to hear musical or pleasant sounds is also discouraged. As the ears are not shut, they hear the sounds involuntarily But those sounds should be considered mere sounds. Never get attracted towards or repulsed by them. Never have a feeling of attachment or aversion for them.

३२५. से भिक्खू वा २ अहावेगइयाइं सद्दाइं सुणेइ, तं जहा–महिसजुद्धाणि वा वसभजुद्धाणि वा अस्सजुद्धाणि वा जाव कविंजलजुद्धाणि वा अण्णयराइं वा तहप्पगाराइं सद्दाइं णो अभिसंधारेज्जा गमणाए।

३२५. साधु-साध्वी को कई प्रकार के शब्द सुनने में आते हैं, जैसे कि जहाँ भैंसों के युद्ध, साँडों के युद्ध, अश्व-युद्ध, हस्ति-युद्ध यावत् कपिजल-युद्ध होते हैं तथा अन्य इसी प्रकार के पशु-पक्षियों के लड़ने से या लड़ने के स्थानों में होने वाले शब्द। उनको सुनने हेतु जाने का मन में संकल्प न करे।

325. A *bhikshu* or *bhikshuni* hears various sounds such as those produced where buffaloes are fighting, bulls, horses,

elephants, *kapınjal* (a type of cuckoo) birds, other such birds and animals are fighting or other such places. But he should never resolve to go to some place to hear these sounds.

३२६. से भिक्खू वा २ अहावेगइयाइं सद्दाइं सुणेइ, तं जहा–जूहियट्ठाणाणि वा हयजूहियट्ठाणाणि वा गयजूहियट्ठाणाणि वा अण्णयराइं वा तहप्पगाराइं सद्दाइं णो अभिसंधारेज्जा गमणाए।

३२६. साधु-साध्वी के कानों में कई प्रकार के शब्द पड़ते हैं, जैसे कि वर-वधू युगल आदि के मिलने के स्थानों (विवाह-मण्डपों) में या जहाँ वर-वधू वरण किया जाता है ऐसे स्थानों में, घोड़ों के समूह जहाँ रहते हों, हाथियों के समूह जहाँ रहते हों तथा इसी प्रकार के अन्य कुतूहल एवं मनोरंजक स्थानों में। ऐसे श्रव्य-गेयादि शब्द सुनने की उत्सुकता से जाने का संकल्प न करे।

326. A *bhikshu* or *bhikshuni* hears various sounds such as those produced in places where brides and bride-grooms come together or marry (marriage pavilions), where herds of horses and elephants are gathered or other such places of attraction and entertainment. But he should never resolve to go to some place to hear these sounds.

३२७. से भिक्खू वा २ जाव सुणेइ, तं जहा–अक्खाइयट्ठाणाणि वा माणुम्माणियट्ठाणाणि वा महयाहय-नह-गीव-वाइय-तंति-तलताल-तुडिय-पडुप्प-वाइयट्ठाणाणि वा अण्णयराइं वा तहप्पगाराइं सद्दाइं णो अभिसंधारेज्जा गमणाए।

३२७. कथा करने के स्थानों में, तोल-माप करने के स्थानों में या घुड़-दौड़, कुश्ती प्रतियोगिता आदि के स्थानों में, महोत्सव-स्थलों में या जहाँ बड़े-बड़े नृत्य, नाट्य, गीत, वाद्य, तंत्री, तल (काँसी का वाद्य), ताल, त्रुटित वादिंत्र, ढोल बजाने के आयोजन होते हैं, ऐसे स्थानों में तथा इसी प्रकार के अन्य मनोरंजन स्थानों में होने वाले शब्द सुनने के लिए जाने का साधु-साध्वी मन में संकल्प नहीं करे।

327. A *bhıkshu* or *bhıkshunı* hears various sounds such as those produced in places of discourses (story telling), weighing and measuring, horse racing, wrestling; festivals where important recitals of dances dramas, music and instruments like *tantri, tal, taal, trutit,* drums are conducted or other such places

of entertainment. But he should never resolve to go to some place to hear these sounds.

३२८. से भिक्खू वा २ जाव सुणेइ, तं जहा--कलहाणि वा डिंबाणि वा डमराणि वा दोरज्जाणि वा वेरज्जाणि वा विरुद्धरज्जाणि वा अण्णयराइं वा तहप्पगाराइं सद्दाइं णो अभिसंधारेज्जा गमणाए।

३२८. जहाँ परस्पर कलह होते हों, शत्रु-सेना का भय हो, राष्ट्र का भीतरी या बाहरी विप्लव हो, दो राज्यों के परस्पर विरोधी स्थान हों, वैर के स्थान हों, विरोधी राजाओं के राज्य हों तथा इसी प्रकार के अन्य विरोधी वातावरण के वार्त्तालाप को सुनने की दृष्टि से जाने का साधु-साध्वी मन में संकल्प नहीं करे।

328. A *bhikshu* or *bhikshuni* hears various sounds such as those produced in places where people are quarrelling, army of enemy state is stationed, there is internal or external uprising, there is a dispute between two states or antagonists, there is enemy territory or other such places where angry exchanges are taking place. But he should never resolve to go to some place to hear these sounds.

३२९. से भिक्खू वा २ जाव सद्दाइं सुणेइ, खुड्डियं दारियं परिभुत्तं मंडियालंकियं निवुज्झमाणिं पेहाए, एगपुरिसं वा वहाए णीणिज्जमाणं पेहाए, अण्णयराइं वा अभिसंधारेज्ज गमणाए।

३२९. इसी प्रकार जहाँ वस्त्राभूषणों से मण्डित और अलंकृत तथा बहुत-से लोगों से घिरी हुई किसी छोटी बालिका को घोड़े आदि पर बिठाकर ले जाया जा रहा हो अथवा किसी अपराधी व्यक्ति को वध के लिए वध-स्थान पर ले जाया जा रहा हो तथा अन्य किसी ऐसे व्यक्ति की शोभा-यात्रा निकाली जा रही हो, उस समय होने वाले (जय, धिक्कार, तथा मानापमानसूचक नारों आदि) शब्दों को सुनने की उत्सुकता से जाने का साधु-साध्वी मन में संकल्प न करे

329. A *bhikshu* or *bhikshuni* hears various sounds such as those produced in places where a well dressed young girl adorned with ornaments and riding a horse is taken out in a procession; a criminal is being taken for execution or other such person is taken out in procession (and hails or insults are shouted). But he should never resolve to go to some place to hear these sounds.

३३०. से भिक्खू वा २ अण्णयराइं विरूवरूवाइं महासवाइं एवं जाणेज्जा, तं जहा—बहुसगडाणि वा बहुरहाणि वा बहुमिलक्खूणि वा बहुपच्चंताणि वा अण्णयराइं वा तहप्पगाराइं विरूवरूवाइं महासवाइं कण्णसोयपडियाए णो अभिसंधारेज्ज गमणाए।

३३०. साधु-साध्वी अन्य नाना प्रकार के ऐसे महास्रव स्थानों को (अत्यन्त पाप उत्पन्न होने के स्थान) जाने, जैसे कि जहाँ बहुत-से शकट, बहुत-से रथ, बहुत-से म्लेच्छ, बहुत-से सीमा-प्रान्तीय लोग एकत्रित हुए हों अथवा उस प्रकार के नाना महापाप उत्पत्ति के स्थान हों, वहाँ कानों से शब्द-श्रवण के उद्देश्य से जाने का मन में संकल्प न करे।

330. A *bhikshu* or *bhikshuni* should find about numerous other such places where there are numerous chances of acquiring bondage of *karmas,* such as places where many demons, chariots, rustics and people of bordering states have gathered or other such places. But he should never resolve to go to some place to hear these sounds.

३३१. से भिक्खू वा २ अण्णयराइं विरूवरूवाइं महुस्सवाइं एवं जाणेज्जा तं जहा—इत्थीणि वा पुरिसाणि वा थेराणि वा डहराणि वा मज्झिमाणि वा आभरणविभूसियाणि वा गायंताणि वा वायंताणि वा णच्चंताणि वा हसंताणि वा रमंताणि वा मोहंताणि वा विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं परिभुंजंताणि वा परिभायंताणि वा विछड्डयमाणाणि वा विग्गोवयमाणाणि वा अण्णयराइं वा तहप्पगाराइं विरूवरूवाइं महुस्सवाइं कण्णसोयपडियाए णो अभिसंधारेज्ज गमणाए।

३३१. साधु-साध्वी नाना प्रकार के महोत्सवों को इस प्रकार जाने कि जहाँ स्त्रियाँ, पुरुष, वृद्ध, बालक और युवक आभूषणो से विभूषित होकर गीत गाते हो, बाजे बजाते हों, नाचते हों, हँसते हों, आपस में खेलते हों, रति-क्रीड़ा करते हो तथा विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम पदार्थों का उपभोग करते हों, परस्पर बाँटते हों या परोसते हों, त्याग करते हों, परस्पर तिरस्कार करते हों, उनके शब्दो को तथा इसी प्रकार के अन्य बहुत-से महोत्सवों में होने वाले शब्दों को कान से सुनने की उत्सुकतावश जाने का मन में संकल्प न करे।

331. A *bhikshu* or *bhikshuni* should find about numerous other such festive places where well dressed women, men, old, young and children adorned with ornaments sing, play musical instruments, dance, laugh, play around, indulge in erotic activities; and eat, distribute, serve and abandon large quantities of food or even insult each other. But he should never resolve to go to some place to hear these sounds.

विवेचन—सूत्र ३२४ से ३३१ तक आठ सूत्रों में मनोरंजन-स्थलों में होने वाले शब्दों को उत्सुकतापूर्वक सुनने का निषेध किया गया है। संक्षेप में इन सभी मुख्य-मुख्य मनोरंजन एवं कुतूहलवर्द्धक स्थलों में विविध कर्णप्रिय स्वरों के श्रवण की उत्कण्ठा से साधु को दूर रहने की आज्ञा दी है।

Elaboration—These eight aphorism, 324 to 331 censure eagerness to listen sounds produced at places of entertainment. An ascetic has been directed to avoid eagerness to listen to pleasant sounds in all such important places of entertainment and excitement.

विशेष शब्दों के अर्थ—आचारांग वृत्ति, चूर्णि आदि में तथा निशीथसूत्र चूर्णि आदि में प्रतिपादित विशेष शब्दों के अर्थ इस प्रकार हैं—**जूहियट्ठाणाणि**—जहाँ वर और वधू आदि जोड़ों के मिलन या पाणिग्रहण का जो स्थान (वेदिका, विवाह-मण्डप आदि) हैं, वे स्थान। **अक्खाइयट्ठाणाणि**—कथा कहने के स्थान या कथक द्वारा पुस्तक वाचन। **माणुम्माणियट्ठाणाणि**—मान—वजन करने का (मीटर)। उन्मान—गज आदि से नापने के स्थान अर्थात् जहाँ तोल-माप होता हो, मण्डी या बाजार अथवा मानोन्मान का अर्थ है—घोड़े आदि के वेग इत्यादि की परीक्षा करना अथवा एक के बल का माप दूसरे के बल से अनुमानित किया जाए। **महयाहत**—जोर-जोर से बाजे को पीटना अथवा महाकथानक। **महासवाइं**—जो भारी आस्रवों—पापकर्मों के आगमन के स्थान हो। महासवाइं का अर्थ वृत्तिकार ने किया है—"महान्येतान्याश्रवस्थानानि पापोपादानस्थानानि वर्तन्ते।" अर्थात् ये महान् आस्रव स्थान-पापोपादान के स्थान हैं। **बहूमिलक्खूणि**—जिस उत्सव में बहुत-से अव्यक्त भाषी, अनार्य भाषा-भाषी मिलते हैं, वह बहुम्लेच्छ उत्सव। *(आचारांग वृत्ति, पत्रांक ४१२, आचारांग चूर्णि टी, पृ २४५-२४७; निशीथचूर्णि, पृ. ३४८-३५०)*

Technical Terms : The meanings of technical terms as given in *Acharanga Vritti, Churni* (etc) and *Nishith Sutra Churni* are as follows—*Juhiyatthani*—the place where a bride and bride-groom come together or are married. *Akkhaiyatthani*—place of discourse where scriptures or other books are read to an audience. *Maanummaaniyatthani—maan* means weight and *unmaan* is measure A place where weight and measure is done, in other words a market place. It also means where speed of a horse is compared with that of another or strength of one is measured against another. *Mahayahat*—to beat a drum with force. It also means an epic. *Mahasavaim*—according to *Vritti* it means a place having an abundance of chances of indulging in sinful activities or acquiring bondage of *karmas*. *Bahumilakkhuni*—a function where one finds numerous people speaking some other unknown language. A function of many rustics or foreigners. *(Acharanga Vritti, leaf 412, Acharanga Churni, p. 245-247, Nishith Churni, p. 348-350)*

३३२. से भिक्खू वा २ णो इहलोइएहिं सद्देहिं णो परलोइएहिं सद्देहिं, णो सुएहिं सद्देहिं णो असुएहिं सद्देहिं, णो दिट्ठेहिं सद्देहिं णो अदिट्ठेहिं सद्देहिं, णो इट्ठेहिं सद्देहिं, णो कंतेहिं सद्देहिं सज्जेज्जा, णो रज्जेज्जा, णो गिज्झिज्जा, णो मुज्झिज्जा, णो अज्झोववज्जिज्जा।

एयं खलु तस्स भिक्खुस्स वा भिक्खुणीए वा सामग्गियं जएज्जासि।

—त्ति बेमि।

॥ चउत्थो सत्तिक्कओ सम्मत्तो ॥

॥ एगारसमं अज्झयणं सम्मत्तं ॥

३३२. साधु-साध्वी इहलौकिक (मनुष्य जाति के) एवं पारलौकिक (मानवेतर जाति–पक्षी, देव, वाद्य आदि) शब्दों में, श्रुत (सुने हुए) या अश्रुत (बिना सुने) शब्दों में, देखे हुए या बिना देखे हुए शब्दों में, इष्ट और कान्त शब्दों में न तो आसक्त हो, न रक्त (रागभाव से लिप्त) हो, न गृद्ध हो, न मोहित हो और न ही मूर्च्छित हो।

यही (शब्द श्रवण-विवेक ही) उस साधु या साध्वी का आचार-सर्वस्व है, जिसमें सभी अर्थों–प्रयोजनों सहित समित होकर सदा प्रयत्नशील रहे।

॥ चतुर्थ सप्तिका समाप्त ॥

॥ एकदाश अध्ययन समाप्त ॥

332. A *bhikshu* or *bhikshuni* should not have infatuation, attachment, covetousness, fondness and obsession for various sounds including human sounds; other sounds like those of birds, gods, instruments etc.; heard or unheard sounds; seen or unseen words and attractive and pleasant sounds.

This (prudence of hearing sound) is the totality (of conduct including that related to knowledge) for that *bhikshu* or *bhikshuni*. And so should he pursue.

—So I say.

|| END OF SEPTET FOUR ||

|| END OF ELEVENTH CHAPTER ||

रूप-सप्तिका : द्वादश अध्ययन

आमुख

✦ बारहवें अध्ययन का नाम 'रूप-सप्तिका' है।

✦ चक्षुइन्द्रिय का काम है रूप देखना। संसार में अनेक प्रकार के अच्छे-बुरे, प्रिय-अप्रिय दिखाई देने वाले पदार्थ हैं। जो यथाप्रसंग आँखों से दिखाई देते हैं, परन्तु इन दृश्यमान पदार्थों को देखकर साधु-साध्वी को मनोज्ञ रूप पर आसक्ति, मोह, राग, गृद्धि, मूर्च्छा उत्पन्न नहीं होनी चाहिए और न ही अमनोज्ञ रूप देखकर उनके प्रति द्वेष, घृणा, अरुचि करनी चाहिए। अनायास ही कोई दृश्य या रूप दृष्टिगोचर हो जाए तो समभाव रखना चाहिए। उन रूपों को देखने की कामना, लालसा, उत्कण्ठा, उत्सुकता या इच्छा से कहीं जाना नहीं चाहिए।

✦ राग और द्वेष दोनों ही कर्मबन्धन के कारण हैं, किन्तु राग का त्याग करना अत्यन्त कठिन होने से शास्त्रकार ने राग-त्याग पर जोर दिया है। 'शब्द-सप्तिका अध्ययन की भाँति इस अध्ययन में भी किसी मनोज्ञ, प्रिय, कान्त, मनोहर रूप के प्रति मन में इच्छा, मूर्च्छा, लालसा, आसक्ति आदि से बचने का निर्देश किया है।

✦ रूप-सप्तिका अध्ययन में कुछ दृश्यमान वस्तुओं के रूपों को गिनाकर अन्त में यह निर्देश कर दिया है कि जैसे शब्द-सप्तिका में वाद्य को छोडकर शेष सभी सूत्रों का वर्णन है, तदनुसार, इस रूप-सप्तिका में भी वर्णन समझना चाहिए। इस अध्ययन में मात्र एक ही सूत्र है।

● ●

RUPA SAPTIKA : TWELFTH CHAPTER

INTRODUCTION

✦ The title of the twelfth chapter is *Rupa Saptika.*

✦ It is the work of 'the sense-organ of seeing' or eyes to see a form. In this world there are variety of things seen with eyes, on various occasions, that appear good or bad and pleasant or unpleasant. However, an ascetic should not have infatuation, attachment, covetousness, fondness and obsession for pleasant forms and neither should he have aversion, hatred and dislike for unpleasant forms When he suddenly comes across some scene or form he should remain equanimous. He should not go somewhere with a wish, craving, eagerness, curiosity or desire to see such forms.

✦ Attachment and aversion both are causes of bondage of *karmas* But as it is very difficult to renounce attachment, the author has given more stress here on renouncing attachment. As in the Sound Septet chapter, this chapter too gives directions to avoid desire, obsession, craving, infatuation etc for pleasant, lovely, radiant and attractive forms

✦ In this Form Septet chapter some visible things have been listed and in the end direction has been given that all the details should be taken as those mentioned in the Sound Septet leaving aside musical instruments. This chapter contains only one aphorism.

●●

रूव सत्तिक्कयं : बारसमं अज्झयणं
रूप-सप्तिका : द्वादश अध्ययन : पंचम सप्तिका
RUPTA SAPTIKA : TWELFTH CHAPTER : SEPTET FIVE
FORM SEPTET

रूप-दर्शन उत्सुकता-निषेध

३३३. से भिक्खू वा २ अहावेगइयाइं रूवाइं पासइ, तं जहा–गंथिमाणि वा वेढिमाणि वा पूरिमाणि वा संघाइमाणि वा कट्ठकम्माणि वा पोत्थकम्माणि वा चित्तकम्माणि वा मणिकम्माणि वा दंतकम्माणि वा पत्तच्छेज्जकम्माणि वा विविहाणि वा वेढिमाइं अण्णयराइं वा तहप्पगाराइं विरूवरूवाइं चक्खुदंसणवडियाए णो अभिसंधारेज्ज गमणाए।

एवं नेयव्वं जहा सद्दपडिमा सव्वा वाइत्तवज्जा रूवपडिमा वि।

॥ बारसमं अज्झयणं सम्मत्तं ॥

३३३. साधु-साध्वी अनेक प्रकार के रूपों को देखते हैं, जैसे–गूँथे हुए पुष्पों के स्वस्तिक आदि को, वस्त्रादि से वेष्टित या निष्पन्न पुतली आदि को, जिनके अन्दर कुछ पदार्थ भरने से पुरुषाकृति बन जाती हों, उन्हें, अनेक वर्णों के संघात से निर्मित चोलकादि को, काष्ठ से निर्मित रथादि पदार्थों को, पुस्तकर्म से निर्मित पुस्तकादि को, दीवार आदि पर चित्रित चित्रादि को, विविध मणिकर्म से निर्मित स्वस्तिकादि को, हाथी दाँत आदि से निर्मित दन्तपुत्तलिका आदि को, पत्रछेदन कर्म से निर्मित विविध पत्र आदि को अथवा अन्य विविध प्रकार के वेष्टनों से निष्पन्न हुए पदार्थों को तथा इसी प्रकार के अन्य नाना पदार्थों के रूपों को। इन पदार्थों व रूपों को देखने की इच्छा से साधु-साध्वी उस ओर जाने का मन में विचार न करे।

इस प्रकार जैसे शब्द-सम्बन्धी प्रतिमा का (११वें अध्ययन में) वर्णन किया गया है, वैसे ही यहाँ चतुर्विध आतोद्यवाद्य को छोड़कर रूप-प्रतिमा के विषय में भी जानना चाहिए।

CENSURE OF EAGERNESS FOR FORM

333. A *bhikshu* or *bhikshuni* sees various forms, such as—*swastikas* made of stringed flowers; dolls made of or dressed in

cloth and other things; stuffed human figures; dresses made of multicoloured things; things made of wood, such as a chariot; books; paintings and frescoes; shapes like *swastika* made of beads or gems; images and other things made of ivory; variety of leaves made by cutting sheets; various things made by wrappings and coatings; and other numerous forms made of a variety of things. He should never resolve to go to some place to see these forms.

All other details about regulations in context of form should be taken as mentioned about regulations in context of sound (11th chapter) leaving aside the four types of instrumental sounds.

विवेचन–इस एक ही सूत्र द्वारा शास्त्रकार ने कतिपय पदार्थों के रूपों का तथा अन्य उस प्रकार के विभिन्न रूपों को उत्सुकतापूर्वक देखने का निषेध किया है। इस सूत्र में सुन्दर वस्तुओं के स्वरूप पर विशेष विवेचन करते हुए आचार्य श्री आत्माराम जी म. लिखते हैं–

प्रस्तुत सूत्र में रूप-सौन्दर्य को देखने का निषेध किया गया है। इसमें बताया गया है कि चार कारणों से वस्तु या मनुष्य के सौन्दर्य में अभिवृद्धि होती है–(१) फूलों को गूँथकर उनसे माला गुलदस्ता आदि बनाने से पुष्पों का सौन्दर्य एवं उन्हें धारण करने वाले व्यक्ति की सुन्दरता भी बढ जाती है। (२) वस्त्र आदि से आवृत्त व्यक्ति भी सुन्दर प्रतीत होता है। विविध प्रकार की पोशाक भी सौन्दर्य को बढ़ाने का एक साधन है। (३) विविध साँचों में ढालने से आभूषणों का सौन्दर्य चमक उठता है और उन्हें पहनकर स्त्री-पुरुष भी विशेष सुन्दर प्रतीत होने लगते हैं। (४) वस्त्रों की सिलाई करने से उनकी सुन्दरता बढ़ जाती है और विविध फैशनों से सिलाई किए हुए वस्त्र मनुष्य की सुन्दरता को और अधिक चमका देते हैं। इससे यह स्पष्ट हो गया है कि विविध संस्कारों से पदार्थों के सौन्दर्य में अभिवृद्धि हो जाती है। साधारण-सी लकड़ी एवं पत्थर पर चित्रकारी करने से वह असाधारण प्रतीत होने लगती है। उसे देखकर मनुष्य का मन मोहित हो उठता है। इसी तरह हाथी दाँत, कागज, मणि आदि पर किया गया विविध कार्य एवं चित्रकला आदि के द्वारा अनेक वस्तुओं को देखने योग्य बना दिया जाता है और कलाकृतियाँ उस समय के लिए नहीं, बल्कि जब तक वे रहती हैं मनुष्य के मन को आकर्षित किए बिना नहीं रहती हैं। इससे उस युग की शिल्प की एक झाँकी मिलती है, जो उस समय विकास के शिखर पर पहुँच चुकी थी। उस समय मशीनों के अभाव में भी मानव वास्तुकला एवं शिल्पकला में आज से अधिक उन्नति कर चुका था।

दर्शनीय इमारतें

विवाह दृश्य

चित्र परिचय १३

Illustration No. 13

रूप दर्शन-संयम

ग्रामानुग्राम विचरण करने वाले भिक्षु को अनेक प्रकार के दृश्य रूप दिखाई पडते है। जैसे–

(१) दीवारो पर फूलो के सुन्दर स्वस्तिक आदि बने हुए। पुतली आदि की विविध आकृतियाँ, हाथी के दाँत व लकडी आदि की कृतियाँ (खिलौने)।

(२) उद्यान, देवालय, परकोटे तथा अनेक प्रकार की दर्शनीय इमारते।

(३) वर की विवाह-यात्रा के दृश्य, नृत्य।

(४) युद्ध-क्षेत्र, महिष–साँड आदि के युद्ध तथा पहलवानो की कुश्ती एव पशु-पक्षियो के युद्ध-स्थल आदि।

ऑखो के सामने इस प्रकार के कुतूहलवर्धक, आश्चर्यकारी दृश्य आने पर भी भिक्षु उन्हे देखने के लिए उत्सुक एव आतुर नही हो तथा अपनी चक्षु इन्द्रिय के विषयो पर पूर्ण सयम रखे। यह भिक्षु की रूप प्रतिमा है।

--अध्ययन १२, सूत्र ३३३

DISCIPLINE OF SEEING

An itinerant ascetic comes across a variety of scenes For example—

(1) Walls with beautiful illustrations of flowers, swastika etc A variety of puppets and toys made of ivory, wood etc

(2) Gardens, temples, parapet walls and other attractive buildings

(3) Marriage processions, dances etc

(4) Battle fields, bull-fights, wrestling, arenas where animal or bird fights take place.

Even when such entertaining and exciting scenes are before his eyes, an ascetic should avoid eagerness to see them He should exercise discipline over his desire for scenic enjoyment. This is the self-regulation related to form.

—Chapter 12, aphorism 333

इन सब कलाओं एवं सुन्दर आकृतियों तथा दर्शनीय स्थानों को देखने के लिए जाने का निषेध करने का तात्पर्य यह है कि साधु का जीवन साधना के लिए है, आत्मा को कर्मबन्धनों से मुक्त करने के लिए है। अतः यदि वह इन सुन्दर पदार्थों को देखने के लिए इधर-उधर जाएगा या दृष्टि दौड़ाएगा तो उससे चक्षु इन्द्रिय का पोषण होगा, मन में राग-द्वेष या मोह की उत्पत्ति होगी और स्वाध्याय एवं ध्यान की साधना में विघ्न पड़ेगा। चक्षु इन्द्रिय पर विजय प्राप्त करना साधना का मूल उद्देश्य है। अतः साधु को विविध वस्तुओं एवं स्थानों के रूप सौन्दर्य को देखने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। *(हिन्दी टीका, पृ. १३२१-१३२२)*

॥ द्वादश अध्ययन समाप्त ॥

Elaboration—In just one aphorism here the author censures *eagerness for seeing forms of some listed things and other similar* things. Elaborating specially on forms of beautiful things Acharya Shri Atmaramji M. writes—

This aphorism censures seeing beautiful forms. It conveys that there are four things that enhance beauty of a material thing or human being—(1) Stringing flowers into a garland or bouquet enhances the beauty of flowers and also the person wearing them (2) A person adorned with a dress looks beautiful. Different variety of dresses are means of enhancing beauty. (3) Casting ornaments in a variety of moulds adds to the glitter and beauty of ornaments Embellished with such ornaments a person looks more beautiful. (4) Proper stitching of clothes enhances their beauty. Wearing dresses designed and stitched in different fashions amply beautifies a person. This indicates that beauty of various things is enhanced when they undergo different processes. A simple piece of wood or stone becomes extraordinary if painted. Anyone looking at it is attracted. In the same way things like ivory, paper, gemstones etc. turn into objects of beauty when they undergo processes like painting, carving etc. Such things of art become objects of attraction not just for the time being but for all times to come. These mentions give a glimpse of the excellence attained by the crafts of that period. Even in absence of machines,

man of that era had reached a perfection in architecture and sculpture that is difficult to achieve even today.

The purpose of prohibiting ascetics to go to see such arts, beautiful forms and picturesque places is that ascetic life is for spiritual practices and liberating soul from the bondage of *karmas.* If he goes and looks around to enjoy these beautiful things he will appease his eyes, will be infected by attachment, aversion and fondness; and his studies and meditation will be disturbed. To win over the sense-organ of seeing is one of the basic goals of spiritual practices. Therefore an ascetic should never hanker to see beautiful things and places. *(Hindi Tika, p. 1321-1322)*

|| END OF SEPTET FIVE ||

|| END OF TWELFTH CHAPTER ||

पर-क्रिया-सप्तिका : त्रयोदश अध्ययन

आमुख

✦ इस अध्ययन का नाम 'पर-क्रिया-सप्तिका' है।

✦ 'पर' का अर्थ यहाँ साधु से इतर–गृहस्थ किया गया है। गृहस्थ के द्वारा की जाने वाली क्रिया को 'पर-क्रिया' कहा गया है। 'पर' शब्द का छह प्रकार से कथन किया गया है–(१) तत्पर, (२) अन्यतर पर, (३) आदेश-पर, (४) क्रम-पर, (५) बहु-पर और (६) प्रधान-पर।

(१) तत्पर–एक परमाणु दूसरे परमाणु से भिन्न होने के कारण उसे तत्पर कहते हैं अर्थात् वह परमाणु तत्–उस परमाणु से पर–भिन्न है।

(२) अन्यतर-पर–एक द्रव्य दो परमाणु से युक्त, दूसरा तीन परमाणु से युक्त है और इसी तरह अन्य द्रव्य अन्य अनेक परिमाण वाले परमाणुओं से युक्त हैं, इस तरह वे परस्पर एक-दूसरे से अन्यतर हैं, यही अन्यतर-पर कहलाता है।

(३) आदेश-पर–किसी व्यक्ति के आदेश पर कार्य करना आदेश-पर कहलाता है, क्योकि आदेश का परिपालक आदेश देने वाले से भिन्न है। जैसे–नौकर अपने स्वामी या अधिकारी के आदेश पर कार्य करते हैं।

(४) क्रम-पर–जैसे एक-प्रदेशी द्रव्य से, द्वि-प्रदेशी द्रव्य क्रम-पर है। इसी प्रकार इससे आगे की सख्या की भी कल्पना की जा सकती है। सख्या के क्रम से जो पर हो उन्हे क्रम-पर कहते है।

(५) बहु-पर–एक परमाणु से तीन या अधिक परमाणु वाले द्रव्य बहु-पर है, क्योकि उनकी भिन्नता एक से अधिक परमाणुओं मे है।

(६) प्रधान-पर–पद की प्रधानता के कारण जो अपने सजातीय पदार्थों से भिन्न है, उसे प्रधान-पर कहते हैं। जैसे–मनुष्यों में तीर्थंकर भगवान प्रधान हैं, पशुओं में सिह और वृक्षों में अर्जुन तथा अशोक वृक्ष प्रधान माना जाता है।

इससे यह स्पष्ट हो गया कि जो व्यक्ति अपने से भिन्न है, उसे पर कहते हैं। अतः साधु भिन्न गृहस्थ के द्वारा साधु के लिए की जाने वाली क्रिया को पर-क्रिया कहते है। *(हिन्दी टीका, पृ १३२३)*

✦ ऐसी पर-क्रिया विविध रूपो मे गृहस्थादि से लेना साधु के लिए वर्जित है। वृत्तिकार ने स्पष्टीकरण किया है कि गच्छ-निर्गत जिनकल्पी या प्रतिमा-प्रतिपन्न साधु के लिए पर-क्रिया का सर्वथा निषेध है, किन्तु गच्छान्तर्गत स्थविरकल्पी के लिए कारणवश यतना करने का निर्देश है। *(आचाराग वृत्ति, पत्रांक ४१५-४१६, आचारांग निर्युक्ति, गा ३२६)*

●●

PARA-KRIYA SAPTIKA : THIRTEENTH CHAPTER

INTRODUCTION

- The title of this chapter is *Para-Kriya Saptika.*
- *Para* here means 'other than ascetic' or householder. The action of a householder is called *para-kriya.* The *para* term has been used six ways—(1) *tat-para,* (2) *anyatar-para,* (3) *adesh-para,* (4) *kram-para,* (5) *bahu-para,* and (6) *pradhan-para.*

1. **Tat-para**—*Tat* means 'that' and *para* means 'other' Thus a *paramanu* (ultimate particle) other than that under consideration is called *tat-par.*
2. **Anyatar-para**—*anyatar* means as compared to an other One type of matter is made up of two ultimate particles, another is made up of three ultimate particles and so on Therefore one type of matter is different as compared to other type. This comparative difference is called *anyatar-para.*
3. **Adesh-para**—*adesh* means order Thus to work under order of someoneelse is called *adesh-para.* One who carries out an order is other than the one who gives it. For example a servant carries out the order of his master or officer
4. **Kram-para**—*kram* means progression A matter particle occupying two space points is second in order of progression to the one occupying one space point. Numbers in successive progression can thus be conceived. That which is other or different in progression of numbers is called *kram-para.*
5. **Bahu-para**—*bahu* means many. In types of matter having one ultimate particle and three or more ultimate particles there is a

difference of more than one or many constituents. Such matter is called *bahu-para.*

6. **Pradhan-para**—*pradhan* means main or important. Things which are different than other things of same kind due to their importance or status are called *pradhan-para*. For example in human beings *Tirthankar* is considered most important; in animals lion is considered most important; and in trees Arjuna and Ashoka are considered most important

It is this evident that a person other than oneself is called *para*. Therefore an action performed by a householder (a person other than ascetic) for an ascetic is called *para-kriya* or action of the other. *(Hindi Tika, p 1323)*

✦ Seeking such actions or services from householders in various ways is prohibited for an ascetic. There is a clarification in the *Vritti* that for *Jinakalpi* ascetics living out of a group or those observing special regulations such *para-kriya* is absolutely prohibited, whereas a *sthavir-kalpi* ascetic living within the group is directed to be careful if need for some such service arises. *(Acharanga Vritti, leaf 415-416, Acharanga Niryukti, verse 326)*

●●

परकिरिया सत्तिक्कयं : तेरसमं अज्झयणं
पर-क्रिया-सप्तिका : त्रयोदश अध्ययन : षष्ठ सप्तिका
PARA-KRIYA SAPTIKA : THIRTEENTH CHAPTER : SEPTET SIX
ACTION OF THE OTHER SEPTET

पर-क्रिया-स्वरूप

३३४. परकिरियं अज्झत्थियं संसेइयं णो तं साइए णो तं णियमे।

३३४. पर अर्थात् गृहस्थ के द्वारा आध्यात्मिकी अर्थात् मुनि के शरीर पर की जाने वाली काय-व्यापाररूपी क्रिया–कर्मवन्धन जननी है, (अत.) मुनि उसे मन से भी न चाहे, न उसके लिए वचन से कहे, न ही काया से उसे कराए।

FORM OF *PARA-KRIYA*

334. An activity related to the body done by a householder on the body of an ascetic is a cause of bondage of *karmas,* therefore, an ascetic should avoid it with mind speech and body

विवेचन–चूर्णिकार एवं वृत्तिकार के अनुसार–'स्व' अर्थात् साधु और साधु के निमित्त गृहस्थ द्वारा की जाने वाली क्रिया–चेष्टा, व्यापार या कर्म, पर-क्रिया है। वह पर-क्रिया कर्म-संश्लेषिकी–कर्मबन्ध का कारण तव होती है, जव दूसरे (गृहस्थ) द्वारा की जाते समय मुनि मन से उसमे रुचि ले, मन से चाहे या कहकर करा ले या कायिक संकेत द्वारा करावे। अत साधु इसे न तो मन से चाहे, न वचन और काया से कराए।

Elaboration—According to *Churni* and *Vritti* self means ascetic while actions including efforts, activities and deeds, performed by a householder for the ascetic are called *para-kriya* Such *para-kriya* becomes cause of bondage of *karmas* when the ascetic gets involved in it by desiring for it, telling to do it, or making a gesture to get it done Therefore an ascetic should avoid it with mind, speech and body

पाद-परि कर्म पर-क्रिया निषेध

३३५. (क) से सिया परो पायाइं आमज्जिज्ज वा पमज्जिज्ज वा, णो तं साइए णो तं णियमे।

(ख) से सिया परो पायाइं संबाहिज्ज वा पलिमद्देज्ज वा, णो तं साइए णो तं णियमे।

(ग) से सिया परो पायाइं फुसिज्ज वा रएज्ज वा, णो तं साइए णो तं णियमे।

(घ) से सिया परो पायाइं तेल्लेण वा घएण वा वसाए वा मक्खिज्ज वा अब्भिंगेज्ज वा, णो तं साइए णो तं णियमे।

(च) से सिया परो पायाइं लोद्धेण वा कक्केण वा चुण्णेण वा वण्णेण वा उल्लोढेज्ज वा उव्वलेज्ज वा, णो तं साइए णो तं णियमे।

(छ) से सिया परो पायाइं सीओदगवियडेण वा उसिणोदगवियडेण वा उच्छोलिज्ज वा पहोलिज्ज वा, णो तं साइए णो तं णियमे।

(ज) से सिया परो पायाइं अण्णयरेण विलेवणजायेण आलिंपेज्ज वा विलिंपेज्ज वा, णो तं साइए णो तं णियमे।

(झ) से सिया परो पायाइं अण्णयरेण धूवणजाएणं धूवेज्ज वा पधूवेज्ज वा णो तं साइए णो तं णियमे।

(ट) से सिया परो पायाओ खाणुयं वा कंटयं वा णीहरिज्ज वा विसोहिज्ज वा, णो तं साइए णो तं णियमे।

(ठ) से सिया परो पायाओ पूयं वा सोणियं वा णीहरेज्ज वा विसोहेज्ज वा, णो तं साइए णो तं णियमे।

३३५. (क) कदाचित् कोई गृहस्थ मुनि के चरणों को वस्त्रादि से थोड़ा-सा पोंछे अथवा बार-बार अच्छी तरह पोंछकर साफ करे, साधु उस पर-क्रिया को मन से न चाहे और वचन एवं काया से भी न कराए।

(ख) कोई गृहस्थ मुनि के चरणों को सम्मर्दन करे या दवाए तथा बार-वार मर्दन करे या दबाए, साधु उस पर-क्रिया को मन से न चाहे और वचन एवं काया से भी न कराए।

(ग) कोई गृहस्थ साधु के चरणों को फूँक मारने हेतु स्पर्श करे तथा रँगे तो साधु उस पर-क्रिया को मन से न चाहे और न वचन एवं काया से कराए।

(घ) कोई गृहस्थ साधु के चरणों को तेल, घी या चर्बी से चुपड़े, मसले तथा मालिश करे तो साधु उसे मन से भी न चाहे और न वचन एवं काया से कराए।

(च) कोई गृहस्थ साधु के चरणों को लोध, कर्क, चूर्ण या वर्ण से उबटन करे अथवा उपलेप करे तो साधु मन से भी न चाहे और न वचन एवं काया से उसे कराए।

(छ) कोई गृहस्थ साधु के चरणों को प्रासुक शीतल जल से या उष्ण जल से प्रक्षालन करे अथवा अच्छी तरह से धोए तो साधु उसे मन से न चाहे और न वचन एवं काया से कराए।

(ज) कोई गृहस्थ साधु के पैरों का इसी प्रकार के किन्हीं विलेपन द्रव्यों से एक बार या बार-बार आलेपन-विलेपन करे तो साधु उसमें मन से भी रुचि न ले और न ही वचन एवं काया से उसे कराए।

(झ) कोई गृहस्थ साधु के चरणों को किसी प्रकार के विशिष्ट धूप से धूपित और प्रधूपित करे तो उसे मन से न चाहे और न ही वचन एवं काया से उसे कराए।

(ट) कोई गृहस्थ साधु के पैरों में लगे हुए खूँटे या काँटे आदि को निकाले या उसे शुद्ध करे तो साधु उसे मन से भी न चाहे और न वचन एवं काया से उसे कराए।

(ठ) कोई गृहस्थ साधु के पैरों में लगे रक्त और मवाद को निकाले या उसे निकालकर शुद्ध करे तो साधु उसे मन से भी न चाहे और न ही वचन एवं काया से कराए।

CENSURE OF FOOT *PARA-KRIYA*

335. (a) In case some householder wipes the feet of an ascetic once just a little or properly cleans by wiping many times, the ascetic should not get involved in that *para-kriya* by desiring for it, telling to do it or making a gesture to get it done. In other words he should avoid it with mind, speech and body.

(b) In case some householder massages, gently or with pressure, the feet of an ascetic once or many times, the ascetic should avoid that *para-kriya* with mind, speech and body.

(c) In case some householder touches in order to blow air on or paint the feet of an ascetic, the ascetic should avoid that *para-kriya* with mind, speech and body.

(d) In case some householder anoints, rubs or massages the feet of an ascetic with oil, butter or fat, the ascetic should avoid that *para-kriya* with mind, speech and body.

(e) In case some householder rubs or cleanses the feet of an ascetic with (fragrant powders like—) *lodhra, karka,* powder or dye, the ascetic should avoid that *para-kriya* with mind, speech and body.

(f) In case some householder sprinkles or washes the feet of an ascetic with uncontaminated cold or hot water, the ascetic should avoid that *para-kriya* with mind, speech and body.

(g) In case some householder anoints or rubs the feet of an ascetic with various ointments once or many times, the ascetic should avoid that *para-kriya* with mind, speech and body.

(h) In case some householder perfumes or fumigates the feet of an ascetic with some special perfume or incense, the ascetic should avoid that *para-kriya* with mind, speech and body.

(i) In case some householder extracts or removes splinters or thorns from the feet of an ascetic and cleans them, the ascetic should avoid that para-kriya with mind, speech and body.

(j) In case some householder extracts or removes pus or blood from the feet of an ascetic and cleans them, the ascetic should avoid that *para-kriya* with mind, speech and body.

काय-परिकर्म पर-क्रिया-निषेध

३३६. (क) से सिया परो कायं आमज्जेज्ज वा पमज्जेज्ज वा, णो तं साइए णो तं णियमे।

(ख) से सिया परो कायं संबाधेज्ज वा पलिमद्देज्ज वा, णो तं साइए णो तं णियमे।

(ग) से सिया परो कायं तेल्लेण वा घएण वा वसाए वा मक्खेज्ज वा अब्भंगेज्ज वा, णो तं साइए णो तं णियमे।

(घ) से सिया परो कायं लोद्धेण वा कक्केण वा चुण्णेण वा वण्णेण वा उल्लोलेज्ज वा उव्वलेज्ज वा, णो तं साइए णो तं णियमे।

(च) से सिया परो कायं सीतोदगवियडेण वा उसिणोदगवियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोवेज्ज वा, णो तं साइए णो तं णियमे।

(छ) से सिया परो कायं अण्णयरेणं विलेवणजाएणं आलिंपेज्ज वा विलिंपेज्ज वा, णो तं साइए णो तं नियमे।

(ज) से सिया परो कायं अण्णयरेण धूवणजाएण धूवेज्ज वा पधूवेज्ज वा, णो तं साइए णो तं नियमे।

३३६. (क) कोई गृहस्थ मुनि के शरीर को एक बार या बार-बार पोंछकर साफ करे तो साधु उसे मन से भी न चाहे, न वचन एवं काया से कराए।

(ख) कोई गृहस्थ मुनि के शरीर को एक बार या बार-बार दबाए तथा विशेष रूप से मर्दन करे तो साधु उसे मन से भी न चाहे और न वचन एवं काया से कराए।

(ग) कोई गृहस्थ मुनि के शरीर पर तेल, घी आदि चुपड़े, मसले या मालिश करे तो साधु न तो उसे मन से ही चाहे और न वचन एवं काया से कराए।

(घ) कोई गृहस्थ मुनि के शरीर पर लोध, कर्क, चूर्ण या वर्ण का उबटन करे, लेपन करे तो साधु न तो उसे मन से ही चाहे और न वचन एवं काया से कराए।

(च) कदाचित् कोई गृहस्थ साधु के शरीर को प्रासुक शीतल जल से या उष्ण जल से प्रक्षालन करे या अच्छी तरह धोए तो साधु न तो उसे मन से चाहे और न वचन एवं काया से कराए।

(छ) कोई गृहस्थ मुनि के शरीर पर किसी प्रकार के विशिष्ट विलेपन का एक बार लेप करे या बार-बार लेप करे तो साधु न तो उसे मन से चाहे और न उसे वचन एव काया से कराए।

(ज) कोई गृहस्थ मुनि के शरीर को किसी प्रकार के धूप से धूपित करे या प्रधूपित करे तो साधु न तो उसे मन से चाहे और न वचन एवं काया से कराए।

CENSURE OF BODILY *PARA-KRIYA*

336. (a) In case some householder wipes the body of an ascetic once or many times, the ascetic should avoid that *para-kriya* with mind, speech and body.

(b) In case some householder massages, gently or with pressure, the body of an ascetic once or many times, the ascetic should avoid that *para-kriya* with mind, speech and body.

(c) In case some householder anoints, rubs or massages the body of an ascetic with oil, butter or fat, the ascetic should avoid that *para-kriya* with mind, speech and body.

(d) In case some householder rubs or cleanses the body of an ascetic with *lodhra, karka,* powder or dye, the ascetic should avoid that *para-kriya* with mind, speech and body.

(e) In case some householder sprinkles or washes the body of an ascetic with uncontaminated cold or hot water, the ascetic should avoid that *para-kriya* with mind, speech and body.

(f) In case some householder anoints or rubs the body of an ascetic with various ointments once or many times, the ascetic should avoid that *para-kriya* with mind, speech and body.

(g) In case some householder perfumes or fumigates the body of an ascetic with some special perfume or incense, the ascetic should avoid that *para-kriya* with mind, speech and body.

व्रण-परिकर्म रूप परक्रिया निषेध

३३७. (क) से सिया परो कायंसि वणं आमज्जेज्ज वा पमज्जेज वा, णो तं साइए णो तं णियमे।

(ख) से सिया परो कायंसि वणं संबाहेज्ज वा पलिमद्देज्ज वा, णो तं साइए णो तं णियमे।

(ग) से सिया परो कायंसि वणं तेल्लेण वा घएण वा वसाए वा मक्खेज्ज वा भिलिंगेज्ज वा, णो तं साइए णो तं णियमे।

(घ) से सिया परो कायंसि वणं लोद्धेण वा कक्केण वा चुण्णेण वा वण्णेण वा उल्लोढेज्ज वा उव्वलेज्ज वा, णो तं साइए णो तं णियमे।

(च) से सिया परो कायंसि वणं सीओदगवियडेण वा उसिणोदगवियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पहोलेज्ज वा, णो तं साइए णो तं णियमे।

(छ) से सिया परो कायंसि वणं अण्णयरेणं सत्थजाएणं अच्छिंदेज्ज वा विच्छिंदेज्ज वा, णो तं साइए णो तं णियमे।

(ज) से सिया परो (कायंसि वणं) अण्णयरेणं सत्थजाएणं अच्छिंदित्ता वा विच्छिंदित्ता वा पूयं वा सोणियं वा णीहरेज्ज वा, णो तं साइए णो तं णियमे।

३३७. (क) कोई गृहस्थ साधु के शरीर पर हुए व्रण (घाव) को एक बार पोंछे या बार-बार अच्छी तरह से पोंछकर साफ करे तो साधु उसे मन से भी न चाहे और न वचन एवं काया से उसे कराए।

(ख) कोई गृहस्थ साधु के शरीर पर हुए व्रण को दबाए या अच्छी तरह मर्दन करे तो साधु मन से भी न चाहे और न वचन एवं काया से कराए।

(ग) कोई गृहस्थ साधु के शरीर हुए व्रण के ऊपर तेल, घी या वसा चुपड़े, मसले, लगाए या मर्दन करे तो साधु मन से भी न चाहे और न वचन एवं काया से कराए।

(घ) कोई गृहस्थ साधु के शरीर पर हुए व्रण के लोध, कर्क, चूर्ण या वर्ण आदि विलेपन द्रव्यों का आलेपन-विलेपन करे तो साधु मन से भी न चाहे और न वचन एवं काया से कराए।

(च) कोई गृहस्थ साधु के शरीर पर हुए व्रण को प्रासुक शीतल या उष्ण जल से एक बार या बार-बार धोए तो साधु उसे मन से भी न चाहे और न वचन एवं काया से कराए।

(छ) कोई गृहस्थ साधु के शरीर पर हुए व्रण को किसी प्रकार के शस्त्र से थोड़ा-सा छेदन करे या विशेष रूप से छेदन करे तो साधु उसे मन से भी न चाहे और न ही उसे वचन एवं काया से कराए।

(ज) कोई गृहस्थ साधु के शरीर पर हुए व्रण को किसी विशेष शस्त्र से थोड़ा-सा या विशेष रूप से छेदन करके उसमें से मवाद या रक्त निकाले या उसे साफ करे तो साधु उसे मन से भी न चाहे और न ही वचन एवं काया से कराए।

CENSURE OF *PARA-KRIYA* ON WOUNDS

337. (a) In case some householder wipes a wound on the body of an ascetic once or many times, the ascetic should avoid that *para-kriya* with mind, speech and body.

(b) In case some householder massages, gently or with pressure a wound on the body of an ascetic once or many times, the ascetic should avoid that *para-kriya* with mind, speech and body.

(c) In case some householder anoints, rubs or massages a wound on the body of an ascetic with oil, butter or fat, the ascetic should avoid that *para-kriya* with mind, speech and body.

(d) In case some householder rubs or cleanses a wound on the body of an ascetic with *lodhra, karka,* powder or dye, the ascetic should avoid that *para-kriya* with mind, speech and body.

(e) In case some householder sprinkles or washes a wound on the body of an ascetic with uncontaminated cold or hot water, the ascetic should avoid that *para-kriya* with mind, speech and body.

(f) In case some householder cuts or incises a wound on the body of an ascetic with some surgical instrument, the ascetic should avoid that *para-kriya* with mind, speech and body.

(g) In case some householder cuts or incises a wound on the body of an ascetic with some surgical instruments and extracts or removes pus and blood from it, the ascetic should avoid that *para-kriya* with mind, speech and body.

ग्रन्थी अर्श–भगंदर आदि पर पर-क्रिया-निषेध

३३८. (क) से सिया परो कायंसि गंडं वा अरइयं वा पुलइयं वा भगंदलं वा आमज्जिज्ज वा पमज्जिज्ज वा, णो तं साइए णो तं णियमे।

(ख) से सिया परो कायंसि गंडं वा अरइयं वा पुलइयं वा भगंदलं वा संबाहेज्ज वा पलिमद्देज्ज वा, णो तं साइए णो तं णियमे।

(ग) से सिया परो कायंसि गंडं वा जाव भगंदलं वा तेल्लेण वा घएण वा वसाए वा मक्खेज्ज वा भिलिंगेज्ज वा, णो तं साइए णो तं णियमे।

(घ) से सिया परो कायंसि गंडं वा जाव भगंदलं वा लोद्धेण वा कक्केण वा चुण्णेण वा वण्णेण वा उल्लोढेज्ज वा उव्वलेज्ज वा, णो तं साइए णो तं णियमे।

(च) से सिया परो कायंसि गंडं वा जाव भगंदलं वा सोओदगवियडेण वा उसिणोदगवियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पहोलेज्ज वा, णो तं साइए णो तं णियमे।

(छ) से सिया परो कायंसि गंडं वा अरइयं वा जाव भगंदलं वा अण्णयरेणं सत्थजायेणं अच्छिंदेज्ज वा विच्छिंदेज्ज वा अण्णयरेणं सत्थजायेणं अच्छिंदित्ता वा विच्छिंदित्ता वा पूयं वा सोणियं वा णीहरेज्ज वा विसोहेज्ज वा, णो तं साइए णो तं णियमे।

३३८. (क) कोई गृहस्थ साधु के शरीर में हुए गंड (गाँठ), अर्श (मस्सा, बबासीर), पुलक (फोडा) अथवा भगंदर को एक बार या बार-बार पपोलकर साफ करे तो साधु उसे मन से भी न चाहे और न ही वचन एवं काया से कराए।

(ख) कोई गृहस्थ साधु के शरीर में हुए गंड, अर्श, पुलक अथवा भगंदर को दबाए या परिमर्दन करे तो साधु उसे मन से भी न चाहे और न ही वचन एव काया से कराए।

(ग) कोई गृहस्थ साधु के शरीर में हुए गंड, अर्श, पुलक अथवा भगंदर पर तेल, घी, वसा चुपडे, मले या मालिश करे तो साधु उसे मन से न चाहे और न ही वचन एवं काया से कराए।

(घ) कोई गृहस्थ साधु के शरीर में हुए गंड, अर्श, पुलक अथवा भगंदर पर लोध, कर्क, चूर्ण या वर्ण का थोड़ा या अधिक उपलेपन करे तो साधु उसे मन से भी न चाहे न ही वचन और काया से कराए।

(च) यदि कोई गृहस्थ मुनि के शरीर में हुए गड, अर्श, पुलक अथवा भगदर को प्रासुक, शीतल और उष्ण जल से थोडा या बहुत बार धोए तो साधु उसे मन से भी न चाहे और न ही वचन एवं काया से कराए।

(छ) यदि कोई गृहस्थ मुनि के शरीर में हुए गंड, अर्श, पुलक अथवा भगंदर को किसी विशेष शस्त्र से थोड़ा-सा छेदन करे या विशेष रूप से छेदन करे अथवा किसी विशेष शस्त्र से थोड़ा-सा या विशेष रूप से छेदन करके मवाद या रक्त निकाले या उसे साफ करे तो साधु उसे मन से भी न चाहे और न ही वचन एवं काया से कराए।

CENSURE OF *PARA-KRIYA* ON BOIL AND FISTULA

338. (a) In case some householder wipes a tumor, piles, boil or fistula on the body of an ascetic once or many times, the ascetic should avoid that *para-kriya* with mind, speech and body.

(b) In case some householder massages, gently or with pressure, a tumor, piles, boil, or fistula on the body of an ascetic

once or many times, the ascetic should avoid that *para-krıya* with mind, speech and body.

(c) In case some householder anoints, rubs or massages a tumor, piles, boil or fistula on the body of an ascetic with oil, butter or fat, the ascetic should avoid that *para-krıya* with mind, speech and body.

(d) In case some householder rubs or cleanses a tumor, piles, boil or fistula on the body of an ascetic with *lodhra, karka,* powder or dye, the ascetic should avoid that *para-krıya* with mind, speech and body.

(e) In case some householder sprinkles or washes a tumor, piles, boil or fistula on the body of an ascetic with uncontaminated cold or hot water, the ascetic should avoid that *para-krıya* with mind, speech and body.

(f) In case some householder cuts or incises a tumor, piles, boil or fistula on the body of an ascetic with some surgical instruments; or cuts or incises and extracts or removes pus and blood from it, the ascetic should avoid that *para-krıya* with mind, speech and body.

विशेष शब्दों के अर्थ–'गंडं' आदि शब्दों के अर्थ–प्राकृत कोश के अनुसार गड शब्द के गालगंड–मालारोग, गॉठ, ग्रन्थी, फोडा, स्फोटक आदि अर्थ होते है। 'अरइय' (अग्इ) के अर, अर्श, मस्सा, बबासीर आदि अर्थ मिलते हैं। 'पुलयं' (पुल) का अर्थ छोटा फोडा या फुँसी होता है। अच्छिंदण–एक बार या थोडा-सा छेदन। विच्छिदणं–बहुत बार या बार-बार अथवा अच्छी तरह छेदन करना। *(पाइअ-सद्द महण्णवो)*

'आलेप' के तीन अर्थ निशीथ चूर्णि, पृ. २१५-२१७ पर मिलते हैं। आलेवो त्रिविधो- वेदणपसमकारी, पाककारी, पुतादिणीहरणकारी। अर्थात् आलेप तीन प्रकार का है–(१) वेदना शान्त करने वाला, (२) फोडा पकाने वाला, (३) मवाद निकालने वाला।

Technical Terms : *Ganda*—enlarged glands ın neck, tumor, boil, sty etc. *Araiyam*—bleeding piles or haemorrhoids. *Pulayam*—small boil *Achchhındanam*—incise or cut a lıttle or once. *Vichchhındanam*—

incise or cut many times or again and again or deeply. *(Paıa Sadda Mahannavo)*

Aalep—applyıng ointment; according to *Nishıth Churni (p. 215-217)* it is of three types—(1) for relieving pain, (2) for fomenting a boil, and (3) for expelling pus.

अंग-परिकर्मरूप पर-क्रिया-निषेध

३३९. (क) से सिया परो कायंसि सेयं वा जल्लं वा णीहरिज्ज वा विसोहिज्ज वा, णो तं साइए णो तं णियमे।

(ख) से सिया परो अच्छिमलं वा कण्णमलं वा दंतमलं वा नहमलं वा णीहरेज्ज वा विसोहेज्ज वा, णो तं साइए णो तं णियमे।

(ग) से सिया परो दीहाइं वालाइं दीहाइं रोमाइं दीहाइं भमुहाइं दीहाइं कक्खरोमाइं दीहाइं वत्थिरोमाइं कप्पेज्ज वा संठवेज्ज वा, णो तं साइए णो तं णियमे।

(घ) से सिया परो सीसाओ लिक्खं वा जूयं वा णीहरेज्ज वा विसोहेज्ज वा, णो तं साइए णो तं णियमे।

३३९. (क) कोई गृहस्थ साधु के शरीर से पसीना या मैल से युक्त पसीने को पोंछे या साफ करे तो साधु उसे मन से भी न चाहे और न ही वचन एव काया से कराए।

(ख) कोई गृहस्थ साधु के आँख का मैल, कान का मैल, दाँत का मैल या नख का मैल निकाले या उसे साफ करे, तो साधु उसे मन से भी न चाहे और न ही वचन एवं काया से कराए।

(ग) कोई गृहस्थ साधु के सिर के लम्बे केशो, लम्बे रोमों, भौंहों एवं काँख के लम्बे रोमों, लम्बे गुह्य स्थान के रोमों को काटे अथवा सँवारे तो साधु उसे मन से भी न चाहे और न ही वचन एवं काया से कराए।

(घ) कोई गृहस्थ साधु के सिर से जूँ या लीख निकाले या सिर साफ करे तो साधु मन से भी न चाहे और न ही वचन एवं काया से ऐसा कराए।

CENSURE OF *PARA-KRIYA* OF BEAUTIFICATION

339. (a) In case some householder wipes or cleans sweat or sweat smeared with dirt on the body of an ascetic, the ascetic should avoid that *para-krıya* with mind, speech and body.

(b) In case some householder extracts or cleans dirt from the eyes, ears, teeth or nails of an ascetic, the ascetic should avoid that *para-kriya* with mind, speech and body.

(c) In case some householder cuts or dresses the long hair on an ascetic's head, body, eyebrows, armpits or private parts, the ascetic should avoid that *para-kriya* with mind, speech and body.

(d) In case some householder removes or wipes of nit or lice from an ascetic's head, the ascetic should avoid that *para-kriya* with mind, speech and body.

परिचर्यारूप पर-क्रिया-निषेध

३४०. (क) से सिया परो अंकंसि वा पलियंकंसि वा तुयट्टावित्ता पायाइं आमज्जेज्ज वा पमज्जेज्ज वा (णो तं साइए णो तं णियमे) एवं हेट्ठिमो गमो पायाइ भाणियव्वो।

(ख) से सिया परो अंकंसि वा पलियंकंसि वा तुयट्टावित्ता हारं वा अड्ढहारं वा उरत्थं वा गेवेयं वा मउडं वा पालंबं वा सुवण्णसुत्तं वा आविंधेज्ज वा पिणिहेज्ज वा, णो तं साइए णो तं णियमे।

(ग) से सिया परो आरामंसि वा उज्जाणंसि वा णीहरित्ता वा विसोहित्ता वा पायाइं आमज्जेज्ज वा पमज्जेज्ज वा णो तं साइए णो तं णियमे एवं णेयव्वा अण्णमण्णकिरिया वि।

३४०. (क) कोई गृहस्थ साधु को अपनी गोद में या पलँग पर लिटाकर या करवट बदलवाकर उसके चरणों को वस्त्रादि से एक बार या बार-बार भलीभाँति पोंछकर साफ करे; साधु इसे मन से भी न चाहे और न वचन एवं काया से उसे कराए। इसके बाद चरणों से सम्बन्धित नीचे के पूर्वोक्त ९ सूत्रों में जो पाठ कहा गया है, वह सब पाठ यहाँ भी कहना चाहिए।

(ख) कोई गृहस्थ साधु को अपनी गोद में या पलँग पर लिटाकर या करवट बदलवाकर उसको हार (अठारह लड़ी वाला), अर्धहार (नौ लड़ी का), वक्ष-स्थल पर पहनने योग्य आभूषण, गले का आभूषण, मुकुट, लम्बी माला, सुवर्ण सूत्र बाँधे या पहनाए तो साधु उसे मन से भी न चाहे और न वचन एवं काया से उससे ऐसा कराए।

(ग) कोई गृहस्थ साधु को आराम या उद्यान में ले जाकर या प्रवेश कराकर उसके चरणों को एक बार पोंछे, बार-बार अच्छी तरह पोंछकर साफ करे तो साधु उसे मन से भी न चाहे और न वचन एवं काया से कराए।

इसी प्रकार साधुओं की अन्योन्य क्रिया–साधुओं की पारस्परिक क्रियाओं के विषय में भी ये सब सूत्र पाठ समझ लेने चाहिए।

CENSURE OF SERVICE *PARA-KRIYA*

340 (a) In case some householder wipes with cloth (etc.) the feet of an ascetic taking him in his lap or putting or turning him in a bed, the ascetic should avoid that *para-kriya* with mind, speech and body Also read all the nine aphorisms detailed earlier changing the context.

(b) In case some householder adorns an ascetic, taking him in his lap or putting or turning him in a bed, with *haar* (necklace with eighteen strings), *ardha-haar* (necklace with nine strings), ornaments for chest and neck, crown and golden chain, the ascetic should avoid that *para-kriya* with mind, speech and body

(c) In case some householder wipes with cloth (etc) the feet of an ascetic taking him in a garden, the ascetic should avoid that *para-kriya* with mind, speech and body

Also read all the aforesaid aphorisms in context of all *anyonya-kriya* or reciprocal activities amongst ascetics.

मंत्र या औषध-चिकित्सा का निषेध

३४१. (क) से सिया परो सुद्धेणं वा वइबलेणं तेइच्छं आउट्टे, से सिया परो असुद्धेणं वइबलेणं तेइच्छं आउट्टे, से सिया परो गिलाणस्स सचित्ताइं कंदाणि वा मूलाणि वा तयाणि वा हरियाणि वा खणितु वा कड्ढेत्तु वा कड्ढावेत्तु वा तेइच्छं आउट्टेज्जा, णो तं साइए णो तं नियमे।

कडुवेयणा कट्टु वेयणा पाण-भूय-जीव-सत्ता वेदणं वेदेंति।

(ख) एवं खलु तस्स भिक्खुस्स वा भिक्खुणीए वा सामग्गियं जं सव्वट्ठेहिं सहिए समिए सदा जए, सेयमिणं मण्णेज्जासि।

–त्ति बेमि।

॥ षष्ठं सत्तिक्कयं सम्मत्तं ॥
॥ तेरसमं अज्झयणं सम्मत्तं ॥

३४१. (क) यदि कोई गृहस्थ शुद्ध वाग्बल (मंत्र-बल) से साधु की चिकित्सा करना चाहे अथवा वह गृहस्थ अशुद्ध मंत्र-बल से साधु की व्याधि उपशान्त करना चाहे अथवा वह गृहस्थ किसी रोगी साधु की चिकित्सा सचित्त कंद, मूल, छाल या हरी को खोदकर या खींचकर, बाहर निकालकर या निकलवाकर चिकित्सा करना चाहे तो साधु उसे मन से भी नहीं चाहे और न ही वचन से कहकर या काया से चेष्टा करके कराए।

यदि साधु के शरीर में उग्र वेदना हो तो (यह विचार करके उसे समभाव से सहन करे कि) समस्त प्राणी, भूत, जीव और सत्त्व अपने किये हुए अशुभ कर्मों के अनुसार कटुक वेदना का अनुभव करते हैं।

(ख) यह पर-क्रिया से विरति ही उस साधु या साध्वी का समग्र आचार सर्वस्व है, जिसके लिए समस्त इहलौकिक-पारलौकिक प्रयोजनों से युक्त तथा ज्ञानादि सहित एवं समितियों से समन्वित होकर सदा प्रयत्नशील रहे और इसी को अपने लिए श्रेयस्कर समझे।

–ऐसा मैं कहता हूँ।

CENSURE OF TREATMENT WITH *MANTRA* OR MEDICINE

341. (a) In case some householder intends to cure an ascetic with the power of pure or impure *mantra,* or some *sachit* bulbous root, stalk, bark or plants by digging or pulling these out or getting these dug or pulled out, the ascetic should avoid that *para-kriya* with mind, speech and body.

If the ascetic is suffering great pain (he should tolerate it with equanimity thinking that) all beings, organisms, souls and entities suffer grave pain according to their bad deeds.

(b) This (renouncing *para-kriya*) is the totality (of conduct including that related to knowledge) for that *bhikshu* or *bhikshuni.* And so should he pursue with self-regulations believing these to be beneficial for him.

—So I say.

विवेचन–इस सम्पूर्ण अध्ययन में गृहस्थ द्वारा साधु की विविध प्रकार से की जाने वाली शारीरिक परिचर्या, अंग मर्दन, अंग विलेपन, व्रण चिकित्सा तथा अन्य प्रकार की सेवा गृहस्थ से लेने का निषेध किया है। इसके पीछे मुख्य उद्देश्य दो हैं–एक, साधु एक स्वावलम्बी साधक है, वह किसी अन्य पर आश्रित न रहे। अपना प्रत्येक कार्य अपने हाथ से ही करे, श्रम करना श्रमण की सार्थकता है। दूसरा उद्देश्य है–गृहस्थ द्वारा सेवा लेने पर शारीरिक सुखशीलता की भावना बढ़ती है और गृहस्थ साधु के भक्तिरागवश अनेक प्रकार की सावद्य क्रियाएँ करके भी उसे साता पहुँचाना चाहता है जिससे साधु के व्रतों में दोष लगने की सभावना है। इस समस्त विषय पर आचार्य श्री आत्माराम जी म ने बहुत ही स्पष्ट रूप में प्रकाश डाला है, जो उन्हीं की भाषा में यहाँ उद्‌धृत है–

प्रस्तुत अध्ययन में पर-क्रिया के सम्बन्ध में विस्तार से वर्णन किया गया है। इस में बताया गया है कि यदि कोई गृहस्थ साधु के पैर आदि का प्रमार्जन करके उसे गर्म या ठण्डे पानी से धोए और उस पर तेल, घृत आदि स्निग्ध पदार्थों की मालिश करे या उसके घाव आदि को साफ करे या बवासीर आदि की विशेष रूप से शल्य चिकित्सा आदि करे या कोई गृहस्थ साधु को अपनी गोद में या पलँग पर बैठाकर मालिश कर उसे आभूषणों से सुसज्जित करे या उसके सिर के बाल, रोम, नख एवं गुप्तांगों पर बढ़े हुए बालों को देखकर उन्हें साफ करे, तो साधु उक्त क्रियाओं को न मन से चाहे और न वाणी एवं काया से उनके करने की प्रेरणा दे। वह उक्त क्रियाओं के लिए स्पष्ट इनकार कर दे।

यह सूत्र विशेष रूप से जिनकल्पी मुनि से संबद्ध है, जो रोग आदि के उत्पन्न होने पर भी औषध का सेवन नहीं करते। स्थविरकल्पी मुनि निरवद्य एवं निर्दोष औषध ले सकते हैं। ज्ञातासूत्र में शैलक राजऋषि के चिकित्सा करवाने का उल्लेख है। परन्तु साधु को बिना किसी विशिष्ट कारण के गृहस्थ से तेल आदि का मर्दन नहीं करवाना चाहिए और इसी दृष्टि से सूत्रकार ने गृहस्थ के द्वारा चरण स्पर्श आदि का निषेध किया है। यह निषेध भक्ति की दृष्टि से नहीं, बल्कि तेल आदि की मालिश करने की अपेक्षा से किया गया है। यदि कोई गृहस्थ श्रद्धा एवं भक्तिवश साधु का चरण स्पर्श करे तो इसके लिए भगवान ने निषेध नहीं किया है। उपासकदशागसूत्र में बताया गया है कि जब गौतम आनन्द श्रावक को दर्शन देने गए तो आनन्द ने उनके चरणों का स्पर्श किया था। इससे स्पष्ट होता है कि यदि कोई गृहस्थ वैयावृत्य करने या पैर आदि प्रक्षालन करने के लिए पैरों का स्पर्श करे तो साधु उसके लिए इनकार कर दे। यह वैयावृत्य करवाने का प्रकरण जिनकल्पी एवं स्थविरकल्पी सभी मुनियों से सम्बन्धित है अर्थात् किसी भी मुनि को गृहस्थ से पैर आदि की मालिश नहीं करवानी चाहिए और गृहस्थ से उनका प्रक्षालन भी नहीं करवाना चाहिए।

इसी तरह यदि कोई गृहस्थ साधु को अपनी गोद में या पलँग पर बैठाकर उसे आभूषण आदि से सजाए या उसके सिर के बाल, रोम, नख आदि को साफ करे तो साधु ऐसी क्रियाएँ न करवाए। इस पाठ से यह स्पष्ट होता है कि यह जिनकल्पी मुनि के प्रकरण का है और वह केवल मुखवस्त्रिका और रजोहरण लिए हुए है। क्योंकि इस पाठ में बताया गया है कि कोई गृहस्थ मुनि के सिर के, कुक्षि के तथा गुप्तांगों के बढ़े हुए बाल देखकर उन्हें साफ करना चाहे तो साधु ऐसा न

करने दे। यहाँ पर मूँछ एवं दाढ़ी के बालों का उल्लेख नहीं किया गया है। इससे स्पष्ट होता है कि मुखवस्त्रिका के कारण उसके दाढ़ी एवं मूँछों के बाल दिखाई नहीं देते हैं और चादर एवं चोलपट्टक नहीं होने के कारण कुक्षि एवं गुप्तांगों के बाल परिलक्षित हो रहे हैं। इससे यह भी सिद्ध होता है कि सर्वथा नग्न रहने वाले जिनकल्पी मुनि भी मुखवस्त्रिका और रजोहरण रखते थे।

इससे यह स्पष्ट होता है कि साधु को गृहस्थ से उपरोक्त क्रियाएँ नहीं करवानी चाहिए। क्योंकि यह कर्मबन्ध का कारण है, इसलिए साधु मन, वचन और शरीर से इनका आसेवन न करे। और बिना किसी विशेष कारण के परस्पर में भी उक्त क्रियाएँ न करे। क्योंकि दूसरे साधु के शरीर आदि का स्पर्श करने से मन में विकार भाव जागृत हो सकता है और स्वाध्याय का महत्त्वपूर्ण समय यों ही नष्ट हो जाता है। अतः साधु को परस्पर में मालिश आदि करने में समय नहीं लगाना चाहिए। परन्तु विशेष परिस्थिति में साधु अपने साधर्मिक साधु की मालिश आदि कर सकता है, उसके घावों को भी साफ कर सकता है। अस्तु, यह पाठ उत्सर्ग मार्ग से संबद्ध है और उत्सर्ग मार्ग में साधु को परस्पर में ये क्रियाएँ नहीं करनी चाहिए। *(हिन्दी टीका, पृ १३३५-१३३६)*

सूत्र ३४० में बताया गया है कि यदि कोई गृहस्थ शुद्ध या अशुद्ध मंत्र से या सचित्त वस्तुओं से चिकित्सा करे तो साधु उसकी अभिलाषा न रखे और न उसके लिए वाणी एवं शरीर से आज्ञा दे। जिस मंत्र आदि की साधना या प्रयोग के लिए पशु-पक्षी की हिंसा आदि सावद्य क्रिया करनी पड़े उसे अशुद्ध मंत्र कहते हैं और जिसकी साधना एवं प्रयोग के लिए सावद्य अनुष्ठान न करना पड़े उसे शुद्ध मंत्र कहते हैं परन्तु साधु उभय प्रकार की मंत्र चिकित्सा न करे और न अपने स्वास्थ्य लाभ के लिए सचित्त औषधियो का ही उपयोग करे। वह प्रत्येक स्थिति में अपनी आत्म-शक्ति को बढ़ाने का प्रयत्न करे। वेदनीय कर्म के उदय से उदित हुए रोगों को समभावपूर्वक सहन करे। वह यह सोचे कि 'पूर्व में बँधे हुए अशुभ कर्म के उदय से रोग ने मुझे आकर घेर लिया है। इस वेदना का कर्त्ता मैं ही हूँ। जैसे मैंने हँसते हुए इन कर्मों का बंध किया है उसी तरह हँसते हुए इसका वेदन करूँगा। परन्तु इनकी उपशान्ति के लिए किसी भी प्राणी को कष्ट नहीं दूँगा और न तंत्र-मंत्र का सहारा ही लूँगा।' *(हिन्दी टीका पृ १३३९)*

॥ षष्ठ सप्तिका समाप्त ॥

॥ त्रयोदश अध्ययन समाप्त ॥

Elaboration—This chapter gives direction to avoid all and every service offered by a householder to an ascetic including cleaning of the body, massage, anointing and dressing wounds. One purpose for this is that an ascetic is an independent seeker therefore he should not become dependent on others. He should do all his work with his own hands. To do *shram* (labour) is to justify his being called a *shraman.* The other purpose being—accepting services from householders increases desire for physical comforts. Devotion for ascetics inspires

the householder to provide comforts to an ascetic even by indulging in various sinful activities. This has chances of blemishing ascetic-discipline or vows of an ascetic. Acharya Shri Atmaramji M. has elaborated this subject with great clarity. We quote his words—

This chapter discusses in details the topic of *para-kriya*. It informs that if a householder wants to clean the feet or body of an ascetic, wash them with cold or hot water, massage them with greasy substances, cleans his wounds or gives surgical treatment to his ailments like fistula; takes the ascetic in his lap or puts him in bed to massage his body and adorn him with ornaments; cuts or dresses his nails or hair on his head, body and private parts; then the ascetic should not get involved in that *para-kriya* by desiring for it, telling to do it or making a gesture to get it done. He should emphatically forbid such activities

These directions are particularly for a *Jinakalpi* ascetic who does not take medicine even when sick. The *Sthavir-kalpi* ascetics may take faultless and acceptable medicines. In *Jnata Sutra* there is a mention of Shailak Rajarshi taking treatment. However, an ascetic should not get oil massage (etc.) done by a householder without some special reason. Only for these reasons even touching of feet of an ascetic by a householder is censured. This censure is not in context of devotion but that of services like oil massage (etc). *Bhagavan* has not censured touching of feet out of devotion. It is mentioned in the *Upasakdashanga Sutra* that when Gautam visited Anand Shravak, the later touched his feet. This indicates that if a householder wants to touch the feet of an ascetic to wash them or for hospitality, the ascetic should refuse. This topic of hospitality is for both *Jinakalpi* and *Sthavir-kalpi* ascetics. In other words no ascetic should get his feet etc. washed or massaged from a householder.

In the same way an ascetic should forbid activities like adorning him with ornaments or dressing his hair, nails etc. after taking him in his lap or putting him in bed. The text indicates that this rule is for *Jinakalpi* ascetic who only carries ascetic-broom and a piece of cloth to cover his mouth. This is because it directs an ascetic to forbid a householder to cut or dress hair on his head, armpit and private parts.

Beard and moustache are not included here. This indicates that beard and moustache were not visible due to the mouth-cover, whereas in absence of other clothes on the body the hair in armpits and private parts were visible. This also proves that even the *Jinakalpi* ascetics, who remained naked, carried mouth-cover and ascetic-broom.

This clearly indicates that an ascetic should not get the aforesaid things done from a householder. As they cause bondage of *karmas,* an ascetic should avoid them with mind, speech and body. Also, without some pressing reason such activities should not be performed even mutually by ascetics. Touching body of another ascetic may cause perversions. Also, as the valuable time for studies is lost, an ascetic should not waste his time in activities like massage. However under special circumstances an ascetic may massage (etc.) the body of other co-religionist ascetic or clean his wounds. These teachings are related to the path of renunciation and the ascetics on that path should avoid these activities even mutually" *(Hindi Tika, p 1335, 1336)*

In aphorism 340 it is mentioned that if a householder wants to cure an ascetic with the help of mantras and *sachit* things he should avoid it with mind, speech and body. The mantras invoked or used with the help of violent rituals like killing or harming animals and birds are called impure mantras and those for which such rituals are not performed are called pure mantras. But an ascetic should avoid both these types of mantras as well as use of *sachit* medicines for his treatment. Under all circumstances he should try to improve his inner powers. He should tolerate with equanimity the ailments produced through fruition of *vedaniya karmas* (*karma* responsible for mundane experience of pain and pleasure). He should think that he has been inflicted by the disease due to the fruition of *karmas* acquired by him in the past. 'It is me who is responsible for this suffering. As I joyously acquired the *karmas* so will I suffer these. I will not resort to harming beings or seeking help of mantras to end my suffering'. *(Hindi Tika, p. 1339)*

|| END OF SEPTET SIX ||

|| END OF THIRTEENTH CHAPTER ||

अन्योन्यक्रिया-सप्तिका : चतुर्दश अध्ययन

आमुख

✦ चौदहवें अध्ययन का नाम 'अन्योन्यक्रिया-सप्तिका' है।

✦ साधुओं या साध्वियों की परस्पर एक-दूसरे से (त्रयोदश अध्ययन में वर्णित पाद, काय, व्रणादि परिकर्म-सम्बन्धी पर-क्रिया) परिचर्या लेना अन्योन्यक्रिया कहलाती है। इस प्रकार की अन्योन्यक्रिया का इस अध्ययन में निषेध होने के कारण इसका नाम अन्योन्यक्रिया रखा गया है। *(वृत्ति, पत्रांक ४१७, चूर्णि, पृ. २५०)*

✦ साधु जीवन में उत्कृष्टता और तेजस्विता, स्वावलम्बिता एवं स्वाश्रयिता लाने के लिए 'सहाय-प्रत्याख्यान' और 'संभोग-प्रत्याख्यान' अत्यन्त आवश्यक है।

✦ भगवान ने उत्तराध्ययनसूत्र में बताया है–सहाय-प्रत्याख्यान से अल्प-शब्द, अल्प-कलह, अल्प-प्रपंच, अल्प-कषाय, अल्पाहंकार होकर साधक संयम और संवर-बहुल बन जाता है।

संभोग-प्रत्याख्यान से अधिक आलम्बनों का त्याग करके निरालम्बी होकर मन-वचन-काय को आत्म-स्थित कर लेता है, स्वयं के लाभ में संतुष्ट रहता है, पर द्वारा होने वाले लाभ की इच्छा नहीं करता, न पर-लाभ को ताकता है, इसके लिए न प्रार्थना करता है, न इसकी अभिलाषा करता है। वह द्वितीय सुखशय्या को प्राप्त कर लेता है।

✦ अन्योन्यक्रिया की वृत्ति साधक में जितनी अधिक होगी, उतना ही वह परावलम्बी, पराश्रयी, परमुखापेक्षी और दीन-हीन बनता जायेगा। इसलिए इस अध्ययन की योजना की गई है।

✦ चूर्णिकार एवं वृत्तिकार के मत से इस अध्ययन में निरूपित 'अन्योन्यक्रिया' का निषेध (जिनकल्पी मुनि और जिन) एवं प्रतिमा-प्रतिपन्न साधुओं के उद्देश्य से किया गया है। **"अण्णमण्णकिरिया दो सहिता अण्णमणस्स पगरंति, ण कप्पति एवं चेव एवं पुण पडिमा पडिवण्णाणं जिणाणं च ण कप्पति। थेराणं किं पि कप्पेज्ज कारणजाए। बुद्धया विभासियव्वं।"** वास्तव में, गच्छनिर्गत साधुओं का जीवन स्वभावतः निष्प्रतिकर्म एवं अन्योन्यक्रिया-निषेध में अभ्यस्त होता है। गच्छान्तर्गत स्थविरकल्पी साधुओं के लिए यतनापूर्वक अन्योन्यक्रिया कारणवश उपादेय हो सकती है।

ANYONYA-KRIYA SAPTIKA : FOURTEENTH CHAPTER

INTRODUCTION

- The title of the fourteenth chapter is *Anyonya-Kriya Saptika.*
- The reciprocal services (the services regarding feet, body, wounds etc. mentioned in the thirteenth chapter) amongst ascetics are called *anyonya-kriya*. As there is censure of such services in this chapter it is titled *Anyonya-Kriya. (Vritti, leaf 417, Churni, p 250)*
- It is essential to renounce assistance and indulgence in order to bring about excellence, refulgence, independence and self-dependence in ascetic life
- Bhagavan has said in *Uttaradhyayana Sutra*—renouncing assistance helps an ascetic reduce talks, quarrels, deceit, passions, conceit and thereby enhance his discipline and blockage of inflow of *karmas.*

  Renouncing indulgence helps him abandon dependence, become independent and focus his mind, speech and body within his self. He is satisfied with the gains by his ownself and does not desire for gains through others. He neither expects gains from others nor requests or desires for them. He attains the second abode of bliss
- The more is the tendency of reciprocal service in a seeker the more dependent, reliant, expectant, *pitiable* and lowly he will become. For this reason this chapter has been conceived.
- According to *Churni* and *Vritti* the censure of reciprocal service is directed at *Jinakalpi, Jina* and ascetics with special resolutions In fact the life of ascetics who have left their group is naturally moulded according to the censure of service of other and reciprocal service. For the ascetics living within a group careful reciprocal service under special circumstances is allowed.

अण्णमण्णकिरिया सत्तिक्कः चउदसमं अज्झयणं
अन्योन्यक्रिया-सप्तिका : चतुर्दश अध्ययन : सप्तम सप्तिका
ANYONYA-KRIYA SAPTIKA : FOURTEENTH CHAPTER : SEPTET SEVEN
RECIPROCAL SERVICE SEPTET

अन्योन्यक्रिया-निषेध

३४२. से भिक्खू वा २ अण्णमण्णकिरियं अज्झत्थियं संसेइयं णो तं साइए णो तं णियमे।

३४३. से अण्णमण्णे पाए आमज्जेज्ज वा पमज्जेज्ज वा, णो तं साइए णो तं णियमे, सेसं तं चेव।

३४४. एयं खलु तस्स भिक्खुस्स वा भिक्खुणीए वा सामग्गियं जं सव्वट्ठेहिं जाव जएज्जासि।

—त्ति बेमि।

॥ चउदसमं अज्झयणं सम्मत्तं ॥

॥ बीअं चूला सम्मत्तं ॥

३४२. साधु-साध्वी की अन्योन्यक्रिया—परस्पर पाद-प्रमार्जनादि समस्त क्रिया, जोकि परस्पर में सम्बन्धित है, कर्मसंश्लेषजननी है—(कर्मबंधन करने वाली), इसलिए साधु या साध्वी इसको मन से भी न चाहे और न वचन एवं काया से करने के लिए प्रेरित करे।

३४३. साधु-साध्वी (बिना कारण) परस्पर एक-दूसरे के चरणों को पोंछकर एक बार या बार-बार अच्छी तरह साफ करे तो मन से भी ऐसा न चाहे, न वचन और काया से करने की प्रेरणा करे। इस अध्ययन का शेष वर्णन तेरहवें अध्ययन में प्रतिपादित पाठों के समान जानना चाहिए।

३४४. उस साधु या साध्वी का समग्र आचार है; जिसके लिए वह समस्त प्रयोजनों, ज्ञानादि एवं पंचसमितियों से युक्त होकर सदैव अहर्निश उसके पालन में प्रयत्नशील रहे।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

CENSURE OF RECIPROCAL SERVICE

342. Reciprocal and inter-related service (all including wiping of feet) amongst ascetics is cause of bondage of karmas, therefore an ascetic should avoid that anyonya-kriya with mind, speech and body.

343. In case some ascetics wipe the feet of another ascetics once just a little or properly clean by wiping many times, they should avoid that anyonya-kriya with mind, speech and body. All other details should be read as the text mentioned in the thirteenth chapter.

244. This (renouncing anyonya-kriya) is the totality (of conduct including that related to knowledge) for that bhikshu or bhikshuni. And so should he pursue with self-regulations believing these to be beneficial for him.

—So I say.

विवेचन—अन्योन्यक्रिया परस्पर दो साधुओं या दो साध्वियो को लेकर होती है। जहाँ दो साधु परस्पर एक-दूसरे की परिचर्या करें या दो साध्वियाँ परस्पर एक-दूसरे की परिचर्या करें, वहीं अन्योन्यक्रिया होती है। इस प्रकार की अन्योन्यक्रिया गच्छ-निर्गत प्रतिमा-प्रतिपन्न साधुओं और जिन (वीतराग) केवली साधुओं के लिए अकल्पनीय या अनाचरणीय है। गच्छगत-स्थविरों को कारण होने पर कल्पनीय है। फिर भी उन्हें इस विषय मे यतना करनी चाहिए।

स्थविरकल्पी साधुओ के लिए विभूषा की दृष्टि से अथवा वृद्धत्व, अशक्ति, रुग्णता आदि कारणों के अभाव मे, शौक से या बडप्पन-प्रदर्शन की दृष्टि से चरण-सम्मार्जनादि सभी का नियमत. निषेध है, कारणवश अपनी बुद्धि से यतनापूर्वक विचार कर लेना चाहिए। निशीथ *(१५)* में 'विभूसावडियाए' पाठ है, अतः सर्वत्र विभूषा की दृष्टि से इन सबका निषेध समझना चाहिए। *(निशीथ चूर्णि ३१५)*

आचार्य श्री आत्माराम जी म ने भी यही अर्थ किया है कि आगम में गुरु साधर्मिक आदि की वैयावृत्य करने का बताया है। अतः यहाँ वैयावृत्य की भावना से गुरु आदि की सेवा का निषेध नहीं है, किन्तु साधु परस्पर एक-दूसरे को ऐसा न कहे कि तू मेरे पैर दबा, मैं तेरे पैर दबा दूँगा। तू मेरी सेवा कर, मैं तेरी सेवा कर दूँगा। आरामतलबी, सुखशीलता व प्रमाद नहीं बढ़े तथा विभूषा की भावना नहीं पनपे इसी दृष्टि से यह सब विधान है। *(हिन्दी टीका, पृ १३४२)*

॥ सप्तम सप्तिका समाप्त ॥

॥ चौदहवाँ अध्ययन, समाप्त ॥

॥ द्वितीय चूला सम्पूर्ण ॥

Elaboration—Anyonya-kriya is between two bhikshus or two bhikshunis. Where two bhikshus serve each other or two bhikshunis serve each other it is called anyonya-kriya. This type of anyonya-kriya is censured and proscribed for the ascetics who have left their group and are observing special resolutions, the ascetics who are absolutely detached (vitaraga or Jina) and the ascetics who are omniscient. For those who are sthavir-kalpi and live within a group it is allowed under special circumstances. They should still be careful in this matter.

For the Sthavir-kalpi ascetics such services for the purpose of beautification, inclination and showing off and in absence of reasons like dotage, weakness, sickness etc. are prohibited as a rule. If there is a need one should carefully consider availing such services. In Nishith *(15)* there is a mention 'vibhusavadiyae'; confirming that all the aforesaid services should be considered prohibited if they are for the purpose of beautification. *(Nishith Churni 315)*

Acharya Shri Atmaramji M. has made the same interpretation that in Agam it has been advised to offer hospitality to guru, co-religionist etc. Therefore the service of guru (etc.) is not censured if it is done with the feeling of hospitality. But ascetics should not say to each other—you massage my feet and I will reciprocate; you serve me and I will reciprocate. These rules have been formulated with the purpose that the desire for comforts or pleasure, lethargy or stupor and beautification or display are checked. *(Hindi Tika, p 1342)*

|| END OF SEPTET SEVEN ||
|| END OF FOURTEENTH CHAPTER ||
|| END OF SECOND CHULA ||

तृतीय चूला

भावना : पन्द्रहवाँ अध्ययन

आमुख

✦ पन्द्रहवें अध्ययन का नाम 'भावना' है।

✦ साधु जीवन के लिए महत्त्वपूर्ण और सशक्त नौका है भावना। ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप आदि के साथ भावना जुड़ जाने से साधक उत्साह, श्रद्धा तथा संवेग के साथ साधना के राजमार्ग पर गति-प्रगति कर सकता है, अन्यथा विघ्न-बाधाओं, परीषहोपसर्गों या कष्टों के समय ज्ञानादि की साधना से घबराकर भय और प्रलोभन के उत्पथ पर उसके मुड़ जाने की सम्भावना है।

✦ भावना के मुख्य दो भेद हैं–द्रव्य-भावना और भाव-भावना। द्रव्य-भावना का अर्थ दिखावटी–बनावटी भावना, अथवा जाई के फूल आदि द्रव्यों से तिल, तेल आदि की या रासायनिक द्रव्यों से भावना देना द्रव्य-भावना है।

✦ भाव-भावना प्रशस्त और अप्रशस्त के भेद से दो प्रकार की है। प्राणिवध; मृषावाद आदि की अशुभ या क्रोधादि कषायों से कलुषित विचारधारा अशुभ भावना या अप्रशस्त भावना है।

✦ दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप, वैराग्य आदि की लीनता प्रशस्त भावना है।

✦ तीर्थंकरो के पंच-कल्याणकों, उनके गुणों तथा उनके प्रवचनों–द्वादशांग गणिपिटकों, युग-प्रधान आचार्यो तथा अतिशय-सम्पन्न एवं लब्धिमान, चतुर्दशपूर्वधर, केवलज्ञान-अवधि-मनःपर्यायज्ञानसम्पन्न मुनिवरों के दर्शन, उपदेश-श्रवण, गुणोत्कीर्तन, स्तवन आदि दर्शन-भावना के रूप हैं। इनसे दर्शन-विशुद्धि होती है।

✦ जीव, अजीव, पुण्य, पाप, संवर, निर्जरा आदि तत्त्वों का ज्ञान स्वयं करना, आगम का स्वाध्याय करना, दूसरों को वाचना देना, जिनेन्द्र प्रवचन आदि का अनुशीलन करना तथा ज्ञान-वृद्धि के लिए प्रयत्न करना ज्ञान-भावना है।

✦ अहिंसादि पाँच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्ति, दशविध श्रमणधर्म, आचार, नियमोपनियम आदि की भावना करना चारित्र-भावना है।

- तप के लिए द्रव्य, क्षेत्रादि का विचार करना तथा तप करने की भावना करना तपोभावना है।
- सांसारिक सुख के प्रति विरक्ति होना वैराग्य-भावना है।
- कर्मबन्धजनक मद्यादि पंचविध तथा अष्टविध प्रमाद का आचरण न करना अप्रमाद-भावना है।
- आत्म-स्वभाव में ही लीन होना एकाग्र-भावना है। अनित्यादि १२ भावनाएँ भी हैं। इस प्रकार भावनाओं का अभ्यास करना 'भावना' के अन्तर्गत है।
- भावना अध्ययन के पूर्वार्द्ध में दर्शन-भावना के सन्दर्भ में आचार-प्रवचनकर्त्ता परम उपकारी भगवान महावीर का जीवन-वृत्त दिया गया है। उत्तरार्द्ध में चारित्र-भावना के सन्दर्भ में पाँच महाव्रत एवं उनके विशुद्ध परिपालन हेतु २५ भावनाओं का वर्णन है।

●●

THIRD CHULA

BHAAVANA : FIFTEENTH CHAPTER

INTRODUCTION

- The title of the fifteenth chapter is *Bhaavana.*
- *Bhaavana* (stimulation) is a strong boat to move on the river-like ascetic life. When *bhaavana* is combined with pursuits of knowledge, perception, conduct and austerity (etc.) a seeker proceeds and progresses on the path of spiritual practices with enthusiasm, faith and intensity. Otherwise, in face of obstructions and afflictions, there are chances of his getting dejected and yielding to the maligning pull of fear and enticement.
- Two main divisions of *bhaavana* are physical *bhaavana* and mental *bhaavana.* Physical *bhaavana* means ostentatious *bhaavana.* In other words to express one's attitude of reverence by performing rituals with the help of jasmine flowers, sesame oil, and synthetic materials is called *dravya bhaavana.*
- *Bhaava bhaavana* or mental *bhaavana* is of two kinds—good or moral and bad or immoral. Attitudes of killing beings, falsity (etc.) and thoughts perverted by passions like anger act as bad or immoral *bhaavana.*
- To be absorbed in spiritual pursuits like right perception, right knowledge, right conduct, austerities and detachment is good or moral *bhaavana.*
- To behold, to listen to sermons of, to sing songs and panegyrics of virtues of *Tirthankars, Ganipitak* (twelve *Angas*), *Yugapradhan acharyas* (towering personalities of their era), *Chaturdash Purvadhars* (ascetics having knowledge of the fourteen subtle canons) with miraculous special powers and ascetics having *Keval-*

jnana, Avadhi-jnana and *Manah-paryava-jnana* is known as *darshan bhaavana* (stimulation through right perception or faith).

- To acquire knowledge of fundamentals like being (life), non-being (matter), merit and non-merit, blocking the inflow of *karmas* and shedding *karmas;* to study *Agam* and to teach them to others; to ponder over the teachings of the *Jina;* and to try to enhance knowledge is called *jnana bhaavana* (stimulation through right knowledge).

- To contemplate about five *mahavrats* (great vows) including *ahimsa,* five *samitis* (self-regulations), three *guptis* (restraints), ten facets of ascetic discipline conduct, codes and sub-codes etc. and to mould one's attitude accordingly is called *charitra bhaavana* (stimulation through right conduct).

- To ponder over things and place and other parameters suitable for austerities and get inspired to indulge in them is called *tapobhaavana* (stimulation through right austerities)

- To develop apathy for mundane pleasures is called *vairagya bhaavana* (stimulation through detachment).

- To refrain from consuming five kinds of intoxicating things including alcohol and to avoid eight types of stupor is called *apramad bhaavana* (stimulation through non-stupor).

- To remain absorbed in the self or soul is called *ekagra bhaavana* (stimulation through concentration). There are other categories of *bhaavanas* including *anitya bhaavana* or stimulation through understanding of ephemeral nature of things To indulge in practices of such stimulations is discussed in this chapter titled *Bhaavana.*

- The first part of this chapter narrates the life of *Bhagavan* Mahavir, the propagator of the code of conduct and great benefactor, while discussing *darshan bhaavana.* The second part includes details about five great vows and twenty five *bhaavanas* that help in immaculate observation of the vows in context of *charitra bhaavana.* ●●

भावणा : पण्णरसमं अज्झयणं
भावना : पन्द्रहवाँ अध्ययन
BHAAVANA : FIFTEENTH CHAPTER
STIMULATION

भगवान के पंच-कल्याणक नक्षत्र

३४५. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे पंचहत्थुत्तरे यावि होत्था। तं जहा–हत्थुत्तराहिं चुए चइत्ता गब्भं वक्कंते, हत्थुत्तराहिं गब्भाओ गब्भं साहरिए, हत्थुत्तराहिं जाए, हत्थुत्तराहिं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए, हत्थुत्तराहिं कसिणे पडिपुण्णे अव्वाघाए निरावरणे अणंते अणुत्तरे केवलवर-णाण-दंसणे समुप्पण्णे। साइणा भगवं परिणिव्वुए।

३४५. उस काल और उस समय में श्रमण भगवान महावीर के पाँच कल्याणक उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में हुए। जैसे उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में देवलोक से च्यवन हुआ, च्यवकर वे गर्भ में उत्पन्न हुए। उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में गर्भ से गर्भान्तर में संहरण किये गए। उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में भगवान का जन्म हुआ। उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में ही मुण्डित होकर आगार (गृह) त्यागकर अनगार-धर्म में प्रव्रजित हुए। उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में भगवान को सम्पूर्ण, प्रतिपूर्ण, निर्व्याघात, निरावरण, अनन्त और अनुत्तर प्रवर (श्रेष्ठ) केवलज्ञान, केवलदर्शन समुत्पन्न हुआ। स्वाति नक्षत्र में भगवान परिनिर्वाण (मोक्ष) को प्राप्त हुए।

THE FIVE AUSPICIOUS EVENTS

345. During that period at that time the five auspicious events in the life of *Bhagavan* Mahavir occurred when the moon was in the twelfth *(Uttaraphalguni)* lunar mansion. These events are : The soul that was to be *Bhagavan* Mahavir left the dimension of gods and descended into the womb when the moon was in *Uttaraphalguni* lunar mansion. The embryo was transplanted when the moon was in *Uttaraphalguni* lunar mansion. *Bhagavan* Mahavir was born when the moon was in *Uttaraphalguni* lunar mansion. He renounced normal mundane

life, pulled out his hair and became a homeless ascetic when the moon was in *Uttaraphalguni* lunar mansion. *Bhagavan* attained infinite, supreme, unobstructed, unclouded, complete and perfect 'ultimate knowledge' or *Keval-jnana* and 'ultimate perception' or *Keval-darshan* when the moon was in *Uttaraphalguni* lunar mansion. He attained *nirvana* or state of liberation when the moon was in the fifteenth or *Swati* lunar mansion.

विवेचन—श्रमण भगवान महावीर के गर्भागमन से परिनिर्वाण तक के नक्षत्रों का निरूपण प्रस्तुत सूत्र में किया है। इस सम्बन्ध में आचार्यों के दो मत हैं—कुछ आचार्य गर्भ-संहरण को कल्याणक नहीं मानते, तदनुसार पंच-कल्याणक इस प्रकार बनते हैं—(१) गर्भ, (२) जन्म, (३) दीक्षा, (४) केवलज्ञान, और (५) परिनिर्वाण। किन्तु कुछ आचार्य गर्भ-संहरण क्रिया को कल्याणक में मानकर प्रभु के ६ कल्याणक की मान्यता रखते हैं।

प्रस्तुत सूत्र में 'उस काल और उस समय' शब्द का प्रयोग सूचित करता है उस काल—चौथे आरे के अन्तिम समय में तथा उस समय जिस समय भगवान गर्भ में आये।

पंच हत्थुत्तरे—हस्त (नक्षत्र) से उत्तर हस्तोत्तर है, अर्थात् उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र। नक्षत्रो की गणना करने से हस्त नक्षत्र जिसके उत्तर में (बाद में) आता है, वह नक्षत्र हस्तोत्तर कहलाता है।

'समणे भगवं महावीरे'—भगवान महावीर के ये तीन विशेषण मननीय हैं। 'समण' के तीन रूप होते हैं—श्रमण, शमन और समन—'सुमनस्'।[1] श्रमण का अर्थ क्रमशः क्षीणकाय, आत्म-साधना के लिए स्वयं श्रम करने वाला और तपस्या से खिन्न तपस्वी श्रमण कहलाता है। कषायों को शमन करने के कारण शमन, तथा सबको आत्मौपम्य दृष्टि से देखने के कारण समन और राग-द्वेषरहित मध्यस्थ वृत्तियुक्त होने से सुमनस् या समनस् कहलाता है। जिसका चित्त सदा कल्याणकारी चिन्तन में लगा रहता हो, वह भी समनस् या सुमनस् कहलाता है।

भगवान का अर्थ है—जिसमें समग्र ऐश्वर्य, रूप, धर्म, यश, श्री और प्रयत्न ये ६ भग हों। आचार्य श्री आत्माराम जी म. ने भग के १४ अर्थ किये हैं।

---

१. (क) दशवैकालिक निर्युक्ति, गा. १५४-१५६ 'समण' शब्द की व्याख्या

(ख) अनुयोग द्वार १२९-१३१

(ग) "सह मनसा शोभनेन, निदान-परिणाम-लक्षण-पापरहितेन चेतसा वर्तते इति सुमनस.।"

—स्थानांग ४/४/३६३ टीका

(घ) "श्राम्यते तपसा खिद्यत इति कृत्वा श्रमण·।" *—सूत्रकृतांग १/१६/१ टीका*

(ङ) "श्राम्यन्तीति श्रमणा· तपस्यन्तीत्यर्थः।" *—दशवै. हारि. टीका, पत्र ६८*

महावीर–यश और गुणों में महान् वीर होने से भगवान महावीर कहलाए। कषायादि शत्रुओं को जीतने के कारण भगवान महाविक्रान्त कहलाये। भय-भैरव तथा अचेलकता आदि कठोर तथा घोर परीषहों को दृढ़तापूर्वक सहने के कारण देवों ने उनका नाम महावीर रखा।[१]

Elaboration—This aphorism lists the lunar mansions at the moments of the important events in *Bhagavan* Mahavir's life since his conception till his *nirvana*. There are two opinions amongst *acharyas* in this regard. Some *acharyas* do not accept transplantation of embryo as an auspicious event. Thus according to this school the five auspicious events are—(1) conception, (2) birth, (3) initiation, (4) attaining omniscience, and (5) liberation. But some *acharyas* accept transplantation of embryo as an auspicious event and believe in six auspicious events.

The use of the phrase during 'that period at that time' indicates—during 'that period' or the fourth phase of the time cycle and 'that time' or the moment when *Bhagavan* descended into the womb.

Panch hatthuttare—uttara means following The lunar mansion *(nakshatra)* that follows the lunar mansion named *Hasta* is called *Hastottara.* In the counting of lunar mansions *Uttaraphalguni* comes after *Hasta.*

Samane Bhagavan Mahavire—these three adjectives popularly used for *Bhagavan* Mahavir require elaboration. The Prakrit word *samana* has three versions in Sanskrit—*shraman, shaman* and *saman* or *sumanas. Shraman* means emaciated; one who labours himself for spiritual practices and gets emaciated due to austere practices is called *shraman.* One who disciplines passions is called *shaman* (to suppress). One who considers all others like himself and has an impartial attitude

---

१. (क) 'महंतो यसोगुणेहिं वीरोत्ति महावीरो।' *–दशवै. जिनदास चूर्णि पृ. १३२*

(ख) शूरवीर विक्रान्तो इति कषायादि शत्रु जयान्महाविक्रान्तो महावीरः। *–दशवै. हारि. टीका प. १३७*

(ग) "सहसम्मुइए समणे भीमं भयभेरवं उरालं अचेलयं परीसहे सहत्ति कट्टु देवेहिं से नामं कयं समणे भगवं महावीरे।"

–आचा. २/३/४00 पत्र ३८९ (सूत्र ७४३) (ख) तुलनार्थ देखें–आव. चूर्णि पृ. २४५

free of attachment and aversion is called *samanas*. One who always thinks of noble altruism is also called *samanas* or *sumanas*.

Bhagavan means one who has the six excellent attributes namely grandeur, beauty, religion, fame, glory and endeavour. Acharya Shri Atmaramji M. has given fourteen meanings of this word.

Mahavir—he was called Mahavir because he was extremely brave (accomplished) in context of fame and virtues. As he had won over enemies like passions he was called Mahavikrant. As he endured grave and extreme afflictions including fear and nudity, gods gave him the name Mahavir.

३४६. समणे भगवं महावीरे इमाए ओसप्पिणीए सुसम-सुसमाए समाए वीइकंताए, सुसमाए समाए वीइकंताए, सुसम-दुसमाए समाए वीइकंताए, दुसम-सुसमाए समाए बहुवीइकंताए, पण्णत्तरीए वासेहिं मासेहिं य अद्ध नवमसेसेहिं, जे से गिम्हाणं चउत्थे मासे अट्ठमे पक्खे आसाढसुद्धे तस्स णं आसाढसुद्धस्स छट्ठीपक्खेणं हत्थुत्तराहिं णक्खत्तेणं जोगमुवागएणं, महाविजयसिद्धत्थ-पुप्फुत्तरवरपुंडरीय-दिसा-सोवत्थियवद्ध-माणाओ महाविमाणाओ वीसं सागरोवमाइं आउयं पालइत्ता आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं चुए, चइत्ता इह खलु जंबुद्दीवे णं दीवे भारहे वासे दाहिणड्ढभरहे दाहिणमाहणकुंडपुरसंणिवेसंसि उसभदत्तस्स माहणस्स कोडालसगोत्तस्स देवाणंदाए माहणीए जालंधरायणसगोत्ताए सीहब्भवभूएणं अप्पाणेणं कुच्छिंसि गब्भं वक्कंते।

समणे भगवं महावीरे तिण्णाणोवगए यावि होत्था, चइस्सामि त्ति जाणइ, चुए मि त्ति जाणइ, चयमाणे ण जाणइ, सुहुमे णं से काले पण्णत्ते।

३४६. इस अवसर्पिणी काल के सुषम-सुषम नामक आरक, सुषम आरक और सुषम-दुषम आरक के व्यतीत होने पर तथा दुषम-सुषम नामक आरक के अधिकांश व्यतीत हो जाने पर और जब केवल ७५ वर्ष और साढ़े आठ माह शेष रह गये थे, तब श्रमण भगवान महावीर ने ग्रीष्म ऋतु के चौथे मास, आठवें पक्ष, आषाढ़ शुक्ला छठ की रात्रि को; उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र के साथ चन्द्रमा का योग होने पर महाविजयसिद्धार्थ, पुष्पोत्तरवर पुण्डरीक, दिक्स्वस्तिक, वर्द्धमान महाविमान से बीस सागरोपम की आयु पूर्ण करके, देवायु, देवभव और देवस्थिति को समाप्त करके वहाँ से च्यवन किया। च्यवन करके इस जम्बूद्वीप में भारतवर्ष के दक्षिणार्द्ध भरत के दक्षिण—ब्राह्मणकुण्डपुर सन्निवेश में कुडालगोत्रीय ऋषभदत्त ब्राह्मण की जालंधर गोत्रीया देवानन्दा नाम की ब्राह्मणी की कुक्षि में सिंह की तरह गर्भ में अवतरित हुए।

श्रमण भगवान महावीर (उस समय) तीन ज्ञान (मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान) से युक्त थे। वे यह जानते थे कि मैं स्वर्ग से च्यवकर मनुष्यलोक में जाऊँगा। मैं वहाँ से च्यवकर गर्भ में आया हूँ, परन्तु वे च्यवन-समय को नहीं जानते थे, क्योंकि वह काल अत्यन्त सूक्ष्म होता है।

346. When *Susham-Susham, Susham* and *Susham-Dusham* phases of the time cycle had already elapsed and a major part of the *Dusham-Susham* phase had also elapsed, its end being only seventy five years and eight and a half months away, during the fourth month and the eighth fortnight of the summer season on the sixth night of the bright half of the month of *Ashadh* when the moon was in the *Uttaraphalguni* lunar mansion the soul that was to be *Shraman Bhagavan* Mahavir descended from the *Mahavijaya Pushpottar Pravar Pundareek Disha Sauvastika Vardhaman Mahaviman* (name of a specific dimension of gods) after completing the twenty *Sagaropam* (a superlative count of time) age specific to the particular birth in the particular state. Like a lion his soul descended in the womb of Devananda Brahmini, daughter of the Jalandhar clan and wife of Brahmin Rishabhadatta of the Kondal clan, a resident of Brahman Kundagram.

At the time of descent *Bhagavan* Mahavir was endowed with three levels of knowledge (sensory perception, literal or scriptural knowledge and extra-sensory perception of physical dimension). Just before the *samaya* (moment) of descent he was aware that he was going to descend. The moment after descent he new that he had descended. But he was not aware of the act of descent as that period of time is extremely small.

विवेचन—जैनशास्त्रों में काल-चक्र का वर्णन आता है। प्रत्येक काल-चक्र बीस कोटाकोटि सागरोपम का होता है। इसके दो विभाग हैं—अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी। अवसर्पिणी काल-चक्रार्ध में १० कोटाकोटि सागरोपम तक समस्त पदार्थों के वर्णादि एवं सुख का क्रमशः ह्रास होता जाता है। अतः वह ह्रासकाल—अवसर्पिणी काल माना जाता है। इसी तरह उत्सर्पिणी काल-चक्रार्ध में

१० कोटाकोटि सागरोपम तक समस्त पदार्थों के वर्णादि एवं सुख की क्रमशः वृद्धि होती जाती है। अतः यह उत्क्रान्ति काल–उत्सर्पिणी काल माना जाता है।

प्रत्येक अर्द्ध-काल में ६-६ आरक (आरे) होते हैं। अवसर्पिणी काल के ६ आरक इस प्रकार हैं–(१) सुषम-सुषम, चार कोटाकोटि सागरोपम, (२) सुषम तीन कोटाकोटि, (३) सुषम-दुषम दो कोटाकोटि, (४) दुषम-सुषम ४२ हजार वर्ष कम एक कोटाकोटि, (५) दुषम २१ हजार वर्ष, और (६) दुषम-दुषम २१ हजार वर्ष परिमित काल का होता है। अवसर्पिणी काल का छठा आरा समाप्त होते ही उत्सर्पिणी काल का प्रारम्भ हो जाता है। इसके ६ आरे इस प्रकार हैं–(१) दुषम-दुषम, (२) दुषम, (३) दुषम-सुषम, (४) सुषम-दुषम, (५) सुषम, और (६) सुषम-सुषम। प्रस्तुत में अवसर्पिणी काल के क्रमशः ३ आरे समाप्त होने पर चतुर्थ आरे का प्रायः भाग समाप्त हो चुका था, उसमें केवल ७५ वर्ष, ८ महीने और १५ दिन शेष रह गये थे, तभी भगवान महावीर गर्भ में अवतरित हुए थे।

Elaboration—Jain scriptures provide a detailed description of progressive cycles of time. Every cycle is of 20 *kotakoti sagaropam* (a superlative conceptual measure of time) duration One cycle is divided into two parts—*Avasarpini* descending cycle of time and *Utsarpini* ascending cycle of time. During the descending cycle of time the qualities of things and happiness of beings gradually decline for 10 *kotakoti sagaropam;* that is why this period of degeneration or regression is called *avasarpini* or descending cycle In the same way during the ascending cycle of time the qualities of things and happiness of beings gradually improve for 10 *kotakoti sagaropam;* that is why this period of improvement or progress is called *utsarpini* or ascending cycle.

Each ascending and descending cycle of time is divided into six *Ara* (spoke) or epoches or phases. The six phases of the descending cycle are—(1) *Susham-Susham* of four *kotakoti sagaropam,* (2) *Susham* of three *kotakoti sagaropam,* (3) *Susham-Dusham* of two *kotakoti sagaropam,* (4) *Dusham-Susham* of fourteen thousand years less in one *kotakoti sagaropam,* (5) *Dusham* of twenty one thousand years, and (6) *Dusham-Dusham* of twenty one thousand years. When the descending cycle ends the ascending cycle begins. The six phases of this cycle are—(1) *Dusham-Dusham,* (2) *Dusham,* (3) *Dusham-*

Susham, (4) *Susham-Dusham*, (5) *Susham*, and (6) *Susham-Susham*. When first three phases of the current descending time cycle had already elapsed and a major part of the fourth phase had also elapsed, its end being only 75 years, 8 months and 15 days away, *Bhagavan* Mahavir had descended into the womb.

३४७. तओ णं समणे भगवं महावीरे हियाणुकंपएणं देवेणं 'जीयमेयं' ति कट्टु जे से वासाणं तच्चे मासे पंचमे पक्खे आसोयबहुले तस्स णं आसोयबहुलस्स तेरसीपक्खेणं हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं बासीहिं राइंदिएहिं वीइक्कंतेहिं तेसीइमस्स राइंदियस्स परियाए वट्टमाणे दाहिणमाहणकुंडपुर-संनिवेसाओ उत्तरखत्तियकुंड-पुरसंनिवेसंसि नायाणं खत्तियाणं सिद्धत्थस्स खत्तियस्स कासवगोत्तस्स तिसलाए खत्तियाणीए वासिट्ठसगोत्ताए असुभाणं पोग्गलाणं अवहारं करित्ता सुभाणं पोग्गलाणं पक्खेवं करेत्ता कुच्छिंसि गब्भं साहरति। जे वि य तिसलाए खत्तियाणीए कुच्छिंसि गब्भे तं पि य दाहिणमाहणकुंडपुरसंनिवेसंसि उसभदत्तस्स माहणस्स कोडालसगोत्तस्स देवाणंदाए माहणीए जालंधरायणसगोत्ताए कुच्छिंसि साहरति।

समणे भगवं महावीरे तिण्णाणोवगए यावि होत्था, साहरिज्जिस्सामि त्ति जाणइ, साहरिए मि त्ति जाणइ, साहरिज्जमाणे वि जाणइ समणाउसो !

३४७. (देवानन्दा ब्राह्मणी के गर्भ में आने के बाद) श्रमण भगवान महावीर के हित और अनुकम्पा से प्रेरित होकर देव ने 'यह जीत आचार है', ऐसा कहकर वर्षाकाल के तीसरे मास, पाँचवे पक्ष अर्थात् आश्विन कृष्णा त्रयोदशी के दिन उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र के साथ चन्द्रमा का योग होने पर, ८२ रात्रि दिन के व्यतीत होने और ८३वें दिन की रात को, दक्षिण ब्राह्मण कुण्डपुर सन्निवेश से उत्तर क्षत्रिय कुण्डपुर सन्निवेश में (आकर वहाँ देवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्षि से गर्भ को लेकर) ज्ञातवंशीय क्षत्रियों में प्रसिद्ध काश्यपगोत्रीय सिद्धार्थ राजा की वाशिष्ठगोत्रीय पत्नी त्रिशला (क्षत्रियाणी) महारानी के अशुभ पुद्गलों को हटाकर, उनके स्थान पर शुभ पुद्गलो का प्रक्षेपण करके उसकी कुक्षि में उस गर्भ को स्थापित किया और त्रिशला क्षत्रियाणी की कुक्षि में जो गर्भ था, उसे लेकर दक्षिण ब्राह्मण कुण्डपुर सन्निवेश में कोडाल गोत्रीय ऋषभदत्त ब्राह्मण की जालन्धर गोत्रीया देवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्षि में स्थापित किया।

"आयुष्मन् श्रमणो ! श्रमण भगवान महावीर गर्भावास में तीन ज्ञान (मति-श्रुत-अवधि) से युक्त थे। 'मैं इस स्थान से संहरण किया जाऊँगा', यह वे जानते थे, 'मैं संहृत किया जा चुका हूँ', यह भी वे जानते थे और यह भी वे जानते थे कि 'मेरा संहरण हो रहा है'।"

347. Driven by compassion and inspired by the wish to benefit *Bhagavan* Mahavir the god (Harinaigameshi) uttered, "This is the eternal tradition." During the third month and fifth fortnight of the monsoon season when 82 days had elapsed since the descent and the eighty third was running; on the thirteenth day of the dark half of the month of *Ashvin* at midnight when the moon entered the *Hastottara* lunar mansion, from the southern Brahmin Kundapur district the god (collecting the embryo from the womb of Devananda Brahmini) came to the northern Kshatriya Kundapur district near queen Trishala *(Kshatriyani)* of the *Vashishta* clan, the wife of king Siddhartha of the *Kashyap* clan and famous among the *Kshatriyas* of the *Jnata* clan. He sterilized the atmosphere by replacing the contaminated molecules with clean ones and transplanted the embryo in the womb of Queen Trishala. He then took the embryo originally in the womb of Trishala *Kshatriyani* and going to the southern Brahmin Kundapur district transplanted it in the womb of Devananda Brahmini of the *Jalandhar* clan, the wife of Brahmin Rishabhadatta of the *Kondal* clan.

"Long lived *Shramans* ! When in womb *Bhagavan* Mahavir was endowed with three levels of knowledge (sensory perception, literal or scriptural knowledge and extra-sensory perception of physical dimension). He was aware that he was going to be shifted. He was aware that he has been shifted. He was also aware that he was being shifted."

विवेचन—गर्भापहरण की घटना : शंका-समाधान—तीर्थंकरों के गर्भ का अपहरण नहीं होता, इस दृष्टि से दिगम्बर परम्परा इस घटना को मान्य नहीं करती, किन्तु श्वेताम्बर परम्परा इसे एक आश्चर्यभूत घटना मानती है। आचारांगसूत्र में ही नहीं, स्थानांग, समवायांग, आवश्यक निर्युक्ति एवं कल्पसूत्र प्रभृति में स्पष्ट वर्णन है कि श्रमण भगवान महावीर ८२ रात्रि व्यतीत हो जाने पर एक गर्भ से दूसरे गर्भ में ले जाये गये। भगवतीसूत्र में भगवान महावीर ने गणधर गौतम स्वामी से देवानन्दा ब्राह्मणी के सम्बन्ध में स्पष्ट उल्लेख किया है—"गौतम ! देवानन्दा

ब्राह्मणी मेरी माता है।" *"गोयमा ! देवाणंदा माहणी मम अम्मगा।" (क) भगवती शतक ५, उ. ३३, पृ. २५९; (ख) समवायांग ८३, पत्र ८३/२; (ग) स्थानांग, स्था. ५, पत्र ३०७; (घ) आवश्यक निर्युक्ति, पृ. ८०-८३।*

पिछले सूत्र में बताया है, भगवान महावीर देवलोक से च्यवन होने से पहले और च्यवन होने के बाद के समय को जानते थे, परन्तु च्यवन के समय को नहीं जानते थे, क्योंकि वह काल अत्यन्त सूक्ष्म होता है। इस सूत्र में बताया है साहरण होने से पहले, साहरण होते समय और साहरण होने के बाद भी तीनों क्रियाएँ वे जान रहे थे। इस सम्बन्ध में टीकाकारों का कथन है, च्यवन स्वतः होता है, वह एक समय में ही हो जाता है, अतः अवधिज्ञानी उस समय को नहीं जान सकते। किन्तु साहरण परकृत क्रिया है, उसमें असंख्यात समय लगते हैं। अतः अवधिज्ञानी उस काल को जान सकते हैं।

Elaboration—The incident of embryo transplant : an explanation—With the view that there is no precedence that the embryo of a *Tirthankar* is transplanted, the Digambar tradition does not accept this incident. However the *Shvetambar* tradition accepts it as a miraculous incident. Besides *Acharanga Sutra, Sthananga, Samvayanga, Avashyak Niryukti, Kalpasutra* etc. also clearly mention that after 82 days the embryo of *Bhagavan* Mahavir was transplanted from one womb to another. In *Bhagavati Sutra Bhagavan* Mahavir explicitly told *Ganadhar* Gautam Swami—"Gautam ! Devananda Brahmini is my mother" *(a) Bhagavati 5/33, p 259, (b) Samvayanga 83, leaf 83/2, (c) Sthananga 5, leaf 307; (d) Avashyak Niryukti, p 80-83.*

In the preceding aphorism it is said that *Bhagavan* Mahavir was aware of the moment immediately preceding and after his descent but was not aware of the moment of descent because that time is extremely small. This aphorism informs that he was aware of all the three phase of the act-to be shifted, being shifted and shifted. In this regard the commentators say that descent is automatic and happens in just one *samaya* (the smallest indivisible unit of time); therefore even *avadhi-jnanis* (one who possesses extra-sensory perception of the physical dimension) are not aware of it. But shifting is done by others and it takes infinite *samayas*; therefore *avadhi-jnanis* can be aware of it.

३४८. तेणं कालेणं तेणं समएणं तिसला खत्तियाणी अह अण्णया कयाइ नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्ठमाण राइंदियाणं वीइकंताणं जे से गिम्हाणं पढमे मासे दोच्चे पक्खे चेत्त सुद्धे तस्स णं चेत्त सुद्धस्स तेरसीपक्खेणं हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं समणं भगवं महावीरं अरोया पसूया।

३४८. उस काल और उस समय में त्रिशला क्षत्रियाणी ने अन्य किसी समय नौ मास साढ़े सात अहोरात्र पूर्ण व्यतीत होने पर ग्रीष्म ऋतु के प्रथम मास के द्वितीय पक्ष में अर्थात् चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के दिन उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र के साथ चन्द्रमा का योग होने पर सुखपूर्वक आरोग्ययुक्त (श्रमण भगवान महावीर को) जन्म दिया।

BIRTH OF *BHAGAVAN* MAHAVIR

348. At that time during that period during the first month and the second fortnight of the summer season on the thirteenth day of the bright half of the month of *Chaitra* sometime after the moon entered its twelfth mansion called *Uttaraphalguni* Trishala *Kshatriyani* gave birth conveniently to a healthy son (*Shraman Bhagavan* Mahavir).

३४९. जं णं राइं तिसला खत्तियाणी समणं भगवं महावीरं अरोया अरोयं पसूया तं णं राइं भवणइ-वाणमंतर-जोइसिय-विमाणवासिदेवेहिं य देवीहिं य ओवयंतेहिं य उप्पयंतेहिं य संपयंतेहिं य एगे महं दिव्वे देवुज्जोए देवसंन्निवाए देवकहक्कहए उप्पिंजलगभूए यावि होत्था।

३४९. जिस रात्रि को त्रिशला क्षत्रियाणी ने सुखपूर्वक (श्रमण भगवान महावीर को) जन्म दिया, उस रात्रि में भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देवों और देवियों के स्वर्ग से आने और मेरुपर्वत पर जाने-यों ऊपर-नीचे आवागमन से एक महान् दिव्य देवोद्योत हो गया। देवों के एकत्र होने से लोक में एक हलचल मच गई, देवों के परस्पर हास-परिहास (कहकहों) के कारण सर्वत्र कलकल नाद व्याप्त हो गया।

349. The night Trishala *Kshatriyani* gave birth to *Shraman Bhagavan* Mahavir numerous *Bhavanpati, Vanavyantar, Jyotishi* and *Vaimanik* (the names of the four dimensions of gods) gods and goddesses descended from heavens and ascended

to the Meru mountain. The collective radiance of their upward and downward movement filled the skies with a divine glow. There was commotion in the world and their laughter reverberated all around.

३५० जं णं रयणिं तिसला खत्तियाणी समणं भगवं महावीरं अरोया अरोयं पसूआ तं णं रयणिं बहवे देवा य देवीओ य एगं महं अमयवासं च गंधवासं च चुण्णवासं च पुप्फवासं च हिरण्णवासं च रयणवासं च वासिंसु।

३५०. जिस रात्रि त्रिशला क्षत्रियाणी ने श्रमण भगवान महावीर को सुखपूर्वक जन्म दिया, उस रात्रि में बहुत-से देवों और देवियों ने एक बड़ी भारी अमृत की, सुगन्धित पदार्थों की और सुवासित चूर्ण, पुष्प, चाँदी सोने और रत्नों की वृष्टि की।

350. The night Trishala *Kshatriyani* gave birth to *Shraman Bhagavan* Mahavir numerous gods and goddesses caused a divine downpour of ambrosia, perfumes, fragrant powders, flowers, silver, gold and gems.

३५१. जं णं रयणिं तिसला खत्तियाणी समणं भगवं महावीरं अरोया अरोयं पसूया तं णं रयणिं भवणवइ-वाणमंतर-जोइसिय-विमाणवासिणो देवा य देवीओ य समणस्स भगवओ महावीरस्स कोतुगभूइकम्माइं तित्थगराभिसेयं च करिंसु।

३५१. जिस रात्रि में त्रिशला क्षत्रियाणी ने श्रमण भगवान महावीर को सुखपूर्वक जन्म दिया, उस रात्रि में भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों और देवियों ने श्रमण भगवान महावीर का कौतुकमंगल (नजर दोष से बचाने के लिए काजल की बिंदी) आदि शुचिकर्म तथा तीर्थंकराभिषेक किया।

351. The night Trishala *Kshatriyani* gave birth to *Shraman Bhagavan* Mahavir numerous *Bhavanpati, Vanavyantar, Jyotishi* and *Vaimanik* (the names of the four dimensions of gods) gods and goddesses performed *kautukamangal* (making auspicious marks of lamp-black or vermilion), *shuchikarma* (post-birth cleansing of the newborn), and *Tirthankarabhishek* (anointing ceremony or divine bath of *Tirthankar*).

विवेचन—भगवान महावीर के जन्म के समय केवल क्षत्रियकुण्डपुर ही नहीं, परन्तु क्षणभर के लिए सारे जगत् में प्रकाश फैल गया। नारकीय जीव भी क्षणभर के लिए अनिर्वचनीय आनन्द व उल्लास का अनुभव करने लगते हैं।

जन्म से पूर्व त्रिशला महारानी के स्वप्नों का तथा गर्भ-परिपालन, गर्भ का संचालन बन्द हो जाने से आर्त्तध्यान, भगवान महावीर द्वारा मातृभक्ति सूचक प्रतिज्ञा, जृम्भक देवों द्वारा निधानों का सिद्धार्थ राजा के भवन में संग्रह, हिरण्यादि में वृद्धि के कारण माता-पिता द्वारा वर्द्धमान नाम रखने का विचार, सिद्धार्थ द्वारा हर्षवश पारितोषिक, प्रीतिभोज आदि विस्तृत वर्णन कल्पसूत्र, पृष्ठ ३६-८५ में देखना चाहिए।

Elaboration—For a moment not only Kshatriya Kundapur but also the whole world was awash with a divine glow at the time of the birth of *Bhagavan* Mahavir. Even the hell-beings experienced an unprecedented happiness and joy for a moment.

Refer to *Illustrated Kalpasutra (p. 36-85)* for the details about the post-conception divine dreams of queen Trishala, the pregnancy care, the stillness in the womb and the consequent resolve of *Bhagavan* Mahavir indicative of his devotion for his mother, storing of wealth in king Siddhartha's palace by *Jrimbhak* gods, increase in wealth and consequent idea of naming the newborn as Vardhaman, charities and feast by joyous Siddhartha etc.

भगवान का नामकरण

३५२. जओ णं पभिइ भगवं महावीरे तिसलाए खत्तियाणीए कुच्छिंसि गब्भं आहुए तओ णं पभिइ तं कुलं विपुलेणं हिरण्णेणं सुवण्णेणं धणेणं धण्णेणं माणिक्केणं मोत्तिएणं संखसिल-प्पवालेणं अईव अईव परिवड्ढइ।

तओ णं समणस्स भगवओ महावीरस्स अम्मापियरो एयमट्ठं जाणित्ता णिव्वत्तदसाहंसि वोक्कंतंसि सुचिभूयंसि विपुलं असण-पाण-खाइम-साइमं उवक्खडावेंति। विपुलं असण-पाण-खाइम-साइमं उवक्खडावेत्ता मित्त-णाइ-सयण-संबंधिवग्गं उवनिमंतेत्ता बहवे समण-माहण-किवण-वणीमग-भिच्छुंडग-पंडरगाईण विच्छड्ढेंति, विग्गोवेंति, विस्साणेंति, दायारेसु णं दाणं पज्जाभाएंति। विच्छुड्ढित्ता, विग्गोवित्ता, विस्साणित्ता दायारेसु णं दाणं पज्जाभाइत्ता मित्त-णाइ-सयण-संबंधिवग्गं भुंजावेंति। मित्त-णाइ-सयण-संबंधिवग्गं भुंजावित्ता, मित्तणाइ-सयण-संबंधिवग्गेण इमेयारूवं णामधेज्जं कारवेंति—

जओ णं पभिइ इमे कुमारे तिसलाए खत्तियाणीए कुच्छिंसि गब्भे आहूए तओ णं पभिइ इमं कुलं विपुलेणं हिरण्णेणं सुवण्णेणं धणेणं धण्णेणं माणिक्केणं मोत्तिएणं संख-सिल-प्पवालेणं अतीव-अतीव परिवड्ढति, तो होउ णं कुमारे वद्धमाणे।

३५२. जब से भगवान महावीर त्रिशला क्षत्रियाणी की कुक्षि में गर्भरूप में आये, तभी से उस कुल में प्रचुर मात्रा में चाँदी, सोना, धन, धान्य, माणिक्य, मोती, शंख, शिला और प्रवाल (मूँगा) आदि की अत्यन्त अभिवृद्धि होने लगी।

श्रमण भगवान महावीर के माता-पिता ने भगवान महावीर के जन्म के दस दिन व्यतीत हो जाने के बाद ग्यारहवें दिन अशुचि-निवारण करके शुचीभूत होकर प्रचुर मात्रा में अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य पदार्थ बनवाये। चतुर्विध आहार तैयार हो जाने पर उन्होंने अपने मित्र, ज्ञाति, स्वजन और सम्बन्धी-वर्ग को आमंत्रित किया। इसके पश्चात् उन्होंने बहुत से शाक्य आदि श्रमणों, ब्राह्मणों, दरिद्रों, भिक्षाचरों, भिक्षाभोजी, शरीर पर भस्म रमाकर भिक्षा माँगने वालों आदि को भी भोजन कराया, उनके लिए भोजन सुरक्षित रखाया, कई लोगों को भोजन दिया, याचकों में दान बाँटा। इस प्रकार शाक्यादि भिक्षाजीवियों को भोजनादि का वितरण करवाकर अपने मित्र, ज्ञाति, स्वजन, सम्बन्धी-जन आदि को भोजन कराया। उन्हें भोजन कराने के पश्चात् उनके समक्ष नामकरण के सम्बन्ध में इस प्रकार कहा–"जिस दिन से यह बालक त्रिशलादेवी की कुक्षि में गर्भरूप से आया, उसी दिन से हमारे कुल में प्रचुर मात्रा में चाँदी, सोना, धन, धान्य, माणिक, मोती, शंख, शिला, प्रवाल आदि पदार्थों की अतीव अभिवृद्धि हो रही है। अतः इस कुमार का गुण सम्पन्न नाम–'वर्द्धमान' हो।"

NAMING CEREMONY

352. Since *Shraman Bhagavan* Mahavir descended into the womb of Trishala *Kshatriyani* his clan saw a continuous upsurge in its wealth; this included silver, gold, wealth, grains, rubies, pearls, conch-shells, rocks, coral etc.

Ten days after the birth of *Shraman Bhagavan* Mahavir, on the eleventh day, the parents of *Bhagavan* Mahavir performed the post child-birth purification rituals and arranged for staple food, liquids, general food and savoury food in large quantity. They invited friends, relatives, family members and kin-folk. They offered, allotted and distributed food to many people

including Buddhists and other *Shramans*, Brahmins, destitute, beggars, those who live on alms, those who rub ash on their body before begging etc. They gave charity to beggars. After this distribution they offered food to the invited friends, relatives, family members and kin-folk. After this the king addressed the gathering regarding the naming of the child—"Since this child was conceived by Trishala Devi our family saw a continuous upsurge in its wealth; this included silver, gold, wealth, grains, rubies, pearls, conch-shells, rocks, coral etc. Therefore I name this boy as Vardhaman (ever increasing)—a name justifying his virtues."

भगवान का संवर्द्धन

३५३. तओ णं समणे भगवं महावीरे पंचधाइपरिवुडे, तं जहा–खीरधाइए, मज्जण धाइए, मंडावणधाइए, खेल्लावणधाइए, अंकधाइए, अंकाओ अंकं साहरिज्जमाणे रम्मे मणिकोट्टिमतले गिरिकंदरसमल्लीणे व चंपयपायवे अहाणुपुव्वीए संवड्ढइ।

३५३. जन्म के बाद श्रमण भगवान महावीर का लालन-पालन पाँच धाय माताओं द्वारा होने लगा। जैसे कि–(१) क्षीरधात्री–(दूध पिलाने वाली धाय), (२) मज्जनधात्री–(स्नान कराने वाली धाय), (३) मंडनधात्री–(वस्त्राभूषण पहनाने वाली धाय), (४) क्रीड़ाधात्री (क्रीड़ा कराने वाली धाय), और (५) अंकधात्री–(गोद में खिलाने वाली धाय)। इस प्रकार एक गोद से दूसरी गोद में लिये जाते हुए एवं मणिमण्डित रमणीय आँगन में (खेलते हुए), पर्वत की गुफा में स्थित चम्पक वृक्ष की भाँति विघ्न-बाधाओं से रहित कुमार वर्द्धमान क्रमशः सुखपूर्वक बढ़ने लगे।

GROWTH OF *BHAGAVAN*

353. After his birth *Shraman Bhagavan* Mahavir was being looked after by five nurse-maids—(1) *Kshir Dhatri* or milk-nurse-maid (one who took charge of feeding), (2) *Majjan Dhatri* or bath-nurse-maid (one who took charge of giving a bath), (3) *Mandan Dhatri* or dress-nurse-maid (one who took charge of putting on dress and ornaments), (4) *Krida Dhatri* or play-nurse-maid (one who took charge of playing with the baby), (5) *Anka*

Dhatri or lap-nurse-maid (one who took charge of keeping the baby in her lap. Thus climbing into the lap of one or the other (of these maids and playing) on a beautiful gem inlaid floor prince Vardhaman grew happily as a Champa tree grows undisturbed by the blowing winds in a mountain cave.

यौवन एवं पाणिग्रहण

३५४. तओ णं समणे भगवं महावीरे विण्णायपरिणयए विणियत्तबालभावे अप्पुस्सुयाइं उरालाइं माणुस्सगाइं पंचलक्खणाइं कामभोगाइं सद्द-फरिस-रस-रूव-गंधाइं परियारेमाणे एवं चाए विहरइ।

३५४. उसके पश्चात् श्रमण भगवान महावीर ज्ञान-विज्ञान से युक्त होकर बाल्यावस्था को पार कर युवावस्था को प्राप्त हुए। वे मनुष्य-सम्बन्धी उदार शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श से युक्त पाँच प्रकार के कामभोगों का उदासीनभाव से उपभोग करते हुए त्यागभावपूर्वक विचरण करने लगे।

YOUTH AND MARRIAGE

354. In due course *Shraman Bhagavan* Mahavir acquired normal and special knowledge and from childhood emerged into youth. He commenced leading a detached life indulging with indifference in the five essential human activities related to (sense organs of) sound, form, taste, smell and touch.

३५५. समणे भगवं महावीरे कासवगोत्तेणं, तस्स णं इमे तिन्नि नामधेज्जा एवमाहिज्जंति, तं जहा–अम्मापिउसंतिए वद्धमाणे, सहसम्मुइ समणे, भीमं भयभेरवं उरालं अचेलयं परीसहे सहति त्ति कट्टु देवेहिं से णामं कयं समणे भगवं महावीरे।

३५५. काश्यपगोत्रीय श्रमण भगवान महावीर के ये तीन नाम इस प्रकार कहे गये हैं–(१) माता-पिता का दिया हुआ नाम–वर्द्धमान, (२) स्वाभाविक समभाव में स्थित होने के कारण श्रमण, और (३) किसी प्रकार का भयंकर भय-भैरव उत्पन्न होने पर भी अविचल रहने तथा अचेलक रहकर विभिन्न परीषहों को समभावपूर्वक सहने के कारण देवों ने उनका नाम रखा–'श्रमण भगवान महावीर'।

355. *Shraman Bhagavan* Mahavir belonged to the *Kashyap* gotra (clan). It is said that he was known by three names. His

parents gave him the name *Vardhaman*. His unique natural wisdom and attitude of equanimity inspired people to call him *Shraman*. Due to his unwavering determination, even in presence of fearful predicaments, his peaceful and compassionate tolerance, as a nude ascetic, for pain and afflictions the gods gave him the epithet '*Shraman Bhagavan* Mahavir'.

३५६. समणस्स णं भगवओ महावीरस्स पिता कासवगोत्तेणं। तस्स णं तिण्णि णामधेज्जा एवमाहिज्जंति, तं जहा–सिद्धत्थे ति वा सेज्जंसे ति वा जसंसे ति वा।

समणस्स णं भगवओ महावीरस्स अम्मा वासिट्ठसगोत्ता। तीसे णं तिण्णि णामधेज्जा एवमाहिज्जंति, तं जहा–तिसला इ वा विदेहदिण्णा इ वा पियकारिणी ति वा।

समणस्स णं भगवओ महावीरस्स पित्तियए सुपासे कासवगोत्तेणं।

समणस्स णं भगवओ महावीरस्स जेट्ठे भाया णंदिवद्धणे कासवगोत्तेणं।

समणस्स णं भगवओ महावीरस्स जेट्ठा भइणी सुदंसणा कासवगोत्तेणं।

समणस्स णं भगवओ महावीरस्स भज्जा जसोया गोत्तेणं कोडिण्णा।

समणस्स णं भगवओ महावीरस्स धूआ कासवगोत्तेणं। तीसे णं दो नामधेज्जा एवमाहिज्जंति, तं जहा–अणोज्जा ति वा पियदंसणा ति वा।

समणस्स णं भगवओ महावीरस्स णत्तुई कोसियगोत्तेणं। तीसे णं दो णामधेज्जा एवमाहिज्जंति, तं जहा–सेसवती ति वा जसवती ति वा।

३५६. श्रमण भगवान महावीर के काश्यपगोत्रीय पिता के तीन नाम इस प्रकार कहे जाते थे–(१) सिद्धार्थ, (२) श्रेयांस, और (३) यशस्वी।

श्रमण भगवान महावीर की वाशिष्ठ गोत्रीया माता के तीन नाम इस प्रकार कहे जाते थे–(१) त्रिशला, (२) विदेहदत्ता, और (३) प्रियकारिणी।

श्रमण भगवान महावीर के चाचा काश्यप गोत्रीय 'सुपार्श्व' थे।

श्रमण भगवान महावीर के ज्येष्ठ भ्राता नन्दीवर्द्धन थे।

श्रमण भगवान महावीर की बड़ी बहन सुदर्शना भी काश्यप गोत्रीय थी।

श्रमण भगवान महावीर की पत्नी 'यशोदा' थी, जो कौण्डिन्य गोत्र की थी।

श्रमण भगवान महावीर की पुत्री काश्यप गोत्र की थी। उसके दो नाम इस प्रकार थे–(१) अनोज्जा (अनवद्या), और (२) प्रियदर्शना।

श्रमण भगवान महावीर की दौहित्री कौशिक गोत्र की थी। उसके दो नाम इस प्रकार थे–(१) शेषवती, तथा (२) यशोमती या यशस्वती।

356. *Shraman Bhagavan* Mahavir's father belonged to the *Kashyap* clan. His three names were—(1) Siddhartha, (2) Shreyansa, and (3) Yashasvi.

Shraman Bhagavan Mahavir's mother belonged to the *Vashishtha* clan. Her three names were—(1) Trishala, (2) Videhadinna, and (3) Priyakarini.

Shraman Bhagavan Mahavir's uncle (father's younger brother) was Suparshva of the *Kashyap* clan.

Shraman Bhagavan Mahavir's elder brother was Nandivardhan of the *Kashyap* clan.

Shraman Bhagavan Mahavir's sister was Sudarshana of the *Kashyap* clan.

Shraman Bhagavan Mahavir's wife was Yashoda of the *Kaundinya* clan.

Shraman Bhagavan Mahavir's daughter was also of the *Kashyap* clan. She had two names—(1) Anojja (Anavadya), and (2) Priyadarshana.

Shraman Bhagavan Mahavir's grand daughter was of the *Kaushik* clan. She had two names—(1) Sheshavati, and (2) Yashomati or Yashasvati.

विवेचन–प्रस्तुत सूत्र में भगवान महावीर के पिता, माता, चाचा, भाई, बहन, पत्नी, पुत्री और दौहित्री के नाम और गोत्र का परिचय दिया गया है। भगवान महावीर के पिता का नाम श्रेयांस क्यों पड़ा? इस सम्बन्ध में चूर्णिकार कहते हैं–"श्रेयांसि श्रयन्ति अस्मिन्निति श्रेयांसः।" अर्थात् जिसमें श्रेयों–कल्याणों का आश्रय स्थान हो, वह श्रेयांस है। माता का एक नाम

'विदेहदिन्ना' इसलिए पड़ा कि वे विदेहराज द्वारा प्रदत्त थीं। भगवान की भगिनी सुदर्शना उनसे बड़ी थी या छोटी थी? यह चिन्तनीय है। इस सम्बन्ध में कल्पसूत्रकार मौन है। आचारांग में प्रस्तुत पाठ में किसी प्रति में 'कणिट्ठा' पाठ था, उसे काटकर किसी संशोधक ने 'जेट्ठा' संशोधन किया है। आचारांग मूल पाठ सटिप्पण (मुनि जम्बूविजय जी सम्पादित), पृ. २६४ तथा विशेषावश्यक भाष्य में महावीर की पुत्री के नाम 'ज्येष्ठा, सुदर्शना एवं अनवद्यांगी' बताए हैं, जबकि यहाँ भगवान महावीर की बहन का नाम 'सुदर्शना' एवं पुत्री का नाम 'अनवद्या' व 'प्रियदर्शना' बताया गया है। अतः भगिनी एवं पुत्री के नामों में कुछ भ्रान्ति-सी मालूम होती है। यद्यपि 'अणोज्जा' का संस्कृत रूपान्तर 'अनवद्या' होता है, किन्तु चूर्णिकार ने 'अनोजा' रूपान्तर करके अर्थ किया है-"नास्य ओजं अणोज्जा।" अर्थात् जिसमें ओज (बल) न हो वह 'अनोजा' है (चूर्णि, पृ २६५) अर्थात् जो बहुत ही कोमलांगी, नाजुक हो।

Elaboration—This aphorism gives names and clan names of *Bhagavan* Mahavir's parents, uncle, brother, sister, wife daughter and grand-daughter. Why *Bhagavan* Mahavir's father was called Shreyansa ? In answer the *Churni* mentions that which is abode of various feelings of altruism (*shreya* or *kalyan*) is called Shreyansa. His mother was called Videhdinna because she was given into marriage by the king of Videh. Whether his sister was younger or elder to him is a matter of research. *Kalpasutra* does not give any indication in this regard. In a particular copy of this reading of *Acharanga* originally *kanittha* (younger) was used but the editor changed it to *jettha* (elder). In the original text of *Acharanga* (with foot notes) edited by Muni Jambuvijayaji (p. 264) and *Visheshavashyaka bhashya* the names of Mahavir's daughter are mentioned as Jyeshtha, Sudarshana and Anavadyangi. But here the name of *Bhagavan* Mahavir's sister is given as Sudarshana and the name of his daughter is given as Anavadya and Priyadarshana. Thus there appears to be a confusion in the names of his sister and daughter. Although the Sanskrit rendering of *Anojja* is generally *Anavadya,* the *Churni* renders it as *Anoja* and interprets it as that which is not strong (*Churni, p. 265*). This means tender or delicate.

३५७. समणस्स णं भगवओ महावीरस्स अम्मापियरो पासावच्चिज्जा समणोवासगा यावि होत्था। ते णं बहूइं वासाइं समणोवासगपरियागं पालयित्ता छण्हं जीवणिकायाणं सारक्खणणिमित्तं आलोइत्ता णिंदित्ता गरहित्ता पडिक्कमित्ता अहारिहं उत्तरगुणं

पायच्छित्ताइं पडिवज्जित्ता कुससंथारं दुरूहित्ता भत्तं पच्चक्खायंति, भत्तं पच्चक्खाइत्ता अपच्छिमाए मारणंतियाए सरीरसंलेहणाए झूसियसरीरा कालमासेणं कालं किच्चा तं सरीरं विप्पजहित्ता अच्चुए कप्पे देवत्ताए उववन्ना।

तओ णं आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं चुए (ता) चइत्ता महाविदेहे वासे चरिमेणं उस्सासेणं सिज्झिस्संति, बुज्झिस्संति, मुच्चिस्संति, परिणिव्वाइस्संति, सव्वदुक्खाणं अंतं करिस्संति।

३५७. श्रमण भगवान महावीर के माता-पिता पार्श्वनाथ भगवान के अनुयायी श्रावक धर्म का पालन करने वाले श्रमणोपासक थे। उन्होंने बहुत वर्षों तक श्रावक-धर्म का पालन किया। (अन्तिम समय में) षड्जीवनिकाय के संरक्षण के निमित्त आलोचना, आत्म-निन्दा (पश्चात्ताप), आत्म-गर्हा एवं लगे दोषों का प्रतिक्रमण करके, मूल और उत्तर गुणों के यथायोग्य प्रायश्चित्त स्वीकार करके, कुश के संस्तारक पर आरूढ़ होकर भक्तप्रत्याख्यान नामक अनशन (संथारा) स्वीकार किया। चारों प्रकार के आहार-पानी का त्याग करके अन्तिम मारणान्तिक संलेखना से शरीर को कृश कर दिया। फिर कालधर्म का अवसर आने पर आयुष्यपूर्ण करके उस शरीर को छोड़कर अच्युतकल्प नामक (बारहवें) देवलोक में देवरूप में उत्पन्न हुए।

वहाँ से देव-सम्बन्धी आयु, भव (जन्म) और स्थिति का क्षय होने पर वहाँ से च्यवकर महाविदेह क्षेत्र में (मनुष्य शरीर धारण करके) चरम श्वासोच्छ्वास द्वारा सिद्ध, बुद्ध, मुक्त एवं परिनिवृत्त होंगे और वे सब दुःखों का अन्त करेंगे।

357. The parents of *Shraman Bhagavan* Mahavir were devotees of *Bhagavan* Parshvanath and *shramanopasaks* (those who worship *Shramans*) following the *shravak dharma* (conduct of a lay Jain). They observed the *shravak* conduct for many years. (When their end approached) they resolved to observe the ultimate vow of *Bhaktapratyakhyan* (a kind of fasting) after performing perquisites including self-criticism directed at care of six life-forms; repenting, self-reproach, critical review of faults committed, accepting suitable atonement for drawbacks in basic and auxiliary virtues; and lying or sitting on a bed made of hay. Observing the ultimate vow they abandoned all the four types of foods and drinks and emaciated their bodies. At the time of

destined death when their life-span came to an end their souls left the mortal bodies and reincarnated as gods in the *Achyutakalpa* or the twelfth dimension of gods.

At the end of their divine life-span, genus and state they will reincarnate in *Mahavideh* area (as human beings) and will attain ultimate purity (*siddha* state), wisdom *(buddha)*, liberation *(mukta)* and salvation *(parinivritta)* by ending all their sorrows when they breath their last.

दीक्षा-ग्रहण का संकल्प

३५८. तेणं कालेणं तेणं समएणं समण भगवं महावीरे नाए नायपुत्ते नायकुलविणिव्वए विदेहे विदेहदिण्णे विदेहजच्चे विदेहसूमाले।

तीसं वासाइं विदेहंसिति कट्टु अगारमज्झे वसित्ता अम्मापिऊहिं कालगएहिं देवलोगमणुप्पत्तेहिं समत्तपइन्ने चेच्चा हिरण्णं, चेच्चा सुवण्णं, चेच्चा बलं, चेच्चा वाहणं, चेच्चा धण-कणग-रयण-संतसारसावइज्जं, विच्छड्डित्ता विग्गोवित्ता, विस्साणित्ता, दायारेसु णं दायं पज्जाभाइत्ता, संवच्छरं दलइत्ता, जे से हेमंताणं पढमे मासे, पढमे पक्खे मग्गसिरबहुले, तस्स णं मग्गसिरबहुलस्स दसमीपक्खेणं हत्थुत्तराहिं णक्खत्तेणं जोगमुवागएणं अभिनिक्खमणाभिप्पाए यावि होत्था।

३५८. उस काल उस समय में श्रमण भगवान महावीर, जोकि ज्ञातपुत्र के नाम से प्रसिद्ध हो चुके थे, ज्ञातकुल (के उत्तरदायित्व) से विनिवृत्त (मुक्त) थे, अथवा ज्ञातकुल में चन्द्रमा के समान थे, (विदेह) देहासक्तिरहित थे, विदेह जनों द्वारा अर्चनीय-पूजनीय थे, विदेहदत्ता (त्रिशला माता) के पुत्र थे, विशिष्ट शरीर–वज्रऋषभ-नाराच-संहनन एवं समचतुरस्र संस्थान से युक्त होते हुए भी शरीर से सुकुमार थे।

भगवान ने तीस वर्ष तक विदेहभावपूर्वक गृह में निवास किया फिर माता-पिता को आयुष्य पूर्ण करके देवलोक को प्राप्त जाने पर अपनी (गर्भकाल में) ली हुई प्रतिज्ञा के पूर्ण हो जाने पर हिरण्य, स्वर्ण, सेना (बल), वाहन (सवारी), धन, धान्य, रत्न आदि सारभूत, सत्वयुक्त पदार्थों का त्याग करके, याचकों को यथेष्ट दान देकर, अपने द्वारा दानशाला पर नियुक्त जनों के समक्ष सारा धन खुला करके, उसे दान रूप में देने का विचार प्रगट करके, अपने सम्बन्धियों में सम्पूर्ण पदार्थों का यथा योग्य (दाय) बँटवारा करके, संवत्सर (वर्षी) दान देकर (निश्चिन्त हो चुके तब) हेमन्त ऋतु के प्रथम मास एवं

प्रथम मार्गशीर्ष कृष्ण पक्ष में, मार्गशीर्ष कृष्णा दशमी के दिन उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र के साथ चन्द्रमा का योग होने पर भगवान ने अभिनिष्क्रमण (दीक्षा-ग्रहण) करने का अभिप्राय किया।

RESOLVE OF INITIATION

358. At that time during that period *Shraman Bhagavan* Mahavir, who had become famous as Jnataputra (son of the *Jnata* clan), was free of (any responsibilities of) the *Jnata* clan or was like a moon in the *Jnata* clan. He was free of any attachment for his body. He was revered by the people of Videh. He was the son of Videhadatta (mother Trishala). He had a delicate body in spite of being endowed with the strongest body constitution and structure *(Vajrarishabha-narach samhanan* and *samachaturasra samsathan).*

He lived in his house with complete detachment for his body for thirty years. When his parents left for their heavenly abode and his vow (taken when he was still in the womb) was fulfilled he renounced all his gold, army, means of commuting, wealth, grains, gems and all valuable and material things. He gave ample charity to beggars and provided all his wealth to the managers of charities expressing his desire to give it all for charity. He divided equitably and distributed all his possessions amongst his relatives. After concluding his year—long charity, during the first month and the first fortnight of the winter season on the tenth day of the dark half of the month of *Margashirsh* when the moon entered the *Uttaraphalguni* lunar mansion *Shraman Bhagavan* Mahavir decided to renounce the world (get initiated).

सांवत्सरिक दान

३५९. संवच्छरेण होहिइ अभिनिक्खमणं तु जिणवरिंदस्स।
तो अत्थसंपयाणं पवत्तइ पुव्वसूराओ॥१॥

३६०. एगा हिरण्णकोडी अट्ठेव अणूणया सयसहस्सा।
सूरोदयमादीयं दिज्जइ जा पायरासु त्ति॥२॥

३६१. तिण्णेव य कोडिसया अट्ठासीइ च हुंति कोडीओ।
असीइं च सयसहस्सा एयं संवच्छरे दिण्णं॥३॥

३५९. श्री जिनवरेन्द्र तीर्थंकर भगवान का अभिनिष्क्रमण एक वर्ष पूर्ण होते ही होगा, अतः वे दीक्षा लेने से एक वर्ष पहले ही वर्षीदान देना प्रारम्भ कर देते हैं। प्रतिदिन सूर्योदय से उनके द्वारा अर्थ का सम्प्रदान (दान) प्रारम्भ हो जाता है॥१॥

३६०. प्रतिदिन सूर्योदय से लेकर एक प्रहर पर्यन्त, जब तक कि वे प्रातराश (नाश्ता) नहीं कर लेते, तब तक एक करोड़ आठ लाख से अन्यून (कम नहीं) स्वर्ण-मुद्राओं का दान दिया जाता है॥२॥

३६१. इस प्रकार एक वर्ष में कुल ३ अरब ८८ करोड़ ८० लाख स्वर्ण-मुद्राओं का दान भगवान ने दिया॥३॥

YEAR LONG CHARITY

359. He will renounce the world after one year, knowing this the *Jinvarendra (Tirthankar)* commences his year—long charity (a year in advance). Every morning at dawn he starts giving his wealth in charity. (1)

360. Beginning at dawn and for one *prahar* (three hours) till he does not take his breakfast a sum comprising a million and eight hundred thousand gold coins is given in charity every day. (2)

361. Thus in one year he donated a total of three billion eight hundred eighty million gold coins. (3)

लोकांतिक देवों द्वारा उद्बोधन

३६२. वेसमणकुंडलधरा देवा लोगंतिया महिड्ढीया।
बोहिंति य तित्थकरं पण्णरससु कम्मभूमीसु॥४॥

३६३. बंभम्मि य कप्पम्मि बोद्धव्वा कण्हराइणो मज्झे।
लोगंतिया विमाणा अट्ठसु वत्था असंखेज्जा॥५॥

३६४. एते देवनिकाया भगवं बोहिंति जिणवरं वीरं।
सव्वजगज्जीवहियं अरहं ! तित्थं पवत्तेहि॥६॥

३६२. कुण्डलधारी वैश्रमण देव और महान् ऋद्धिधारी लोकान्तिक देव १५ कर्म-भूमियों में (होने वाले) तीर्थंकर भगवान को प्रतिबोधित करते हैं (यह उनका जीताचार है)॥४॥

३६३. ब्रह्मकल्प (पंचम देवलोक) में आठ कृष्णराजियों के मध्य में आठ प्रकार के लोकान्तिक विमान असंख्यात योजन विस्तार वाले समझने चाहिए॥५॥

३६४. ये सब देवनिकाय (आकर) भगवान वीर जिनेश्वर को बोधित (विनम्र विज्ञप्ति) करते हैं-"हे अर्हन् देव ! सर्वजगत् के जीवों के लिए हितकर धर्मतीर्थ का प्रवर्तन करें"॥६॥

DISCOURSE OF *LOKANTIK* GODS

362. The *Vaishraman* gods wearing earrings and *Lokantik* gods having miraculous powers give formal advise to *Tirthankars* (the souls who are to become *Tirthankars* in the 15 *karma-bhumis* or lands of endeavour) (this is their traditional duty). (4)

363. In the *Brahmakalpa* (the fifth dimension of gods) between the eight *Krishnarajis* (black areas in space) there are eight *Lokantik* abodes of gods of innumerable *yojan* spread. (5)

364. They all come from there divine abodes and humbly request *Vir Jineshvar*—"O *Arhan Dev* ! Please establish the religious ford *(Tirth)* for benefit of all beings of all worlds." (6)

विवेचन—तत्वार्थसूत्र ४/२५ के अनुसार भी 'ब्रह्मलोकालया लोकान्तिकाः' लोकान्तिक देवों का ब्रह्मलोक में निवास है, अन्य कल्पों में नहीं। ब्रह्मलोक को घेरकर आठ दिशाओं में आठ प्रकार के लोकान्तिक देव रहते हैं। तत्वार्थसूत्र में ८ लोकान्तिक देवों के नाम इस प्रकार गिनाए हैं—(१) 'सारस्वताऽदित्य-३ वन्ह्यरुण-४ गर्दतोय-५ तुषिताऽ-६ व्याबाध-७ मरुतोऽरिष्टाश्च ८।' यदि वन्हि और अरुण को अलग-अलग मानें तो इनकी संख्या ९ हो जाती है। ८ कृष्णराजियाँ हैं, दो-दो कृष्णराजियों के मध्य भाग में ये देव निवास करते हैं। मध्य में अरिष्ट रहते हैं। इस प्रकार

ये ९ भेद होते हैं। तत्त्वार्थ भाष्यकार ने ८ भेद ही बताये हैं। लोकान्तवर्ती ये ८ भेद ही होते हैं, जिन्हें आचार्य श्री आत्माराम जी म. ने बताये हैं, नौवाँ भेद रिष्ट विमान प्रस्तारवर्ती होने से होता है। इसलिए कहीं ८ और कहीं ९ भेद बताये हैं। अन्य आगमों में ९ भेद ही बताए गये हैं। यहाँ जो ८ भेद बताए हैं, वे भी इसी अपेक्षा से समझना चाहिए।

आचार्य श्री आत्माराम जी म. ने नव कृष्ण राजियों का उल्लेख करके बताया है कि इनके मध्य में रहने वाले नव लोकान्तिक देव हैं। कुछ आचार्यों का मत है कि लोक के अन्त में रहने के कारण इन्हें लोकान्तिक कहा जाता है। ये एक भव करके लोक-संसार का अन्त करके मोक्ष जाते हैं, इसलिए भी इन्हें लोकान्तिक देव कहा जाता है।

भगवान स्वयं तीन ज्ञान के धारक होते हैं और अपना दीक्षाकाल स्वयं जानते हैं, किन्तु फिर भी ये देव केवल अपनी परम्परा का पालन करने हेतु उनके दीक्षाभिप्राय को जानकर सेवा में उपस्थित होकर प्रार्थना करते हैं-"बुज्झाहि भगवं लोगनाहा ! पवत्तेहि धम्मतित्थं हिय-सुह निस्सेयकरं।" (कल्पसूत्र) "भगवन् ! लोकनाथ ! प्रतिबुद्ध हो, जगत् के हित-सुख-निःश्रेयस् के लिए धर्म-तीर्थना प्रवर्तन करो।"

Elaboration—According to *Tattvartha Sutra (4/25)* also the *Lokantik* gods reside in *Brahmalok* and not in other dimensions of gods. Eight kinds of *Lokantik* gods live around *Brahmalok* in all eight cardinal directions. The names of the eight *Lokantik* gods listed in *Tattvartha Sutra* are—(1) Sarasvat, (2) Aditya, (3) Vanhyaruna, (4) Gardatoya, (5) Tushita, (6) Avyabadh, (7) Marut, and (8) Arishta. If *Vanhi* and *Aruna* (of *Vanhyaruna*) are considered separate the total will become nine. There are eight *Krishna Rajis* (in a formation of concentric circles). These gods reside between every two *rajis*. In the middle reside the Arisht gods. This way there kinds become nine. In the *Bhashya of Tattvartha Sutra* only eight kinds are mentioned. According to Acharya Shri Atmaramji M. the *Lokantvarti* (residing at the end of an area) kinds are only eight, the ninth or *Arishta* dwell in the middle. Thus we find eight kinds of these gods at some place and nine at another. In other *Agams* nine kinds are mentioned. The eight kinds mentioned here should be taken in light of aforesaid explanation.

Acharya Shri Atmaramji M. has mentioned nine *Krishna rajis* and nine *Lokantik* gods residing in between them. Some *acharyas* are of the opinion that they live at the end of the *Lok* (the world of the living)

therefore they are called *Lokantik* gods. Another interpretation of the term is that after reincarnating just once they end their cycles of rebirth in the *Lok* and get liberated, thus they are called *Lokantik* gods.

Bhagavan himself is endowed with three types of knowledge and is aware of his time of initiation. But still, knowing about his intention of initiation, these gods come to perform their traditional duty and request—"*Bhagavan* ! Lord of the *Lok* ! Get enlightened and establish the religious ford for the benefit, happiness and well being of the world." *(Kalpasutra)*

अभिनिष्क्रमण महोत्सव के लिए देवों का आगमन

३६५. तओ णं समणस्स भगवओ महावीरस्स अभिनिक्खमणाभिप्पायं जाणित्ता भवणवइ-वाणमंतर-जोइसिय-विमाणवासिणो देवा य देवीओ य सएहिं २ रूवेहिं, सएहिं २ णेवत्थेहिं, सएहिं २ चिंधेहिं, सव्विड्ढीए सव्वजुइए सव्वबलसमुदएणं सयाइं २ जाणविमाणाइं दुरूहंति। सयाइं २ जाणविमाणाइं दुरूहित्ता अहाबायराइं पोग्गलाइं परिसाडेंति। अहाबायराइं पोग्गलाइं परिसाडेत्ता अहासुहुमाइं पोग्गलाइं परियाइंति। अहासुहुमाइं पोग्गलाइं परियाइत्ता उड्ढं उप्पयंति। उड्ढं उप्पइत्ता ताए उक्किट्ठाए सिग्घाए चवलाए तुरियाए दिव्वाए देवगतीए अहेणं ओवयमाणा २ तिरिएणं असंखेज्जाइं दीव समुद्दाइं वीतिक्कममाणा २ जेणेव जंबुद्दीवे तेणेव उवागच्छंति, तेणेव उवागच्छित्ता जेणेव उत्तरखत्तियकुंडपुरसंनिवेसे तेणेव उवागच्छंति तेणेव उवागच्छित्ता जेणेव उत्तरखत्तियकुंडपुरसंणिवेसस्स उत्तरपुरत्थिमे दिसाभागे तेणेव झत्ति वेगेण ओवइया।

३६५. उसके पश्चात् श्रमण भगवान महावीर के अभिनिष्क्रमण के अभिप्राय को जानकर भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देव एवं देवियाँ अपने-अपने रूप में, अपने-अपने वस्त्रों में और अपने-अपने चिन्हों से युक्त होकर तथा अपनी-अपनी समस्त ऋद्धि, द्युति और समस्त बल-समुदाय सहित अपने-अपने यान-विमानों पर चढ़ते हैं। फिर सब अपने-अपने यान-विमानों में बैठकर जो बादर (स्थूल) पुद्‌गल हैं, उन्हें पृथक् करते हैं। बादर पुद्‌गलों को पृथक् करके सूक्ष्म पुद्‌गलों को चारों ओर से ग्रहण करके वे ऊँचे उड़ते हैं। ऊँचे उड़कर अपनी उस उत्कृष्ट, शीघ्र, चपल, त्वरित और दिव्य देवगति से नीचे उतरते-उतरते क्रमशः तिर्यक् लोक में स्थित असंख्यात द्वीप-समुद्रों को लाँघते हुए जहाँ जम्बूद्वीप नामक द्वीप है, वहाँ आते हैं। वहाँ आकर जहाँ उत्तरक्षत्रियकुण्डपुर सन्निवेश है,

उसके निकट आ जाते हैं। वहाँ आकर उत्तर क्षत्रियकुण्डपुर सन्निवेश के ईशानकोण दिशा भाग में शीघ्रता से उतर जाते हैं।

ARRIVAL OF GODS FOR RENUNCIATION CELEBRATIONS

365. After that, knowing about *Shraman Bhagavan* Mahavir's intention of renunciation, the gods and goddesses of four divine dimensions, namely *Bhavanpati, Vanavyantar, Jyotishka* and *Vaimanik,* ride their respective vehicles in their true forms adorned with their specific dresses and symbols and with all their powers, radiance and retinue. Aboard their celestial vehicles they discard their gross particles and collect subtle particles from all around and rise high in the skies. Attaining a certain height they descend with their highest, fast, sharp and quick divine speed and gradually crossing innumerable continents and seas in the transverse inhabited space arrive at the continent called *Jambudveep.* There they come near the north Kshatriyakunda district and quickly land in the north-eastern direction of the district.

३६६. तओ णं सक्के देविंदे देवराया सणियं २ जाणविमाणं ठवेइ। सणियं २ (जाण) विमाणं ठवेत्ता सणियं २ जाणविमाणाओ पच्चोरुहइ, सणियं २ जाणविमाणाओ पच्चोरुहित्ता एगंतमवक्कमइ। एगंतमवक्कमित्ता महया वेउव्विएणं समुग्घाएणं समोहणइ। महया वेउव्विएणं समुग्घाएणं समोहणित्ता एगं महं णाणामणि-कणग-रयणभत्तिचित्तं सुभं चारुकंतरूवं देवच्छंदयं विउव्वंति।

तस्स णं देवच्छंदयस्स बहुमज्झदेसभागे एगं महं सपादपीठं सीहासणं णाणामणि-कणग रयणभत्तिचित्तं सुभं चारुकंतरूवं विउव्वइ, २ (त्ता) जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, २ (त्ता) समणं भगवं महीवारं तिखुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ। समणं भगवं महावीरं तिखुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेत्ता, समणं भगवं महावीरं वंदइ, णमंसइ। वंदित्ता णमंसित्ता समणं भगवं महावीरं गहाय, जेणेव देवच्छंदए तेणेव उवागच्छइ। तेणेव उवागच्छित्ता सणियं २ पुरत्थाभिमुहं सीहासणे णिसीयावेइ।

सणियं २ पुरत्थाभिमुहं णिसीयवेत्ता, सयपागसहस्सपागेहिं तेल्लेहिं अब्भंगेइ। अब्भंगेत्ता गंधकासाएहिं उल्लोलेइ। उल्लोलेत्ता सुद्धोदएणं मज्जावेइ, २ (त्ता) जस्स य मुल्लं सयसहस्सेणं तिपडोलतित्तिएणं साहिएण सीएण गोसीसरत्तचंदणेणं अणुलिंपइ, २ (त्ता) ईसिं णिस्सासवातवोज्झं वरणगर-पट्टणुग्गयं कुसलणरपसंसियं अस्सलालापेलवं छेयायरिय-कणगखइयंतकम्मं हंसलक्खणं पट्टजुयलं णियंसावेइ, २ (त्ता) हारं अद्धहारं उरत्थं एगावलिं पालंबसुत्त-पट्ट-मउड-रयणमालाइं आविंधावेइ। आविंधावेत्ता गंथिम-वेढिम-पूरिम-संघाइमेणं मल्लेणं कप्परुक्खमिव समालंकरेइ।

समालंकरेत्ता दोच्चं सि महया वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणति, २ (त्ता) एगं महं चंदप्पभं सिवियं सहस्सवाहिणियं विउव्वति। तं जहा—ईहामिय-उसभ-तुरग-णर-मकर-विहग-वाणर-कुंजर रुरु-सरभ-चमर-सद्दूल-सीह-वणलय-चित्तलयविज्जाहर-मिहुणजुगलजंतजोगजुत्तं अच्चीसहस्स मालिणीयं सुणिरूवियं मिसमिसेंत-रूवगसहस्सकलियं इसिं भिसमाणं भिब्भिसमाणं चक्खुल्लोयणलेस्सं मुत्ताहल-मुत्तजालंतरोवियं तवणीयपवरलंबूसग-पलंबंमुत्तदामं हारद्धहारभूसणसमो णयं अहियपेच्छणिज्जं पउमलयभत्तिचित्तं असोगलयभत्तिचित्तं कुंदलयभत्तिचित्तं णाणालयभत्तिविरइयं सुभं चारुकंतरूवं णाणामणिपंचवण्ण-घंटापडायपरिमंडियग्गसिहरं सुभं चारुकंतरूवं पासाइयं दरिसणीज्जं सुरूवं।

३६६. तत्पश्चात् देवों के इन्द्र देवराज शक्र धीरे-धीरे अपने विमान को वहाँ ठहराता है। फिर धीरे-धीरे विमान से उतरता है। विमान से उतरते ही देवेन्द्र सीधा एक ओर एकान्त में चला जाता है। वहाँ जाकर एक महान् वैक्रिय समुद्घात (जड़ पुद्गलों को इच्छित आकार देने की एक विशेष क्रिया। विस्तार के लिए देखें सचित्र कल्पसूत्र, सूत्र २६) करता है। महान् वैक्रिय समुद्घात करके अनेक मणि-स्वर्ण-रत्न आदि से जटित—चित्रित, शुभ, सुन्दर, मनोहर, कमनीय रूप वाले एक बहुत बड़े देवच्छंदक (जिनेन्द्र भगवान के लिए बैठने का स्थान) का विक्रिया द्वारा निर्माण करता है।

उस देवच्छंदक के मध्य भाग में पादपीठ सहित एक विशाल सिंहासन की विक्रिया करता है, जो नाना मणि-स्वर्ण-रत्न आदि की रचना से चित्र-विचित्र, शुभ, सुन्दर और रम्य रूप वाला था। उस भव्य सिंहासन का निर्माण करके जहाँ श्रमण भगवान महावीर थे, वहाँ वह आता है, आकर उसने भगवान की तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा की, फिर वन्दन-नमस्कार करके श्रमण भगवान महावीर को लेकर वह देवच्छंदक के पास आता है। तत्पश्चात् भगवान को धीरे-धीरे उस देवच्छंदक में स्थित सिंहासन पर बिठाता है। उनका मुख पूर्व दिशा की ओर रहता है।

यह सब करने के बाद इन्द्र ने भगवान के शरीर पर शतपाक, सहस्रपाक तैलों से मालिश की, तत्पश्चात् सुगन्धित द्रव्यों से उनके शरीर पर उबटन करके शुद्ध-स्वच्छ जल से भगवान को स्नान कराया। स्नान कराने के बाद उनके शरीर पर एक लाख के मूल्य वाले तीन पट को लपेटकर साधे हुए सरस गोशीर्ष रक्त चन्दन का लेपन किया। फिर भगवान को नाक से निकलने वाली हल्की-सी श्वास-वायु से उड़ने वाला, विशिष्ट नगर के व्यावसायिक पत्तन में बना हुआ, कुशल मनुष्यों द्वारा प्रशंसित, अश्व के मुँह की लार के समान सफेद और मनोहर चतुर शिल्पाचार्यों (कारीगरों) द्वारा सोने के तार से विभूषित और हंस के समान श्वेत वस्त्रयुगल पहनाया। फिर उन्हें हार, अर्द्ध-हार, वक्षस्थल का सुन्दर आभूषण, एकावली, लटकती हुई मालाएँ, कटिसूत्र, मुकुट और रत्नों की मालाएँ पहनाईं। तत्पश्चात् भगवान को ग्रन्थिम, वेष्टिम, पूरिम और संघातिम-इन चारों प्रकार की पुष्पमालाओं से कल्पवृक्ष की भाँति सुसज्जित-अलंकृत किया।

अलंकृत करने के बाद इन्द्र ने दुबारा पुनः वैक्रियसमुद्घात किया और उससे तत्काल चन्द्रप्रभा नाम की एक विशाल सहस्रवाहिनी शिविका का निर्माण किया। वह शिविका ईहामृग, वृषभ, अश्व, नर, मगर, पक्षिगण, बन्दर, हाथी, रुरु, सरभ, चमरी गाय, शार्दूलसिंह आदि जीवों तथा वनलताओं से चित्रित थी। उस पर अनेक विद्याधरों के जोड़े यन्त्रयोग से अंकित थे। इसके अतिरिक्त वह शिविका (पालखी) सहस्र किरणों से सुशोभित सूर्य-ज्योति के समान देदीप्यमान थी, उसका चमचमाता हुआ रूप वर्णनीय था। सहस्र रूपों में भी उसका आकलन नहीं किया जा सकता था, उसका तेज नेत्रों को चकाचौंध कर देने वाला था। उस शिविका में मोती और मुक्ताजाल पिरोये हुए थे। सोने के बने हुए श्रेष्ठ कन्दुकाकार (गोल) आभूषण से युक्त लटकती हुई मोतियों की माला उस पर शोभायमान हो रही थी। हार, अर्द्ध-हार आदि आभूषणों से सुशोभित थी। अत्यन्त दर्शनीय थी, उस पर पद्मलता, अशोकलता, कुन्दलता आदि तथा अन्य अनेक प्रकार की वनलताएँ चित्रित थीं। शुभ, मनोहर, कमनीय रूप वाली पंचरंगी अनेक मणियों, घण्टा एवं पताकाओं से उसका अग्रशिखर परिमण्डित था। इस प्रकार वह शिविका अपने आप में शुभ, सुन्दर और कमनीय रूप वाली, मन को प्रसन्न करने वाली, दर्शनीय और अति सुन्दर थी।

366. After that, Shakra, the king of gods, stops his celestial vehicle there and slowly gets down. As soon as he reaches the ground he goes into a solitary corner and performs comprehensive *Vaikriya Samudghat* (a process of transforming material particles into desired form. For details refer to *Illustrated Kalpa Sutra, para 26)*. With the help of this process

he creates a gem studded and gold painted, beautiful, enchanting, attractive and large divine arena.

With the same process he creates a gem studded and gold painted, beautiful, enchanting, attractive and large throne at the centre of this arena. After this he comes near *Shraman Bhagavan* Mahavir, starting from the south goes around him three times (clockwise), and after paying homage and salutations brings *Shraman Bhagavan* Mahavir near the divine arena. He than gently seats *Bhagavan* on the throne in the divine arena—Bhagavan facing eastward.

After doing all this the king of gods did massage on Bhagavan's body with Shatapak and Shahasra (medicated and perfumed) oils; rubbed his body with fragrant powders and pastes and bathed him with clean and pure water. He then wrapped three pieces of cloth, costing a hundred thousand coins, around Bhagavan's body and applied a paste of red Goshirsh sandal-wood. He made *Bhagavan* wear a two piece dress made of a cloth as white and soft as froth from a horse's mouth or a swan, so thin as could be blown by exhalation from *Bhagavan's* nostrils, made in the commercial area of a particular city (famous for its fine textiles), praised by experts and ornamented with golden wires by expert artisans. After that he was adorned with *Haar, Ardhahaar,* beautiful ornaments on the chest, single line necklaces, long necklaces, girdle on his waist, a crown and gem necklaces. Finally he was adorned like a *Kalpavriksha* with four types of flower garlands namely *granthim, veshtim, purim* and *sanghatim.*

After embellishing *Bhagavan,* Indra once again performed *Vaikriya Samudghat* and created a huge *Sahasravahini* (carried by one thousand persons) palanquin named Chandraprabha. That palanquin was decorated with illustrations of wolf, bull,

horse, human figures, crocodile, birds, monkey, elephant, *ruru, sarabh,* yak, lion and other animals as well as wild creepers. Mechanical puppets of Vidyadhars were also fixed on it. Besides all this, that palanquin had a glow like thousands of sun rays, so much so that its radiance was difficult to describe in words. Its form could not even be fully evaluated even thousand ways. It had a blinding shine. Strings and nets of pearls also adorned that palanquin. Strings of pearls with golden balls added to its beauty. *Haar, Ardhahaar* and other ornaments were also enriching its beauty. It was very attractive and illustrations of various wild creepers like lotus, *Ashoka, Kund* etc. were painted on it. Its spire was covered with fine and beautiful multicoloured beads, bells and flags. Thus that palanquin was fine, beautiful, attractive, pleasing, enchanting and very charming.

विशेष शब्दों की व्याख्या–देवच्छंदक–जिनदेव का विराजमान होने का स्थान। जाणविमाणं–सवारी या यात्रा वाला विमान। 'वेउव्विएणं समुग्घाएणं समोहणति–वैक्रिय समुद्घात करता है। समुद्घात एक प्रकार की विशिष्ट शक्ति है, जिसके द्वारा आत्म-प्रदेशों का संकोच-विस्तार किया जाता है। वैक्रिय शरीर जिसे मिला हो अथवा वैक्रियलब्धि जिसे प्राप्त हो, वह जीव वैक्रिय करते समय अपने आत्म-प्रदेशों को शरीर से बाहर निकालकर विष्कम्भ और मोटाई में शरीर-परिमाण और लम्बाई में संख्येय योजन-परिमाण दण्ड निकालता है और पूर्वबद्ध वैक्रिय शरीर नामकर्म के पुद्गलों की निर्जरा करता है। वैक्रिय समुद्घात वैक्रिय प्रारम्भ करने पर होता है।

जस्स जतबलं सहस्सेणं–जिसका यंत्र बल (शरीर को शीतल करने की नियंत्रण शक्ति) सहस्र गुनी अधिक हो। इसके बदले पाठान्तर मिलता है–'जस्स य मुल्लं सय-सहस्सेण' इसका अर्थ होता है–जिसका मूल्य एक लाख स्वर्ण-मुद्रा हो। 'तिपडोलतित्तिएणं साहिएणं'–तीन पट लपेटकर सिद्ध किया/बनाया हुआ। अस्सलालापेलयं–अश्व की लार के समान श्वेत या कोमल। पालंब-सुतपट्ट-मउडरयणमालाइं–लम्बा गले का आभूषण, रेशमी धागे से बना हुआ पट्ट–पहनने का वस्त्र, मुकुट और रत्नों की मालाएँ। गंथिम-वेढिम-पूरिम संघातिमेणं मल्लेणं–गूँथी हुई, लपेटकर (वेष्टन से) बनाई हुई, संघात रूप (इकट्ठी करके) बनी हुई माला से। ईहामिग–भेड़िया। सरभ–शिकारी जाति का एक पशु, सिंह, अष्टापद या वानर-विशेष। मुत्ताहलमुत्त-जालतरोयियं–उसका सिरा (किनारा) मोती और मोतियों की जाली से सुशोभित था। तवणीय-पवर-लंबूस-पलंबंत मुत्तदामं–सोने के बने हुए कन्दुकाकार आभूषणों से युक्त मोतियों की मालाएँ उसमें लटक रही थीं। *(पाइअ सद्द महण्णवो तथा आचारांगचूर्णि मू. पा. टि. २६८-२६९)*

Technical Terms : *Devachchhandak*—place where the *Jina* sits; divine arena. *Janavimanam*—a celestial vehicle. *Veuvviyenam samugghayenam samohanit*—performs *Vaikriya Samudghat* (self-controlled transformation or mutation). *Samudghat* is a special capacity to expand and contract sections of soul. A being endowed with *Vaikriya* (mutable or plastic like a fluid) body or *Vaikriya* power (power of self-mutation) can bring out the soul-sections from his body and form cylindrical shape having a width equal to the dimension of his body and length up to countable yojans with the help of this process. Attaining this form he sheds the particles responsible for the pre-acquired or existing body and name. *Vaikriya Samudghat* is done with the help of this process.

Jassa jatabalam sahassenam—one whose power to cool his body is a thousand times more. Available alternative reading is *'jassa ya mullam saya-sahassena'* which means—costing a hundred thousand gold coins. *Tipadolatittiyenam*—made by wrapping three layers. *Assalalapelayam*—white or soft like froth from a horse's mouth. *Palamb-sutapatta-maudarayanmalaim*—long necklace, cloth made of silk thread, a crown and gem-strings. *Ganthim-vedhim-purim-sanghatimenam mallenam*—strung, wrapped, filled and interwoven garlands. *Ihamig*—wolf. *Sarabh*—a carnivorous animal; lion; octopus; a species of monkey. *Muttahalamutta-jalataroyiyam*—its edge was embellished with pearls and pearl strings. *Tavaniya-pavar-lambus-palambant muttadamam*—strings of pearls with golden balls were suspended. *(Paia Sadda Mahannavo and Acharanga Churni text, footnote 268-269)*

शिविकारोहण

३६७. सीया उवणीया जिणवरस्स जर-मरणविप्पमुक्कस्स।
ओसत्तमल्लदामा जल-थलयदिव्वकुसुमेहिं॥७॥

३६७. जरा-मरण से विप्रमुक्त जिनेश्वर महावीर के लिए शिविका लाई गई, जो जल और स्थल पर उत्पन्न होने वाले दिव्य पुष्पों और देव वैक्रियलब्धि से निर्मित पुष्पमालाओं से शोभित थी॥७॥

RIDING THE PALANQUIN

367. A palanquin, decorated with divine flowers growing in water and on earth and created by gods endowed with power of transformation, was brought for *Jineshvar* Mahavir who was free of dotage and death. (7)

३६८. सिबियाए मज्झयारे दिव्वं वररयणरूवचेंचइयं।
सीहासणं महरिहं सपादपीठं जिणवरस्स॥८॥

३६८. उस शिविका के मध्य में दिव्य तथा जिनवर के लिए श्रेष्ठ रत्नों की रूपराशि से (सुसज्जित) तथा पादपीठ से युक्त महामूल्यवान सिंहासन निर्मित था॥८॥

368. In the middle of that palanquin, meant for the *Jina*, rested a divine throne and foot-rest, resplendent with the beauty and radiance of the finest quality of gems (embellishing it). (8)

३६९. आलइयमालमउडो भासुरबोंदी वराभरणधारी।
खोमयवत्थणियत्थो जस्स य मोल्लं सयसहस्सं॥९॥

३६९. उस समय भगवान महावीर श्रेष्ठ आभूषण धारण किये हुए थे। यथास्थान दिव्य माला और मुकुट धारण किये हुए थे। एक लाख रुपया मूल्य वाले दिव्य क्षौम (कपास से निर्मित) वस्त्र पहने हुए थे, इन सबसे भगवान का शरीर देदीप्यमान हो रहा था॥९॥

369. At that time *Bhagavan* Mahavir was wearing splendid ornaments. The crown and the divine garland rested at appropriate places. He was wearing a divine cotton dress worth a hundred thousand gold coins. All these gave a scintillating appearance to the body of *Bhagavan.* (9)

३७०. छट्ठेणं भत्तेणं अज्झवसाणेण सुंदरेण जिणो।
लेस्साहि विसुज्झंतो आरुहई उत्तमं सीयं॥१०॥

३७०. उस समय प्रशस्त अध्यवसाय एवं शुभ लेश्याओं से विशुद्ध षष्ठ भक्त प्रत्याख्यान (बेले की) तपश्चर्या से युक्त भगवान उत्तम शिविका में विराजमान हुए॥१०॥

370. At that time *Bhagavan,* with lofty spiritual thoughts made sublime by pure *leshyas* (the colour-code indicator of purity

चित्र परिचय १४

Illustration No. 14

भगवान महावीर का दीक्षा महोत्सव-जुलूस

भगवान महावीर का दीक्षा महोत्सव करने के लिए देवराज शक्र ने सहस्र पुरुषवाहिनी चन्द्रप्रभा नामक दिव्य शिविका का निर्माण किया। उसके मध्य मे श्रेष्ठ रत्नो से निर्मित पादपीठयुक्त एक महामूल्यवान सिहासन था। श्रेष्ठ उत्तम वस्त्र और अति मूल्यवान आभूषण धारण किये राजकुमार वर्धमान उस शिविका के मध्य आसीन हुए। उनके मस्तक पर देदीप्यमान मुकुट था, गले मे दिव्य सुगधित माला सुशोभित थी। शिविका सर्वप्रथम हर्ष उल्लास से भरे मनुष्यो ने उठाई। फिर क्रमश पूर्व दिशा की ओर से वैमानिक देव, दक्षिण दिशा की ओर से असुरदेव, पश्चिम दिशा की ओर से गरुडदेव तथा उत्तर दिशा की ओर से नागकुमार देव उठकर चलने लगे। हजारो देव-देवियाँ, मनुष्य, स्त्री-पुरुष, बालको का समूह विविध प्रकार के वाद्य बजाते, नाचते, गाते, जय-जयकार करते हुए ज्ञातखड वन की ओर चले।

—अध्ययन १५, सूत्र ३६६-३७८

INITIATION CEREMONY : THE PROCESSION

Shakra, the king of gods, created a divine *Sahasravahini* (carried by one thousand persons) palanquin named *Chandraprabha* for the initiation ceremony of *Bhagavan* Mahavir In the middle of the palanquin rested a very expensive throne and foot-rest embellished with the finest quality of gems Wearing finest quality of clothes and splendid ornaments prince *Vardhaman* sat on the throne. A radiant crown and divine fragrant garlands rested on his head and neck respectively Shakrendra and Ishanendra stood on his flanks and swung divine white *chamars* (whisks). First of all human beings lifted the palanquin with happiness and joy After that it was carried by gods holding its eastern end, demons holding the southern end, Garuds holding the western end and Naagakumar gods holding the northern end. Thousands of gods and goddesses, men and women, and children accompanied it on its way to *Jnatakhand* garden playing various musical instruments, dancing, singing and hailing.

—Chapter 15, aphorism 366-378

of soul) and having observed a two day fast sat in that excellent palanquin. (10)

३७१. सीहासणे णिविट्ठो सक्कीसाणा य दोहिं पासेहिं।
वीयंति चामराहिं मणि-रयणविचित्तदंडाहिं॥११॥

३७१. जब भगवान सिंहासन (शिविका) पर आरूढ़ हुए तब शक्रेन्द्र और ईशानेन्द्र उसके दोनों ओर खड़े होकर मणि-रत्नादि से चित्र-विचित्र हत्थे-डण्डे वाले चामर भगवान पर झुलाने लगे॥११॥

371. When *Bhagavan* rode the palanquin, Shakrendra and Ishanendra stood on his flanks and started swinging *chamars* (whisks) having gem studded beautiful handles. (11)

प्रव्रज्यार्थ प्रस्थान

३७२. पुव्विं उक्खित्ता माणुसेहिं साहट्ठरोमकूवेहिं।
पच्छा वहति देवा सुर-असुरा गरुल-णागिंदा॥१२॥

३७२. सबसे पहले मनुष्यों ने हर्ष एवं उल्लासपूर्वक वह शिविका उठाई, तत्पश्चात् सुर, असुर, गरुड़ और नागेन्द्र आदि देव उसे उठाकर ले चलने लगे॥१२॥

DEPARTURE FOR INITIATION

372. First of all human beings lifted the palanquin with happiness and joy. After that gods, demons and other gods including Garuds and Naagendras lifted and carried the palanquin. (12)

३७३. पुरतो सुरा वहंती असुरा पुण दाहिणम्मि पासम्मि।
अवरे वहंति गरुला णागा पुण उत्तरे पासे॥१३॥

३७३. उस शिविका को पूर्व दिशा की ओर से सुर (वैमानिक देव) उठाकर चलते हैं, असुर दक्षिण दिशा की ओर से, गरुड़ देव पश्चिम दिशा की ओर से और नागकुमार देव उत्तर दिशा की ओर से उठाते हैं॥१३॥

373. That palanquin is carried by gods holding its eastern end, demons holding the southern end, Garuds holding

the western end and Naagakumar gods holding the northern end. (13)

३७४. वणसंडं व कुसुमियं पउमसरो वा जहा सरयकाले।
सोभति कुसुमभरेणं इय गगणतलं सुरगणेहिं॥१४॥

३७४. उस समय देवों के आगमन से आकाशमण्डल वैसा ही सुशोभित हो रहा था, जैसे खिले हुए पुष्पों से वनखण्ड (उद्यान) या शरत्काल में कमलों के समूह से पद्म सरोवर सुशोभित होता है॥१४॥

374. At that time the skies were enriched with the presence of gods exactly as a garden is enriched by blossoming flowers or a pond is enriched by abundance of lotus flowers in winter. (14)

३७५. सिद्धत्थवणं व जहा कणियारवणं व चंपगवणं वा।
सोभति कुसुमभरेणं इय गगणतलं सुरगणेहिं॥१५॥

३७५. उस समय देवों के आगमन से गगन-तल भी वैसा ही सुहावना लग रहा था, जैसे सरसों, कचनार या कणेर या चम्पकवन फूलों के झुण्ड से सुहावना प्रतीत होता है॥१५॥

375. At that time with the presence of gods the expanse of sky appeared enchanting exactly as the fields of mustard and gardens of *kachanar (Bauhinia variegata)* and *kaner* (oleander) appear with abundance of flowers. (15)

३७६. वरपडह-भेरि-झल्लरि-संख सयसहस्सिएहिं तूरेहिं।
गगणयले धरणियले तूरणिणाओ परमरम्मो॥१६॥

३७६. उस समय उत्तम ढोल, भेरी, झाँझ (झालर), शंख आदि लाखों वाद्यों का स्वर-निनाद आकाश और भूमण्डल पर परम रमणीय प्रतीत हो रहा था॥१७॥

376. At that time the sky and earth became extremely endearing with the resonating sounds of millions of splendid musical instruments including drums, trumpets, cymbals and conch-shells. (16)

३७७. तत-विततं घण-झुसिरं आतोज्जं चउविहं बहुविहीयं।
वाएंति तत्थ देवा बहूहिं आणट्टगसएहिं॥१७॥

३७७. वहीं पर देवगण विभिन्न प्रकार के नृत्यों और नाट्यों के साथ अनेक तरह के तत, वितत, घन और शुषिर, यों चार प्रकार के बाजे बजा रहे थे॥१७॥

377. The gods were performing a variety of dances and dramas and playing four types of musical instruments namely *tat, vitat, ghan* and *shushir* (refer to Tenth Chapter). (17)

३७८. तेणं कालेणं तेणं समएणं जे से हेमंताणं पढमे मासे पढमे पक्खे मग्गसिरबहुले, तस्स णं मग्गसिरबहुलस्स दसमीपक्खेणं, सुव्वएणं दिवसेणं, विजएणं मुहुत्तेणं, हत्थुत्तरनक्खत्तेणं जोगोवगएणं पाईणगामिणीए छायाए, विइयाए पोरुसीए, छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं, एगं साडगमायाए चंदप्पभाए सिबियाए सहस्सवाहिणीयाए सदेव-मणुया-ऽसुराए परिसाए समण्णिज्जमाणे २ उत्तरखत्तियकुंडपुरसंणिवेसस्स मज्झंमज्झेणं निग्गच्छति, २ (त्ता) जेणेव णायसंडे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, २ (त्ता) ईसिं रयणिप्पमाणं अच्छोप्पेणं भूमिभागेणं सणियं २ चंदप्पभं सिबियं सहस्सवाहिणिं ठवेति। सणियं २ जाव ठवेत्ता सणियं २ चंदप्पभाओ सिबियाओ सहस्सवाहिणीओ पच्चोयरइ, २ (त्ता) सणियं २ पुरत्थाभिमुहे सीहासणे णिसीयति, २ (त्ता) आभरणालंकारं ओमुयति। तओ णं वेसमणे देवे जन्नुपायपडिए समणस्स भगवओ महावीरस्स हंसलक्खणेणं पडेणं आभरणालंकारं पडिच्छइ।

तओ णं समणे भगवं महावीरे दाहिणे दाहिणं वामेण वामं पंचमुट्ठियं लोयं करेइ। तओ णं सक्के देविंदे देवराया समणस्स भगवओ महावीरस्स जन्नुपायपडिए वइरामएणं थालेणं केसाइं पडिच्छइ, २ (त्ता) 'अणुजाणेसि भंते !' त्ति कट्टु खीरोदं सागरं साहरइ।

तओ णं समणे भगवं महावीरे दाहिणेण दाहिणं वामेणं वामं पंचमुट्ठियं लोयं करेत्ता सिद्धाणं णमोक्कारं करेइ, २ (त्ता) सव्वं मे अकरणिज्जं पावं कम्मं ति कट्टु सामाइयं चरित्तं पडिवज्जइ, सामाइयं चरित्तं पडिवज्जित्ता देवपरिसं च मणुयपरिसं च आलेक्खाचित्तभूयमिव ठवेइ।

३७८. उस काल और उस समय में, जब हेमन्त ऋतु का प्रथम मास, प्रथम पक्ष अर्थात् मार्गशीर्ष मास का कृष्ण पक्ष था। उस मार्गशीर्ष कृष्ण पक्ष की दशमी तिथि के

सुव्रत दिवस के विजय मुहूर्त्त में, हस्तोत्तर (उत्तराफाल्गुनी) नक्षत्र के साथ चन्द्रमा का योग होने पर, पूर्वगामिनी छाया होने पर, द्वितीय पौरुषी (प्रहर) के बीतने पर, निर्जल षष्ठभक्त प्रत्याख्यान के साथ एक मात्र (देवदूष्य) वस्त्र को लेकर भगवान महावीर चन्द्रप्रभा नाम की सहस्रवाहिनी शिविका में विराजमान हुए। यह शिविका देवों, मनुष्यों और असुरों द्वारा उठाई जा रही थी। अतः उनके साथ वे क्षत्रियकुण्डपुर सन्निवेश के बीचोंबीच-मध्य भाग में से होते हुए जहाँ ज्ञातखण्ड नामक उद्यान था, वहाँ पहुँचे। वहाँ पहुँचकर छोटी-सी–हाथ-प्रमाण ऊँची भूमि पर धीरे-धीरे उस सहस्रवाहिनी चन्द्रप्रभा शिविका को रख देते हैं। तब भगवान उसमें से शनैः-शनैः नीचे उतरते हैं; और पूर्वाभिमुख होकर सिंहासन पर बैठ जाते हैं। अलंकारों को उतारते हैं।

तब तत्काल ही वैश्रमणदेव घुटने टेककर श्रमण भगवान महावीर के चरणों में झुकता है और भक्तिपूर्वक उनके उन आभरणालंकारों को हंस के समान श्वेत वस्त्र में ग्रहण कर लेता है।

उसके पश्चात् भगवान ने दाहिने हाथ से दाहिनी ओर के और बाँए हाथ से बाँई ओर के केशों का पंचमुष्ठिक लोच किया। तब देवराज देवेन्द्र शक्र श्रमण भगवान महावीर के समक्ष घुटने टेककर चरणों में झुकता है और हीरे के (वज्रमय) थाल में उन केशों को ग्रहण करता है। और "भगवन् ! आपकी अनुमति है"; यों अनुज्ञा प्राप्त कर उन केशों को क्षीर समुद्र में प्रवाहित कर देता है।

इधर भगवान पंचमुष्टिक लोच पूर्ण करके सिद्धों को नमस्कार करते हैं; और "आज से मेरे लिए सभी पापकर्म अकरणीय हैं", यों उच्चारण करके सामायिक चारित्र अंगीकार करते हैं। उस समय देवों और मनुष्यों दोनों की परिषद् चित्रलिखित-सी स्थिर हो गई थी।

378. During that period and at that time it was the first month and first fortnight of the winter season. On the tenth day of the dark half of the month of *Margashirsh* the hour of the noon had passed and the shadow was on the eastern direction. On that day known as *Suvrata* and at that auspicious moment known as *Vijaya,* observing a two day fast and taking just one divine cloth *Shraman Bhagavan* Mahavir sat in the *sahasravahini* palanquin named Chandraprabha. This palanquin was carried by gods, humans and demons. Thus accompanied by all these and crossing the Kshatriya Kundapur

district he arrived at the Jnatakhand garden. Arriving there the palanquin was placed carefully on one cubit high ground. Slowly *Bhagavan* got down and sat on a throne facing east. He then took off his ornaments.

The *Vaishraman* god at once knelt down and bowed at the feet of *Shraman Bhagavan* Mahavir and collected his ornaments in a piece of cloth as white as a swan.

After that *Bhagavan* pulled out five fistful of his hair those on the right side of his head with his right hand and those on the left side with his left hand. At this time Shakrendra, the king of gods knelt down, bowed before *Bhagavan* Mahavir and collected his hair in a diamond studded plate. "With your permission, Bhagavan !" with these words after seeking permission he disposed the hair in the *Ksheer Samudra* (sea of milk or milky sea).

On the conclusion of pulling out of his hair *Bhagavan* paid homage to the *Siddhas* (the liberated souls) and accepted the conduct of equanimity by uttering—"Since this day all sinful deeds are prohibited for me." At this moment the assembly of human beings and gods became still like a statue.

३७९. दिव्वो मणुस्सघोसो तुरियणिणाओ य सक्कवयणेणं।

खिप्पामेव णिलुक्को जाहे पडिवज्जइ चरित्तं॥१८॥

३७९. जिस समय भगवान चारित्र ग्रहण कर रहे थे, उस समय शक्रेन्द्र के आदेश से शीघ्र ही देवों के दिव्य स्वर, वाद्य के निनाद और मनुष्यों के शब्द स्थगित कर दिये गये। (सब मौन हो गये)॥१८॥

379. When *Bhagavan* was accepting ascetic-conduct the divine music, sounds of musical instruments and the voices of human beings were stopped under orders of Shakrendra. (Every one became silent)

३८०. पडिवज्जित्तु चरित्तं अहोणिसं सव्वपाणभूयहियं।

साहट्टुलोमपुलया पयता देवा निसामेंति॥१९॥

३८०. भगवान चारित्र अंगीकार करके अहर्निश समस्त प्राणियों और भूतों के हित में संलग्न हो गये। सभी देवों ने जब यह सुना तो हर्ष से पुलकित हो उठे।

380. After accepting the ascetic-conduct *Bhagavan* got involved in the well being of all beings and life-forms every moment. All the gods were exhilarated when they heard this.

मन:पर्यवज्ञान की उपलब्धि और अभिग्रह-ग्रहण

३८१. तओ णं समणस्स भगवओ महावीरस्स सामाइयं खाओवसमियं चरित्तं पडिवन्नस्स मणपज्जवणाणे णामं णाणे समुप्पण्णे। अड्ढाइज्जेहिं दीवेहिं दोहिं य समुद्देहिं सण्णीणं पंचेंदियाणं पज्जत्ताणं वियत्तमणसाणं मणोगयाइं भावाइं जाणइ।

तओ णं समणे भगवं महावीरे पव्वइए समाणे मित्त-णाइ-सयण-संबंधिवग्गं पडिविसज्जेति। पडिविसज्जित्ता इमं एयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हति–"बारस वासाइं वोसट्ठकाए चियत्तदेहे जे केई उवसग्गा समुप्पज्जंति, तं जहा–दिव्वा वा माणुसा वा तेरिच्छिया वा, ते सव्वे उवसग्गे समुप्पण्णे समाणे सम्मं सहिस्सामि, खमिस्सामि, अहियासइस्सामि।

३८१. श्रमण भगवान महावीर को क्षायोपशमिक सामायिक चारित्र ग्रहण करते ही मन:पर्यवज्ञान नामक ज्ञान समुत्पन्न हुआ; जिसके द्वारा वे अढाई द्वीप और दो समुद्रों में स्थित पर्याप्त संज्ञी पञ्चेन्द्रिय, व्यक्त मन वाले जीवों के मनोगत भावों को प्रत्यक्ष जानने लगे। श्रमण भगवान महावीर ने प्रव्रजित होते ही अपने मित्र, ज्ञाति, स्वजन-सम्बन्धी वर्ग को वहाँ से विसर्जित कर दिया। विदा करके इस प्रकार का अभिग्रह धारण किया कि "मैं आज से बारह वर्ष तक अपने शरीर का व्युत्सर्ग करता हूँ–देह के प्रति ममत्वभाव का त्याग करता हूँ। इस अवधि में देव-सम्बन्धी, मनुष्य-सम्बन्धी और तिर्यंच-सम्बन्धी जो कोई भी उपसर्ग उत्पन्न होंगे, उन सभी उपसर्गों को मैं सम्यक् प्रकार से तथा समभावपूर्वक सहन करूँगा, क्षमाभाव रखूँगा, शान्ति से झेलूँगा।"

ATTAINING *MANAH-PARYAVA-JNANA*

381. As soon as *Shraman Bhagavan* Mahavir accepted the *Kshayopashamik* (leading to extinction-cum-pacification of *karmas*) equanimous conduct he was endowed with the

knowledge called *Manah-paryav-jnana* with the help of which he gained direct awareness of the thoughts of all sentient five sensed beings existing in *Adhai Dveep* and two seas (a specific area of Jain cosmos). As soon as he got initiated, *Shraman Bhagavan* Mahavir dispersed all his friends, kinfolk, relatives and family members from there. Bidding them farewell he took this resolve—"Since this day I abandon all my fondness for my body for a period of twelve years. During this period I will endure all the afflictions caused by gods, human beings and animals properly and peacefully with equanimity and forgiveness."

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में मुख्यता दो बातों का उल्लेख किया गया है—भगवान को दीक्षा लेते ही मनःपर्यवज्ञान की उपलब्धि और १२ वर्ष तक अपने शरीर के प्रति ममत्व विसर्जन का अभिग्रह। दीक्षा अंगीकार करते ही भगवान एकाकी पर-सहाय से मुक्त होकर सामायिक साधना की दृष्टि से अपने आपको कसना चाहते थे, इसलिए उन्होंने गृहस्थ पक्ष के सभी स्वजनों को तुरन्त विदा कर दिया। स्वयं एकाकी, निःस्पृह, पाणिपात्र एवं निरपेक्ष होकर विचरण करने हेतु देह के प्रति ममत्व त्यागा और आने वाले उपसर्गों को समभाव से सहने का संकल्प कर लिया।

'वोसट्ठकाए' एवं 'चियत्तदेहे' ये दोनों समानार्थक-से दो पदों का प्रयोग इस सूत्र में हुआ है, परन्तु गहराई से देखा जाए तो इन दोनों के अर्थ में अन्तर है। वोसट्ठकाए का संस्कृत रूपान्तर होता है—व्युत्सृष्टकाय—इसके मुख्य तीन अर्थ किये जाते हैं—(१) देह को परित्यक्त कर देना, (२) परिष्काररहित रखना, या (३) कायोत्सर्ग में स्थित रहना। पहला अर्थ यहाँ ग्राह्य नहीं हो सकता, क्योंकि चियत्तदेहे (त्यक्तदेहः) का भी वही अर्थ होता है। अतः 'वोसट्ठकाए' के पिछले दो अर्थ ही यहाँ सार्थक प्रतीत होते हैं। शरीर को परिष्कार करने का अर्थ है—शरीर को साफ करना, नहलाना-धुलाना, तैलादि मर्दन करना या चंदनादि लेप करना, वस्त्राभूषण से सुसज्जित करना या सरस—स्वादिष्ट आहार आदि से शरीर को पुष्ट करना, औषधि आदि लेकर शरीर को स्वस्थ रखने का उपाय करना आदि। इस प्रकार शरीर का परिकर्म-परिष्कार न करना तथा काया का मन से उत्सर्ग करके एक मात्र आत्म-गुणों में लीन रहना ही कायोत्सर्गस्थित रहना है।

'चियत्तदेहे' का जो अर्थ किया गया है, उसका भावार्थ है—शरीर के प्रति ममत्व या आसक्ति का त्याग करना। इसका तात्पर्य यह है कि शरीर को उपसर्गादि से बचाने, उसे पुष्ट व स्वस्थ रखने का कारण तो ममत्व है या 'मेरा शरीर' यह जो देहाध्यास है, उसका त्याग करना। शरीर का मोह व शरीर-सम्बन्धी आकांक्षा का त्याग कर देना।

'सम्मं सहिस्सामि खमिस्सामि अहियासइस्सामि' इन तीनों पदों के अर्थ में अन्तर है। सहिस्सामि का अर्थ है—सहन करूँगा; उपसर्ग आने पर न ही निमित्तों को कोसूँगा, न आर्त्तध्यान करूँगा। सम्यक् प्रकार से या समभावपूर्वक सहन कर लूँगा। खमिस्सामि का अर्थ है—जो कोई भी मुझ पर उपसर्ग करने आयेगा, उसके प्रति क्षमाभाव रखूँगा। किसी प्रकार द्वेष या वैर नहीं रखूँगा।

'अहियासइस्सामि' का अर्थ होता है–शान्ति से, धैर्य से कष्टों को खेदरहित होकर सहूँगा। *[आयारो (प्रथम) ९/२/१३-१६]*

Elaboration—This aphorism mainly mentions two things—*Bhagavan* attained *Manah-paryav-jnana* as soon as he got initiated and he resolved to abandon fondness for his body for twelve years. On getting initiated he became solitary and self-dependent. With the view to practice equanimity he wanted to discipline himself. For this reason he immediately took leave of all his relatives as a householder. In order to move about alone, detached, without possessions and desires he resolved to abandon fondness for his body and to endure afflictions with equanimity.

Vosatthakaye and *chiyattadehe* these two synonymous looking terms have been used in this aphorism. Pondering deeper we find that there are subtle differences in the meanings. The Sanskrit rendering of *vosatthakaye* is *vyutsrishtakaya* and it is interpreted three ways—(1) to neglect the body, (2) to refrain from glamorizing the body, and (3) to remain in the state of dissociation of the mind from the body. The first interpretation is not applicable here because the second term *chiyattadehe* conveys the same meaning. Therefore the remaining two interpretations are applicable here. Glamorizing the body includes cleansing the body, bathing, massaging oil (etc.), applying sandal-wood paste (etc.), adorning the body with clothes and ornaments, nourishing the body with rich and tasty food (etc.) and keeping the body healthy with medicines (etc.). Not to glamorize the body this way and to remain absorbed in the virtues of the soul by dissociating one's mind from his body is to remain in the state of *kayotsarga*.

The interpretation of the term *chiyattadehe* is—to abandon fondness or attachment for one's body. To avoid protecting the body from afflictions. The reason for making the body strong and healthy is the fondness for it or the awareness that this body belongs to me. To be free of this feeling is to abandon all fondness for and desires related to the body.

The meanings of the three phrases *'sammam sahissami, khamissami* and *ahiyasaissami'* have subtle differences. *Sahissami*

means—I will endure; in face of afflictions—I will neither curse the cause nor have tormenting thoughts. I will tolerate them fully with equanimity. *Khamissami* means—I will have a feeling of forgiveness for whoever causes me afflictions and have no aversion or animosity. *Ahiyasaissami* means—I will endure afflictions peacefully with patience and without a feeling of misery. *[Ayaro (I) 9/2/13-16]*

भगवान का विहार एवं उपसर्ग

३८२. तओ णं समणे भगवं महावीरे इमं एयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हित्ता वोसट्ठकाए चत्तदेहे दिवसे मुहुत्तसेसे कुम्मारगामं समणुपत्ते।

तओ णं समणे भगवं महावीरे वोसट्ठकाए चत्तदेहे अणुत्तरेणं आलएणं अणुत्तरेणं विहारेणं, एवं संजमेणं पग्गहेणं संवरेणं तवेणं बंभचेरवासेणं खंतीए मुत्तीए तुट्ठीए समितीए गुत्तीए ठाणेणं कम्मेणं सुचरियफलणिव्वाणमुत्तिमग्गेणं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

३८२. अभिग्रह धारण करने के पश्चात् काया का व्युत्सर्ग एवं काया के प्रति ममत्व का त्याग किये हुए श्रमण भगवान महावीर दिन का एक मुहूर्त्त शेष रहते कर्मार (कुमार) ग्राम पहुँच गये।

उसके पश्चात् श्रमण भगवान महावीर अनुत्तर (सर्वश्रेष्ठ) वसति के सेवन से, अनुपम विहार से एवं अनुत्तर संयम, उपकरण, संवर, तप, ब्रह्मचर्य, क्षमा, निर्लोभता, संतुष्टि (प्रसन्नता), समिति, गुप्ति, कायोत्सर्गादि तथा अनुपम क्रियानुष्ठान से एवं सुचरित के फलस्वरूप निर्वाण और मुक्तिमार्ग–ज्ञान-दर्शन-चारित्र–के सेवन से युक्त होकर आत्मा को भावित करते हुए विहार करने लगे।

WANDERINGS AND AFFLICTIONS

382. After taking the resolution and dissociating himself from the body abandoning all fondness for it, *Shraman Bhagavan* Mahavir arrived at Karmar (Kurmar) village one *muhurt* (48 minutes) before sunset.

After that *Shraman Bhagavan* Mahavir commenced his itinerant way inspiring his soul on the path of liberation and salvation or pursuit of knowledge, perception and conduct, by performing unique activities like—using most ideal places of

stay and way of wandering and with unprecedented discipline, equipment, *samvar* (blocking the inflow of *karmas*), austerities, *brahmacharya* (exclusive indulgence with the self), forgiveness, freedom from greed, contentment (happiness), self-regulation, self-restraint, *kayotsarga* etc.

३८३. एवं विहरमाणस्स जे केइ उवसग्गा समुप्पज्जंति दिव्वा वा माणुस्सा वा तेरिच्छिया वा, ते सव्वे उवसग्गे समुप्पण्णे समाणे अणाइले अव्वहिते अद्दीणमाणसे तिविहमण-वयण-कायगुत्ते सम्मं सहति खमति तितिक्खति अहियासेति।

३८३. इस प्रकार विहार करते हुए श्रमण भगवान महावीर को देव-सम्बन्धी, मनुष्य-सम्बन्धी और तिर्यंच-सम्बन्धी जो कोई उपसर्ग उत्पन्न होते, उन सब उपसर्गों के आने पर उन्हें अकलुषित, अव्यथित, दीनतारहित एवं मन-वचन-काया की त्रिविध प्रकार की गुप्तियों से गुप्त होकर सम्यक् प्रकार से समभावपूर्वक सहन करते। उपसर्ग देने वाले को क्षमा करते, सहिष्णुभाव धारण करते तथा शान्ति और धैर्य से झेलते थे।

383. Wandering thus *Shraman Bhagavan* Mahavir endured all afflictions caused by gods, humans or animals he faced, with perfection and equanimity, remaining unblemished and undisturbed, without dejection and exercising threefold restraint of mind, speech and body. He forgave the perpetrators of these afflictions and endured these with tolerance, serenity and patience.

भगवान को केवलज्ञान की प्राप्ति

३८४. तओ णं समणस्स भगवओ महावीरस्स एएणं विहारेणं विहरमाणस्स बारस वासा वीइक्कंता, तेरसमस्स वा वासस्स परियाए वट्टमाणस्स जे से गिम्हाणं दोच्चे मासे चउत्थे पक्खे वेसाहसुद्धे तस्स णं वेसाहसुद्धस्स दसमीपक्खेणं सुव्वएणं दिवसेणं विजएणं मुहुत्तेणं हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं पाईणगामिणीए छायाए वियत्ताए पोरुसी जंभियगामस्स णगरस्स बहिया नइए उज्जुवालियाए उत्तरे कूले सामागस्स गाहावइस्स कट्ठकरणंसि वियावत्तस्स चेइयस्स उत्तरपुरत्थिमे दिसिभागे सालरुक्खस्स अदूरसामंते उक्कुडुयस्स गोदोहियाए आयावणाए आयावेमाणस्स छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं उड्ढं जाणुं अहोसिरस्स धम्मज्झाणोवगयस्स झाणकोट्ठोवगयस्स सुक्कज्झाणंतरियाए वट्टमाणस्स

चित्र परिचय १५

Illustration No. 15
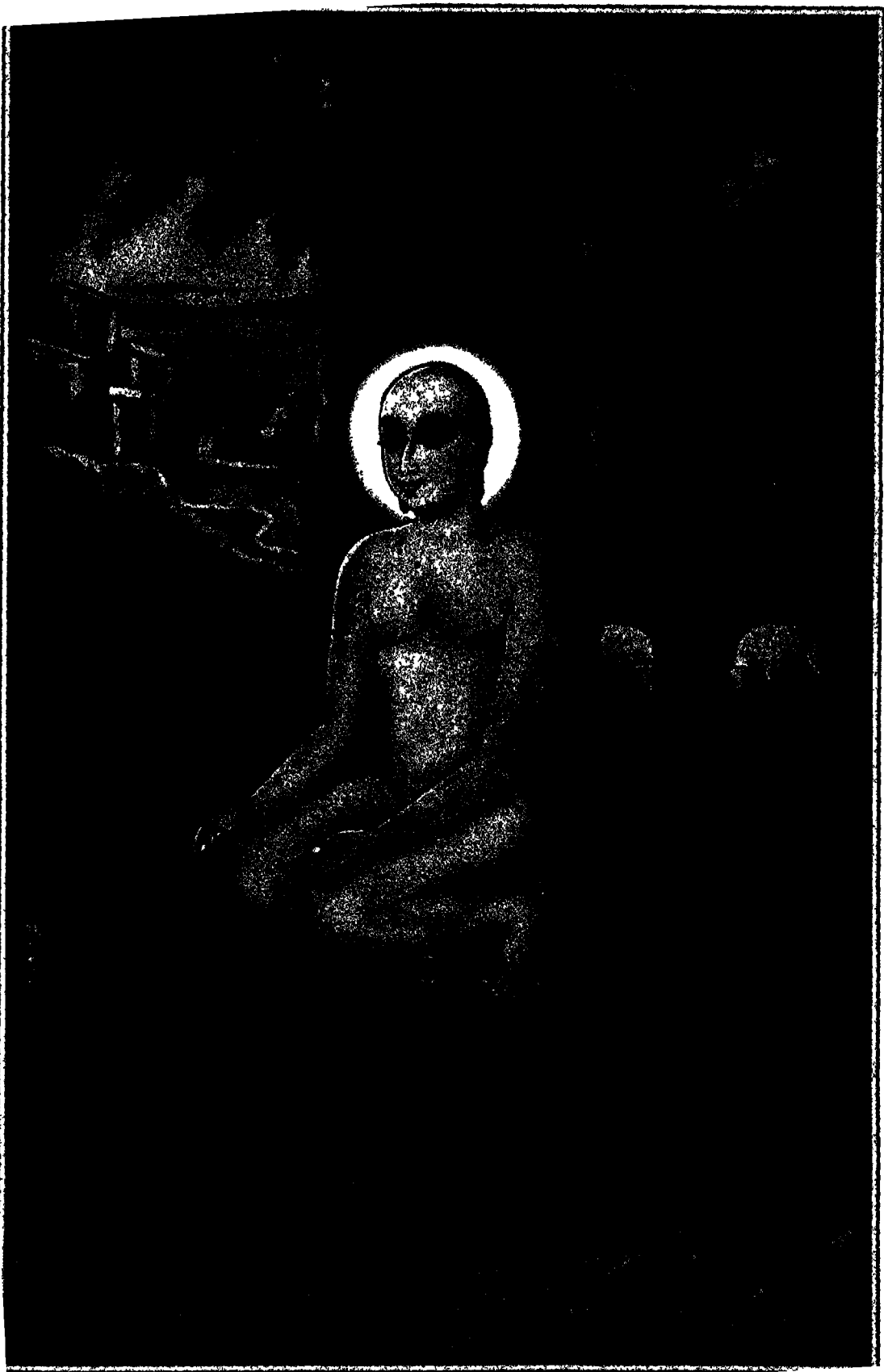
भगवान को केवलज्ञान-प्राप्ति

श्रमण भगवान महावीर को दीक्षा लिए बारह वर्ष पूर्ण हो गये। तेरहवे वर्ष के छठे महीने ग्रीष्म के वैशाख शुक्ला दशमी के दिन विजय मुहूर्त्त मे उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र मे दिन का अतिम प्रहर जब सूर्य पश्चिम दिशा की तरफ ढल रहा था तब जृम्भक गाँव के बाहर बहने वाली ऋजुबालिका नदी के तट पर श्यामाक गृहपति के खेत मे, शाल-वृक्ष के नीचे उकडू आसन होकर गोदोहासन से बैठे सूर्य की आतापना ले रहे थे। उस दिन भगवान का निर्जल षष्ठभक्त (बेला) का तप था। तभी अज्ञान एव दु.ख से सम्पूर्ण निवृत्ति दिलाने वाला अनुत्तर श्रेष्ठ केवलज्ञान, केवलदर्शन उत्पन्न हुआ। भगवान अर्हत, जिन, केवली बने।

–अध्ययन १५, सूत्र ३८४, ३८६

ATTAINING *KEVAL-JNANA*

Twelve years passed since *Shraman Bhagavan* Mahavir got initiated It was the sixth month of the thirteenth year It was the tenth day of the bright half of the month of *Vaishakha* and the shadows had moved to the east during the last quarter of the day On the auspicious moment called *Vijaya* when the moon entered the *Uttaraphalguni* lunar mansion outside of Jrimbhak village on the bank of Rijubaluka river in the farm belonging to citizen Shyamak near a *Shaal* tree he was meditating squatting in the *Godohak* posture enduring the heat of the sun. At the same time he was also observing the *Chhatthabhakt* penance (fasting for two days). At that time he acquired the supreme and perfect *Keval-jnana* and *Keval-darshan* that completely liberate one from ignorance and miseries. *Bhagavan* Mahavir became *Arhat, Jina*, all knowing and *Kevali*

—Chapter 15, aphorism 384, 386

णिव्वाणे कसिणे पडिपुण्णे अव्वाहए णिरावरणे अणंते अणुत्तरे केवलवरणाण-दंसणे समुप्पण्णे।

३८४. उसके पश्चात् श्रमण भगवान महावीर को इस प्रकार से विचरण करते हुए बारह वर्ष व्यतीत हो गये। तेरहवें वर्ष के मध्य में ग्रीष्म ऋतु के दूसरे मास और चौथे पक्ष में अर्थात् वैशाख शुक्ला दशमी के दिन, सुव्रत नामक दिवस में, विजय मुहूर्त्त में उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र के साथ चन्द्रमा का योग आने पर, पूर्वगामिनी छाया होने पर दिन के दूसरे (पिछले) प्रहर में जृम्भकग्राम नामक नगर के बाहर ऋजुबालिका नदी के उत्तर तट पर श्यामाक गृहपति के काष्ठकरण नामक क्षेत्र में, वैयावृत्य नामक चैत्य (उद्यान) के ईशानकोण में शालवृक्ष के निकट, उत्कटुक (उकडू) होकर गोदोहासन से सूर्य की आतापना लेते हुए, निर्जल षष्ठभक्त (प्रत्याख्यान) तप से युक्त, ऊपर घुटने और नीचा सिर झुकाकर धर्मध्यान में युक्त, ध्यानकोष्ठ में प्रविष्ट हुए भगवान जब शुक्लध्यानान्तरिका में अर्थात् लगातार शुक्लध्यान के मध्य में प्रवर्तमान थे, तभी उन्हें अज्ञान एवं दुःख से पूर्ण निवृत्ति दिलाने वाला, सम्पूर्ण, प्रतिपूर्ण, अव्याहत, निरावरण अनन्त, अनुत्तर श्रेष्ठ केवलज्ञान-केवलदर्शन उत्पन्न हुआ।

ATTAINING OMNISCIENCE

384. Twelve years passed since *Shraman Bhagavan* Mahavir commenced his itinerant way. It was the fourth fortnight of the second month of summer season during the middle of the thirteenth year of his practices. It was the tenth day of the bright half of the month of *Vaishakha* and the shadows had moved to the east during the last quarter of the day. On this auspicious day called *Suvrat* and auspicious moment called *Vijaya* when the moon entered the *Uttaraphalguni* lunar mansion outside of Jrimbhak village on the bank of Rijubaluka river in the Kastakaran area belonging to citizen Shyamak near a *Shaal* tree on the north-east of Vaiyavritya Chaitya (temple complex) *Shraman Bhagavan* Mahavir was meditating with ultimate concentration squatting in the *Godohak* posture enduring the heat of the sun. At the same time he was also observing the *Chhatthabhakt* penance (fasting for two days

without water). Sitting with his head bowed on his high knees, absorbed in sublime meditation in the ethereal chamber of meditation, when he was flowing in the continuous stream of *Shukla Dhyan* (the most sublime and pure meditation) he acquired the total, supreme, uninhibited, unveiled, infinite and perfect *Keval-jnana* (right knowledge) and *Keval-darshan* (right perception) that completely liberate one from ignorance and miseries.

३८५. से भगवं अरहा जिणे जाणए केवली सव्वण्णू सव्वभावदरिसी सदेव-मणुया-ऽसुरस्स लोगस्स पज्जाए जाणइ, तं जहा–आगइं गइं ठिइं चयणं उववायं भुत्तं पीयं कडं पडिसेवियं आविकम्मं रहोकम्मं लवियं कहियं मणोमाणसियं सव्वलोए सव्वजीवाणं सव्वभावाइं जाणमाणे पासमाणे एवं चाए विहरइ।

३८५. वे भगवान अब अर्हत्, जिन, ज्ञायक, केवली, सर्वज्ञ, सर्वभावदर्शी हो गये। अब वे देवों, मनुष्यों और असुरों सहित समस्त लोक के पर्यायों को जानने लगे। जैसे कि जीवों की आगति, गति, स्थिति, च्यवन, उपपात, उनके भुक्त (खाए हुए) और पीत (पीए हुए) सभी पदार्थों को, तथा उनके द्वारा कृत (किये हुए), प्रतिसेवित, प्रकट एवं गुप्त सभी कर्मों (कामों) को, तथा उनके द्वारा बोले हुए, कहे हुए तथा मन के भावों को जानते, देखते थे।' वे सम्पूर्ण लोक में स्थित सब जीवों के समस्त भावों को तथा समस्त परमाणु पुद्गलों को जानते-देखते हुए विचरण करने लगे।

385. And then *Bhagavan Mahavir* became *Arhat* (the revered one), *Jina* (the conqueror), all knowing, and *Kevali-sarvajna-sarvadarshi* or omniscient. Now he could observe and understand all forms of life in the world including gods, humans and demons. He could observe and understand all visible and invisible activities of all beings in the universe including their *aagati* (from where one comes), *gati* (movements into different states), *sthiti* (duration in a particular state), *chyavan* (descent), *upapat* (spontaneous birth); things they have *bhukta* (what one has eaten), *peet* (what one has drunk); all their acts done or got done and open or secret; all their thoughts spoken or unspoken.

Seeing and knowing every thought of every being and all ultimate particles and matter in this universe, *Arhat* Mahavir commenced his itinerant way.

कैवल्य महोत्सव

३८६. जं णं दिवसं समणस्स भगवओ महावीरस्स णेव्वाणे कसिणे जाव समुप्पन्ने तं णं दिवसं भवणवइ-वाणमंतर-जोइसिय-विमाणवासिदेवेहिं य देवीहिं य ओवयंतेहिं य जाव उप्पिंजलगभूए यावि होत्था।

३८६. जिस दिन श्रमण भगवान महावीर को अज्ञान-दुःख-निवृत्तिदायक सम्पूर्ण यावत् अनुत्तर केवलज्ञान-केवलदर्शन उत्पन्न हुआ, उस दिन भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क एवं विमानवासी देव और देवियों के आने-जाने से एक महान् दिव्य देवोद्योत हुआ, देवों का मेला-सा लग गया, देवों का कलकल नाद होने लगा, वहाँ का सारा आकाश-मण्डल हलचल से व्याप्त हो गया।

***KAIVALYA* CELEBRATIONS**

386. The day *Shraman Bhagavan* Mahavir was endowed with the total, supreme (etc.) *Keval-jnana* and *Keval-darshan* that completely liberates one from ignorance and miseries, numerous *Bhavanpati, Vanavyantar, Jyotishi* and *Vaimanik* gods and goddesses descended from heavens. The collective radiance of their upward and downward movement filled the skies with a divine glow. There was a festival-like commotion and skies were filled with their laughter and activity.

३८७. तओ णं समणे भगवं महावीरे उप्पन्नणाण-दंसणधरे अप्पाणं च लोगं च अभिसमिक्ख पुव्वं देवाणं धम्ममाइक्खइ तओ पच्छा माणुसाणं।

३८७. तदनन्तर अनुत्तर ज्ञान-दर्शन के धारक श्रमण भगवान महावीर ने केवलज्ञान द्वारा अपनी आत्मा और लोक को सम्यक् प्रकार से जानकर पहले देवों को, तत्पश्चात् मनुष्यों को धर्मोपदेश दिया।

387. After that, endowed with perfect knowledge and perception, *Shraman Bhagavan* Mahavir, knowing his soul and the universe through his omniscience, gave his sermon first to the gods and then to the humans.

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र में बताया है, भगवान ने पहले देवों को तत्पश्चात् मनुष्यों को धर्मोपदेश दिया। स्थानांगसूत्र (१०) में बताया है भगवान की प्रथम प्रवचन सभा में केवल देव ही उपस्थित थे। उस समय कोई मानव वहाँ उपस्थित नहीं था। देवता धर्मदेशना सुनकर त्याग, व्रत नियम आदि स्वीकार नहीं कर सके, इसलिए व्रत स्वीकार करने की दृष्टि से प्रथम प्रवचन निष्फल रहा। इसलिए इसे आश्चर्य (अच्छेरा) माना है। फिर दूसरे दिन पावापुरी में प्रथम समवसरण की रचना हुई जिसमें मनुष्यों को उपदेश दिया। *(हिन्दी टीका, पृ. १४१६)*

Elaboration—This aphorism informs that *Bhagavan* gave his sermon first to the gods and then to the humans. *Sthananga Sutra* informs that in the first discourse of *Bhagavan* only gods were present. At that time no human being was present there. On listening to the sermon the gods could not accept the codes of renouncing, vows etc. Thus from the angle of accepting vows the first discourse was a failure. That is the reason this incident is considered unusual or a miracle. After that, on the second day the first divine pavilion was created where he gave his sermon to human beings. *(Hindi Tika, p 1416)*

पंचमहाव्रत एवं षड्जीव निकाय की प्ररूपणा

३८८. तओ णं समणे भगवं महावीरे उप्पन्नणाण-दंसणधरे गोयमाईणं समणाणं णिग्गंथाणं पंच महव्वयाइं सभावणाइं छज्जीवणिकायाइं आइक्खइ भासइ परूवेइ, तं जहा—पुढवीकाए जाव तसकाए।

३८८. तत्पश्चात् केवलज्ञान-केवलदर्शन को धारण करने वाले श्रमण भगवान महावीर ने गौतम आदि श्रमण-निर्ग्रन्थों को (लक्ष्य करके) भावना सहित पंच महाव्रतों और पृथ्वीकाय से लेकर त्रसकाय तक षड्जीवनिकायों के स्वरूप का प्रवचन-प्ररूपण किया।

FIVE GREAT VOWS AND SIX LIFE-FORMS

388. After that, endowed with perfect knowledge and perception, *Shraman Bhagavan* Mahavir propagated and taught Gautam and other *Shramans* five great vows with *bhaavanas* and six life-forms from earth-bodied beings to mobile-bodied beings.

३८९. पढमं भंते ! महव्वयं पच्चक्खामि सव्वं पाणाइवायं। से सुहुमं वा बायरं वा तसं वा थावरं वा णेव सयं पाणाइवायं करेज्जा ३ जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणसा वयसा कायसा। तस्स भंते ! पडिक्कमामि निन्दामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।

३८९. (प्रथम महाव्रत के विषय में मुनि-प्रतिज्ञा ग्रहण करता है) "भंते ! मैं प्रथम महाव्रत में सम्पूर्ण प्राणातिपात (हिंसा) का प्रत्याख्यान करता हूँ। मैं सूक्ष्म-स्थूल और त्रस-स्थावर समस्त जीवों का न तो स्वयं प्राणातिपात करूँगा, न दूसरों से कराऊँगा और न प्राणातिपात करने वालों का अनुमोदन करूँगा; इस प्रकार मैं यावज्जीवन तीन करण (करना, कराना, अनुमोदना) से एवं मन-वचन-काया–तीन योगों से इस पाप से निवृत्त होता हूँ। हे भगवन् ! मैं उन पूर्वकृत पापों का प्रतिक्रमण करता हूँ, (आत्म-साक्षी से–) निन्दा करता हूँ और (गुरु साक्षी से–) गर्हा करता हूँ; अपनी आत्मा से पाप का व्युत्सर्ग (पृथक्करण) करता हूँ।"

FIRST GREAT VOW

389. (An ascetic resolves to accept the first great vow saying—) *"Bhante* ! I hereby completely abstain from causing any injury to any or all living beings. I will never cause injury to any minute or gross, mobile or immobile, living beings; neither will I induce others to do so, or approve of others doing so. I will observe this great vow through three means (mind, speech and body) and three methods (doing, inducing and approving). Bhante ! I critically review any such injury done in the past denounce it (considering soul as my witness), censure it (considering my *guru* as my witness) and earnestly desist from indulging in it (and expel this sin from my soul).

विवेचन–स्थूल दृष्टि से केवल हनन करना ही हिंसा समझा जाता है, इसीलिए सूक्ष्म चिन्तन के साथ शास्त्रकार ने यहाँ 'प्राणातिपात' शब्द मूल पाठ में रखा है। 'प्राणातिपात' का अर्थ है प्राणों का अतिपात–नाश करना। प्राण का अर्थ केवल श्वासोच्छ्वास या प्राण-अपानादि पंचप्राण ही नहीं है, अपितु पाँच इन्द्रिय, तीन मन-वचन-कायबल, श्वासोच्छ्वास और आयुबल, यों दस प्राणों में से किसी भी एक या अधिक प्राणों का नाश करना, उनको पीडा पहुँचाना प्राणातिपात हो जाता है। स्थूल दृष्टि वाले लोग स्थूल आँखों से दिखाई देने वाले (त्रस) चलते-फिरते जीवों

को ही जीव मानते हैं, एकेन्द्रिय जीवों को नहीं, इसलिए यहाँ मुख्य चार प्रकार के जीवों-सूक्ष्म, बादर, स्थावर और त्रस का उल्लेख किया है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पतिकाय के एकेन्द्रिय जीवों को स्थावर कहते हैं और द्वीन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक के जीवों को त्रस कहते हैं। सूक्ष्म और बादर ये दोनों विशेषण एकेन्द्रिय जीवों के हैं। जावज्जीवाए-आजीवन करना, कराना और अनुमोदन करना ये तीन करण और मन, वचन एवं काया का व्यापार ये तीन योग कहलाते हैं।

Elaboration—*Pranatipat*—Generally speaking only killing is considered *himsa* or violence. Therefore, after serious contemplation the author has used *pranatipat* in place of *himsa* in the original text. *Pranatipat* means 'to destroy *prans*'. *Pran* does not only mean exhalation and inhalation or the five types of winds in the body (an *Ayurvedic* concept). It, in fact, means ten kinds of pran (life-face)—five sense organs, three capacities of mind, speech and body, breathing and life-span Therefore causing injury to or destroying any of these ten *prans* is called *pranatipat*. Those having just the gross vision accept only the visible mobile beings as life-forms and not the one sensed beings. That is the reason for explicit mention of four types of beings—minute or gross, mobile or immobile. The one sensed life-forms with earth, water, fire, air and plant bodies are called *sthavar* or immobile. The beings with two to five senses are called *tras* or mobile beings. The adjectives minute and gross are specially for one sensed beings. *Javajjivaye*—to do, induce others to do and approve others doing, these are three methods *(karan)*; and the activities of mind, speech and body are called three *yogas*.

पाँच भावनाएँ

३९०. तस्सिमाओ पंच भावणाओ भवंति-

(१) तत्थिमा पढमा भावणा इरियासमिए से णिग्गंथे, णो अणइरियासमिए त्ति। केवली बूया अणइरियासमिए से णिग्गंथे पाणाइं भूयाइं जीवाइं सत्ताइं अभिहणेज्ज वा वत्तेज्ज वा परियावेज्ज वा लेसेज्ज वा उद्दवेज्ज वा। इरियासमिए से णिग्गंथे, णो अणइरियासमिए त्ति पढमा भावणा।

३९०. उस प्रथम महाव्रत की पाँच भावनाएँ इस प्रकार होती हैं–

(१) उसमें पहली भावना यह है–निर्ग्रन्थ ईर्यासमिति से युक्त होता है ईर्यासमिति से रहित नहीं। केवली भगवान कहते हैं–ईर्यासमिति से रहित निर्ग्रन्थ प्राणी, भूत, जीव और सत्त्व का हनन करता है, धूल आदि से ढकता है, दबा देता है, परिताप देता है, चिपका देता है या पीड़ित करता है। इसलिए निर्ग्रन्थ ईर्यासमिति से युक्त होकर रहे, ईर्यासमिति से रहित होकर नहीं। यह प्रथम भावना है।

FIVE *BHAAVANAS*

390. The five *bhaavanas* (attitudes) of that first vow are as follows—

(1) The first *bhaavana* is—A *nirgranth* observes *irya samiti* (the attitude of moving carefully) and is not without it. The *Kevali* says—a *nirgranth* without *irya samiti* destroys beings, organisms, souls and entities; he covers them with dust (etc.), crushes them, injures them, compresses them and hurts them. Therefore a *nirgranth* should live with *irya samiti* and not without it. This is the first *bhaavana.*

(२) अहावरा दोच्चा भावणा मणं परियाणइ से णिग्गंथे। जे य मणे पावए सावज्जे सकिरिए अण्हयकरे छेयकरे भेयकरे अहिकरणिए पाउसिए पारियाविए पाणाइवाइए भूओवघाइए तहप्पगारं मणं णो पधारेज्जा गमणाए। मणं परिजाणइ से णिग्गंथे, जे य मणे अपावए त्ति दोच्चा भावणा।

(२) इसके पश्चात् दूसरी भावना यह है–मन को जो अच्छी प्रकार जानकर पापों से विरत करता है। जो मन पापयुक्त है, सावद्य है, क्रियाओं से युक्त है, कर्मों का आस्रवकारक है, छेदन-भेदनकारी है, क्लेश-द्वेषकारी है, परितापकारी है। प्राणियों के प्राणों का अतिपात करने वाला और जीवों का उपघात करने वाला है। साधु इस प्रकार के मन (मानसिक विचारों) को धारण (ग्रहण) न करे। जो मन को भलीभाँति जानकर पापकारी विचारों से दूर रखता है, वही निर्ग्रन्थ है। जिसका मन पापों से रहित है। (वह निर्ग्रन्थ है) यह द्वितीय भावना है।

(2) The second *bhaavana* is—A *nirgranth* knows his mind well and frees it of sins. A *nirgranth* should not have a mind

(thought) that is filled with sins, sinful thoughts, sinful actions; that has an inflow of *karmas,* that pierces and penetrates, that produces friction and aversion, that disturbs the *prans* (life-forces) of beings and destroys beings. Only he is a *nirgranth* who knows his mind well and keeps it away from sinful thoughts. One whose mind is free of sins (is a *nirgranth*). This is the second *bhaavana.*

(३) अहावरा तच्चा भावणा–वइं परिजाणइ से णिग्गंथे, जा य वई पाविया सावज्जा सकिरिया जाव भूओवघाइया तहप्पगारं वइं णो उच्चारेज्जा। जे वइं परिजाणइ से णिग्गंथे जा य वइ अपाविय त्ति तच्चा भावणा।

(३) इसके पश्चात् तृतीय भावना इस प्रकार है–जो साधक वचन का स्वरूप भलीभाँति जानकर दोपयुक्त वचनों का परित्याग करता है, वह निर्ग्रन्थ है। जो वचन पापकारी, सावद्य, क्रियाओं से युक्त, कर्मों का आस्रवजनक, छेदन-भेदनकर्त्ता, क्लेश-द्वेषकारी है, परितापकारी है, प्राणियों के प्राणों का अतिपात करने वाला और जीवों का उपघात करने वाला है; साधु इस प्रकार के वचन का उच्चारण न करे। जो वाणी के दोषों को भलीभाँति जानकर सदोष वाणी का परित्याग करता है, वही निर्ग्रन्थ है। उसकी वाणी पापदोषरहित हो, यह तृतीय भावना है।

(3) The third *bhaavana* is—A *nirgranth* knows well the form of sound or word and avoids faulty speech. A *nirgranth* should not use words (speech) that cause sin, are sinful, have sinful actions; that have an inflow of *karmas,* that pierce and penetrate, that produce friction and aversion, that disturb the *prans* (life-forces) of beings and destroy beings. Only he is a *nirgranth* who knows the faults of speech well and avoids faulty speech. One whose speech is free of faults (is a *nirgranth*). This is the third *bhaavana.*

(४) अहावरा चउत्था भावणा–आयाणभंडमत्तणिक्खेवणासमिए से णिग्गंथे, णो अणादाणभंडमत्तणिक्खेवणासमिए। केवली बूया–आयाणभंडमत्तणिक्खेवणाअसमिए से णिग्गंथे पाणाइं भूयाइं जीवाइं सत्ताइं अभिहणेज्ज वा जाव उद्दवेज्ज वा। तम्हा आयाणभंडमत्तणिक्खेवणासमिए से णिग्गंथे, णो आयाणभंडमत्तणिक्खेवणाअसमिए त्ति चउत्था भावणा।

(४) तदनन्तर चौथी भावना इस प्रकार है–जो आदान-भाण्डमात्र निक्षेपणासमिति से युक्त है, वह निर्ग्रन्थ है। केवली भगवान कहते हैं–जो निर्ग्रन्थ आदान-भाण्डमात्र निक्षेपणासमिति से रहित है, वह प्राणियों, भूतों, जीवों और सत्वों का अभिघात करता है, उन्हें आच्छादित कर देता है–दबा देता है, परिताप देता है, चिपका देता है या पीड़ा पहुँचाता है। इसलिए जो आदान-भाण्डमात्र निक्षेपणासमिति से युक्त है, वही निर्ग्रन्थ है, जो आदान भाण्डमात्र निक्षेपणासमिति से रहित है, वह नहीं। यह चतुर्थ भावना है।

(4) The fourth *bhaavana* is—A *nirgranth* possesses an attitude of taking proper care while accepting and keeping ascetic equipment such as clothes and pots. The *Kevali* says—A *nirgranth* without such attitude destroys beings, organisms, souls and entities; he covers them with dust (etc.), crushes them, injures them, compresses them and hurts them. Only he is a *nirgranth* who possesses the attitude of taking proper care while accepting and keeping ascetic equipment such as clothes and pots; one who is devoid of it is not. This is the fourth *bhaavana.*

(५) अहावरा पंचमा भावणा–आलोइयपाण-भोयणभोई से णिग्गंथे, णो अणालोइयपाण भोयणभोई। केवली बूया–अणालोइयपाण-भोयणभोई से णिग्गंथे पाणाणि वा भूयाणि वा जीवाणि वा सत्ताणि वा अभिहणेज्ज वा जाव उद्दवेज्ज वा। तम्हा आलोइयपाण-भोयणभोई से णिग्गंथे, णो अणालोइयपाण-भोयणभोई त्ति पंचमा भावणा।

एत्ताव ताव महव्वए सम्मं काएण फासिए पालिए तीरिए किट्टिए अवट्ठिए आणाए आराहिए यावि भवइ।

पढमे भंते ! महव्वए पाणाइवाआओ वेरमणं।

(५) इसके पश्चात् पाँचवीं भावना यह है–जो साधक आलोकित (देखभालकर) पान-भोजन-भोजी होता है, वह निर्ग्रन्थ होता है, अनालोकित-पान-भोजन-भोजी नहीं। केवली भगवान कहते हैं–जो बिना देखेभाले ही आहार-पानी का सेवन करता है, वह निर्ग्रन्थ प्राणों, भूतों, जीवों और सत्त्वों का हनन करता है यावत् उन्हें पीड़ा पहुँचाता है। अतः जो देखभालकर आहार-पानी का सेवन करता है, वही निर्ग्रन्थ है, बिना देखेभाले आहार-पानी करने वाला नहीं। यह पंचम 'भावना' है।

इस प्रकार पाँच भावनाओं से युक्त प्राणातिपात विरमणरूप प्रथम महाव्रत का भलीभाँति काया से स्पर्शना (स्वीकार) करने पर, उसका पालन करने पर, संपन्न करने पर, कीर्तन करने पर, अवस्थित करने पर भगवदाज्ञा के अनुरूप आराधन हो जाता है।

हे भगवन् ! यह प्राणातिपात विरमणरूप प्रथम महाव्रत है।

(5) The fifth *bhaavana* is—A *nirgranth* is one who eats food only after careful inspection, one who eats unchecked food is not. The *Kevali* says—A *nirgranth* who eats unchecked food destroys beings, organisms, souls and entities; he covers them with dust (etc.), crushes them, injures them, compresses them and hurts them. Only he is a *nirgranth* who eats food after careful inspection; one who eats unchecked food is not. This is the fifth *bhaavana*.

In this way the first great vow with its five *bhaavanas* is properly touched by the body (accepted), observed, accomplished, praised, established and practiced according to the precepts of *Bhagavan*.

Bhante ! This is the first great vow called *pranatipata viramana* or abstaining from causing any injury to any being

विवेचन–प्रथम महाव्रत की सम्यक् आराधना कैसे हो सकती है? इसके लिए पाँच क्रम बताए हैं–(१) स्पर्शना, (२) पालना, (३) तीर्णता, (४) कीर्तना, और (५) अवस्थितता। सम्यक् श्रद्धा प्रतीतिपूर्वक महाव्रत का ग्रहण करना **स्पर्शना** है, ग्रहण के बाद उसका यथाशक्ति पालन करना, उसकी सुरक्षा करना **पालना** है। जो महाव्रत स्वीकार कर लिया है, उसे जीवन पर्यन्त पार लगाना, चाहे उसमें कितनी ही विघ्न-बाधाएँ, रुकावटें आयें, परन्तु कृत निश्चय से पीछे नही हटना, जीवन के अन्तिम श्वास तक उसका पालन करना **तीर्ण** होना है। तथा स्वीकृत महाव्रत का महत्त्व समझकर उसकी प्रशंसा करना, दूसरों को उसकी विशेषता समझाना **कीर्तन** करना है। कितने ही झझावात आयें, भय या प्रलोभन आयें गृहीत महाव्रत में डटा रहे, विचलित न हो–यह **अवस्थितता** है।

चूर्णिकार ने विवेचन करते हुए कहा है–आत्मा को उन प्रशस्त भावों से भावित करना भावना है। जैसे शिलाजीत के सात लोहरसायन की भावना दी जाती है, कोद्रव की विष के साथ भावना दी जाती है, इसी प्रकार ये भावनाएँ हैं। ये चारित्र भावनाएँ हैं। महाव्रतो के गुणो में वृद्धि करने हेतु ये भावनाएँ बताई गई हैं। इन भावनाओं के कारण प्रथम महाव्रत की शुद्ध आराधना सम्भव होती है। *(आचाराग चूर्णि मू. पा. टि., पृ. २७८)*

प्रथम महाव्रत की पाँच भावनाएँ प्रस्तुत में संक्षेप में इस प्रकार हैं–(१) ईर्यासमिति से युक्त होना। ईर्या का अर्थ है–गमन करना। समिति का अर्थ है–सम्यक् रीति से, विवेक या सावधानीपूर्वक। चलते समय अपने शरीर प्रमाण भूमि को देखते हुए जीव-हिंसा से बचते हुए चलना ईर्यासमिति है। (२) मन को सम्यक् दिशा में प्रयुक्त करना, मन को पवित्र रखना। (३) भाषासमिति या वचनगुप्ति का पालन करना, निर्दोष भाषा का प्रयोग करना। (४) आदान-भाण्डमात्र निक्षेपणासमिति का पालन करना। आदान-भाण्डमात्र निक्षेपणा का अर्थ है–वस्त्रपात्र आदि उपकरण लेने और रखने में सावधानी या विवेक रखना। (५) अवलोकन करके आहार-पानी करना।

तत्त्वार्थसूत्र में अहिंसा महाव्रत की पाँच भावनाओं का क्रम कुछ भिन्न है-(१) वचनगुप्ति, (२) मनोगुप्ति, (३) ईर्यासमिति, (४) आदान निक्षेपणासमिति, और (५) आलोकित पान-भोजन।

Elaboration—How the practice of the first great vow can be done properly ? Five steps are mentioned for this—(1) *sparshana,* (2) *palana,* (3) *teernata,* (4) *kirtana,* and (5) *avasthitata.* To accept a great vow with right faith and awareness is called *sparshana.* To correctly observe and secure it to the best of ones capacity is called *palana* To follow the accepted vow throughout one's life in face of all obstacles and hurdles; not to break one's resolve and stick to it till the last moment is called *teernata* or accomplishment. To understand the importance of the accepted vow, praise it and explain it to others is called *kirtana.* To remain firmly established in the accepted vow and not to get disheartened in face of disturbance, fear or enticement is called *avasthitata* (establishing)

The five *bhaavanas* of the first great vow in brief are as follows—(1) To observe *irya samiti. Irya* means movement. *Samiti* means correctly, prudently or carefully. To keep in view an area equal to the height of ones body and avoid harming beings while moving is called *irya samiti.* (2) To steer mind into the right direction; to keep mind pure. (3) To observe self-regulations and restraints in speech; to use faultless language (4) To take proper care while accepting and keeping ascetic equipment such as clothes and pots. (5) To eat after careful inspection.

In *Tattvartha Sutra* the five *bhaavanas* of the great vow of *ahimsa* are mentioned in a different order—(1) *Vachan gupti* (restraint of language), (2) *Mano gupti* (restraint of thoughts), (3) *Irya samiti* (careful movement), (4) *Adan nikshepana samiti* (care about handling and depositing equipment), and (5) *Alokit pan bhojan* (inspection of food).

द्वितीय महाव्रत और उसकी भावनाएँ

३९१. अहावरं दोच्चं महव्वयं पच्चक्खामि सव्वं मुसावायं वइदोसं। से कोहा वा लोहा वा भया वा हासा वा णेव सयं मुसं भासेज्जा, णेवऽण्णेणं मुसं भासावेज्जा अण्णंपि मुसं भासंतं ण समणुमन्निज्जा तिविहं तिविहेणं मणसा वयसा कायसा। तस्स भंते ! पडिक्कमामि जाव वोसिरामि।

३९१. अब इसके पश्चात् भगवन् ! मैं द्वितीय महाव्रत स्वीकार करता हूँ। मैं सब प्रकार से मृषावाद (असत्य) और सदोष वचन का सर्वथा प्रत्याख्यान करता हूँ। (इस सत्य महाव्रत के पालन के लिए) क्रोध से, लोभ से, भय से या हास्य से न तो स्वयं मृषा भाषा (असत्य) बोलूँगा, न ही अन्य व्यक्ति से असत्य भाषण कराऊँगा और जो व्यक्ति असत्य बोलता है उसका अनुमोदन भी नहीं करूँगा। इस प्रकार तीन करण से तथा मन-वचन-काया, इन तीनों योगों से मृषावाद का सर्वथा त्याग करके यह प्रतिज्ञा करता हूँ- "हे भगवन् ! मृषावाद विरमण रूप द्वितीय महाव्रत स्वीकार करके मैं पूर्वकृत मृषावाद रूप पाप का प्रतिक्रमण करता हूँ, आलोचना करता हूँ, आत्म-निन्दा करता हूँ, गर्हा करता हूँ और अपनी आत्मा से मृषावाद का सर्वथा व्युत्सर्ग करता हूँ।"

SECOND GREAT VOW AND ITS *BHAAVANAS*

391. *"Bhante* ! After this I accept the second great vow. I completely abstain from falsity or lying and faulty language. (In order to observe this great vow) under the influence of anger, greed, fear or frivolity I will never tell a lie; neither will I induce others to do so, or approve of others doing so. I will observe this great vow through three means (mind, speech and body) and three methods (doing, inducing and approving). *"Bhante* ! I critically review any such lying done in the past, denounce it (considering soul as my witness), censure it (considering my *guru* as my witness), and earnestly desist from indulging in it (and expel this sin from my soul)."

३९२. तस्सिमाओ पंच भावणाओ भवंति-

(१) तत्थिमा पढमा भावणा-अणुवीयिभासी से णिग्गंथे, णो अणणुवीयिभासी। केवली बूया-अणणुवीयिभासी से णिग्गंथे समावज्जेज्ज मोसं वयणाए। अणुवीइ भासी से निग्गंथे, णो अणणुवीयि भासि त्ति पढमा भावणा।

३९२. उस द्वितीय महाव्रत की ये पाँच भावनाएँ हैं-

(१) उन पाँचों में से पहली भावना इस प्रकार है-जो सम्यक् विचार करके बोलता है, वह निर्ग्रन्थ है। बिना विचार किये बोलता है, वह निर्ग्रन्थ नहीं। केवली भगवान कहते हैं- बिना विचारे बोलने वाले निर्ग्रन्थ को मिथ्याभाषण का दोष लगता है। अतः विषय के

अनुरूप चिन्तन करके विवेकपूर्वक बोलने वाला साधक ही निर्ग्रन्थ कहला सकता है, बिना विचार किये बोलने वाला नहीं। यह प्रथम भावना है।

392. The five *bhaavanas* (attitudes) of that second vow are as follows—

(1) The first *bhaavana* is—A *nirgranth* speaks after right contemplation and not without it. The *Kevali* says—a *nirgranth* speaking without right contemplation commits fault of telling a lie. Therefore a *nirgranth* is one who speaks prudently after right contemplation on the subject under reference and not the one who speaks without thinking. This is the first *bhaavana*.

(२) अहावरा दोच्चा भावणा–कोहं परिजाणइ से निग्गंथे, णो कोहणे सिया। केवली बूया–कोहपत्ते कोही समावइज्जा मोसं वयणाए। कोहं परिजाणइ से निग्गंथे, णो य कोहणाए सि य त्ति दोच्चा भावणा।

(२) इसके पश्चात् दूसरी भावना इस प्रकार है–क्रोध का कटु परिणाम जानकर उसका परित्याग कर देता है, वह निर्ग्रन्थ है। केवली भगवान कहते हैं–क्रोध आने पर क्रोधी व्यक्ति आवेशवश असत्य वचन का प्रयोग कर देता है। अतः जो साधक क्रोध का परित्याग कर देता है, वही निर्ग्रन्थ कहला सकता है, क्रोधी नहीं। यह द्वितीय भावना है।

(2) The second *bhaavana* is—A *nirgranth* knows about the bitter consequences of anger and avoids it. The *Kevali* says—When angry, a person thoughtlessly tells a lie out of excitement. Only he is a *nirgranth* who is free of anger, not the one who is angry. This is the second *bhaavana*.

(३) अहावरा तच्चा भावणा–लोभं परिजाणइ से णिग्गंथे, णो य लोभणए सिया। केवली बूया–लोभपत्ते लोभी समावएज्जा मोसं वयणाए। लोभं परिजाणइ से णिग्गंथे, णो य लोभणाए सि य त्ति तच्चा भावणा।

(३) तृतीय भावना यह है–जो लोभ का दुष्परिणाम जानकर उसका परित्याग कर देता है, वह निर्ग्रन्थ है, साधु लोभग्रस्त न हो। केवली भगवान का कथन है कि लोभग्रस्त व्यक्ति लोभावेशवश असत्य बोल देता है। अतः जो साधक लोभ का परित्याग कर देता है, वही निर्ग्रन्थ है, यह तीसरी भावना है।

(3) The third *bhaavana* is—A *nirgranth* knows about the bitter consequences of greed and avoids it. The *Kevali* says—When greedy, a person thoughtlessly tells a lie under the influence of greed. Only he is a *nirgranth* who is free of greed, not the one who is greedy. This is the third *bhaavana*.

(४) अहावरा चउत्था भावणा–भयं परिजाणइ से निग्गंथे, णो य भयभीरुए सिया। केवली बूया–भयपत्ते भीरु समावइज्जा मोसं वयणाए। भयं परिजाणइ से निग्गंथे, णो य भयभीरुए सिया, चउत्था भावणा।

(४) चौथी भावना यह है–जो साधक भय को जानकर उसका परित्याग कर देता है, वह निर्ग्रन्थ है। साधक को भयभीत नहीं होना चाहिए। केवली भगवान का कथन है–भयग्रस्त भीरु व्यक्ति भयाविष्ट होकर असत्य बोल देता है। अतः जो साधक भय का परित्याग करता है, वही निर्ग्रन्थ है, यह चौथी भावना है।

(4) The fourth *bhaavana* is—A *nirgranth* knows about the bitter consequences of fear and avoids it. The *Kevali* says—When afraid, a person thoughtlessly tells a lie under the influence of fear. Only he is a *nirgranth* who is free of fear, not the one who is afraid. This is the fourth *bhaavana*.

(५) अहावरा पंचमा भावणा–हासं परिजाणइ से निग्गंथे, णो य हासणए सिया। केवली बूया–हासपत्ते हासी समावएज्जा मोसं वयणाए। हासं परिजाणइ से णिग्गंथे, णो य हासणाए सिय त्ति पंचमा भावणा।

एतावता दोच्चे महव्वए सम्मं काएणं फासिए जाव आणाए आराहिए यावि भवइ।

दोच्चं भंते ! महव्वयं मुसावायाओ वेरमणं।

(५) पाँचवीं भावना यह है–जो साधक हास्य के अनिष्ट परिणामों को जानकर उसका परित्याग कर देता है, वह निर्ग्रन्थ है। अतएव निर्ग्रन्थ हँसी-मजाक करने वाला न हो। केवली भगवान का कथन है–हास्यवश व्यक्ति असत्य भी बोल देता है। इसलिए जो मुनि हास्य का त्याग कर देता है, वह निर्ग्रन्थ है, यह पाँचवीं भावना है।

इस प्रकार मृषावाद-विरमणरूप द्वितीय सत्य महाव्रत का काया से सम्यक् स्पर्श (आचरण) करने, उसका पालन करने, गृहीत महाव्रत को भलीभाँति पार लगाने, उसका

कीर्तन करने एवं उसमें अन्त तक अवस्थित रहने पर भगवदाज्ञा के अनुरूप आराधन हो जाता है। हे भगवन् ! यह मृषावाद विरमण रूप द्वितीय महाव्रत है।

(5) The fifth *bhaavana* is—A *nirgranth* knows about the bitter consequences of frivolity and avoids it. The *Kevali* says—When frivolous, a person thoughtlessly tells a lie out of frivolity. Only he is a *nirgranth* who is free of frivolity, not the one who is frivolous. This is the fifth *bhaavana.*

In this way the second great vow with its five *bhaavanas* is properly touched by the body (accepted), observed, accomplished, praised, established and practiced according to the precepts of *Bhagavan.*

Bhante ! This is the second great vow called *mrishavada—viraman* or abstaining from falsity.

विवेचन–वृत्तिकार ने अणुवीइभासी का अर्थ किया है–जो कुछ बोलना है या जिसके सम्बन्ध में कुछ कहना है, पहले उसके सन्दर्भ में उसके अनुरूप विचार करके बोलना। बिना सोच-विचारे यों ही सहसा कुछ बोल देने या किसी विषय में कुछ कह देने से अनेक अनर्थों की सम्भावना है। बोलने से पूर्व उसके इष्ट-अनिष्ट, हानि-लाभ, हिताहित परिणाम का भलीभाँति विचार करना आवश्यक है। चूर्णिकार 'अणुवीयिभासी' का अर्थ करते हैं–"पुव्वं बुद्धीए पासित्ता।" अर्थात् पहले अपनी निर्मल व तटस्थ बुद्धि से निरीक्षण करके फिर बोलने वाला। तत्त्वार्थसूत्रकार अनुवीचीभाषण का अर्थ करते हैं–निरवद्य-निर्दोष भाषण। क्रोधान्ध, लोभान्ध और भयभीत व्यक्ति भी आवेश में आकर कुछ का कुछ अथवा लक्ष्य से विपरीत कह देता है। अतः ऐसा करने से असत्य दोष की सम्भावना रहती है। हँसी-मजाक में मनुष्य प्रायः असत्य बोल जाया करता है। वैसे भी किसी की हँसी उड़ाना, कलह, परिताप, असत्य, क्लेश आदि अनेक अनर्थों का कारण हो जाता है। चूर्णिकार कहते हैं–क्रोध में व्यक्ति पुत्र को अपुत्र कह देता है, लोभी भी कार्य-अकार्य का अनभिज्ञ होकर मिथ्या बोल देता है, भयभीत भी भयवश अचोर को चोर कह देता है। *(क) आचारांग वृत्ति, पत्रांक ४२८, (ख) आचारांग चूर्णि मू. पा. टि., पृ. २८३, (ग) तत्त्वार्थ सर्वार्थसिद्धि, टीका ७/४।*

Elaboration—In *Vritti* the phrase *anuviyibhasi* is interpreted as—One who carefully ponders over the thing or the subject before speaking anything or on any subject. Speaking suddenly without thinking or commenting on something entails numerous grave

consequences. Before speaking, it is necessary to think about good or bad, favourable and unfavourable or advantageous or disadvantageous consequences. In *Churni* the interpretation is—One who first thinks with his pure and impartial mind and then speaks. In *Tattvartha Sutra anuvichibhashan* is interpreted as sin-free and faultless speech. A person blinded by anger, greed and fear also speaks incoherently or aimlessly in the agitated state of his mind. Therefore there are chances of his committing the fault of falsity. When frivolous, a man often resorts to lies. Otherwise also, making fun of someone may end up in a quarrel, hurting someone, telling lies, friction and other grave consequences. In *Churni* it is mentioned—In anger a person may fail to call his offspring, a son. A greedy person ignorant of right and wrong tells a lie. In fear a person calls an honest man a thief. *(a) Acharanga Vritti, leaf 428; (b) Acharanga Churni Text foot note, p 283, (c) Tattvartha Sarvarthasiddhi, Tika 7/4*

तृतीय महाव्रत और उसकी भावनाएँ

३९३. अहावरं तच्चं भंते ! महव्वयं 'पच्चइक्खामि सव्वं अदिण्णादाणं। से गामे वा नगरे वा अरण्णे वा अप्पं वा बहुं वा अणुं वा थूलं वा चित्तमंतं वा अचित्तमंतं वा णेव सयं अदिण्णं गेण्हेज्जा, णेवऽण्णेहिं अदिण्णं गेण्हावेज्जा, अण्णं पि अदिण्णं गेण्हंतं ण समणुजाणेज्जा जावज्जीवाए जाव वोसिरामि।

३९३. हे भगवन् ! इसके पश्चात् अब मैं तृतीय महाव्रत स्वीकार करता हूँ। मैं सब प्रकार से अदत्तादान का प्रत्याख्यान (त्याग) करता हूँ। वह इस प्रकार है–वह (ग्राह्य पदार्थ) चाहे गाँव में हो, नगर में हो, अरण्य में हो, स्वल्प हो या बहुत, सूक्ष्म हो या स्थूल (छोटा हो या बड़ा), सचेतन हो या अचेतन; उसे न तो स्वयं ग्रहण करूँगा, न दूसरे से ग्रहण कराऊँगा और न ही अदत्त ग्रहण करने वाले का अनुमोदन–समर्थन करूँगा, यावज्जीवन तक, तीन करणों से तथा मन-वचन-काय, तीन योगों से यह प्रतिज्ञा करता हूँ। मैं पूर्वकृत अदत्तादान रूप पापों का प्रतिक्रमण करता हूँ, आत्म-निन्दा करता हूँ, गर्हा करता हूँ और अदत्तादान पाप का व्युत्सर्ग करता हूँ।

THIRD GREAT VOW AND ITS *BHAAVANAS*

393. *Bhante* ! After this I accept the third great vow. I completely abstain from taking what is not given. Wherever I

am, in a village, city or forest; whether the object is less or more, minute or gross, living or non-living; I will not take what is not given; neither will I induce others to do so, or approve of others doing so. I will observe this great vow through three means (mind, speech and body) and three methods (doing, inducing and approving). *Bhante* ! I critically review any such act of taking what is not given that I have done in the past, denounce it (considering soul as my witness), censure it (considering my *guru* as my witness) and earnestly desist from indulging in it (and expel this sin from my soul).

३९४. तस्सिमाओ पंच भावणाओ भवंति–

(१) तत्थिमा पढमा भावणा–अणुवीयि मिउग्गहजाई से निग्गंथे, णो अणणुवीयि मिउग्गहजाई से णिग्गंथे। केवली बूया–अणणुवीयि मिउग्गहजाई से णिग्गंथे अदिण्णं गेण्हेज्जा। अणुवीयि मिउग्गहजाई से निग्गंथे, णो अणणुवीयि मिउग्गहजाई त्ति पढमा भावणा।

३९४. उस तीसरे महाव्रत की ये पाँच भावनाएँ हैं–

(१) उन पाँचों में से प्रथम भावना यह है–जो साधु पहले विचार करके मित–अवग्रह की याचना करता है, वह निर्ग्रन्थ है, किन्तु बिना विचार किये अवग्रह की याचना करने वाला नहीं। केवली भगवान कहते हैं–जो बिना विचार किये मितावग्रह की याचना करता है, वह निर्ग्रन्थ अदत्त ग्रहण करता है। अतः तदनुरूप चिन्तन करके परिमित अवग्रह की याचना करने वाला साधु निर्ग्रन्थ कहलाता है, न कि बिना विचार किये मर्यादित अवग्रह की याचना करने वाला। इस प्रकार यह प्रथम भावना है।

394. The five *bhaavanas* (attitudes) of that third vow are as follows—

(1) The first *bhaavana* is—A *nirgranth* seeks limited alms after right contemplation and not without it. The *Kevali* says—A *nirgranth* seeking limited alms without right contemplation commits fault of taking what is not given. Therefore a *nirgranth* is one who seeks limited alms prudently after right

contemplation and not the one who seeks without thinking. This is the first *bhaavana*.

(२) अहावरा दोच्चा भावणा–अणुन्नविय पाण-भोयणभोई से णिग्गंथे, णो अणणुन्नविय पाण-भोयणभोई। केवली बूया–अणणुन्नविय पाण-भोयणभोई से णिग्गंथे अदिण्णं भुंजेज्जा। तम्हा अणुन्नविय पाण-भोयणभोई से णिग्गंथे, णो अणणुन्नविय पाण-भोयणभोई त्ति दोच्चा भावणा।

(२) दूसरी भावना यह है–गुरुजनों की आज्ञा लेकर आहार-पानी करने वाला निर्ग्रन्थ होता है, आज्ञा लिए बिना आहार-पानी आदि का उपभोग करने वाला नहीं। केवली भगवान कहते हैं जो निर्ग्रन्थ गुरु आदि की आज्ञा प्राप्त किये बिना पान-भोजनादि का उपभोग करता है, वह अदत्तादान का भोगने वाला है। इसलिए जो साधु गुरु आदि की आज्ञा प्राप्त करके आहार-पानी का उपभोग करता है, वह निर्ग्रन्थ कहलाता है, अनुज्ञा ग्रहण किये बिना आहार-पानी आदि का सेवन करने वाला नहीं। यह है–दूसरी भावना।

(2) The second *bhaavana* is—A *nirgranth* eats food after getting permission from senior ascetics not otherwise. The *Kevali* says—A *nirgranth* who eats or drinks without getting permission from his seniors consumes what is not given to him. Only he is a *nirgranth* who eats and drinks after getting permission from his seniors, not the one who eats or drinks without permission. This is the second *bhaavana*.

(३) अहावरा तच्चा भावणा–णिग्गंथे णं उग्गहंसि उग्गहियंसि एत्तावताव उग्गहणसीलए सिया। केवली बूया–निग्गंथे णं उग्गहंसि उग्गहियंसि एत्तावताव अणुग्गहणसीलो अदिण्णं आगिण्हेज्जा, निग्गंथे णं उग्गहंसि उग्गहियंसि एत्तावताव उग्गहणसीलए सियत्ति तच्चा भावणा।

(३) तृतीय भावना का स्वरूप इस प्रकार है–निर्ग्रन्थ साधु को क्षेत्र और काल के प्रमाणपूर्वक अवग्रह की याचना करनी चाहिए। केवली भगवान कहते हैं–जो निर्ग्रन्थ इतने क्षेत्र और इतने काल की मर्यादापूर्वक अवग्रह की याचना ग्रहण नहीं करता, वह अदत्त का ग्रहण करता है। अतः निर्ग्रन्थ साधु क्षेत्र, काल की मर्यादा खोलकर अवग्रह की आज्ञा ग्रहण करने वाला होता है, अन्यथा नहीं। यह तृतीय भावना है।

(3) The third *bhaavana* is—A *nirgranth* seeks alms after fixing the limits of area and time. The *Kevali* says—A *nirgranth* who seeks alms without defining specific limits of area and time commits the fault of taking what is not given. Only he is a *nirgranth* who takes permission for seeking alms only after specifying the limits of area and time, not the one who does otherwise. This is the third *bhaavana.*

(४) अहावरा चउत्था भावणा–निग्गंथे णं उग्गहंसि उग्गहियंसि अभिक्खणं २ उग्गहणसीलए सिया। केवली बूया–णिग्गंथे णं उग्गहंसि उग्गहियंसि अभिक्खणं २ अणुग्गहणसीले अदिण्णं गिण्हेज्जा। निग्गंथे उग्गहंसि उग्गहियंसि अभिक्खणं २ उग्गहणसीलए सिय त्ति चउत्था भावणा।

(४) चौथी भावना यह है–निर्ग्रन्थ अवग्रह की आज्ञा ग्रहण करने के पश्चात् बार-बार अवग्रह आज्ञा–ग्रहणशील होना चाहिए। क्योंकि केवली भगवान कहते हैं–जो निर्ग्रन्थ अवग्रह की अनुज्ञा ग्रहण कर लेने पर बार-बार अवग्रह की अनुज्ञा नहीं लेता, वह अदत्तादान दोष का भागी होता है। अतः निर्ग्रन्थ को एक बार अवग्रह की अनुज्ञा ग्रहण कर लेने पर भी पुनः-पुनः अवग्रहाज्ञा ग्रहणशील होना चाहिए। यह चौथी भावना है।

(4) The fourth *bhaavana* is—A *nirgranth* takes permission to go for alms-seeking once and many times (whenever needed). The *Kevali* says—A *nirgranth* who does not take permission every time after taking it once, commits the fault of taking what is not given. Therefore a *nirgranth* should take permission again and again (every time) before going for alms-seeking even after securing permission once. This is the fourth *bhaavana.*

(५) अहावरा पंचमा भावणा–अणुवीय मिउग्गहजाई से निग्गंथे साहम्मिएसु, णो अणणुवीयि मिउग्गहजाई। केवली बूया–अणणुवीइ मिउग्गहजाई से निग्गंथे साहम्मिएसु अदिण्णं ओगिण्हेज्जा। से अणुवीयि मिउग्गहजाई से निग्गंथे साहम्मिएसु, णो अणणुवीयि मिउग्गहजाइ त्ति पंचमा भावणा।

एत्तावताव तच्चे महव्वए सम्मं जाव आणाए आराहिए यावि भवइ।

तच्चं भंते ! महव्वयं।

(५) पाँचवीं भावना इस प्रकार है–जो साधु साधर्मिकों से भी विचारपूर्वक मर्यादित अवग्रह की याचना करता है, वह निर्ग्रन्थ है, बिना विचारे अवग्रह की याचना करने वाला नहीं। केवली भगवान का कथन है–बिना विचार किये जो साधर्मिकों से अवग्रह की याचना करता है, उसे साधर्मिकों का अदत्त ग्रहण करने का दोष लगता है। अतः जो साधु साधर्मिकों से भी विचारपूर्वक मर्यादित अवग्रह की याचना करता है, वही निर्ग्रन्थ कहलाता है, बिना विचारे साधर्मिकों से अवग्रह याचना करने वाला नहीं। इस प्रकार की पंचम भावना है।

इस प्रकार अदत्तादान विरमण रूप तृतीय महाव्रत का सम्यक् प्रकार से काया से स्पर्श करने, उसका पालन करने, गृहीत महाव्रत को भलीभाँति पार लगाने, उसका कीर्तन करने तथा उसमें अन्त तक अवस्थित रहने पर भगवदाज्ञा के अनुरूप सम्यक् आराधना हो जाती है।

भगवन् ! यह अदत्तादान विरमण रूप तृतीय महाव्रत है।

(5) The fifth *bhaavana* is—A *nirgranth* seeks limited alms after right contemplation even from co-religionists and not without it. The *Kevali* says—A *nirgranth* seeking limited alms from co-religionists without right contemplation commits fault of taking from co-religionists what is not given. Therefore a *nirgranth* is one who seeks limited alms prudently after right contemplation from co-religionist and not the one who seeks without thinking from them. This is the fifth *bhaavana*.

In this way the third great vow with its five *bhaavanas* is properly touched by the body (accepted), observed, accomplished, praised, established and practiced according to the precepts of *Bhagavan*.

Bhante ! This is the third great vow called *adattadan viraman* or abstaining from taking what is not given.

विवेचन–यहाँ वर्णित पाँच भावनाओं के क्रम में तथा समवायांगसूत्र के क्रम में लगभग समान पाठ है। समवायांगसूत्र में इस महाव्रत की पंच भावनाओं का क्रम इस प्रकार है–(१) अवग्रह की बार-बार याचना करना, (२) अवग्रह की सीमा जानना, (३) स्वयं अवग्रह की बार-बार याचना करना, (४) साधर्मिकों के अवग्रह का अनुज्ञा ग्रहणपूर्वक परिभोग करना, और (५) सर्वसाधारण आहार-पानी का गुरुजनों आदि की अनुज्ञा ग्रहण करके परिभोग करना। *(समवायांग सम. २५)*

आवश्यक चूर्णि में भी प्रायः समानता है, किन्तु तत्त्वार्थसूत्र में पाँच भावनाओं का क्रम भिन्न रूप में मिलता है-(१) शून्यागारावास-पर्वत की गुफा और वृक्ष का कोटर आदि शून्यागार में रहना, (२) विमोचितावास-दूसरों द्वारा छोड़े हुए मकान आदि में रहना, (३) परोपरोधकरण-दूसरों को ठहरने से नहीं रोकना, (४) भैक्ष-शुद्धि-आचारशास्त्र में बतलाई हुई विधि के अनुसार भिक्षा लेना, (५) सधर्माविसंवाद-"यह मेरा है, यह तेरा है" इस प्रकार साधर्मिकों से विसंवाद न करना, ये अदत्तादान विरमण व्रत की पाँच भावनाएँ हैं।

Elaboration—These five *bhaavanas* have almost the same order as that mentioned in *Samavayanga Sutra*. The mention there goes like this—(1) To seek alms again and again, (2) To be aware of the limitations of alms, (3) To himself seek alms again and again, (4) To take alms from co-religionists with their permission, and (5) To eat or drink generally available foods (etc.) with permission of seniors. (*Samvayanga* 25)

The mention in *Avashyak Churni* is also almost the same. But in *Tattvartha Sutra* there are some differences—The five *bhaavanas* of the vow of abstaining from taking what is not given are—(1) To live in a cave, hollow of a tree or other such forlorn place. (2) To live in abandoned houses. (3) Not to stop others from occupying a place. (4) To take alms according the procedure prescribed in books of code of conduct. (5) Not to argue with a co-religionist regarding possessions claiming, "This is mine, that is yours."

चतुर्थ महाव्रत और उसकी भावनाएँ

३९५. अहावरं चउत्थं महव्वयं 'पच्चक्खामि सव्वं मेहुणं। से दिव्वं वा माणुसं वा तिरिक्खजोणियं वा णेव सयं मेहुणं गच्छेज्जा, तं चेव, अदिण्णादाणवत्तव्वया भाणियव्वा जाव वोसिरामि'।

३९५. अब चतुर्थ महाव्रत के विषय में मुनि प्रतिज्ञा ग्रहण करता है-"हे भगवन् ! मैं चतुर्थ महाव्रत स्वीकार करता हूँ, इसके विषय में समस्त प्रकार के मैथुन-विषय सेवन का प्रत्याख्यान करता हूँ। देव-सम्बन्धी, मनुष्य-सम्बन्धी और तिर्यंच-सम्बन्धी मैथुन का स्वयं सेवन नहीं करूँगा, यावत् शेष समस्त वर्णन अदत्तादान विरमण महाव्रत विषयक प्रकरण

के अनुसार 'आत्मा से अदत्तादान–पाप का व्युत्सर्ग करता हूँ', तक के पाठ के अनुसार समझ लेना चाहिए।

FOURTH GREAT VOW AND ITS *BHAAVANAS*

395. *Bhante* ! After this I accept the fourth great vow. I abstain completely from sexual intercourse. I will not indulge in sexual intercourse with any being—divine, human or animal; neither will I induce others to do so, or approve of others doing so. I will observe this great vow through three means (mind, speech and body) and three methods (doing, inducing and approving). *Bhante* ! I critically review any such act of sexual intercourse that I have done in the past, denounce it (considering soul as my witness), censure it (considering my *guru* as my witness) and earnestly desist from indulging in it (and expel this sin from my soul).

३९६. तस्सिमाओ पंच भावणाओ भवंति–

(१) तत्थिमा पढमा भावणा–णो णिग्गंथे अभिक्खणं २ इत्थीणं कहं कहित्तए सिया। केवली बूया–निग्गंथे णं अभिक्खणं २ इत्थीणं कहं कहेमाणे संतिभेया संतिविभंगा संतिकेवलिपण्णत्ताओ धम्माओ भंसेज्जा। णो निग्गंथे अभिक्खणं २ इत्थीणं कहं कहित्तए सिय त्ति पढमा भावणा।

३९६. उस चतुर्थ महाव्रत की ये पाँच भावनाएँ हैं–

(१) उन पाँचों भावनाओं में पहली भावना यह है–निर्ग्रन्थ बार-बार स्त्रियों की कामजनक कथा न कहे। केवली भगवान कहते हैं–बार-बार स्त्रियों की कथा कहने वाला निर्ग्रन्थ शान्तिरूप चारित्र का और शान्तिरूप ब्रह्मचर्य का भंग (चित्त भ्रम) करने वाला होता है तथा शान्तिरूप केवली-प्ररूपित धर्म से भ्रष्ट भी हो जाता है। अतः निर्ग्रन्थ को बार-बार स्त्रियों की कथा नहीं करनी चाहिए। यह प्रथम भावना है।

396. The five *bhaavanas* (attitudes) of that fourth vow are as follows—

(1) The first *bhauvana* is—A *nirgranth* should not indulge in erotic talks about women time and again. The *Kevali* says—A

nirgranth indulging in erotic talks about women, time and again, disturbs his serene conduct and serene celibacy, and falls from the serene code propagated by the *Kevali*. Therefore a *nirgranth* should abstain from indulging in erotic talks about women time and again. This is the first *bhaavana*.

(२) अहावरा दोच्चा भावणा–णो णिग्गंथे इत्थीणं मणोहराइं २ इंदियाइं आलोइत्तए णिज्झाइत्तए सिया। केवली बूया–निग्गंथे णं इत्थीणं मणोहराइं २ इंदियाइं आलोएमाणे णिज्झाएमाणे संतिभेदा संतिविभंगा जाव धम्माओ भंसेज्जा, णो णिग्गंथे इत्थीणं मणोहराइं २ इंदियाइं आलोइत्तए णिज्झाइत्तए सिय त्ति दोच्चा भावणा।

(२) इसके पश्चात् दूसरी भावना यह है–निर्ग्रन्थ कामभावपूर्वक स्त्रियों की मनोहर एवं मनोरम इन्द्रियों को सामान्य रूप से या विशेष रूप से नहीं देखे। केवली भगवान कहते हैं–स्त्रियों की मनोहर इन्द्रियों को रागपूर्वक अवलोकन करने वाला साधु शान्तिरूप चारित्र का नाश तथा ब्रह्मचर्य का भंग करता है तथा केवली-प्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है। अतः निर्ग्रन्थ को स्त्रियों की मनोहर एवं मनोरम इन्द्रियों का कामरागपूर्वक अवलोकन नहीं करना चाहिए। यह दूसरी भावना है।

(2) The second *bhaavana* is—A *nirgranth* should not lustfully look at or think about beautiful and attractive female organs. The *Kevali* says—A *nirgranth* who lustfully looks at or thinks about beautiful and attractive female organs disturbs his serene conduct and serene celibacy, and falls from the serene code propagated by the *Kevali*. Therefore a *nirgranth* should abstain from lustfully looking at or thinking about beautiful and attractive female organs. This is the second *bhaavana*.

(३) अहावरा तच्चा भावणा–णो णिग्गंथे इत्थीणं पुव्वरयाइं पुव्वकीलियाइं सुमरित्तए सिया। केवली बूया–निग्गंथे णं इत्थीणं पुव्वरयाइं पुव्वकीलियाइं सरमाणे संतिभेया जाव विभंगा जाव भंसेज्जा। णो णिग्गंथे इत्थीणं पुव्वरयाइं पुव्वकीलियाइं सरित्तए सिय ति तच्चा भावणा।

(३) अब तीसरी भावना का स्वरूप इस प्रकार है–निर्ग्रन्थ पूर्वाश्रम में श्रमण स्त्रियों के साथ की हुई पूर्व रति एवं पूर्व काम-क्रीड़ा का स्मरण नहीं करे। केवली भगवान कहते हैं–स्त्रियों के साथ में की हुई पूर्व रति एवं पूर्वकृत काम-क्रीड़ा का स्मरण करने वाला साधु

शान्तिरूप चारित्र का नाश करता है तथा ब्रह्मचर्य का भंग करने वाला होता है तथा केवली प्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है। अतः निर्ग्रन्थ साधु स्त्रियों के साथ की हुई पूर्व रति एवं पूर्व काम-क्रीड़ा का स्मरण न करे। यह तीसरी भावना है।

(3) The third *bhaavana* is—A *nirgranth* should not recall his indulgences in sexual activities and enjoyment with women during his pre-initiation life. The *Kevali* says—A *nirgranth* who recalls his past indulgences in sexual activities and enjoyment with women disturbs his serene conduct and serene celibacy, and falls from the serene code propagated by the *Kevali*. Therefore a *nirgranth* should abstain from recalling his past indulgences in sexual activities and enjoyments with women. This is the third *bhaavana*.

(४) अहावरा चउत्था भावणा—नाइमत्तपाण-भोयणभोई से निग्गंथे, णो पणीयरस-भोयणभोइ। केवली बूया—अतिमत्तपाण-भोयणभोई से निग्गंथे पणीयरसभोयणभोइ त्ति संतिभेया जाव भंसेज्जा। नाइमत्तपाण-भोयणभोई से निग्गंथे, णो पणीयरस भोयणभोइ त्ति चउत्था भावणा।

(४) इसके बाद चौथी भावना का स्वरूप इस प्रकार है—निर्ग्रन्थ प्रमाण से अधिक अतिमात्रा में आहार-पानी का सेवन नहीं करे और न ही सरस स्निग्ध—स्वादिष्ट भोजन करे। केवली भगवान कहते हैं—जो निर्ग्रन्थ प्रमाण से अधिक (अतिमात्रा में) आहार-पानी का सेवन करता है तथा स्निग्ध-सरस-स्वादिष्ट भोजन करता है, वह शान्ति रूप चारित्र का नाश करने वाला, ब्रह्मचर्य को भंग करने वाला होता है तथा केवली प्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो सकता है। इसलिए निर्ग्रन्थ को अति मात्रा में आहार-पानी का सेवन या सरस स्निग्ध भोजन नहीं करना चाहिए। यह चौथी भावना है।

(4) The fourth *bhaavana* is—A *nirgranth* should neither eat too much nor nutritious, rich and tasty food. The *Kevali* says—A nirgranth who eats too much or nutritious, rich and tasty food disturbs his serene conduct and serene celibacy, and falls from the serene code propagated by the *Kevali*. Therefore a nirgranth should abstain from eating too much or nutritious, rich and tasty food. This is the fourth *bhaavana*.

(५) अहावरा पंचमा भावणा–णो णिग्गंथे इत्थी-पसु-पंडगसंसत्ताइं सयणा-ऽऽसणाइं सेवित्तए सिया। केवली बूया–निग्गंथे णं इत्थी-पसु-पंडगसंसत्ताइं सयणा-ऽऽसणाइं सेवेमाणे संतिभेया जाव भंसेज्जा। णो णिग्गंथे इत्थी-पसु-पंडगसंसत्ताइं सयणा-ऽऽसणाइं सेवित्तए सिय त्ति पंचमा भावणा।

एत्तावताव चउत्थे महव्वए सम्मं काएणं जाव आराहिए यावि भवइ।

चउत्थं भंते ! महव्वयं।

(५) पंचम भावना का स्वरूप इस प्रकार कहा गया है–निर्ग्रन्थ श्रमण स्त्री, पशु और नपुंसक से युक्त शय्या और आसन आदि का सेवन न करे। केवली भगवान कहते हैं–जो निर्ग्रन्थ स्त्री-पशु-नपुंसक संसक्त शय्या और आसन आदि का सेवन करता है, वह शान्तिरूप चारित्र को नष्ट कर देता है, ब्रह्मचर्य भंग कर देता है और केवली-प्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है। इसलिए निर्ग्रन्थ को स्त्री-पशु-नपुंसक संसक्त शय्या और आसन आदि का सेवन नहीं करना चाहिए। यह पंचम भावना है।

इस प्रकार मैथुन विरमण रूप चतुर्थ महाव्रत का सम्यक् प्रकार से काया से स्पर्श करने, उसका पालन करने तथा अन्त तक उसमें अवस्थित रहने पर भगवदाज्ञा के अनुरूप सम्यक् आराधना हो जाती है।

भगवन् ! यह मैथुन विरमण रूप चतुर्थ महाव्रत है।

(5) The fifth *bhaavana* is—A *nirgranth* should not share his seat or bed with women, animals or eunuchs. The *Kevali* says—A *nirgranth* who shares his seat or bed with women, animals or eunuchs disturbs his serene conduct and serene celibacy, and falls from the serene code propagated by the *Kevali*. Therefore a *nirgranth* should abstain from sharing his seat or bed with women, animals or eunuchs. This is the fifth *bhaavana*.

In this way the fourth great vow with its five *bhaavanas* is properly touched by the body (accepted), observed, accomplished, praised, established and practiced according to the precepts of *Bhagavan*.

Bhante ! This is the fourth great vow called *maithun-viraman* or abstaining from sexual intercourse.

३९७. अहावरं पंचमं भंते ! महव्वयं 'सव्वं परिग्गहं पच्चक्खामि। से अप्पं वा बहुं वा अणुं वा थूलं वा चित्तमंतं वा अचित्तमंतं वा णेव सयं परिग्गहं गेण्हेज्जा, णेवऽण्णेणं परिग्गहं गेण्हावेज्जा, अण्णं वि परिग्गहं गेण्हंतं ण समणुजाणेज्जा जाव वोसिरामि'।

३९७. हे भगवन् ! मैं पाँचवें महाव्रत को स्वीकार करता हूँ। पंचम महाव्रत में सब प्रकार के परिग्रह का त्याग करता हूँ। अल्प या बहुत, सूक्ष्म या स्थूल, सचित्त या अचित्त किसी भी प्रकार के परिग्रह को मैं स्वयं ग्रहण नहीं करूँगा, दूसरों से ग्रहण नहीं कराऊँगा और परिग्रह ग्रहण करने वालों का अनुमोदन नहीं करूँगा। (इसके आगे का) 'आत्मा से भूतकाल में परिगृहीत परिग्रह का व्युत्सर्ग करता हूँ' तक का सारा वर्णन पूर्ववत् समझ लेना चाहिए।

FIFTH GREAT VOW AND ITS *BHAAVANAS*

397. *Bhante* ! After this I accept the fifth great vow. I abstain completely from keeping any possessions. Whether the objects are less or more, minute or gross, living or non-living, I will not keep any possessions; neither will I induce others to do so or approve of others doing so. I will observe this great vow through three means (mind, speech and body) and three methods (doing, inducing and approving). *Bhante* ! I critically review any such act of keeping possessions that I have done in the past, denounce it (considering soul as my witness), censure it (considering my *guru* as my witness), and earnestly desist from indulging in it (and expel this sin from my soul).

३९८. तस्सिमाओ पंच भावणाओ भवंति–

(१) तत्थिमा पढमा भावणा–सोयओ णं जीवे मणुन्नामणुण्णाइं सद्दाइं सुणेइ, मणुन्नामणुण्णेहिं सद्देहिं णो सज्जेज्जा णो रज्जेज्जा णो गिज्झेज्जा णो मुज्झेज्जा णो अज्झोववज्जेज्जा। केवली बूया–निग्गंथे णं मणुन्नामणुण्णेहिं सद्देहिं सज्जमाणे रज्जमाणे जाव विणिघायमावज्जमाणे संतिभेदा संतिविभंगा संतिकेवलिपण्णत्ताओ धम्माओ भंसेज्जा।

न सक्का न सोउं सद्दा सोयविसयमागया।
राग-दोसा उ जे तत्थ ते भिक्खू परिवज्जए॥१॥

सोयओ जीवो मणुन्नामणुण्णाइं सद्दाइं सुणेइ, पढमा भावणा।

३९८. पंचम महाव्रत की पाँच भावनाएँ इस प्रकार हैं–

(१) उन पाँच भावनाओं में से प्रथम भावना का स्वरूप–यह जीव श्रोत्र से मनोज्ञ तथा अमनोज्ञ शब्दों को सुनता है, परन्तु वह उनमें आसक्त न हो, रागभाव न करे, गृद्ध न हो, मोहित न हो, अत्यन्त आसक्ति न करे तथा न ही राग-द्वेष करे। केवली भगवान कहते हैं–जो निर्ग्रन्थ मनोज्ञ-अमनोज्ञ शब्दों में आसक्त होता है, रागभाव करता है, यावत् राग-द्वेष करता है वह शान्तिरूप चारित्र का नाश करता है, शान्ति को भंग करता है, शान्तिरूप केवलि प्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है।

ऐसा तो नहीं होता कि श्रोत्र विषय में आये हुए शब्द नहीं सुने जायें। किंतु उन श्रवणगत शब्दों पर भिक्षु न तो राग करे, न ही द्वेष करे॥१॥

अतः श्रोत से जीव प्रिय और अप्रिय सभी प्रकार के शब्दों को सुनकर उनमें राग-द्वेष द्वारा अपने आत्म-भाव को नष्ट न करे। यह प्रथम भावना है।

398. The five *bhaavanas* (attitudes) of that fifth vow are as follows-

(1) The first *bhaavana* is—This being with its sense organ of hearing (ears) hears all types of pleasant and unpleasant sounds or words; however he should not have infatuation, attachment, covetousness, fondness, deep infatuation, and not even attachment and aversion. The *Kevalı* says—A *nirgranth* having infatuation, attachment (etc. up to attachment and aversion), disturbs his serene conduct and serene celibacy, and falls from the serene code propagated by the *Kevali.*

It is impossible to avoid hearing sound that has become a subject of the sense organ of hearing (ears). However, a *bhikshu* should refrain from having attachment and aversion for the same.

Therefore a *nirgranth* should not disturb his indulgence in the self by hearing pleasant and unpleasant sounds and having attachment and aversion for the same. This is the first *bhaavana*.

(२) अहावरा दोच्चा भावणा–चक्खूओ जीवो मणुन्नामणुण्णाइं रूवाइं पासइ, मणुन्नामणुण्णेहिं रूवेहिं सज्जमाणे रज्जमाणे जाव विणिघायमावज्जमाणे संतिभेदा संतिविभंगा जाव भंसेज्जा।

न सक्का रूवमदट्ठुं चक्खूविसयमागयं।
राग-दोसा उ जे तत्थ ते भिक्खू परिवज्जए॥२॥

चक्खूओ जीवो मणुन्नामणुण्णाइं रूवाइं पासइ त्ति दोच्चा भावणा।

(२) अब द्वितीय भावना का स्वरूप इस प्रकार है–चक्षु से जीव प्रिय-अप्रिय सभी प्रकार के रूपों को देखता है, किन्तु साधु प्रिय-अप्रिय रूपों में न आसक्त हो, यावत् न राग-द्वेष करके अपने आत्म-भाव को नष्ट करे। केवली भगवान कहते हैं–जो निर्ग्रन्थ मनोज्ञ-अमनोज्ञ रूपों को देखकर राग-द्वेष करके अपने आत्म-भाव को खो बैठता है, वह शान्तिरूप चारित्र को विनष्ट करता है, शान्ति-भग कर देता है, तथा शान्तिरूप-केवली-प्ररूपति धर्म से भ्रष्ट हो जाता है।

नेत्रों का विषय बने हुए रूप को नहीं देखना तो शक्य नहीं है, वे दीख ही जाते हैं, किन्तु देखने पर मन में जो राग-द्वेष उत्पन्न होता है, भिक्षु उनमें राग-द्वेष का भाव उत्पन्न न होने दे॥२॥

इस प्रकार चक्षु के द्वारा मनोज्ञ-अमनोज्ञ रूपों को देखकर उनमें आसक्त होकर आत्म-भाव का विघात न करे। यह दूसरी भावना है।

(2) The second *bhaavana* is—This being with its sense organ of seeing (eyes) sees all types of pleasant and unpleasant forms; however he should not have infatuation (etc. up to attachment and aversion). The *Kevali* says—A *nirgranth* having infatuation, attachment (etc. up to attachment and aversion), disturbs his serene conduct and serene celibacy, and falls from the serene code propagated by the *Kevali*.

It is impossible to avoid seeing forms that have become subjects of the sense organ of seeing (eyes). However, a *bhikshu* should refrain from having attachment and aversion for the same.

Therefore a *nirgranth* should not disturb his indulgence in the self by seeing pleasant and unpleasant forms and having attachment and aversion for the same. This is the second *bhaavana*.

(३) अहावरा तच्चा भावणा–घाणओ जीवो मणुन्नामणुण्णाइं गंधाइं अग्घायइ मणुन्नामणुण्णेहिं गंधेहिं सज्जमाणे रज्जमाणे जाव विणिघायमावज्जमाणे संतिभेदा संतिविभंगा जाव भंसेज्जा।

न सक्का न गंधमग्घाउं णासाविसयमागयं।
राग-दोसा उ जे तत्थ ते भिक्खू परिवज्जए॥३॥

घाणओ जीवो मणुन्नमण्णाइं गंधाइं अग्घायति त्ति तच्चा भावणा।

(३) अब तीसरी भावना का स्वरूप इस प्रकार है–नासिका के द्वारा जीव प्रिय और अप्रिय गन्धों को सूँघता है, किन्तु भिक्षु मनोज्ञ या अमनोज्ञ गन्ध पाकर न आसक्त हो न अनुरक्त, यावत् उन पर राग-द्वेष करके अपने आत्म-भाव का विघात न करे। केवली भगवान कहते हैं–जो निर्ग्रन्थ मनोज्ञ या अमनोज्ञ गंध पाकर आसक्त होकर अपने आत्म-भाव को खो बैठता है, वह शान्तिरूप चारित्र को नष्ट कर डालता है, शान्ति भंग करता है और शान्तिरूप केवलीभाषित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है।

ऐसा भी शक्य नहीं हो सकता कि नासिका-प्रदेश के सान्निध्य में आये हुए गन्ध के परमाणु-पुद्गल सूँघे न जायें, किन्तु उनको सूँघने पर उनमें जो राग-द्वेष समुत्पन्न होता है, भिक्षु उनका परित्याग करे॥३॥

अतः नासिका से जीव मनोज्ञ-अमनोज्ञ सभी प्रकार के गन्धों को सूँघता है, किन्तु प्रबुद्ध भिक्षु उन पर आसक्त नहीं होता। यह तीसरी भावना है।

(3) The third *bhaavana* is—This being with its sense organ of smell (nose) smells all types of pleasant and unpleasant odours; however he should not have infatuation (etc. up to attachment and aversion). The *Kevali* says—A *nirgranth* having infatuation,

attachment (etc. up to attachment and aversion), disturbs his serene conduct and serene celibacy, and falls from the serene code propagated by the *Kevali*.

It is impossible to avoid smelling odours that have become subjects of the sense organ of smell (nose). However, a *bhikshu* should refrain from having attachment and aversion for the same.

Therefore a *nirgranth* should not disturb his indulgence in the self by smelling pleasant and unpleasant odours and having attachment and aversion for the same. This is the third *bhaavana*.

(४) अहावरा चउत्था भावणा–जिब्भाओ जीवो मणुन्नामणुण्णाइं रसाइं अस्साएइ, मणुन्नामणुण्णेहिं रसेहिं णो सज्जेज्जा णो रज्जेज्जा जाव णो विणिग्घायमावज्जेज्जा केवली बूया–निग्गंथे णं मणुन्नामणुण्णेहिं रसेहिं सज्जमाणे जाव विणिग्घायमावज्जमाणे संतिभेदा जाव भंसेज्जा।

ण सक्का रसमणासाउ जीहाविसयमागयं।
रोग-दोसा उ जे तत्थ ते भिक्खू परिवज्जए॥४॥

जीहाओ जीवो मणुन्नामणुण्णेहिं रसाइं अस्साएइ त्ति चउत्था भावणा।

(४) चौथी भावना का स्वरूप इस प्रकार है–जीव जिह्वा से मनोज्ञ-अमनोज्ञ रसों का आस्वादन करता है, किन्तु भिक्षु को चाहिए कि वह मनोज्ञ-अमनोज्ञ रसों में न आसक्त हो न रागभावों से ग्रस्त हो और न उन पर राग-द्वेष करके अपने आत्म-भाव का घात करे। केवली भगवान का कथन है कि मनोज्ञ-अमनोज्ञ रसों में आसक्ति या राग-द्वेष करके जीव अपनी शान्ति नष्ट कर देता है तथा केवलीभाषित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है।

ऐसा तो नहीं हो सकता कि जिह्वा-प्रदेश में आये रस पुद्गलों का वह स्वाद नहीं ले; किन्तु उन रसों के प्रति भिक्षु राग-द्वेष का परित्याग करे॥४॥

जिह्वा से जीव मनोज्ञ-अमनोज्ञ सभी प्रकार के रसों का आस्वादन करता है, किन्तु उनके प्रति राग-द्वेष करके अपने आत्म-भाव का विघात नहीं करना चाहिए। यह चौथी भावना है।

(4) The fourth *bhaavana* is—This being with its sense organ of taste (tongue) tastes all types of pleasant and unpleasant flavours; however he should not have infatuation (etc. up to attachment and aversion). The *Kevali* says—A *nirgranth* having infatuation, attachment (etc. up to attachment and aversion), disturbs his serene conduct and serene celibacy, and falls from the serene code propagated by the *Kevali*.

It is impossible to avoid tasting flavours that have become subjects of the sense organ of tasting (tongue). However, a *bhikshu* should refrain from having attachment and aversion for the same.

Therefore a *nirgranth* should not disturb his indulgence in the self by tasting pleasant and unpleasant flavours and having attachment and aversion for the same. This is the fourth *bhaavana*.

(५) अहावरा पंचमा भावणा–फासाओ जीवो मणुन्नामणुण्णाइं फासाइं पडिसंवेदेति, मणुन्नामणुण्णेहिं फासेहिं णो सज्जेजा, जाव णो विणिघायमावज्जेज्जा। केवली बूया–निग्गंथे णं मणुन्नामणुण्णेहिं फासेहिं सज्जमाणे जाव विणिघायमावज्जमाणे संतिभेया संतिविभंगा संतिकेवलिपण्णत्ताओ धम्माओ भंसेज्जा।

न सक्का फासमवेउं फासविसयमागयं।
राग-दोसा उ जे तत्थ ते भिक्खू परिवज्जए॥५॥

फासाओ जीवो मणुन्नामणुण्णाइं फासाइं पडिसंवेदेति त्ति पंचमा भावणा।

एत्तावताव पंचमे महव्वए सम्मं काएणं फासिए पालिए तीरिए किट्टिए अवट्ठिए आणाए आराहिए यावि भवति।

पंचमं भंते ! महव्वयं परिग्गहाओ वेरमणं।

(५) पंचम भावना इस प्रकार है–स्पर्शनेन्द्रिय से जीव मनोज्ञ-अमनोज्ञ स्पर्शों का अनुभव करता है, किन्तु भिक्षु उन मनोज्ञ-अमनोज्ञ स्पर्शों में न आसक्त हो, न आरक्त हो, और न ही उनमें राग-द्वेष करके अपने आत्म-भाव का नाश करे। केवली भगवान कहते हैं–जो निर्ग्रन्थ मनोज्ञ-अमनोज्ञ स्पर्शों को पाकर आसक्त हो जाता है वह आत्म-भाव का विघात कर बैठता है, वह शान्ति को नष्ट कर डालता है तथा केवली प्ररूपित शान्तिमय धर्म से भ्रष्ट हो जाता है।

स्पर्शनेन्द्रिय-विषय में आये हुए स्पर्श का संवेदन नहीं करना किसी तरह सम्भव नहीं है, अतः भिक्षु उन मनोज्ञ-अमनोज्ञ स्पर्शों को पाकर उनमें उत्पन्न होने वाले राग या द्वेषभाव का त्याग करे, यही अभीष्ट है॥५॥

स्पर्शनेन्द्रिय से जीव प्रिय-अप्रिय अनेक प्रकार के स्पर्शों का संवेदन करता है; किन्तु इष्टानिष्ट स्पर्श के प्रति राग-द्वेष करके अपने आत्म-भाव का विघात नहीं करना चाहिए। यह पाँचवीं भावना है।

इस प्रकार पंच भावनाओं के साथ स्वीकृत परिग्रह-विरमण रूप पंचम महाव्रत का काया से सम्यक् स्पर्श करने, उसका पालन करने, स्वीकृत महाव्रतों को पार लगाने, उसका कीर्तन करने तथा अन्त तक उसमें अवस्थित रहने पर भगवदाज्ञा के अनुरूप आराधक हो जाता है।

भगवन् ! यह है–परिग्रह विरमण रूप पंचम महाव्रत।

(5) The fifth *bhaavana* is—This being with its sense organ of touch (skin) touches all types of pleasant and unpleasant surfaces; however he should not have infatuation (etc. up to attachment and aversion). The *Kevali* says—A *nirgranth* having infatuation, attachment (etc. up to attachment and aversion), disturbs his serene conduct and serene celibacy, and falls from the serene code propagated by the *Kevali*.

It is impossible to avoid touching surfaces that have become subjects of the sense organ of touch (skin). However, a *bhikshu* should refrain from having attachment and aversion for the same.

Therefore a *nirgranth* should not disturb his indulgence in the self by touching pleasant and unpleasant surfaces and having attachment and aversion for the same. This is the fifth *bhaavana*.

In this way the fifth great vow with its five *bhaavanas* is properly touched by the body (accepted), observed, accomplished, praised, established and practiced according to the precepts of *Bhagavan*.

Bhante ! This is the fifth great vow called *parigraha-viraman* or abstaining from keeping any possessions.

उपसंहार

३९९. इच्चेएहिं महव्वएहिं पणवीसाहि य भावणाहिं संपन्ने अणगारे अहासुयं अहाकप्पं अहामग्गं सम्मं काएण फासित्ता पालित्ता तीरित्ता किट्टित्ता आणाए आराहिता यावि भवति।

–त्ति बेमि।

॥ पण्णरसमं अज्झयणं सम्मत्तं ॥

३९९. इन (पूर्वोक्त) पाँच महाव्रतों और उनकी पच्चीस भावनाओं से सम्पन्न अनगार यथाश्रुत, यथाकल्प और यथामार्ग इनका काया से सम्यक् प्रकार से स्पर्श कर, पालन कर, इन्हें पार लगाकर, इनके महत्त्व का कीर्तन करके भगवान की आज्ञा के अनुसार इनका आराधक बन जाता है।

–ऐसा मैं कहता हूँ।

CONCLUSION

399. An ascetic possessing the aforesaid five great vows and their twenty five *bhaavanas* in accordance with the scriptures, codes and procedures and properly touching by his body (accepting), observing, accomplishing, praising and establishing, becomes a true seeker according to the precepts of *Bhagavan.*

—So I say.

निष्कर्ष–प्रस्तुत पन्द्रहवें अध्ययन में सर्वप्रथम प्रभु महावीर की पावन जीवन गाथा संक्षेप में दी गई है। पश्चात् प्रभु महावीर द्वारा उपदिष्ट श्रमण धर्म का स्वरूप बताने वाले पाँच महाव्रत तथा उनकी पच्चीस भावनाओं का वर्णन है।

पाँच महाव्रतों का वर्णन इसी क्रम से दशवैकालिक, अध्ययन ४ में तथा पाँच महाव्रतों की पाँच-पाँच कुल पच्चीस भावनाओं का यह विस्तृत विवेचन प्रश्नव्याकरण संवर द्वार में भी है। यह भावनाएँ पाँच महाव्रतों की विशुद्धि तथा रक्षा के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। यही कारण है कि आगमों में अन्य अनेक स्थानों पर भी इन भावनाओं का उल्लेख किया गया है। जैस–समवायांग सूत्र, समवाय २५ में स्थानांगसूत्र ९ में ब्रह्मचर्य की नवगुप्ति प्रकरण में, उत्तराध्ययन, अध्ययन १६ में तथा आचारांग चूर्णि, आवश्यक चूर्णि एवं तत्त्वार्थसूत्र, अध्याय ७ में इन भावनाओं का कुछ नाम-भेद के साथ वर्णन मिलता है।

वृत्तिकार शीलांकाचार्य ने भावनाओं का जो क्रम निर्दिष्ट किया है, वह वर्तमान में हस्तलिखित प्रतियों में उपलब्ध है, किन्तु लगता है आचारांग चूर्णिकार के समक्ष कुछ प्राचीन पाठ-परम्परा रही है, और वह कुछ विस्तृत भी है। चूर्णिकार सम्मत पाठ वर्तमान में आचारांग की प्रतियों में नहीं मिलता, किन्तु आवश्यक चूर्णि में उसके समान बहुलांश पाठ मिलता है।

सार यही है कि श्रमण पाँच महाव्रतों का सम्यक्, निर्दोष और उत्कृष्ट भावनाओं के साथ पालन करे। इसी में उसके श्रमण धर्म की कृतकृत्यता है।

॥ पन्द्रहवाँ अध्ययन समाप्त ॥
॥ तृतीय चूला समाप्त ॥

Elaboration—*Essence* : The pious life story of *Bhagavan* Mahavir is given in brief at the beginning of this chapter. After that the frame work of the *Shraman* religion propagated by him has been presented in the form of five great vows and their *bhaavanas* (stimulants).

The five great vows have been mentioned in the same order in the fourth chapter of *Dashavaikalika Sutra*. This detailed discussion about the twenty fives *bhaavanas,* five each of the five great vows, is also available in the *Samvar Dvar* of *Prashna Vyakaran Sutra*. These *bhaavanas* are very important for faultless and continued observation of the five great vows. That is the reason why these *bhaavanas* find mention at many places in *Agams*. For example in *Samvayanga Sutra,* chapter 25; *Sthananga Sutra,* chapter 9 (*Navagupti Prakaran*); *Uttaradhyayan,* chapter 16 and the seventh chapter of *Acharanga Churni, Avashyak Churni* and *Tattvartha Sutra* description of these *bhaavanas* is available with slight variations in nomenclature.

The order of these *bhaavanas* given by Shilankacharya, the author of the *Vritti,* is found in the hand written manuscripts available today. However, it appears that the author of the *Acharanga Churni* had some older and more detailed texts available. The version of the text used by the author of the *Churni* is not available in the existing copies of *Acharanga Sutra* but in *Avashyak Churni* more detailed text, similar to it, is available.

In short, a *Shraman* should observe the five great vows with right, faultless and lofty *bhaavanas*. Only that attitude makes him an accomplished follower of *Shraman* religion.

|| END OF FIFTEENTH CHAPTER ||
|| END OF THIRD CHULA ||

चतुर्थ चूला

विमुक्ति : सोलहवाँ अध्ययन

आमुख

- सोलहवें अध्ययन का नाम 'विमुक्ति' है।
- विमुक्ति का सामान्यतया अर्थ होता है–बन्धनों से विशेष प्रकार से मुक्ति। बेड़ियों आदि से विमुक्त होना द्रव्य-विमुक्ति है। किन्तु प्रस्तुत में बन्धन द्रव्यरूप नहीं, अपितु भावरूप है। इसी प्रकार मुक्ति भी यहाँ द्रव्यरूप नहीं, कर्मक्षयरूप भाव विमुक्ति ही अभीष्ट है।
- भाव-विमुक्ति साधुओं की भूमिका के अनुसार दो प्रकार की है–(१) देशतः, और (२) सर्वतः। देशतः विमुक्ति–सामान्य साधु से लेकर भवस्थ केवली तक साधुओं की होती है, और सर्वतः विमुक्ति सिद्ध भगवान की होती है।
- विमुक्ति अध्ययन में पाँच अधिकार भावना के रूप में प्रतिपादित हैं–(१) अनित्यत्व, (२) पर्वत, (३) रूप्य, (४) भुजंग, एवं (५) समुद्र।
- पाँचों अधिकारों में विविध उपमाओं, रूपकों एवं युक्तियों द्वारा राग-द्वेष, मोह, ममत्व एवं कषाय आदि से विमुक्ति की साधना पर जोर दिया गया है। इनसे विमुक्ति होने पर ही साधक को सदा के लिए जन्म-मरणादि से रहित मुक्ति प्राप्त हो सकती है।

●●

FOURTH CHULA

VIMUKTI : SIXTEENTH CHAPTER

INTRODUCTION

- The title of the sixteenth chapter is *Vimukti.*
- The general meaning of *vimukti* is to get liberated from bondage in some special way To be free of shackles etc. is physical liberation. But here the bondage is not physical but mental. Therefore the liberation too is not physical here, but mental in context of shedding *karmas.*
- According to the spiritual level of an ascetic this liberation is of two types—(1) partial, and (2) complete. Partial liberation is with reference to ordinary ascetics up to the level of *bhavastha kevali* (a living omniscient). Complete liberation is with reference to the level of *Siddha* (the liberated soul)
- This chapter titled Liberation has five sections given in the form of *bhaavanas*—(1) *Anityatva* or transience, (2) *Parvat* or mountain, (3) *Rupya* or silver, (4) *Bhujanga* or serpent, and (5) *Samudra* or sea.
- In the five sections emphasis has been laid on pursuit of liberation from attachment-aversion, fondness, liking and passions (etc.) with the help of various similes, metaphors and logic. By getting liberated from these a seeker can attain the state of ultimate liberation that is beyond rebirth and death.

●●

विमुत्ती : सोलसं अज्झयणं
विमुक्ति : सोलहवाँ अध्ययन
VIMUKTI : SIXTEENTH CHAPTER
LIBERATION

अनित्य भावना

४००. अणिच्चमावासमुवेंति जंतुणो, पलोयए सोच्चमिणं अणुत्तरं।
विओसिरे विण्णु अगारबंधणं, अभीरु आरंभपरिग्गहं चए॥१॥

४००. प्राणी मनुष्यादि जिन योनियों में जन्म लेते हैं अथवा जिन शरीर आदि में आत्माएँ आवास प्राप्त करती हैं, वे सब स्थान अनित्य हैं। सर्वश्रेष्ठ जिन प्रवचन में कथित यह वचन सुनकर उस पर अन्तर की गहराई से पर्यालोचन करे तथा समस्त भयों से मुक्त बना हुआ विवेकी पुरुष बन्धनों का व्युत्सर्ग कर दे एवं आरम्भ और परिग्रह का त्याग कर दे॥१॥

ANITYA BHAAVANA

400. All the places or *yonis* (genus into which living beings are born) where beings including humans live are transient or ephemeral. Hearing these words of *Tirthankar* one should meditate upon these profoundly. Getting free of all fears, that prudent person should renounce all mundane ties, sinful activities and possessions. (1)

विवेचन–मनुष्य आदि भव में निवास या उस-उस शरीर में निवास अनित्य है अथवा सारा ही संसार अनित्य है। तात्पर्य यह है कि चारों गतियों में जिन-जिन योनियों में जीव उत्पन्न होते हैं, वे सब अनित्य हैं। इस अनुत्तर जिनवाणी को सुनकर विवेकशील पुरुष उस पर पूर्णतया पर्यालोचन करे कि भगवान का कथन यथार्थ है।

"अभीरु आरम्भ-परिग्गहं चए"–अभीरु अर्थात् सात प्रकार के भयों से मुक्त एवं परीषहों और उपसर्गों से नहीं घबराने वाला साधु। आरम्भ–सावद्य कार्य, और परिग्रह–बाह्य आभ्यन्तर परिग्रह अथवा परिग्रह के निमित्त किया जाने वाला आरम्भ छोड़े। आरम्भ और परिग्रह का त्याग

अहिंसा और अपरिग्रह महाव्रत का सूचक है, अगारबन्धन-व्युत्सर्ग शेष समस्त महाव्रतों को सूचित करता है। *(आचारांग वृत्ति, पत्रांक ४२९)*

Elaboration—The living or life in various forms or bodies as human and other beings is ephemeral; in other words this mundane world is transient. Every genus in all the four dimensions of the living is transient in nature. Hearing this unique statement of the *Jina* a wise person should profoundly contemplate on it and realize that the statement is absolutely true.

"Abhiru arambha-pariggaham chaye"—*Abhiru* means an ascetic who is free of the seven types of fear and is not disturbed by afflictions and torments. *Arambha* means sinful acts. *Parigraha* means outer and inner possessions. An ascetic should abandon all possessions and sinful activities meant for their acquisition. Renouncing sinful activities and possessions points at the great vows of *ahimsa* and non-possession. And renouncing mundane ties points at the remaining great vows. *(Acharanga Vritti, leaf 429)*

पर्वत की उपमा तथा परीषहोपसर्ग सहन-प्रेरणा

४०१. तहागयं भिक्खुमणंतसंजयं, अणेलिसं विण्णु चरंतमेसणं।
तुदंति वायाहिं अभिद्दवं णरा, सरेहिं संगामगयं व कुंजरं ॥२॥

४०१. उस तथाभूत (अनित्यादि भावना से भावित) अनन्त-(एकेन्द्रियादि जीवों) के प्रति यतनावान् अनुपमसंयमी विद्वान् एवं आगमानुसार आहारादि की एषणा करने वाले भिक्षु को देखकर कतिपय मिथ्या दृष्टि अनार्य मनुष्य उस पर असभ्य वचनों से तथा पत्थर आदि प्रहार से उसी तरह व्यथित कर देते हैं जिस तरह संग्राम में वीर योद्धा, शत्रु के हाथी को बाणों की वर्षा से व्यथित करते हैं ॥२॥

MOUNTAIN THE SYMBOL OF TOLERANCE

401. Seeing that inspired (with *anitya* and other *bhaavanas*), caring (for all beings) and extremely disciplined sage collecting alms according to the procedure laid down in *Agam* some ignorant rustics torment him by attacking with abusive words and stones just like warriors torment an enemy elephant with a barrage of arrows in a battle. (2)

चित्र परिचय १६ | Illustration No. 16
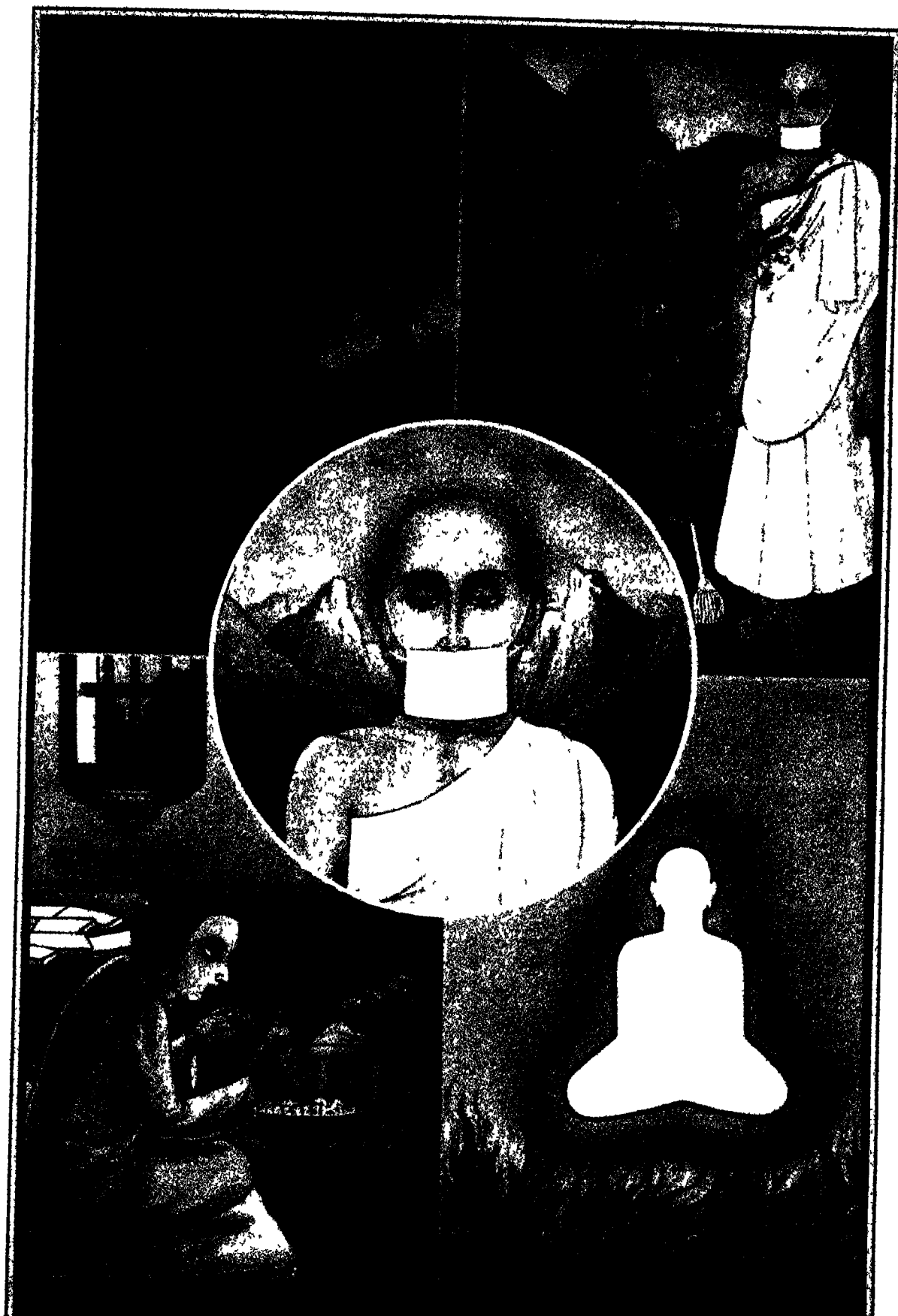
परीषह में अकम्प

(१) **पर्वत की तरह अकम्प**–जिस भिक्षु का मन भावनाओ से अच्छी प्रकार भावित होकर समभावो मे स्थिर रहता है वह अनार्य असभ्य जनो द्वारा कहे गये कठोर वचनो तथा विविध प्रकार की पीडाओ मे उसी प्रकार स्थिर व अकम्पित रहता है जैसे वायु के प्रबल वेग से पर्वत कभी कम्पायमान नही होता। *--अध्ययन १६, सूत्र ३९९-४००*

कर्ममल-शुद्धि

(२) **तप अग्नि है : रजत की तरह शुद्ध आत्मा**–जो भिक्षु क्षमा आदि उत्तम धर्मो मे प्रवृत्त रहता है। तृष्णा से मुक्त और धर्मध्यान मे समाहित रहता है उसके तप, प्रज्ञा और यश का तेज अग्निशिखा के तेज की भाँति निरन्तर बढता ही जाता है और जिस प्रकार अग्नि मे तपकर विविध रसायनो द्वारा चाँदी का मल दूर होने पर वह मलरहित होकर शुद्ध हो जाती है उसी प्रकार कर्ममलो से मुक्त होकर सर्वकर्म विमुक्त आत्मा विशुद्ध-निर्मल हो जाता है।

--अध्ययन १६, सूत्र ४०२, ४०५

UNMOVED BY AFFLICTIONS

(1) As a mountain remains unmoved by tremendous force of winds, likewise an ascetic who, highly inspired by these *bhaavanas*, is stable in equanimity remains serene and unmoved enduring angry words and various afflictions caused by rustic and uncivilized people. *—Chapter 16, aphorism 399-400*

CLEANSING THE DIRT OF *KARMAS*

(2) **Austerities are fire : Soul pure as silver—**An ascetic following the pious codes like forgiveness, free of desires and absorbed in pious meditation continues to increase his austerity, wisdom and glory like the glow of a flame. As silver becomes pure by burning in fire and removing its impurities, likewise removing the dirt of *karmas* a soul gets liberated of all *karmas* and becomes pure and sublime.

—Chapter 16, aphorism 402, 405

४०२. तहप्पगारेहिं जणेहिं हीलिए, ससद्दफासा फरुसा उदीरिया।
तितिक्खए नाणि अदुट्ठचेयसा, गिरि व्व वाएण ण संपवेयए॥३॥

४०२. असंस्कारी एवं असभ्य जनों द्वारा कहे गये आक्रोशयुक्त शब्दों तथा शीतोष्णादि स्पर्शों से पीड़ित ज्ञानवान भिक्षु प्रशान्त चित्त से उन्हें सहन करे। जिस प्रकार वायु के प्रबल वेग से भी पर्वत कम्पायमान नहीं होता, ठीक उसी प्रकार संयमशील मुनि भी इन परीषहोपसर्गों से विचलित नहीं होता है॥३॥

402. A wise ascetic should peacefully endure these angry words and hot and cold blows by rustic and uncivilized people. As a mountain is not shaken even by tremendous force of winds, a disciplined ascetic is not shaken by such afflictions and torments. (3)

विवेचन–'तहागयं भिक्खु' .... वृत्ति एवं चूर्णिकार ने तथागत शब्द की व्याख्या इस प्रकार की है–"अनित्यत्वादि भावना से भावित गृहबन्धन से मुक्त, आरम्भ-परिग्रहत्यागी तथा अनन्त–एकेन्द्रियादि प्राणियों पर सम्यक् प्रकार से संयमशील, अद्वितीय जिनागम रहस्यवेत्ता विद्वान् एवं एषणा से युक्त विशुद्ध आहारादि से जीवन निर्वाह करने वाला भिक्षु।"

चूर्णिकार के अनुसार–तथागत का अर्थ है जिस मार्ग से, जिस गति से, तीर्थंकर, गणधर आदि गये हैं, उसी प्रकार जो गमन करता है, वह तथागत कहलाता है। अनन्त चारित्र-पर्यायों से युक्त अनन्त संयत हैं।

वृत्तिकार एवं चूर्णिकार के अनुसार–**'तहप्पगारेहिं जणेहिं हीलिते'** की व्याख्या है–जैसे असंस्कारी, मन के काले, दरिद्र अनार्यप्रायः तथा प्रकार के बाल जनों के द्वारा निन्दा या व्यथित होने पर एवं परीषह दिये जाने पर भी भिक्षु पर्वत की भाँति अविचल रहता है।

Elaboration—*Tahagayam bhikkhu*. . .—the word *tathagat* has been interpreted in the *Vritti* and *Churni* as—an ascetic inspired by *anitya* and other *bhaavanas*, free of mundane ties, sinful activities and possessions, perfectly disciplined and careful with regard to all beings, a great scholar of *Agams*, who lives on pure and acceptable alms.

According to *Churni tathagat* means one who follows the path taken by *Tirthankar, Ganadhar* etc. A person endowed with infinite variations of right conduct and absolute discipline.

According to *Churni* the interpretation of the phrase *'Tahappagarehım janehım hilitay'* is—even in face of criticism, abuse and afflictions by lowly, uncivilized, perverse, destitute, rustic and other ignorant persons an ascetic remains unmoved like a mountain.

रजत-शुद्धि का दृष्टान्त तथा कर्ममल-शुद्धि की प्रेरणा

४०३. उवेहमाणे कुसलेहिं संवसे, अकंतदुक्खा तस-थावरा दुही।
अलूसए सव्वसहे महामुणी, तहा हि से सुस्समणे समाहिए॥४॥

४०३. परीषह एवं उपसर्गों को सहन करता हुआ अथवा माध्यस्थभावना का अवलम्बन करता हुआ वह मुनि अहिंसादि प्रयोग में कुशल–गीतार्थ मुनियों के साथ रहे। त्रस एवं स्थावर सभी प्राणियों को दुःख अप्रिय लगता है। अतः उन्हें दुःखी देखकर, किसी प्रकार का परिताप न देता हुआ पृथ्वी की भाँति सब प्रकार के परीषहोपसर्गों को सहन करने वाला महामुनि तीन लोक के स्वभाव का ज्ञाता होता है। इसी कारण उसे सुश्रमण श्रेष्ठ श्रमण कहा गया है॥४॥

SILVER THE SYMBOL OF PURITY

403. Enduring afflictions and torments and having equanimous attitude that ascetic should live with wise sages accomplished in observing *ahimsa* (etc.). All beings, mobile or immobile dislike pain. Therefore, seeing their pain the great ascetic who does not cause any pain to any being and endures all afflictions like the earth becomes aware of the nature of all the three worlds. This is why he is called the best amongst ascetics. (4)

४०४. विऊ नए धम्मपयं अणुत्तरं, विणीयतण्हस्स मुणिस्स झायओ।
समाहियस्सऽग्गिसिहा व तेयसा, तवो य पण्णा य जसो य वड्ढइ॥५॥

४०४. क्षमा-मार्दव आदि दश प्रकार अनुत्तर (श्रेष्ठ) श्रमण धर्मपद में प्रवृत्ति करने वाला विद्वान् एवं विनीत मुनि तृष्णा से रहित होकर, धर्मध्यान में संलग्न और समाहित–चारित्र-पालन में सावधान रहता है। ऐसे मुनि के तप, प्रज्ञा और यश अग्निशिखा के तेज की भाँति निरन्तर बढ़ते रहते हैं।

404. A scholarly and humble ascetic following the *Shraman* religion (climbing the ten steps including forgiveness, sympathy

etc.) becomes free of desires and involves and absorbs himself in meditation (remains alert in observing the codes of conduct). The austerity, wisdom and glory of such ascetics continue to increase like the glow of a flame. (5)

४०५. दिसोदिसिंऽणंतजिणेण ताइणा, महव्वया खेमपया पवेइया।
महागुरु निस्सयरा उदीरिया, तमेव तेऊ तिदिसं पगासगा॥६॥

४०५. षट्काय के रक्षक, अनन्त ज्ञानादि से सम्पन्न राग-द्वेष विजेता, जिनेन्द्र भगवान ने सभी एकेन्द्रियादि भावदिशाओं में रहने वाले जीवों के लिए क्षेम (रक्षण) स्थान—महाव्रतों का प्रतिपादन किया है। अनादिकाल से बँधे कर्म-बन्धनों को दूर करने में समर्थ महान् गुरु ने इन महाव्रतों का निरूपण किया है। जिस प्रकार तेज (सूर्य प्रकाश) तीनों दिशाओं (ऊर्ध्व, अधो एवं तिर्यक्) के अन्धकार को नष्ट करके प्रकाश कर देता है, उसी प्रकार महाव्रत रूप तेज भी अन्धकार रूप कर्मसमूह को नष्ट करके प्रकाश करने वाला बन जाता है॥६॥

405. The *Jinendra*, protector of six life-forms, endowed with infinite knowledge (etc.), conqueror of attachment and aversion, has propagated the five great vows for the well-being of all life-forms (at different levels of evolution of faculties including one sensed beings). The great *guru*, capable of destroying the bondage of all *karmas*, has formulated these great vows. As light (sunlight) illuminates all the three directions dispelling darkness, in the same way the light of great vows illuminates the soul by dispelling the darkness of accumulated *karmas*. (6)

४०६. सिएहिं भिक्खू असिए परिव्वए, असज्जमित्थीसु चएज्ज पूयणं।
अणिस्सिओ लोगमिणं तहा परं, ण मिज्जति कामगुणेहिं पंडिए॥७॥

४०६. भिक्षु कर्म या रागादि बन्धनकारक गृहपाश से बँधे हुए गृहस्थों या अन्यतीर्थिकों के साथ अबद्ध-संसर्गरहित होकर संयम में विचरण करे तथा स्त्रियों के संग का त्याग करके पूजा-सत्कार आदि की लालसा छोड़े। साथ ही वह इहलोक तथा परलोक में अनिश्रित—निस्पृह होकर रहे। कामभोगों के कटु विपाक को देखने वाला पण्डित मुनि मनोज्ञ-शब्दादि काम-गुणों को स्वीकार न करे॥७॥

406. Avoiding the company of householders and followers of other religious schools, a *bhikshu* should pursue the path of ascetic discipline. He should renounce the company of women as well as desire for his worship and reverence by others. He should remain free of any aspirations for this and the other world. Aware of the bitter fruits of carnal indulgences, the wise ascetic should have apathy for pleasant sounds and other attributes of carnality. (7)

४०७. तहा विमुक्कस्स परिण्णचारिणो, धिइमओ दुक्खखमस्स भिक्खुणो।
विसुज्झती जंसि मलं पुरकेडं, समीरियं रुप्पमलं व जोइणा॥८॥

४०७. सर्वसंगविमुक्त, परिज्ञा-(ज्ञानपूर्वक) आचरण करने वाले, धृतिमान्-दुःखों को सम्यक् प्रकार से सहन करने में समर्थ, भिक्षु के पूर्वकृत कर्ममल उसी प्रकार विशुद्ध-(क्षय) हो जाते हैं, जिस प्रकार अग्नि द्वारा चाँदी का मैल अलग हो जाता है॥८॥

407. The past-acquired dirt of *karmas* of a *bhikshu* who is free of all company, has sagacious conduct, and has capacity to correctly endure all misery, is cleansed in the same way as impurities of silver are removed by fire (8)

विवेचन-इन पाँच गाथाओं में शास्त्रकार ने कर्ममल से विमुक्त होने की दिशा मे साधु को क्या-क्या करना चाहिए इसकी प्रेरणा रजतमल-शुद्धि आदि दृष्टान्तों के द्वारा दी है। साधु के पाँच कर्त्तव्यों का निर्देश इस प्रकार किया गया है-

(१) पृथ्वी की तरह सब कुछ सहने वाला मुनि त्रस-स्थावर जीवो की हिंसा से दूर रहे।

(२) क्षमादि दस धर्मों का पालन करने वाले तृष्णा मुक्त एवं धर्मध्यानी मुनि की तपस्या, प्रज्ञा एव कीर्ति अग्निशिखा के तेज की तरह बढ़ती है, वही कर्ममुक्ति दिलाने में समर्थ है।

(३) महाव्रतरूपी सूर्य कर्मसमूह रूप अन्धकार को नष्ट करके आत्मा को त्रिलोक प्रकाशक बना देते हैं।

(४) कर्मों के पाश में बँधे लोगों-गृहस्थों के संसर्ग से तथा स्त्रीजन एवं इह-पर-लोक सम्बन्धी कामनाओं से भिक्षु दूर रहे।

(५) सर्वसंगमुक्त, परिज्ञाचारी-विवेकी, धृतिमान, दुःख-सहिष्णु भिक्षु के कर्ममल उसी तरह साफ हो जाते हैं, जिस तरह अग्नि से चाँदी का मैल साफ हो जाता है।

Elaboration—In these five verses the author has mentioned what an ascetic should do to cleanse his soul of the dirt of *karmas* with examples like process of purifying silver. The five duties of an ascetic are listed in the following manner—

(1) An ascetic who endures all afflictions like the earth should avoid harming mobile and immobile beings.

(2) The austerity, wisdom and glory of an ascetic following the ten steps of religion including forgiveness, freedom from desires and absorption in meditation continues to increase like the glow of a flame.

(3) The sun of great vows dispels the darkness of the accumulated *karmas* and makes the soul a source of light for all the three worlds.

(4) An ascetic should remain away from the householders caught in the trap of *karmas,* desire for women and attraction for this and the other world.

(5) The dirt of *karmas* of a *bhikshu* who is free of all company, is prudent, and can endure misery, is cleansed just like silver is purified by fire.

विशेष शब्दों के अर्थ–'उवेहमाणे' ' उन बाल जनों के प्रति या उन कठोर शब्द-स्पर्शों के प्रति साधु उपेक्षा करता रहे। **अंकतदुक्खा**–सभी प्राणियों को दुःख अप्रिय है, त्रस और स्थावर दोनों प्रकार के संसारवर्ती प्राणी दुःखी हैं, यह जानकर समस्त जीवों की हिंसा न करे।

अणंत जिणेण–चूर्णिकार के अनुसार–मनुष्य, तिर्यंच आदि रूप अनन्त संसार है, वह जिसने जीत लिया, वह अनन्तजित होता है।

'महागुरु निस्सयरा उदीरिया'–चूर्णिकार के अनुसार–महाव्रत बड़ी कठिनता से ग्रहण किये जाते हैं तथा गुरुतम–भारी होने के कारण ये महागुरु कहलाते हैं। निस्सयरा का अर्थ है–णिस्सा करेंति खवंति–तीक्ष्ण करके क्षय करते हैं। जैसे सूर्य तीनों दिशाओं के अन्धकार को मिटाकर प्रकाश कर देता है, वैसे ही महाव्रत त्रिजगत् के कर्मरूप अन्धकार को मिटाकर आत्म-ज्ञान का प्रकाश कर देता है।

'असज्जमित्थीसु चएज्ज पूयणं'–स्त्रियों में असक्त रहे और पूजा–सत्कार की आकांक्षा छोड़े। प्रथम में मूलगुण की तथा दूसरे में उत्तरगुण की सुरक्षा का प्रतिपादन है।

'विसुज्झती समीरियं रुप्पमलं व जोइणा'–जैसे चाँदी का मैल–किट्ट-अग्नि में तपाने से साफ हो जाता है वैसे ही ऐसे भिक्षु द्वारा असंयमवश पूर्वकृत कर्ममल भी तपस्या की अग्नि से विशुद्ध (साफ) हो जाता है। *(आचारांग चूर्णि मू. पा. टि., पृष्ठ २९५-२९६)*

Technical Terms : *Uvehamane.* .... —an ascetic should ignore those ignorant people or those harsh words or blows. *Akantadukkha*—every being dislikes misery; suffering is the fate of all beings, mobile and immobile; knowing this, one should not harm any being.

Anant jinena—according to *Churni* the world of beings including humans and animals, is endless. One who has conquered this is called *anant-jit* or conqueror of the infinite

Mahaguru nissayara udiriya—The *Churni* explains this as—It is very difficult to accept the great vows; thus being very stringent (heavy or *guru)* they are called *mahaguru. Nissayara* means to destroy with sharpness. Thus the meaning of the phrase is—the great vows destroy the darkness of bondage of *karmas* in the spiritual dimension in three worlds and spread the light of knowledge of soul, like the sun does in the physical dimension

Asajjamitthisu chayejja puyanam—should remain aloof from women and abandon the desire for worship and reverence by others. The first is for protection of the basic virtue and the second for that of auxiliary one.

Visujjhati samiriyam ruppamalam va joina—the impurities of silver are removed by heating it in fire. In the same way the dirt of *karmas* acquired by an ascetic due to indiscipline in the past is cleansed with the help of the fire of austerity. ***(Acharanga Churni Text foot notes, p. 295-296)***

भुजंग-दृष्टान्त द्वारा बंधन-मुक्ति की प्रेरणा

४०८. से हु परिण्णासमयम्मि वट्टइ, णिराससे उवरय-मेहुणे चरे।
भुजंगमे जुण्णतयं जहा चए, विमुच्चती से दुहसेज्ज माहणे॥१॥

४०८. जिस प्रकार सर्प अपनी जीर्ण त्वचा–काँचुली को त्यागकर उससे मुक्त हो जाता है वैसे ही जो महाव्रतधारी माहन-भिक्षु परिज्ञा–परिज्ञान के समय–सिद्धान्त में प्रवृत्त रहता है। वह इहलोक-परलोक सम्बन्धी आशंसा से रहित है, मैथुन-सेवन से उपरत (विरत) है तथा संयम में विचरण करता है, वह नरकादि दुःखशय्या या कर्मबन्धनों से मुक्त हो जाता है॥१॥

SHEDDING SKIN LIKE A SERPENT

408. As a serpent sheds its old skin and gets free of it, likewise the great ascetic who has accepted the great vows and pursues the study of fundamentals, is free of desires, has renounced carnality and observes discipline. He sheds the bonds of *karma* and is free of the miseries of hell (etc.). (9)

विवेचन–प्रस्तुत सूत्र में सर्प का दृष्टान्त देकर समझाया गया है कि सर्प जैसे अपनी पुरानी काँचुली छोड़कर उससे मुक्त हो जाता है, वैसे ही जो मुनि ज्ञान-सिद्धान्त-परायण, निरपेक्ष, मैथुनोपरत एवं सयमाचारी है, वह पापकर्म के फलस्वरूप प्राप्त होने वाली नरक–तिर्यंच आदि रूप दुःखशय्या से मुक्त हो जाता है।

Elaboration—Giving the example of a serpent this aphorism explains that as a serpent sheds its old skin and gets free of it, likewise an ascetic who pursues the study of fundamentals; is free of desires and carnality and observes discipline is free of the bed of miseries that is a birth as hell-beings, animals (etc.).

महासमुद्र का दृष्टान्त : कर्म अन्त करने की प्रेरणा

४०९. जमाहु ओहं सलिलं अपारगं, महासमुद्दं व भुयाहिं दुत्तरं।
अहे य णं परिजाणाहि पंडिए, से हु मुणी अंतकडे त्ति वुच्चती॥१०॥

४०९. तीर्थंकर आदि ने कहा है–अपार सलिल-प्रवाह वाले समुद्र को भुजाओं से पार करना दुस्तर है, वैसे ही संसाररूपी महासमुद्र को भी पार करना दुस्तर है। अतः इस संसार समुद्र के स्वरूप को (ज्ञ-परिज्ञा से) जानकर (प्रत्याख्यान-परिज्ञा से) उसका परित्याग कर दे। इस प्रकार का त्याग करने वाला पण्डित मुनि कर्मों का अन्त करने वाला होता है॥१०॥

409. *Tirthankars* (etc.) have said—Just as it is very difficult to cross the endless water-body that is ocean with bare hands; in the same way it is difficult to cross this ocean—like world. Therefore one should know the form of the ocean that is this mundane world and renounce it. A wise ascetic who thus renounces, ends the bondage of *karmas*. (10)

४१०. जहा य बद्धं इह माणवेहिं या, जहा य तेसिं तु विमोक्ख आहिए।
अहा तहा बंधविमोक्ख जे विऊ, से हु मुणी अंतकडे त्ति वुच्चई॥११॥

४१०. मानवों ने इस संसार में मिथ्यात्व आदि का सेवन करके जिस प्रकार से कर्म बाँधे हैं, उसी प्रकार सम्यग्दर्शन आदि द्वारा उन कर्मों से मुक्त हो सकते हैं। इस प्रकार बन्ध और विमोक्ष का स्वरूप यथा-तथ्य रूप से जानने वाला विद्वान् मुनि अवश्य ही संसार का या कर्मों का अन्त करने वाला कहा गया है॥११॥

410. As the human beings earn the bondage of *karmas* through *mithyatva* (false perception or false belief) (etc.), so they can get liberated of that bondage of *karmas* through *samyag-darshan* (right perception or right belief) (etc.). It is said that an ascetic who knows the true form of bondage and liberation certainly ends this world (the cycle of rebirth) or the bondage of *karmas*. (11)

४११. इमम्मि लोए परए य दोसु वि, ण विज्जइ बंधणं जस्स किंचि वि।
से हू णिरालंबणमप्पइट्ठिए, कलंकलीभावपवंच विमुच्चति॥१३॥

—त्ति बेमि।

॥ सोलसं अज्झयणं सम्मत्तं ॥

॥ आयारंगसुत्तं : बीओ सुयक्खंधो सम्मत्तो ॥

४११. इस लोक, परलोक तथा दोनों लोकों में जिसका किंचित् मात्र भी रागादि बन्धन नहीं है तथा जो साधक निरालम्ब—इहलौकिक-पारलौकिक स्पृहाओं से अप्रतिबद्ध है, वह

कंचुली युक्त
कंचुली मुक्त भुजंग

चित्र परिचय १७

Illustration No. 17

भुजंग की तरह संग-मुक्त

(१) जिस प्रकार भुजग (सर्प) अपनी जीर्ण त्वचा (काँचुली) का त्याग करके उससे मुक्त होकर स्वतत्र विचरता है, वापस उसे स्वीकार नही करता, उसी प्रकार इहलोक-परलोक सम्बन्धी आशसा का त्यागकर भिक्षु नरक एव तिर्यंच गति सम्बन्धी दु ख शय्या (दु खों) से मुक्त होकर विचरता है।

-अध्ययन १६, सूत्र ४०८

भव-समुद्र से पारगामी

(२) जिस प्रकार अथाह जल वाले समुद्र को भुजाओ से पार करना कठिन है, वैसे ही इस ससाररूपी महासमुद्र को पार करना बडा दुष्कर है। जो मुनि इस ससार का स्वरूप पहचानकर उसका (तृष्णा का) त्याग कर देता है, वह भव समुद्र के पार पहुँच जाता है।

-अध्ययन १६, सूत्र ४०९-४१०

FREE OF ATTACHMENTS LIKE A SERPENT

(1) As a serpent abandons its old skin and not taking it back moves free, likewise an ascetic abandons desires for this world and the other, gets liberated from the bed of miseries of births in hell or as an animal and moves free

—Chapter 16, aphorism 408

CROSSING THE OCEAN OF REBIRTHS

(2) As it is difficult to cross an ocean bare handed, likewise it is extremely difficult to cross this ocean of mundane existence. An ascetic who becomes aware of the true form of this mundane world and renounces any desire for it crosses the ocean of rebirths

—Chapter 16, aphorism 409-410

साधु निश्चय ही संसार में गर्भादि के पर्यटन के प्रपंच (कलंकलीभाव) से विमुक्त हो जाता है।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

॥ सोलहवाँ अध्ययन समाप्त ॥

॥ चतुर्थ चूला समाप्त ॥

॥ आचारांग सूत्र : द्वितीय श्रुतस्कन्ध (आचार चूला) समाप्त ॥

411. The ascetic who does not have even a trace of the bondage of attachment (etc.) in this world and the other, and the aspirant who is completely detached from any desire related to this world or the other; certainly gets liberated from the worldly entanglements of rebirth (etc.).

—So I say.

॥ END OF SIXTEENTH CHAPTER ॥

॥ END OF FOURTH CHULA ॥

॥ END OF ACHARANGA SUTRA : PART TWO ॥

अनध्याय काल

(स्व. आचार्यप्रवर श्री आत्माराम जी म. द्वारा सम्पादित नन्दीसूत्र से उद्धृत)

स्वाध्याय के लिए आगमो मे जो समय बताया गया है, उसी समय शास्त्रों का स्वाध्याय करना चाहिए। अनध्याय काल मे स्वाध्याय वर्जित है।

मनुस्मृति आदि स्मृतियों मे भी अनध्याय काल का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। वैदिक लोग भी वेद के अनध्यायो का उल्लेख करते है। इसी प्रकार अन्य आर्ष ग्रन्थो का भी अनध्याय माना जाता है। जैनागम भी सर्वज्ञोक्त, देवाधिष्ठित तथा स्वरविद्या संयुक्त होने के कारण, इनका भी आगमों मे अनध्याय काल वर्णित किया गया है। जैस–

दसविधे अंतलिक्खिते असज्झाए पण्णत्ते, तं जहा–उक्कावाते, दिसिदाघे, गज्जिते, विज्जुते, निग्घाते, जुवते, जक्खालित्ते, धूमिता, महिता, रयउग्घाते।

दसविहे ओरालिते असज्झातिते, त जहा–अट्ठी, मस, सोणिते, असुतिसामते, सुसाणसामते, चदोवराते, सूरोवराते, पडने, रायवुग्गहे, उवस्सयस्स अतो ओरालिए सरीरगे।

–स्थानांगसूत्र, स्थान १०

नो कप्पति निग्गथाण वा, निग्गंथीण वा चउहिं महापाडिवएहिं सज्झायं करित्तए, त जहा–आसाढपाडिवए, इदमहपाडिवए, कत्तिअपाडिवए सुगिम्हपाडिवए। नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गथीण वा, चउहिं सझाहिं सज्झाय करेत्तए, तं जहा–पडिमाते, पच्छिमाते, मज्झण्हे, अड्ढरत्ते। कप्पइ निग्गथाण वा निग्गथीण वा, चाउक्काल सज्झाय करेत्तए, तं जहा–पुव्वण्हे अवरण्हे, पओसे, पच्चूसे।

–स्थानांगसूत्र, स्थान ४, उद्देश २

स्थानाग सूत्र के अनुसार, दस आकाश से सम्बन्धित, दस औदारिक शरीर से सम्बन्धित, चार महाप्रतिपदा, चार महाप्रतिपदा की पूर्णिमा और चार सन्ध्या, इस प्रकार बत्तीस अनध्याय माने गए हैं, जिनका संक्षेप मे निम्न प्रकार से वर्णन है। जैसे–

आकाश–सम्बन्धी दस अनध्याय

१. उल्कापात–तारापतन–यदि महत् तारापतन हुआ है तो एक प्रहर पर्यन्त शास्त्र–स्वाध्याय नही करना चाहिए।

२. दिग्दाह—जब तक दिशा रक्तवर्ण की हो अर्थात् ऐमा मालूम पड़े कि दिशा मे आग-सी लगी है, तब भी स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

३. गर्जित—बादलों के गर्जन पर एक प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय न करे।

४. विद्युत—बिजली चमकने पर एक प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय न करे।

किन्तु गर्जन और विद्युत् का अस्वाध्याय चातुर्मास में नहीं मानना चाहिए। क्योंकि वह गर्जन और विद्युत् प्रायः ऋतु-स्वभाव से ही होता है। अतः आर्द्रा से स्वाति नक्षत्र पर्यन्त अनध्याय नहीं माना जाता।

५. निर्घात—बिना बादल के आकाश मे व्यन्तरादिकृत घोर गर्जना होने पर या बादलों सहित आकाश में कड़कने पर दो प्रहर तक अस्वाध्याय काल है।

६. यूपक—शुक्ल पक्ष मे प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया को सन्ध्या की प्रभा और चन्द्रप्रभा के मिलने को यूपक कहा जाता है। इन दिनों प्रहर रात्रि पर्यन्त स्वाध्याय नही करना चाहिए।

७. यक्षादीप्त—कभी किसी दिशा मे बिजली चमकने जैसा, थोड़े-थोड़े समय पीछे जो प्रकाश होता है वह यक्षादीप्त कहलाता है। अत· आकाश में जब तक यक्षाकार दीखता रहे तब तक स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

८. धूमिका-कृष्ण—कार्तिक से लेकर माघ तक का समय मेघों का गर्भमास होता है। इसमें धूम्र वर्ण की सूक्ष्म जलरूप धुंध पड़ती है। वह धूमिका-कृष्ण कहलाती है। जब तक वह धुंध पडती रहे, तब तक स्वाध्याय नही करना चाहिए।

९. मिहिकाश्वेत—शीतकाल में श्वेत वर्ण की सूक्ष्म जलरूप धुंध मिहिका कहलाती है। जब·तक यह गिरती रहे, तब तक अस्वाध्याय काल है।

१०. रज-उद्घात—वायु के कारण आकाश मे चारों ओर धूलि छा जाती है। जब तक यह धूलि फैली रहती है, स्वाध्याय नही करना चाहिए।

उपरोक्त दस कारण आकाश-सम्बन्धी अस्वाध्याय के हैं।

औदारिक शरीर-सम्बन्धी दस अनध्याय

११-१२-१३. हड्डी, माँस और रुधिर—पंचेन्द्रिय तिर्यंच की हड्डी, माँस और रुधिर यदि सामने दिखाई दें, तो जब तक वहाँ से यह वस्तुएँ उठाई न जाएँ, तब तक अस्वाध्याय है। वृत्तिकार आसपास के ६० हाथ तक इन वस्तुओं के होने पर अस्वाध्याय मानते हैं।

इसी प्रकार मनुष्य-सम्बन्धी अस्थि, माँस और रुधिर का भी अनध्याय माना जाता है। विशेषता इतनी है कि इनका अस्वाध्याय सौ हाथ तक तथा एक दिन-रात का होता है। स्त्री के मासिक धर्म का

अस्वाध्याय तीन दिन तक। बालक एव बालिका के जन्म का अस्वाध्याय क्रमशः सात एव आठ दिन पर्यन्त का माना जाता है।

१४. अशुचि–मल-मूत्र सामने दिखाई देने तक अस्वाध्याय है।

१५. श्मशान–श्मशान भूमि के चारों ओर सौ-सौ हाथ पर्यन्त अस्वाध्याय माना जाता है।

१६. चन्द्र-ग्रहण–चन्द्र-ग्रहण होने पर जघन्य आठ, मध्यम बारह और उत्कृष्ट सोलह प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

१७. सूर्य-ग्रहण–सूर्य-ग्रहण होने पर भी क्रमशः आठ, बारह और सोलह प्रहर पर्यन्त अस्वाध्याय काल माना गया है।

१८. पतन–किसी बडे मान्य राजा अथवा राष्ट्र-पुरुष का निधन होने पर जब तक उसका दाह-सस्कार न हो, तब तक स्वाध्याय नही करना चाहिए अथवा जब तक दूसरा अधिकारी सत्तारूढ न हो, तब तक शनै.-शनै· स्वाध्याय करना चाहिए।

१९. राजव्युद्ग्रह–समीपस्थ राजाओ मे परस्पर युद्ध होने पर जब तक शान्ति न हो जाए, तब तक और उसके पश्चात् भी एक दिन-रात्रि स्वाध्याय नही करे।

२०. औदारिक शरीर–उपाश्रय के भीतर पचेन्द्रिय जीव का वध हो जाने पर जब तक कलेवर पडा रहे, तब तक तथा १०० हाथ तक यदि निर्जीव कलेवर पडा हो तो स्वाध्याय नही करना चाहिए।

अस्वाध्याय के उपरोक्त १० कारण औदारिक शरीर-सम्बन्धी कहे गये है।

२१-२८. चार महोत्सव और चार महाप्रतिपदा-आषाढ–पूर्णिमा, आश्विन–पूर्णिमा, कार्तिक–पूर्णिमा और चैत्र–पूर्णिमा ये चार महोत्सव है। इन पूर्णिमाओ के पश्चात् आने वाली प्रतिपदा को महाप्रतिपदा कहते है। इनमे स्वाध्याय करने का निधेष है।

२९-३२. प्रातः, सायं, मध्याह्न और अर्ध-रात्रि–प्रात. सूर्य उगने से एक घडी पहले तथा एक घडी पीछे। सूर्यास्त होने से एक घडी पहले तथा एक घडी पीछे। मध्याह्न अर्थात् दोपहर मे एक घड़ी आगे और एक घडी पीछे एव अर्ध–रात्रि मे भी एक घड़ी आगे तथा एक घडी पीछे स्वाध्याय नही करना चाहिए।

●●

हमारे महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

सचित्र आगम हिन्दी–अंग्रेजी अनुवाद

उत्तराध्ययन सूत्र (सचित्र)	५००.००
दशवैकालिक सूत्र (सचित्र)	५००.००
नदी सूत्र (सचित्र)	५००.००
कल्प सूत्र (सचित्र)	५००.००
अन्तकृद्दशा सूत्र (सचित्र)	५०० ००
ज्ञाता सूत्र (भाग १, २) (सचित्र)	१०००.००
आचारांग सूत्र (भाग १, २) (सचित्र)	१०००.००
अनुयोगद्वार सूत्र सचित्र (प्रकाश्यमान)	४००.००
तीर्थंकर चरित्र (सचित्र)	२००.००
सचित्र णमोकार महामत्र (सचित्र)	१००.००
भक्तामर महिमा	४० ००
अन्तकृद्दशा महिमा	५० ००
उत्तराध्ययन महिमा	५०.००
अमर दीप (भाग १, २) (ऋषिभाषित पर प्रवचन)	४० ००
पद्म–पुष्प की अमर सौरभ	५०.००
अमर प्रेरणा-प्रदीप	१००.००
जैनधर्म . रूप और स्वरूप	५०.००
अजातशत्रु कूणिक (कॉमिक्स)	१७.००
करकण्डू जाग गया (कॉमिक्स)	१७.००

पद्म प्रकाशन

पद्मधाम, नरेला मण्डी, दिल्ली